आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ति-रचित
गोम्मटसार-कर्मकाण्ड

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ति-रचित
गोम्मटसार-कर्मकाण्ड

नौ अधिकार गाथा संख्या ९७२

१) प्रकृतिसमुत्कीर्तनाधिकार १ से ८६

२) बन्धोदयसत्त्वाधिकार ८७ से ३५७

३) सत्त्वस्थानभंगाधिकार ३५८ से ३९७

४) त्रिचूलिकाधिकार ३९८ से ४५०

१) नवप्रश्नचूलिका २) पंचभागहार ३) दशकरण

५) स्थानसमुत्कीर्तनाधिकार ४५१ से ७८४

१) बन्धस्थान २) उदयस्थान ३) सत्त्वस्थान

६) प्रत्ययाधिकार ७८५ से ८१०

१) मिथ्यात्व २) अविरति ३) कषाय ४) योग

७) भावचूलिकाधिकार ८११ से ८९५

१) औपशमिक २) क्षायिक ३) मिश्र ४) औदयिक ५) पारिणामिक

८) त्रिकरणचूलिकाधिकार ८९६ से ९१२

१) अध:करण २) अपूर्वकरण ३) अनिवृत्तिकरण

९) कर्मस्थिति रचनाधिकार ९१३ से ९६४

ग्रन्थकारप्रशस्ति ९६५ से ९७२

गोम्मटसार कर्मकाण्ड

१ प्रकृति समुत्कीर्तनाधिकार

मंगलाचरण और ग्रन्थप्रतिज्ञा

पणमिय सिरसा णेमिं गुणरयणविभूसणं महावीरं।
सम्मत्तरयणणिलयं पयडिसमुक्कित्तणं वोच्छं।।१।।

अन्वयार्थ - (गुणरयणविभूसणं) गुणरूपी रत्न ही जिनके आभूषण हैं, **(महावीरं)** जो मोक्षरूपी लक्ष्मी को देते हैं और **(सम्मत्तरयणणिलयं)** जो सम्यक्त्वादि गुणरूपी रत्नों के स्थान हैं ऐसे **(णेमिं)** नेमिनाथ तीर्थंकर देव को **(सिरसा)** मस्तक झुकाकर **(पणमिय)** नमस्कार करके (मैं) **(पयडिसमुक्कित्तणं)** प्रकृतिसमुत्कीर्तन नामक ग्रन्थ को **(वोच्छं)** कहूंगा।

विशेषार्थ - यहाँपर ग्रन्थकार नेमिचन्द्र आचार्य ने ज्ञानादि गुणरूपी रत्न ही जिनके आभूषण है, जो सम्यक्त्वरूपी रत्न के आश्रयस्थान है ऐसे महान् वीर नेमिनाथ भगवान् को मस्तक नवाकर नमस्कार करके प्रकृतिसमुत्कीर्तन ग्रन्थ को कहने की प्रतिज्ञा की है।

महावीरं-विशिष्टां ई-लक्ष्मीं, राति-ददातीति वीरः महान् च असौ वीरश्च महावीरः - जो विशिष्ट (अनन्तज्ञानादि अंतरंग, समवसरणादि बहिरंग) लक्ष्मी को देता है वह वीर है। जो महान् वीर है वह महावीर है।

सम्यक्त्वरत्ननिलयं - आत्मस्वरूपोपलब्धिलक्षणः सम्यग्भावः सम्यक्त्वं क्षायिकसम्यक्त्वं वा तदेव रत्नं तस्य निलय आश्रयः तम्।

आत्मस्वरूप की उपलब्धिरूप जो सम्यक्त्व या क्षायिक सम्यक्त्व वही हुआ रत्न।
प्रकृति समुत्कीर्तन - ज्ञानावरणादि मूलोत्तर प्रकृतियों का व्याख्यान

सर्वप्रथम प्रकृतिशब्द का अर्थ कहते हैं -

पयडी सील सहावो जीवंगाणं अणाइसंबंधो।
कणयोवले मलं वा ताणत्थित्तं सयं सिद्धं ।।२।।

अन्वयार्थ - (पयडी) प्रकृति **(सील)** शील और **(सहावो)** स्वभाव ये एकार्थवाची हैं। **(कणयोवले मलं वा)** स्वर्ण पाषाण में किट्टकालिमा के समान **(जीवंगाणं)** जीव और शरीर का **(अणाइसंबंधो)** अनादिकाल से सम्बन्ध हैं। **(ताणत्थित्तं)** उन दोनों का अस्तित्व **(सयं सिद्धं)** स्वयंसिद्ध है।

विशेषार्थ - अन्य कारण निरपेक्ष शील या स्वभाव को प्रकृति कहते हैं, जैसे अग्नि का स्वभाव ऊर्ध्वगमन, वायु का तिर्यग्गमन, पानी का अधोगमन। रागादिरूप परिणमन आत्मा का स्वभाव है, रागादि उत्पन्न करना कर्म का स्वभाव है। जीव और कर्म का स्वर्ण और पाषाण की तरह अनादि संबंध होने से इतरेतराश्रय दोष नहीं है। जीव और कर्म का अस्तित्व स्वतः सिद्ध है। अहं इस प्रत्ययसे आत्मा का अस्तित्व जाना जाता है। दरिद्र, श्रीमान् इत्यादि विचित्र परिणामों से कर्म का अस्तित्व सिद्ध होता है।

देहोदयेण सहिओ जीवो आहरदि कम्मणोकम्मं।
पडिसमयं सव्वंगं तत्तायसपिंडओव्व जलं।।३।।

अन्वयार्थ - (देहोदयेण) शरीरनामकर्म के उदय से **(सहिओ)** सहित **(जीवो)** जीव **(पडिसमयं)** प्रतिसमय **(कम्म णोकम्मं)** कर्म और नोकर्म को **(सव्वंगं)** सर्वांग से **(आहरदि)** ग्रहण करता है। **(तत्तायसपिंडओव्व)** जैसे तपाया हुआ लोहपिण्ड सर्वांग से **(जलं)** जल को ग्रहण करता है।

विशेषार्थ - कार्मणनामकर्म के उदय से उत्पन्न योगसहित जीव ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के कर्म को ग्रहण करता है तथा शेषशरीरनामकर्म के उदय से सहित जीव उस उस नामवाले नोकर्म को ग्रहण करता है। तपे हुए लोहपिण्ड की तरह संपूर्ण आत्मप्रदेशों से प्रत्येक समय में कर्म-नोकर्म को ग्रहण करता है।

प्रतिसमय कितने परमाणुओं को ग्रहण करता है, यह कहते हैं-

सिद्धाणंतिमभागं अभव्वसिद्धादणंतगुणमेव।
समयपबद्धं बंधदि जोगवसादो दु विसरित्थं।।४।।

अन्वयार्थ - यह जीव **(सिद्धाणंतिमभागं)** सिद्धराशि के अनन्तवें भाग और -**(अभव्वसिद्धादणंतगुणमेव)** अभव्यराशि से अनन्तगुणे परमाणुरूप **(समयपबद्धं)** समयप्रबद्ध को **(बंधदि)** बांधता है। **(दु)** पुन: **(जोगवसादो)** योग के वश से **(विसरित्थं)** विसदृश अर्थात् कम ज्यादा कर्म परमाणुओं को बांधता है।

विशेषार्थ - सिद्धराशि के अनन्तवे भाग और अभव्यराशि से अनन्तगुणे परमाणुओं को जीव प्रतिसमय बांधता है। योग के वश से इसमें कम-ज्यादा भी बांधता है किन्तु सामान्य संख्या यही रहेगी। सिद्धराशि का अनन्तवा भाग और अभव्यराशि का अनन्तगुणा रूप संख्या इन दोनों का प्रमाण एक ही है, दो नहीं है। एक संख्या का ही दो तरह से वर्णन किया है। जैसे २० यह संख्या सौ (१००) की अपेक्षा पाँचवा भाग है और चार से पाँच गुणी है। जीव समय-समय में इतने कर्मपरमाणुओं को बांधता है अत: इतने परमाणुओं के समूह को समयप्रबद्ध कहते हैं।

कर्म के उदय व सत्त्व का प्रमाण कहते हैं-

जीरदि समयपबद्धं पओगदोऽणेगसमयबद्धं वा।
गुणहाणीण दिवड्ढं समयपबद्धं हवे सत्तं।।५।।

अन्वयार्थ - प्रतिसमय **(समयपबद्धं)** एक समयप्रबद्ध की **(जीरदि)** निर्जरा होती है **(वा)** अथवा **(पओगदो)** प्रयोग से **(णेगसमयबद्धं)** अनेक समयप्रबद्धों की निर्जरा हो जाती है। तथापि **(गुणहाणीण दिवड्ढं)** डेढ़ गुणहानि प्रमाण **(समयपबद्धं)** समयप्रबद्धों का **(सत्तं)** सत्त्व **(हवे)** होता है।

विशेषार्थ - प्रतिसमय एक समयप्रबद्ध प्रमाण ही उदय में आता है। सम्यक्त्वादि के निमित्त से ग्यारह निर्जरास्थानों में एक समय में अनेक समय प्रबद्धों की भी निर्जरा होती है। प्रतिसमय किंचित् न्यून डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्त्व होता है स ∂ १२—इसका स्पष्टीकरण जीवकाण्ड गा. क्र. २५८ और कर्मकाण्ड गा. २६० में देखिये।

कर्म के सामान्य आदि भेद-प्रभेदों को दो गाथाओं से कहते हैं-

कम्मत्तणेण एक्कं दव्वं भावोत्ति होदि दुविहं तु।
पोग्गलपिंडो दव्वं तस्सत्ती भावकम्मं तु।।६।।

अन्वयार्थ - (कम्मत्तणेण) सामान्य से कर्म **(एक्कं)** एक प्रकार का है **(दव्वं भावोत्ति)** द्रव्य भाव की अपेक्षा **(दुविहं)** दो प्रकार का है **(पोग्गलपिंडो)** पुद्गलपिण्ड को **(दव्वं)** द्रव्यकर्म कहते हैं और **(तस्सत्ती)** उस पिण्ड में रहने वाली फल देने की शक्ति को **(भावकम्मं)** भावकर्म कहते हैं।

तं पुण अट्ठविहं वा अडदालसयं असंखलोगं वा।
ताणं पुण घादित्ति अघादित्ति य होंति सण्णाओ।।७।।

अन्वयार्थ - (पुण तं) पुन: वह सामान्य कर्म **(अट्ठविहं)** आठ प्रकार है **(वा)** अथवा **(अडदालसयं)** एक सौ अडतालीस प्रकार है **(वा)** अथवा **(असंखलोगं)** असंख्यात लोक प्रकार है **(ताणं)** उन आठ प्रकार आदि कर्मों की **(घादित्ति)** घाति **(य)** और **(अघादित्ति)** अघाति इसप्रकार **(सण्णाओ)** संज्ञाए **(होंति)** हैं।

आठ कर्मों के नाम बताते हुए उनमें घातिया व अघातियारूप कर्मों का विभाग करते हैं —

णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेयणीयमोहणियं।
आउगणामं गोदंतरायमिदि अट्ठपयडीओ।।८।।

अन्वयार्थ - (णाणस्स आवरणं) ज्ञान का आवरण अर्थात ज्ञानावरण, **(दंसणस्स आवरणं)** दर्शनावरण, **(वेयणीय)** वेदनीय, **(मोहणियं)** मोहनीय, **(आउगणामं)** आयु, नाम **(गोदंतरायं)** गोत्र और अंतराय **(इदि अट्ठ पयडिओ)** इस प्रकार आठ मूल प्रकृतियाँ हैं।

आवरणमोहविग्घं घादी जीवगुणघादणत्तादो।
आउगणामं गोदं वेयणियं तह अघादित्ति।।९।।

अन्वयार्थ - (आवरणमोहविग्घं) ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय ये चार कर्म **(घादी)** घाति हैं (**जीवगुणघादणत्तादो)** क्योंकि ये जीव के गुणों को घातते हैं **(तह)** तथा **(आउगणामं गोदं वेयणियं)** आयु,नाम, गोत्र और वेदनीय **(अघादित्ति)** अघाति ऐसे कहे जाते हैं।

जीव के उन गुणों को कहते हैं जिनको ये कर्म घातते हैं —

केवलणाणं दसंणमणंतविरियं च खयियसम्मं च।
खयियगुणे मदियादि खयोवसमिये य घादी दु।।१०।।

अन्वयार्थ - (केवलणाणं) केवलज्ञान **(दसंणमणंतविरियं)** केवलदर्शन, अनन्तवीर्य **(खयियसम्मं)** क्षायिकसम्यक्त्व **(च)** च शब्द से क्षायिक चारित्र **(च)** द्वितीय च शब्द से क्षायिक दानादि इन **(खयियगुणे**) क्षायिक गुणों को **(य)** और **(मदियादि)** मतिज्ञान आदि **(खयोवसमिये)** क्षायोपशमिक गुणों को (ज्ञानावरणादि कर्म) **(घादी दु)** घातते हैं।

कम्मकयमोहवड्ढिय संसारम्मि य अणादिजुत्तम्मि।
जीवस्स अवट्ठाणं करेदि आऊ हलिव्व णरं।।११।।

अन्वयार्थ - (आउ) आयुकर्म **(कम्मकयमोहवड्ढिय)** कर्म के द्वारा किये गये और मोह से वृद्धि को प्राप्त **(अणादिजुत्तम्मि)** अनादिसहित **(संसारम्मि)** संसार में अर्थात् संसार की चार गतियों में **(जीवस्स)** जीव का **(अवट्ठाणं करेदि)** अवस्थान करता है **(हलिव्व णरं)** जैसे काष्ठ का खोडा मनुष्य को रोक कर रखता है।

नामकर्म का कार्य कहते हैं —

गदियादिजीवभेदं देहादी पोग्गलाण भेदं च।
गदियंतरपरिणमणं करेदि णामं अणेयविहं।।१२।।

अन्वयार्थ - (अणेयविहं णामं) अनेक प्रकार का नामकर्म **(गदियादिजीवभेदं)** गति आदि जीव के भेद को **(देहादी पोग्गलाण भेदं)** शरीरादि पुद्गलों के भेद को **(च)** और **(गदियंतरपरिणमणं)** एक गति से दूसरी गति में परिणमन

को **(करेदि)** करता है।

गोत्रकर्म का कार्य कहते हैं —

संताणकमेणागयजीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा।
उच्चं णीचं चरणं उच्चं णीचं हवे गोदं।।१३।।

अन्वयार्थ - (संताणकमेण) सन्तानक्रम से **(आगय जीवायरणस्स)** आये हुए जीव के आचरण की **(गोदमिदि)** गोत्र ऐसी **(सण्णा)** संज्ञा है। **(उच्चं चरणं)** उच्च आचरण **(उच्चं गोदं)** उच्च गोत्र है और **(णीचं)** नीच आचरण **(णीचं गोदं)** नीच गोत्र **(हवे)** है।

वेदनीय कर्म का कार्य कहते हैं—

अक्खाणं अणुभवणं वेयणियं सुहसरुवयं सादं।
दुक्खसरूवमसादं तं वेदयदीदि वेदणियं।।१४।।

अन्वयार्थ - (अक्खाणं) इन्द्रियों के विषयों का **(अणुभवणं)** अनुभवन करना **(वेयणियं)** वेदनीय है। वह **(सुहसरुवयं)** सुखस्वरूप **(सादं)** साता है और **(दुक्खसरूवं)** दु:खरूप **(असादं)** असाता है **(तं)** उसे जो **(वेदयदि)** अनुभव कराता है **(इदि वेदणियं)** वह वेदनीय है।

विशेषार्थ - कर्म के भेद-प्रभेद - सामान्य रूप से कर्म एक प्रकार का है, द्रव्यकर्म, भावकर्म के भेद से दो प्रकार का है। उनमें से ज्ञानावरणादि पुद्‌गलपिण्ड द्रव्यकर्म है और उस पिण्ड में रहनेवाली फलदान शक्ति भावकर्म है। कार्य में कारण का उपचार करके उससे उत्पन्न जीव के अज्ञानादि को भी भावकर्म कहते हैं।
मूलकर्म आठ, उत्तरप्रकृति एक सौ अडतालीस (१४८) या असंख्यात लोकप्रमाण हैं। $\equiv \partial$

आठ मूलप्रकृतियाँ - १) ज्ञानावरण २) दर्शनावरण ३) वेदनीय ४) मोहनीय ५) आयु ६) नाम ७) गोत्र ८) अन्तराय। इनके दो भेद - १) घातिकर्म २) अघातिकर्म

घातिकर्म ४	**अघातिकर्म ४**
१) ज्ञानावरण २) दर्शनावरण ३) मोहनीय ४) अन्तराय	१) आयु २) नाम ३) गोत्र ४) वेदनीय

जीव के गुणों के घातक होने से घातिकर्म कहते हैं। जीव के गुणों के घातक न होने से अघातिकर्म कहते हैं।

जीव के गुण - केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, अनन्तवीर्य, क्षायिक दानादि, क्षायोपशमिक मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय ज्ञानादि ये सब जीव के गुण हैं। इनको घातने से ज्ञानावरणादि कर्मों को घातिकर्म कहते हैं।

अघातिकर्मों का कार्य

१) आयुकर्म - संसार की चार गतियों में जीव का अवस्थान करता है, जैसे काष्ठ का खोडा मनुष्य को रोककर रखता है।

२) नामकर्म - नारकादि जीव की पर्यायभेदों को, औदारिकशरीरादि पुद्गल के भेदों को और एक गति से दूसरी गति में जाने रूप जीव के परिणमन को करता है।

३) गोत्रकर्म - संतानक्रम से चले आये जीव के आचरण को गोत्र कहते हैं। उच्च व नीच आचरण कराता है वह क्रम से उच्च व नीच गोत्र होता है।

४)वेदनीयकर्म- सुखरूप से अनुभव कराना सातावेदनीय और दु:खरूप से अनुभव कराना असातावेदनीय का कार्य है।

जीव के प्रधानगुणों को कहते हैं -

अत्थं देक्खिय जाणदि पच्छा सद्दहदि सत्तभंगीहिं।
इदि दंसणं च णाणं सम्मत्तं होंति जीवगुणा ।।१५।।

अन्वयार्थ- (अत्थं देक्खिय) अर्थ को देखकर **(जाणदि)** जानता है **(पच्छा)** उसके पश्चात् **(सप्तभंगीहिं)** सातभंगों के द्वारा (निश्चयकर) **(सद्दहदि)** श्रद्धान करता है **(इदि)** इसप्रकार **(दंसणं णाणं सम्मत्तं)** दर्शन, ज्ञान और सम्यक्त्व **(जीवगुणा)** जीव के गुण **(होंति)** हैं।

अब उन गुणों के आवरणों के पाठ का क्रम युक्तिपूर्वक कहते हैं -

अब्भरहिदादु पुव्वं णाणं तत्तो हि दंसणं होदि।
सम्मत्तमदो विरियं जीवाजीवगदमिदि चरिमे।।१६।।

अन्वयार्थ -(अब्भरहिहादु) पूज्य होने से **(णाणं)** ज्ञान को **(पुव्वं)** पहले

कहा है **(तत्तो)** उसके पश्चात् **(दंसणं)** दर्शन **(होदि)** कहा है **(अदो)** इसके पश्चात् **(सम्मत्तं)** सम्यक्त्व कहा **(जीवाजीवगदमिदि)** जीव अजीव दोनों में पाया जाता है इसलिए **(विरियं)** वीर्य को **(चरिमे)** अन्त में कहा है।

घादीवि अघादिं वा णिस्सेसं घादणे असक्कादो।
णामतियणिमित्तादो विग्घं पढिदं अघादि चरिमम्मि।१७।

अन्वयार्थ-(विग्घं घादीवि) अन्तराय कर्म घाति होनेपर भी **(अघादिं वा)** अघाति के समान **(णिस्सेसं)** समस्त गुण को **(घादणे)** घातने में **(असक्कादो)** समर्थ न होने से तथा **(णामतियणिमित्तादो)** नाम, गोत्र और वेदनीय के निमित्त से (अपना कार्य करता है) इसलिए **(अघादि चरिमम्मि)** अघाति कर्मों के अन्त में उसका **(पढिदं)** पाठ किया है।

इसके बाद अन्य कर्मों का क्रम कहते हैं -

आउबलेण अवट्ठिदि भवस्स इदि णाममाउपुव्वं तु।
भवमस्सिय णीचुच्चं इदि गोदं णामपुव्वं तु।।१८।।

अन्वयार्थ - (आउबलेण) आयुकर्म के निमित्त से **(भवस्स)** भव की **(अवट्ठिदि)** अवस्थिति होती है **(इदि)** इसलिए **(आउपुव्वं)** आयुकर्मपूर्वक **(णाम)** नामकर्म कहा है अर्थात् नामकर्म से पूर्व आयुकर्म कहा है। **(तु)** पुन: **(भवमस्सिय)** भव के आश्रय से ही **(णीचुच्चं)** नीचपना, उच्चपना होता है **(इदि)** इसलिए **(गोदं णामपुव्वं)** गोत्रकर्म से पहले नामकर्म कहा है।

अघाति होते हुए भी वेदनीयकर्म को घातिया के बीच में क्यों कहा? इस शंका का समाधान करते हैं -

घादिंव वेयणीयं मोहस्स बलेण घाददे जीवं।
इदि घादीणं मज्झे मोहस्सादिम्मि पढिदं तु।।१९।।

अन्वयार्थ -(घादिंव) घातिकर्म के समान **(वेयणीयं)** वेदनीय कर्म **(मोहस्स बलेण)** मोहनीय के बल से ही **(जीवं)** जीव का अर्थात् जीव के गुणों का **(घाददे)** घात

करता है **(इदि)** इसलिए **(घादीणं मज्झे)** घातिकर्मों के बीच में और **(मोहस्सादिम्मि)** मोहनीय के पहले वेदनीय **(पढिदं)** कहा है।

इसप्रकार कर्मों का जो पाठक्रम सिद्ध हुआ उसका उपसंहार करते हैं-

णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेयणीयमोहणियं।
आउगणामं गोदंतरायमिदि पढिदमिदि सिद्धं।।२०।।

अन्वयार्थ - (णाणस्स दंसणस्स य आवरणं) ज्ञानावरण, दर्शनावरण, **(वेयणीयमोहणियं)** वेदनीय, मोहनीय, **(आउगणामं)** आयु, नाम, **(गोदंतरायमिदि)** गोत्र और अंतराय इसप्रकार **(पढिदं)** पाठक्रम है **(इदि)** यह बात **(सिद्धं)** सिद्ध हुई।

विशेषार्थ - आठ कर्मों के क्रम का कारण -

संसारी जीव पदार्थ को देखकर (सामान्यप्रतिभास कर) बाद में जानता है। पश्चात् वह अस्तिनास्तिरूप सप्तभंगी से निश्चय कर श्रद्धान करता है। इस प्रकार दर्शन, ज्ञान व श्रद्धान (सम्यक्त्व) जीव के प्रधानगुण हैं।

व्याकरण का नियम है कि जिसमें स्वर अल्प हो अथवा जो पूज्य हो उसे पहले रखना। आत्मा के सब गुणों में ज्ञान पूज्य हैं और ज्ञान में स्वर कम हैं इसलिए ज्ञान को प्रथम कहा है। पश्चात् अनुक्रम से दर्शन व सम्यक्त्व को कहकर अन्त में वीर्य को रखा है, क्योंकि वीर्य जीव-अजीव दोनों में पाया जाता है। जीव में ज्ञानादिक शक्ति तथा पुद्गल में शरीरादिरूप शक्ति है। इसप्रकार ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय का क्रम है।

अन्तराय को अघातिया के अन्त में रखने का कारण -

१) अन्तरायकर्म घातिया होने पर भी अघातिया कर्मों के समान जीव के गुणों को पूर्णरूप से घातने में समर्थ नहीं है।

२) नाम, गोत्र और वेदनीय के निमित्तसे ही अन्तरायकर्म अपना कार्य करता है।

शरीर के बिना देना, लेना, भोगना इत्यादि क्रिया संभव नहीं है और शरीर में निमित्त नामकर्म है। उसी प्रकार उच्चगोत्र हो तो दान देने का पात्र हो सकता है। दानान्तराय कर्म के उदय में नीचगोत्र सहायभूत है। गोत्र के अनुसार ही वीर्य प्रकट होता है। दान, लाभ आदि की प्राप्ति और अप्राप्ति में साता असातावेदनीय निमित्त है। इस प्रकार नाम, गोत्र और वेदनीय के निमित्त से अन्तराय कर्म कार्य करता है।

आयु, नाम व गोत्र के क्रम का कारण -

१) आयुकर्म के निमित्त से भव में स्थिति होती है इसलिए प्रथम आयुकर्म को रखा है।

२) भव के आश्रय से हीं नीचपना अथवा उच्चपना होता है इसलिए गोत्रकर्म से पूर्व नामकर्म को कहा है पश्चात् गोत्रकर्म कहा।

वेदनीय कर्म को घातिया के बीच में रखने का कारण -

१) वेदनीय कर्म, घातिया कर्मों के समान जीवों के (अव्याबाध) गुणों का घात करता है।

२) मोहनीय के भेद रति और अरति के उदय का बल पाकर घात करता है, इसलिए घातिया के मध्य में मोहनीय के पहले इसको कहा है।

वस्तु प्रिय या अप्रिय नहीं होती। यदि वस्तु ही वैसी होती तो सब को एक समान लगनी चाहिए किन्तु कोई एक वस्तु सब को एकसमान नहीं लगती। जैसे कटु नीम मनुष्य को अप्रिय लगता है किन्तु वही ऊँट को प्रिय लगता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि मोहनीय कर्मरूप रागद्वेष के निमित्त से तथा वेदनीय का उदय होनेपर ही इन्द्रियों से उत्पन्न सुख दु:ख का अनुभव होता है।

३) मोहनीय के बिना वेदनीयकर्म, राजा के बिना निर्बल सैन्य की तरह कुछ नहीं कर सकता।

अब दृष्टान्त द्वारा कर्मों के स्वभाव को कहते हैं —

पडपडिहारसिमज्ञाहलिचित्तकुलालभंडयारीणं।
जह एदेसिं भावा तहवि य कम्मा मुणेयव्वा।।२१।।

अन्वयार्थ - **(पड)** देवता के मुखपर वस्त्र **(पडिहार)** द्वारपाल **(असि)** शहद लपेटी तलवार **(मज्ञा)** मदिरा **(हलि)** खोड़ा **(चित्त)** चित्रकार **(कुलाल)** कुम्हार **(भंडयारीणं)** भण्डारी **(एदेसिं)** इनका **(जह)** जैसा **(भावा)** स्वभाव होता है **(तहवि य)** वैसाही स्वभाव **(कम्मा)** इन कर्मों का भी **(मुणेयव्वा)** जानना चाहिए।

आठ मूल कर्मों की उत्तरप्रकृतियों को कहते हैं -

पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण तेणउदी।
तेउत्तरं सयं वा दुगपणगं उत्तरा होंति।।२२।।

अन्वयार्थ - ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के **(उत्तरा)** उत्तर भेद **(कमेण)** क्रम से **(पंच)** पाँच **(णव)** नौ, **(दोण्णि)** दो, **(अट्ठावीसं)** अठाईस **(चउरो)** चार **(तेणउदी)** तिरानवे **(वा)** अथवा **(तेउत्तरं सयं)** एक सौ तीन **(दुग)** दो **(पणगं)** पांच **(होंति)** होते हैं।

विशेषार्थ -

कर्मों के नाम	**निरुक्तिः**	**स्वभाव**	**दृष्टान्त**	**उत्तर भेद**
ज्ञानावरण	ज्ञानमावृणोति इति	ज्ञान को आच्छादित करना	देवता के मुखपर ढका वस्त्र	५
दर्शनावरण	दर्शनमावृणोति इति	दर्शन (अन्तर्मुख चित्प्रकाश) को आच्छादित करना	द्वारपाल	९
वेदनीय	वेदयति इति	सुखदु:ख का वेदन कराना	शहद लपेटी तलवार	२
मोहनीय	मोहयति इति	मोह उत्पन्न करना	मदिरा, धतूरा, मादक कोदों इ.	२८
आयु	भवधारणाय एति गच्छति	पर्याय धारण करने में निमित्त	सांकल या काष्ठयन्त्र	४
नाम	नाना मिनोति इति	नारकादि अनेक रूप धारण कराना	चित्रकार	९३ या १०३
गोत्र	उच्चनीचं गमयति इति	उच्चनीचपने को प्राप्त कराना	कुम्भकार	२
अंतराय	दातृपात्रयो: अन्तरमेति इति	दानलाभादि में विघ्न करना	भण्डारी	५
				१४८

नामकर्म में (बंधन के) १५ भंग किये हैं उसकी अपेक्षा ९३ के स्थानपर १०३ भेद हो जाते हैं।

कर्मों के नाम	भेद	भेदों के नाम
ज्ञानावरणीय	५	१) आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय २) श्रुतज्ञानावरणीय ३) अवधिज्ञानावरणीय ४) मन:पर्ययज्ञानावरणीय ५) केवलज्ञानावरणीय
दर्शनावरणीय	९	१) स्त्यानगृद्धि २) निद्रानिद्रा ३) प्रचलाप्रचला ४) निद्रा ५) प्रचला ६) चक्षुदर्शनावरणीय ७) अचक्षुदर्शनावरणीय ८) अवधिदर्शनावरणीय ९) केवलदर्शनावरणीय
वेदनीय	२	१) सातावेदनीय २) असातावेदनीय
मोहनीय	२८	१) दर्शनमोहनीय ३:- १) मिथ्यात्व २) सम्यग्मिथ्यात्व ३) सम्यक्त्वप्रकृति २) चारित्रमोहनीय २५:- १) कषायवेदनीय १६, २) नोकषायवेदनीय ९ १) कषायवेदनीय १६ - अनन्तानुबंधि क्रोध,मान,माया,लोभ अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान,माया,लोभ प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया,लोभ संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ २) नोकषायवेदनीय ९ - पुरुष,स्त्री, नपुंसकवेद, रति, अरति, हास्य, शोक, भय, जुगुप्सा
आयु	४	नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु
नाम	९३	पिण्ड अपिण्ड भेद की अपेक्षा ४२ - १) गति-४, २) जाति-५, ३) शरीर-५, ४) बन्धन-५, ५) संघात- ५, ६) संस्थान- ६, ७) अङ्गोपाङ्ग-३, ८) संहनन-६, ९) वर्ण-५, १०) गन्ध-२, ११) रस-५, १२) स्पर्श-८, १३) आनुपूर्व्य-४, १४) अगुरुलघुक १५) उपघात १६) परघात १७) उच्छ्वास १८) आतप १९) उद्योत २०) विहायोगति-२, २१) त्रस २२) स्थावर २३) बादर २४) सूक्ष्म २५) पर्याप्त २६) अपर्याप्त

कर्मों के नाम	भेद	भेदों के नाम
नाम		२७) प्रत्येक शरीर २८) साधारण शरीर २९) स्थिर ३०) अस्थिर ३१) शुभ ३२) अशुभ ३३) सुभग ३४) दुर्भग ३५) सुस्वर ३६) दुस्वर ३७) आदेय ३८) अनादेय ३९) यशस्कीर्ति ४०)अयशस्कीर्ति ४१) निर्माण ४२) तीर्थंकर
गोत्र	२	१) उच्चगोत्र २) नीचगोत्र
अन्तराय	५	१) दानान्तराय २) लाभान्तराय ३) भोगान्तराय ४) उपभोगान्तराय ५) वीर्यान्तराय

अब दर्शनावरणीय के उत्तरभेदों में से पांच निद्राओं का कार्य बताते हैं—

थीणुदयेणुट्ठविदे सोवदि कम्मं करेदि जप्पदि य।
णिद्दाणिद्दुदयेण य ण दिट्ठिमुग्घाडिदुं सक्को।।२३।।

अन्वयार्थ -(थीणुदयेण) स्त्यानगृद्धि के उदय से **(उट्ठविदे)** उठाया जाने पर भी **(सोवदि)** सोता रहता है, **(कम्मं करेदि)** नींद में ही काम करता है, **(जप्पदि)** बोलता है। **(य)** और **(णिद्दाणिद्दुदयेण)** निद्रानिद्रा के उदय से **(दिट्ठिं)** दृष्टि (आंखें) **(उग्घादिदुं)** उघाडने में **(ण सक्को)** समर्थ नहीं होता।

पयलापयलुदयेण य वहेदि लाला चलंति अंगाइं।
णिद्दुदये गच्छंतो ठाइ पुणो वइसइ पडेइ।।२४।।

अन्वयार्थ -(पयलापयलुदयेण) प्रचला प्रचला के उदय से **(लाला वहेदि)** मुख से लार बहती है **(अंगाइं चलंति)** अंग चलते हैं। **(णिद्दुदये)** निद्रा के उदय से **(गच्छंतो ठाइ)** चलता हुआ ठहरता है **(पुणो वइसइ)** पुनः बैठता है और **(पडेइ)** गिर पड़ता है।

पयलुदयेण य जीवो ईसुम्मीलिय सुवेइ सुत्तोवि।
ईसं ईसं जाणदि मुहुं मुहुं सोवदे मंदं।।२५।।

अन्वयार्थ - **(पयलुदयेण)** प्रचला के उदय से **(जीवो)** जीव **(ईसुम्मीलिय)** कुछ कुछ आँखें खोलकर **(सुवेइ)** सोता है **(सुत्तोवि)** सोता हुआ भी **(ईसं ईसं)** थोडा थोडा **(जाणदि)** जानता है **(मुहुं मुहुं)** बारबार **(मंदं)** मन्द **(सोवदे)** सोता है।

विशेषार्थ - निद्राओं का कार्य

१) **स्त्यानगृद्धि -** इस निद्रा के उदय से उठाया जाने पर भी सोता रहता है। नींद में ही अनेक कार्य करता है तथा कुछ बोलता भी है परन्तु सावधानी नहीं रहती।

२) **निद्रानिद्राकर्म -** इसके उदय से अनेक प्रकार से सावधान किया हुआ भी आँखें नही खोल सकता है।

३) **प्रचलाप्रचला -** इसके उदय से मुख से लार बहती है और हाथ आदि अंग चलते हैं।

४) **निद्रा -** इसके उदय से गमन करता हुआ खड़ा हो जाता है, बैठ जाता है, गिर पड़ता है इत्यादि क्रियायें करता है।

५) **प्रचला -** इसके उदय से जीव आंखों को कुछ कुछ उघाड़कर सोता है और सोता हुआ भी थोड़ा थोड़ा जानता है, बार बार मन्दशयन करता है।

दर्शनमोहनीय के तीन भेद कैसे होते हैं इसकी उपपत्ति कहते हैं —

जंतेण कोद्दवं वा पढमुवसमसम्मभावजंतेण।
मिच्छं दव्वं तु तिहा असंखगुणहीणदव्वकमा।।२६।।

अन्वयार्थ - **(जंतेण कोद्दवं वा)** चक्की से दले हुए कोदों के समान **(पढमुवसमसम्मभावजंतेण)** प्रथमोपशम सम्यक्त्वरूप भावयन्त्र से **(मिच्छं दव्वं)** मिथ्यात्वरूपी कर्मद्रव्य **(असंखगुणहीणदव्वकमा)** क्रम से असंख्यातगुणा हीन होकर **(तिहा)** तीन प्रकार का हो जाता है। अर्थात् मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिरूप तीन में विभाजित हो जाता है।

विशेषार्थ - दर्शनमोहनीय बंध की अपेक्षा एक ही प्रकार का है - १) मिथ्यात्व। उदय और सत्त्व की अपेक्षा तीन प्रकार का होता है - १) मिथ्यात्व, २) सम्यग्मिथ्यात्व, ३) सम्यक्त्व

जब दर्शनमोहनीय का बन्ध होता है तब सर्व द्रव्य एक मिथ्यात्वरूप से ही बंधता है। जब प्रथमोपशमसम्यक्त्व की प्राप्ति होती है तब मिथ्यात्व द्रव्य ही तीन स्वभावरूप से

परिणमित होता है।

जैसे कोदों धान्यविशेष को चक्की से पीसने पर तन्दुल, कण और भूसी इस प्रकार तीन रूप हो जाते हैं उसी प्रकार मिथ्यात्वरूपी कर्मद्रव्य भी प्रथमोपशम सम्यक्त्व रूपी यंत्र के द्वारा मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वरूप परिणमन करता है। इनमें सब से अधिक मिथ्यात्व का द्रव्य है, उससे असंख्यातगुणाहीन सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य है और उससे भी असंख्यात गुणा हीन सम्यक्त्व का द्रव्य है।

उसका स्पष्टीकरण

आयुकर्म के बिना शेष सात कर्मों के परमाणुओं का प्रमाण कुछ कम डेढगुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है स ∂ १२ - (उत्कृष्ट समय प्रबद्धकी संदृष्टि 'स ∂'गुणहानि की संदृष्टि ८ है अतः डेढगुणहानि १२ हुई, उसमें कुछ कम करने के लिए आडी लकीर खींची है।)

सत्त्वद्रव्य का सात में विभाग करने के लिए ७ का भाग दिया तो जो एक भाग हुआ उतना मोहनीय का द्रव्य है स ∂ १२-
७

इसमें अनन्त का भाग देनेपर (अनन्त की संदृष्टि 'ख') एकभाग प्रमाण सर्वघातिद्रव्य स ∂ १२ - / ७ ख है और बहुभागप्रमाण देशघातिद्रव्य का प्रमाण है। मिथ्यात्व सर्वघाति प्रकृति है अतः उसे सर्वघाति में से ही बटवारा मिलेगा।

मोहनीय की १७ प्रकृतियों को सर्वघातिद्रव्य मिलता है १ मिथ्यात्व और १६ कषाय। अतः सर्वघाति द्रव्य में १७ का भाग देनेपर एक मिथ्यात्व के द्रव्य का प्रमाण आता है स ∂ १२ - / ७ ख १७ प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होने के प्रथम समय में ही मिथ्यात्वरूप एक कर्म के तीन कर्मांश होते हैं।

मिथ्यात्व के द्रव्य को गुणसंक्रमणभागहार से भाग देकर बहुभाग द्रव्य को मिथ्यात्वरूप ही रखता है, शेष एक भाग को असंख्यात का भाग देकर बहुभाग सम्यग्मिथ्यात्व को देता है। शेष एकभाग सम्यक् प्रकृति को देता है । इसप्रकार सम्यक्त्व के काल में अन्तिम समय तक प्रतिसमय संक्रमण होता रहता है ।

	एकभाग	बहुभाग	
$\frac{\text{मिथ्यात्त्व का द्रव्य}}{\text{गुणसंक्रमण भागहार}}$	$\frac{\text{स } \partial \text{ १२ -}}{\text{७ ख १७ गु}}$	$\frac{\text{स } \partial \text{ १२ - } \overset{\text{१}}{\text{गु}}}{\text{७ ख १७ गु}}$	→ मिथ्यात्व का द्रव्य

(एकभाग को एक कम भागहार से गुणा करने पर बहुभाग का प्रमाण आता है।)

एकभाग में सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति में विभाग करने के लिए एक अधिक असंख्यात संख्या का भाग दिया $\boxed{\frac{\text{स } \partial \text{ १२ - } \text{१}}{\text{७ ख १७ गु } \partial}}$ सम्यग्मिथ्यात्व में बहुभाग प्राप्त होता है अत: एक कम भागहार से गुणा करने पर बहुभाग आता है ∂ + १ भागहार हैं उसमें एक कम करने से केवल असंख्यात रह जाता है उससे उपर्युक्त संख्या को गुणा करना। $\boxed{\frac{\text{स } \partial \text{ १२ - } \partial}{\text{७ ख १७ गु } \overset{\text{१}}{\partial}}}$ → सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य

शेष एकभाग प्रमाण सम्यक्त्व का द्रव्य है। $\boxed{\frac{\text{स } \partial \text{ १२ - १}}{\text{७ ख १७ गु } \overset{\text{१}}{\partial}}}$ → सम्यक्त्व का द्रव्य

अपकर्षण करके द्रव्य देने के विधान में ऊपर एक आवलीप्रमाण स्थिति को छोड़कर नीचे की स्थितियों में द्रव्य दिया जाता है। ऊपर की जिन आवलीप्रमाण स्थिति को छोड़ा गया उसको अतिस्थापनावली कहते हैं।

मिथ्यात्व की जो पूर्व स्थिति थी उसमें से अतिस्थापनावली प्रमाण कम कर दिया यही मिथ्यात्व का मिथ्यात्वरूप करना है। इसप्रकार असंख्यातगुणाहीन क्रम से मिथ्यात्वद्रव्य होता है।

अंकसंदृष्टि से :- समयप्रबद्ध का प्रमाण ६३०० माना, गुणहानि आयाम ८, डेढ़गुणहानि का प्रमाण १२ अत: ६३००×१२ = ७५,६०० सत्त्वद्रव्य

$\frac{\text{सत्त्वद्रव्य}}{\text{७}}$ = मोहनीय का द्रव्य $\frac{\text{७५६००}}{\text{७}}$ = १०,८०० मोहनीय का द्रव्य

मोहनीयकर्म के द्रव्य का बटवारा दर्शनमोहनीय की १ और चारित्रमोहनीय की २५

प्रकृतियों में होगा। २६ प्रकृतियों में मिथ्यात्व और १२ कषाय सर्वघातिप्रकृतियाँ हैं। शेष ४ संज्वलन और ९ नोकषाय देशघातिप्रकृतियाँ हैं।

उपर्युक्त मोहनीय के द्रव्य में अनंत का भाग देने पर एकभाग सर्वघातिद्रव्य, बहुभाग देशघातिद्रव्य है । अनंत का प्रमाण ८ माना

$\frac{१०,८००}{८}$ = १३५० सर्वघातिद्रव्य एकभाग   १३५० × ७ = ९४५० देशघाति द्रव्य बहुभाग

सर्वघातिद्रव्य का बटवारा सर्वघाति और देशघाति दोनों प्रकृतियों में होता है इसका स्पष्टीकरण आगे गा. २०२-२०३ में होगा। अत: मोहनीय के सर्वघातिद्रव्य का बटवारा १३ सर्वघाति प्रकृतियाँ और ४ संज्वलन कषायरूप देशघातिप्रकृतियाँ ऐसी १७ प्रकृतियों में होगा अत: एक मिथ्यात्व का द्रव्य निकालने के लिए १७ से भाग देना। संज्वलन कषाय के प्राप्त द्रव्य में से ही नोकषाय को मिलता है इसलिए उसका अलग बटवारा नहीं कहा है। $\frac{१३५०}{१७}$ = ७९$\frac{७}{१७}$ अर्थात् ८० के लगभग

मिथ्यात्व द्रव्य का तीन में बटवारा करने के लिए गुणसंक्रमण भागहार ४ माना

$\frac{८०}{४}$ = २० एकभाग   २० × ३ = ६०   बहुभाग - मिथ्यात्वरूप

शेष एकभाग का $\frac{२०}{४}$ = ५ एकभाग   ५ × ३ = १५ बहुभाग - सम्यग्मिथ्यात्वरूप
शेष ५ एकभाग → सम्यक्प्रकृतिरूप

मिथ्यात्व की शक्ति = जघन्यवर्ग × एकगुणहानिस्पर्धकशलाका × नानागुणहानि
व × ९ × ना = अन्तिम स्पर्धक के प्रथम वर्गणा की शक्ति
जघन्य वर्ग = व, स्पर्धक शलाका = ९, नानागुणहानि = ना

विवक्षित स्पर्धक की शक्ति निकालने के लिए जघन्य वर्ग को स्पर्धक संख्या से गुणा करना। ऐसा करने पर उस स्पर्धक की प्रथमवर्गणा की शक्ति निकलती है उसमें एक कम वर्गणाशलाका अधिक करनेपर अन्तिमवर्गणा की शक्ति निकलती है जैसे जघन्यवर्ग = ८ माना, गुणहानि स्पर्धक २ माना, नानागुणहानि ५ मानी

अन्तिम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा = ८×२×५ = ८०

अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणा = ८० + ३ = ८३ वर्गणाशलाका ४ मानी है।

३–
अर्थसंदृष्टी व ९ ना ⟶ मिथ्यात्वकी शक्ति

३–
उससे अनन्तगुणाहीन व ९ ना ⟶ सम्यग्मिथ्यात्व की शक्ति(अनन्तगुणाहीन
ख दिखाने के लिए 'ख' से भाग दिया।)

३–
उससे अनन्तगुणाहीन व ९ न ⟶ सम्यक्प्रकृति की शक्ति
ख ख

तीनों का द्रव्य क्रम से असंख्यात गुणाहीन है और शक्ति क्रम से अनन्तगुणाहीन होती है।

नामकर्म के पिण्डपद की अपेक्षा ४२ भेद

१)गतिनामकर्म - गति यह नाम भव का है। जिसके उदय से आत्मा भव को प्राप्त होता है वह गतिनाम कर्म है। उसके चार भेद हैं - १) नरकगति नामकर्म २) तिर्यंचगति ३) मनुष्यगति ४) देवगतिनामकर्म

२) जातिनामकर्म - जीवों के सदृशपरिणाम को जाति कहते हैं। उसमें निमित्त जातिनाम कर्म है। उसके पाँच भेद हैं १) एकेन्द्रिय जातिनाम २) द्वीन्द्रिय जातिनाम ३) त्रीन्द्रिय जातिनाम ४) चतुरिन्द्रिय जातिनाम ५) पंचेन्द्रिय जातिनाम

३) शरीरनामकर्म - जिसके उदय से आत्मा के शरीर की रचना होती है वह शरीर नामकर्म है। उसके पाँच भेद हैं - १) औदारिकशरीरनाम, २) वैक्रियिक शरीर नाम ३)आहारक शरीर नाम ४) तैजसशरीरनाम ५) कार्मणशरीरनाम

४) बन्धननामकर्म - शरीरनामकर्म के उदय के वश ग्रहण किये गये पुद्गलस्कंधों का परस्पर में प्रदेशों का सम्बन्ध जिससे होता है वह बन्धननाम कर्म है। वह भी शरीर के समान पाँच प्रकार का है।

अब शरीरबन्धन नामकर्म के भङ्ग कहते हैं—

तेजाकम्मेहि तिए तेजा कम्मेण कम्मणा कम्मं।
कयसंजोगे चदु चदु चदु दुग एक्कं च पयडीओ।।२७।।

अन्वयार्थ - (तिए) औदारिक, वैक्रियिक और आहारक इन तीनों का **(तेजाकम्मेहि)** तैजस और कार्मण के साथ **(कयसंजोगे)** संयोग करनेपर **(चदु चदु चदु)** चार-चार-चार **(पयडीओ)** प्रकृतियाँ होती हैं **(तेजा कम्मेण)** तैजस का कार्मण से संयोग करने पर **(दुग)** दो प्रकृति होती हैं और **(कम्मणा कम्मं)** कार्मण के साथ कार्मण का संयोग करने पर **(एक्कं)** एक प्रकृति होती है।

विशेषार्थ - शरीरबन्धन नामकर्म पाँच प्रकार हैं - औदारिक शरीरबन्धन, वैक्रियिक शरीरबन्धन, आहारक शरीरबन्धन, तैजस शरीरबन्धन, कार्मण शरीरबन्धन नामकर्म। शरीरबन्धन नामकर्म के १५ भङ्ग होते हैं। वे इसप्रकार - औदारिक, वैक्रियिक और आहारक इन तीनों का तैजस तथा कार्मण के साथ संयोग बन्ध होने पर चार-चार भङ्ग होते हैं। तैजस का तैजस और कार्मण के साथ संयोग बन्ध होने पर दो भङ्ग और कार्मण का कार्मण के साथ संयोगबन्ध होने पर एक भङ्ग होता है।

प्रत्येक	सदृश द्वि. सं.	द्विसंयोगी		त्रिसंयोगी	कुलभंग
औ.	औ.औ.	औ.तै.	औ.का.	औ.तै.का.	४
वै.	वै.वै.	वै. तै.	वै.का.	वै.तै.का.	४
आ.	आ.आ.	आ.तै.	आ.का.	आ.तै.का.	४
तै.	तै.तै.	तै.का.			२
का.	का.का.				१
					१५

संस्कृत टीकाकार ने ये शरीर नामकर्म के भङ्ग कहे हैं किन्तु धवल पु. १४ पृ. ४२-४३ पर शरीरबन्धन के ये १५ भङ्ग कहे हैं अतः हमने भी शरीरबन्धन के ये भेद लिये हैं।

१)औदारिक औदारिक शरीर बन्धन - औदारिक शरीर नोकर्मस्कन्धों का अन्य औदारिक शरीर नोकर्म स्कंन्धों के साथ जो बन्ध होता है वह औदारिक औदारिक शरीर बन्धननामकर्म हैं।

२) औदारिक तैजस शरीर बन्धन - औदारिकशरीर के पुद्‌गलों का और तैजसशरीर के पुद्‌गलों का एक जीव में जो परस्पर बन्ध होता है वह औदारिक तैजसशरीर बन्धन नामकर्म है।

३) औदारिक कार्मण शरीर बन्धन - एक जीव में स्थित औदारिक स्कंन्धों का और कार्मणस्कंधों का जो परस्पर बन्ध होता है वह औदारिक कार्मण शरीरबन्धन है।

औदारिक स्कन्धों का वैक्रियिक और आहारक शरीर के साथ बन्ध नहीं होता क्योंकि औदारिक शरीर रूप से परिणत हुए जीव में शेष दो शरीरों का अभाव पाया जाता है। आहारक शरीर मुनियों के होता है, किन्तु आहारक शरीररूप से परिणमन करनेवाले

जीवों के औदारिक शरीर का उदय न होने से उसके साथ सम्बन्ध नहीं होता। औदारिक शरीर से आहारक शरीर अलग ही निकलता है अत: इस शरीरस्कन्धों के साथ आहारक शरीरस्कन्धों का बन्ध नहीं होता।

४) औदारिक तैजस कार्मणशरीरबन्धन -एक जीव में निविष्ट हुए औदारिक शरीर, तैजस शरीर और कार्मण शरीर के स्कन्धों का जो परस्पर बन्ध होता है वह औदारिक तैजस कार्मण शरीर बन्धन है।

वैक्रियिक शरीर और आहारक शरीर के भी ४-४ भङ्ग -

१) वैक्रियिक वैक्रियिक शरीरबन्धन २) वैक्रियिक तैजस शरीरबन्धन ३) वैक्रियिक कार्मण शरीरबन्धन ४) वैक्रियिकतैजस कार्मण शरीरबन्धन ।

१) आहारक आहारक शरीरबन्धन २) आहारक तैजस शरीरबन्धन ३) आहारक कार्मण शरीरबन्धन ४) आहारक तैजस कार्मण शरीरबन्धन। इनका अर्थ भी औदारिक शरीर के भंगों के समान जानना।

१) तैजस तैजस शरीरबन्धन २) तैजस कार्मण शरीरबन्धन ३) कार्मण कार्मण शरीरबन्धन। इस प्रकार १५ भंग होते हैं। जिस नामकर्म के उदय से ये बन्ध होते हैं उसे उस-उस नामयुक्त बन्धन नामकर्म कहते हैं। इसलिए बन्धन नामकर्म के १५ भेद होते हैं। उनमें सदृश द्विसंयोगी भंग पुनरुक्त हैं वे प्रत्येक भंग में गर्भित हैं। इसलिए इन ५ को छोडकर शेष १० भेद ९३ में मिलाने पर नामकर्म के १०३ भेद होते हैं।

५) **संघातनामकर्म** - जिसके उदय से औदारिक आदि शरीरों का छिद्ररहित परस्पर में प्रदेशों के प्रवेश से एकरूपता होती है वह संघातनाम है। इसके भी शरीर के नाम समान पाँच भेद हैं।

६) **संस्थान नामकर्म** - जिसके उदय से औदारिक आदि शरीरों का आकार बनता है वह संस्थान नाम है। उसके छह भेद हैं **१) समचतुरस्रसंस्थान -** सर्वत्र सम प्रमाण **२) न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान -** न्यग्रोध वटवृक्षको कहते हैं उसके परिमंडल के समान आयतवृत्त आकार जिस शरीर का होता है उसे न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान कहते हैं। यह शरीर नाभि से नीचे हीन और ऊपर विशाल होता है। **३) स्वातिसंस्थान -** स्वाति नाम वल्मीक या शाल्मली वृक्ष का है उसके आकार के समान आकार जिस शरीर का है वह स्वातिशरीरसंस्थान है। यह शरीर नाभि से नीचे विशाल और ऊपर हीन होता है। **४) कुब्जक संस्थान -** कुबडे शरीर को कुब्ज कहते हैं उसके समान संस्थान जिस शरीर

का होता है वह कुब्जकसंस्थान है। जिस कर्म के उदय से शाखाओं के दीर्घता और मध्य भाग के ह्रस्वता होती है वह कुब्जक संस्थान नामकर्म है। ५) **वामनसंस्थान** - बौने शरीर को वामनशरीर कहते हैं जिस कर्म के उदय से शाखाओं के ह्रस्वता और शरीर के दीर्घता होती है वह वामनशरीर संस्थाननामकर्म है। ६) **हुंडकसंस्थान** - समानता रहित अनेक आकारवाले पाषाणों से भरी हुई मशक के समान सर्व ओर से विषम आकार को हुंड कहते हैं। उसके समान शरीर के संस्थान को हुंडक संस्थान कहते हैं।

७) **अंगोपांग नामकर्म** - जिस कर्म के उदय से शरीर के अंग उपांगों की निष्पत्ति होती है उस कर्म को अंगोपांग नामकर्म कहते हैं। वह तीन प्रकार का है -१) औदारिक शरीर अंगोपांगनामकर्म २) वैक्रियिकशरीरांगोपांगनामकर्म ३) आहारकशरीर अंगोपांग नामकर्म । तैजस और कार्मण शरीर के अंगोपांग नहीं होते हैं।

८) **संहनन नामकर्म** - जिसके उदय से हड्डियों के बन्धनविशेष होता है वह संहनननामकर्म है। उसके छह भेद हैं - **१) वज्रर्षभनाराचसंहनन नामकर्म** - हड्डियों के संचय को संहनन कहते हैं। वेष्टन को ऋषभ कहते हैं। नाराच कील को कहते हैं। जिस कर्म के उदय से वज्रमय हड्डियाँ, वज्रमय वेष्टन से वेष्टित और वज्रमय नाराच से कीलित होती है वह वज्रर्षभनाराचसंहनन नामकर्म है। २) **वज्रनाराचसंहनन नामकर्म** - यही वज्ररूप अस्थिबन्ध वज्रवत् वेष्टन के बिना सामान्य वेष्टन से वेष्टित जिस कर्म के उदय से होता है वह वज्रनाराच संहनन नामकर्म है। ३) **नाराचसंहनननामकर्म** - जिस कर्म के उदय से वज्र विशेषण से रहित नाराच से कीलित हड्डियों की संधियाँ होती हैं वह नाराचशरीर संहनन नामकर्म है। ४) **अर्धनाराचसंहनननामकर्म** - जिस कर्म के उदय से हड्डियों के जोड़ नाराच से अर्धकीलित होते हैं वह अर्धनाराचसंहनन नामकर्म है। ५) **कीलित संहनननामकर्म** - जिस कर्म के उदय से हड्डियाँ परस्पर में कीलित होती हैं वह कीलितशरीरसंहनन नाम कर्म है। ६)**असंप्राप्तसृपाटिका संहनननामकर्म** - जिसके उदय से हड्डियाँ परस्पर में प्राप्त न होकर सरीसृप की तरह सिराओं से बंधी होती हैं वह असंप्राप्तसृपाटिका संहनन नामकर्म है।

९) **वर्णनामकर्म** - जिसके निमित्त से शरीर में वर्णविकार होता है वह वर्णनामकर्म है। वह पाँच प्रकार का है- १) कृष्णवर्ण २) नीलवर्ण ३) लालवर्ण ४) हरितवर्ण ५) शुक्लवर्णनामकर्म।

१०) **गन्धनामकर्म** - जिस के उदय से शरीर में गन्ध हो वह गन्धनामकर्म है।

उसके दो भेद हैं - १) सुगन्ध २) दुर्गन्धनामकर्म

११) रसनामकर्म - जिसके उदय से शरीर में रस हो वह रसनामकर्म है। उसके पाँच भेद हैं - १) तिक्त २) कटुक ३) कषाय ४) आम्ल ५) मधुर नामकर्म

१२) स्पर्शनामकर्म - जिसके उदय से स्पर्श हो वह स्पर्शनामकर्म है। उसके आठ भेद हैं - १) कर्कश २) मृदु ३) गुरु ४) लघु ५) शीत ६) उष्ण ७) स्निग्ध ८) रुक्षनामकर्म

१३) आनुपूर्वीनामकर्म - जिस कर्म के उदय से विग्रहगति में पूर्वशरीर के आकार का विनाश नहीं होता वह आनुपूर्वीनामकर्म है। उसके चार भेद हैं - १) नरकगति-प्रायोग्यानुपूर्वी २) तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी ३)मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी ४) देवगति-प्रायोग्यानुपूर्वी। विग्रहगति में आकार विशेष को बनाये रखना और इच्छित गति में गमन कराना, ये दोनों ही फल आनुपूर्वी नामकर्म के कार्य हैं।[१]

१४) अगुरुलघु नामकर्म - जिसके उदय से शरीर न तो लोहे के पिण्ड की तरह भारी होने से नीचे गिरे और न आक की रूई की तरह हल्का होने से ऊपर उड़े वह अगुरुलघुनामकर्म है।

१५)उपघातनामकर्म - स्वयं प्राप्त होनेवाले घात को उपघात कहते हैं। जिसके उदय से आत्मघात करनेवाले अवयव बड़े बड़े सींग, लम्बे स्तन, बड़ा पेट, वात, पित्त, कफ आदि होते हैं वह उपघात नामकर्म हैं।

१६) परघातनामकर्म - पर के घात को परघात कहते हैं जिसके उदय से पर को घात करने के कारणभूत तीक्ष्ण सींग, नख, दाँत आदि अवयव होते हैं वह परघात नामकर्म है।

१७) उच्छ्वासनामकर्म - जिसके निमित्त से श्वासोच्छ्वास होता है वह उच्छ्वासनामकर्म है।

१८) आतपनामकर्म - जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में आतप होता है वह आतपनामकर्म है। उसका उदय सूर्य के बिंब में उत्पन्न बादर पर्याप्त पृथिवीकायिक जीवों में ही होता है।

१९) उद्योतनामकर्म - जिसके उदय से जीव के शरीर में उद्योत (चमक) उत्पन्न होता है वह उद्योत नामकर्म है। उसका उदय चन्द्रबिम्ब, नक्षत्र, तारा, जुगनु आदि में होता है।

---

१. धवला पु ६ पृ. ५७

२०) **विहायोगतिनामकर्म -** विहाय नाम आकाश का है। जिसके उदय से जीव का आकाश में गमन होता है वह विहायोगति नामकर्म है। उसके दो भेद हैं - १) प्रशस्त विहायोगति २) अप्रशस्त विहायोगति

२१) **त्रस नामकर्म -** जिसके उदय से दो-इन्द्रिय आदि में जन्म हो वह त्रसनाम कर्म है।

२२) **स्थावर -** जिसके उदय से एकेन्द्रियों में जन्म हो वह स्थावरनामकर्म है।

२३) **बादर -** जिसके उदय से दूसरे को बाधा करनेवाला स्थूल शरीर उत्पन्न होता है वह बादर नामकर्म है।

२४) **सूक्ष्म -** जिसके उदय से दूसरे को बाधा न करनेवाला शरीर उत्पन्न होता है वह सूक्ष्म शरीर होता है वह सूक्ष्म नामकर्म है।

२५) **पर्याप्त -** जिसके उदय से आहार आदि पर्याप्तियों की पूर्णता होती है वह पर्याप्त नामकर्म है। पर्याप्ति छह हैं - १) आहार २) शरीर ३) इन्द्रिय ४) प्राणापान ५) भाषा ६) मन:पर्याप्ति

२६) **अपर्याप्त -** जिसके उदय से पर्याप्तियों को पूर्ण करने में समर्थ नहीं होता है वह अपर्याप्त नामकर्म है।

२७) **प्रत्येक -** जिसके उदय से शरीर एक आत्मा के उपभोग का कारण होता है वह प्रत्येक शरीर नामकर्म है।

२८) **साधारण -** जिसके उदय से अनंत जीवों के उपभोग में हेतु एक साधारण शरीर होता है वह साधारणशरीर नामकर्म है।

२९) **स्थिर -** जिसके उदय से रस आदि धातु-उपधातु अपने अपने स्थान में स्थिरता को प्राप्त हो वह स्थिर नामकर्म है।

३०) **अस्थिर -** जिसके उदय से धातु-उपधातु स्थिर न हो वह अस्थिर नामकर्म है। (विग्रहगति में स्थिर अस्थिर प्रकृतियों का अव्यक्त उदय रहता है।)

३१) **शुभ -** जिसके उदय से रमणीक मस्तक आदि प्रशस्त अवयव होते हैं वह शुभनामकर्म है।

३२) **अशुभ -** जिसके उदय से अरमणीय मस्तक आदि अवयवों की रचना हो वह अशुभनामकर्म है।

३३) **सुभग -** स्त्री और पुरुषों के सौभाग्य को उत्पन्न करनेवाला सुभगनामकर्म है

अथवा जिसके उदय से दूसरे प्रीति करते हैं वह सुभग नामकर्म है।

३४) दुर्भग - स्त्री और पुरुषों के दौर्भाग्य को उत्पन्न करनेवाला दुर्भगनामकर्म है अथवा जिसके उदय से रूप आदि गुणों से युक्त होनेपर भी लोग प्रीति नहीं करते वह दुर्भग नामकर्म है।

३५) सुस्वर - जिसके उदय से मनोज्ञ स्वर होता है वह सुस्वरनाम कर्म है।

३६) दुस्वर - जिसके उदय से स्वर सुंदर नहीं होता वह दुस्वरनाम कर्म है।

३७) आदेय - आदेयता, ग्रहणीयता, बहुमान्यता ये तीनों शब्द एकार्थक हैं। जिसके उदय से जीव के आदेयता (बहुमान्यता) उत्पन्न होती है वह आदेयनामकर्म है।[१]

३८) अनादेय - जिसके उदय से जीव के अनादरणीयता उत्पन्न होती है वह अनादेयनामकर्म है।

३९) यश:कीर्ति - जिसके उदय से विद्यमान या अविद्यमान गुणों का उद्भावन लोगों के द्वारा किया जाता है वह यश:कीर्ति नामकर्म है।

४०) अयश:कीर्ति - जिसके उदय से विद्यमान या अविद्यमान अवगुणों का(दोषों का) उद्भावन लोगों के द्वारा किया जाता है वह अयश:कीर्ति नामकर्म है।

४१) निर्माणनामकर्म - जिसके निमित्त से शरीर की रचना हो वह निर्माण-नामकर्म है। यह दो प्रकार का है १) स्थाननिर्माण २) प्रमाणनिर्माण। वह जातिनामकर्म के उदय के अनुसार चक्षु आदि के स्थान और प्रमाण का निर्माण करता है।

४२) तीर्थंकर - जिस कर्म के उदय से जीव की त्रिलोक में पूजा होती है वह तीर्थंकर नामकर्म है।

७) गोत्रकर्म के दो भेद - १) उच्चगोत्र - जिसके उदय से लोकपूजित कुल में जन्म हो वह उच्चगोत्र है। २) नीचगोत्र - जिसके उदय से नीच कुल में जन्म हो वह नीचगोत्र है।

८) अन्तराय - जिसके उदय से दान आदि परिणामों में व्याघात होता है वह अन्तराय कर्म है। वह पाँच प्रकार का है १) दानान्तराय - जिसके उदय से देने की इच्छा होनेपर भी दान नहीं कर पाता वह दानान्तरायकर्म है। २) लाभान्तराय - लाभ की इच्छा होने पर भी लाभ नहीं होता। ३) भोगान्तराय - भोगने की इच्छा होने पर भी भोग नहीं

---

१. धवल पु. ६ पृ. ६५

सकता। ४) उपभोगान्तराय - उपभोग की इच्छा होने पर भी उपभोग नहीं सकता।५) वीर्यान्तराय - उत्साह करने की इच्छा होने पर भी उत्साह नहीं होता वह वीर्यान्तराय कर्म है।

अब शरीर के अंगोपांगों को कहते हैं —

णलया बाहू य तहा णियंबपुट्ठी उरो य सीसो य।
अट्ठेव दु अंगाइं देहे सेसा उवंगाइं।।२८।।

अन्वयार्थ -(णलया) दो पैर **(बाहू)** दो हाथ **(तहा य)** तथा **(णियंब)** नितम्ब-कमर के पीछे का भाग **(पुट्ठी)** पीठ **(उरो य)** हृदय **(य)** और **(सीसो)** शीर्ष (मस्तक) **(अट्ठेव दु)** आठ ही **(देहे)** शरीर में **(अंगाइं)** अंग हैं। **(सेसा)** शेष नेत्र, कान आदि **(उवंगाइं)** उपांग होते हैं।

विशेषार्थ - आठ अंग, शेष सब उपाङ्ग

२) दो पैर, ३-४) दो हाथ, ५) नितम्ब, ६) पीठ, ७) हृदय, ८) मस्तक ये आठ अंग हैं। शेष कान, नाक, नेत्र, अंगुली आदि सर्व उपाङ्ग हैं।

संहनन ६ प्रकार के हैं, उनमें से किस किस संहनन से कौन-कौनसी गति में उत्पन्न होते हैं यह चार गाथाओं में कहते हैं —

सेवट्टेण य गम्मइ आदीदो चदुसु कप्पजुगलोत्ति।
तत्तो दु जुगलजुगले खीलियणारायणद्धोत्ति।।२९।।

अन्वयार्थ - (सेवट्टेण य) सृपाटिका संहनन से **(आदिदो)** सौधर्म युगल से **(चदुसु कप्पजुगलोत्ति)** चार कल्पयुगलों में अर्थात् आठवें स्वर्गतक उत्पन्न होता है **(तत्तो)** उससे ऊपर **(दु जुगलजुगले)** दो दो युगलों में **(खीलियणारायणद्धोत्ति)** कीलीत और अर्धनाराच संहनन से मरकर उत्पन्न होता है अर्थात् कीलितसंहनन से शतारयुगलपर्यन्त अर्थात् बारहवें स्वर्गतक और अर्धनाराचसंहनन से आरणअच्युत पर्यन्त उत्पन्न होता है।

णवगेवेज्जाणुद्दिसणुत्तरवासीसु जांति ते णियमा।
तिदुगेगे संघडणे णारायणमादिगे कमसो।।३०।।

अन्वयार्थ - (णारायणमादिगे) नाराचादि **(तिदुगेगे)** तीन, दो और एक **(संघडणे)** संहननों से **(णियमा)** नियम से **(ते)** वे जीव **(कमसो)** क्रम से **(णवगेवेज्जाणुद्दिसणुत्तरवासीसु)** नौग्रैवेयक, नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानवासियों में उत्पन्न होते हैं।

सण्णी छस्संघडणो वज्जदि मेघं तदो परं चावि।
सेवट्टादीरहिदो पणपणचदुरेगसंघडणो।।३१।।

अन्वयार्थ -(छस्संघडणो) छह संहननों से युक्त **(सण्णी)** संज्ञी जीव (यदि नरक में उत्पन्न हो तो) **(मेघं)** मेघा नामक तीसरे नरक तक जाते हैं **(सेवट्टादीरहिदो)** सृपाटिकादि संहनन से रहित **(पणपणचदुरेगसंघडणो)** पाँच, पाँच, चार और एक संहननवाला जीव **(तदो परं चावि)** उससे आगे भी जाते हैं। अर्थात् सृपाटिकारहित पाँच संहननवाला जीव मरकर पाँचवी पृथ्वीपर्यन्त, अर्धनाराचपर्यन्त चार संहननवाला जीव छठी पृथ्वीपर्यन्त और एक वज्रर्षभनाराच संहननवाला जीव सातवी पृथ्वीतक उत्पन्न होते हैं।

अंतिमतिगसंघडणस्सुदओ पुण कम्मभूमिमहिलाणं।
आदिमतिगसंघडणं णत्थित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं।।३२।।

अन्वयार्थ - (कम्मभूमिमहिलाणं) कर्मभूमि में महिलाओं के **(अंतिमतिगसंघडणस्सुदओ)** अंतिम तीन संहननों का उदय होता है। **(पुण)** पुनः **(आदिमतिगसंघडणं)** आदि के तीन संहनन **(णत्थित्ति)** नहीं होते, ऐसा **(जिणेहि)** जिनेन्द्र भगवान ने **(णिद्दिट्ठं)** कहा है।

विशेषार्थ - किस किस संहनन से कौनकौन सी गति में उत्पत्ति होती है उसका नक्शा—

सं.क्र.	कौन से संहननवाला जीव	कौन से स्वर्ग में	कौन से नरक में
६)	असंप्राप्तासृपाटिका	१ से ८ वे स्वर्गतक	१ से ३ रे नरकतक
५)	कीलितसंहनन	१ से १२ वे स्वर्गतक	१ से ५ वें नरकतक

सं.क्र.	कौनसे संहननवाला जीव	कौन से स्वर्ग में	कौन से नरक में
४)	अर्धनाराचसंहनन	१ से १६ वे स्वर्गतक	१ से ६ ठे नरकतक
३)	नाराचसंहनन	१ से नवग्रैवेयकतक	१ से ६ ठे नरकतक
२)	वज्रनाराचसंहनन	१ से नवअनुदिशतक	१ से ६ ठे नरकतक
१)	वज्रर्षभनाराचसंहनन	१ से अनुत्तरस्वर्गतक	१ से ७ वें नरकतक

कर्मभूमि में महिलाओं के अन्तिम तीन संहनन होते हैं, प्रथम तीन संहनन नहीं होते।

उष्ण स्पर्श, आतप व उद्योत प्रकृति का लक्षण—

मूलुण्हपहा अग्गी आदावो होदि उण्हसहियपहा।
आइच्चे तेरिच्छे उण्हूणपहा हु उज्जोओ।।३३।।

अन्वयार्थ -(मूलुण्हपहा) जो मूल में उष्ण हो और जिसकी प्रभा भी उष्ण हो वह **(अग्गी)** अग्नि है **(उण्हसहियपहा)** जो उष्णप्रभा सहित हो वह **(आदावो)** आताप **(होदि)** है। वह **(आइच्चे)** सूर्य में होता है **(उण्हूणपहा)** जो उष्ण प्रभा रहित है वह **(उज्जोओ)** उद्योत है। वह **(तेरिच्छे)** तिर्यंच में होता है।

विशेषार्थ - उष्णस्पर्शनामकर्म - अग्नि के मूल और प्रभा दोनों ही उष्ण रहते हैं अत: उसके उष्णस्पर्श नामकर्म का उदय है।

आतपनामकर्म - जो मूल में उष्ण नहीं है किन्तु जिसकी केवल प्रभा अर्थात किरणों में उष्णपना हो उसको आतप कहते हैं। आतपनामकर्म का उदय सूर्य के विमान में तथा सूर्यकान्त मणि में उत्पन्न हुए बादरपृथ्वीकायिक तिर्यञ्चों में ही होता है।

उद्योतनामकर्म - जिसकी प्रभा भी उष्णता रहित हो उसको उद्योत कहते हैं। इसका उदय चन्द्र विमान में उत्पन्न बादर पृथ्वीकायिक तथा अन्य एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के तिर्यंचों में पाया जाता है।

आत्मप्रदेशों में एकक्षेत्रावगाहरूप से स्थित कर्म के योग्य कार्मणवर्गणाओं का दूध पानी के समान संश्लेषसम्बन्ध होने को बन्ध कहते हैं। जिसप्रकार पात्र विशेष में रखा हुआ अनेक प्रकार का रस, बीज, पुष्पफलादि मदिरापने को प्राप्त हो जाते हैं उसीप्रकार कार्मण वर्गणा भी योग और कषाय के निमित्त से कर्मभाव को प्राप्त हो जाती है।

जैसे एक बार में खाये गये एक ही अन्न का रस रुधिर आदिरूप से परिणाम होता है वैसे ही एक ही आत्मपरिणाम से ग्रहण किये गये पुद्गल, ज्ञानावरण आदि अनेक भेदरूप हो जाते हैं।

अभव्य के मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान की शक्ति द्रव्यार्थिकनय से पायी जाती है किन्तु पर्यायार्थिकनय से शक्ति की व्यक्ति नहीं होती। जैसे अंधपाषाण में स्वर्ण शक्तिरूप से है, परन्तु उसकी व्यक्ति नहीं है उसीप्रकार जानना।

रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से हड्डी, हड्डी से मज्जा, मज्जा से शुक्र की उत्पत्ति होती है तथा शुक्र से संतानोत्पत्ति होती है। ये सप्तधातुएँ क्रम से एक दूसरे रूप परिणमती हैं। इनके बनने में ३० दिन लगते हैं।

त्रैराशिक -

प्रमाणराशि	**फलराशि**	**इच्छाराशि**
७ धातु बनने में	३० दिन	१ धातु बनने में कितने दिन लगते हैं?

$$\frac{\text{फल} \times \text{इच्छा}}{\text{प्रमाण}} = \frac{30 \times 1}{7} = 4\frac{2}{7}$$

४ दिन और २ दिन का सातवाँ भाग लगता है।

वात, पित्त, कफ, सिरा, स्नायु, चर्म और उदराग्नि ये ७ उपधातु हैं।

जिसके उदय से रसादि धातु व उपधातु अपने अपने स्थान में स्थिरता को प्राप्त होते हैं वह स्थिरनामकर्म है। जिसके उदय से धातु उपधातु स्थिर न हो वह अस्थिर नाम कर्म है।

देहे अविणाभावी बंधणसंघाद इदि अबंधुदया।
वण्णचउक्केऽभिण्णे गहिदे चत्तारि बंधुदये।।३४।।

अन्वयार्थ -(देहे) शरीर के साथ **(बंधणसंघाद)** बन्धन और संघात **(अविणाभावी)** अविनाभावी है **(इदि)** इस कारण से **(अबंधुदया)** इन दस प्रकृतियों का बन्ध और उदय पृथक् नहीं लिया है। **(वण्णचउक्के)** वर्णचतुष्क को **(अभिण्णे)** अभिन्न विवक्षा से **(गहिदे)** ग्रहण करने पर **(बंधुदये)** बंध और उदय में **(चत्तारि)** चार ही प्रकृतियाँ होती हैं।

अब बंध, उदय और सत्त्वरूप प्रकृतियों को चार गाथाओं में कहते हैं -

पंच णव दोण्णि छव्वीसमवि य चउरो कमेण सत्तट्ठी।
दोण्णि य पंच य भणिया एदाओ बंधपयडीओ।।३५।।

अन्वयार्थ - (पंच) पाँच ज्ञानावरण, **(णव)** नौ दर्शनावरण, **(दोण्णि)** दो वेदनीय, **(छव्वीसमवि)** छब्बीस ही मोहनीय, **(चउरो)** चार आयु, **(सत्तट्ठी)** सडसठ नाम, **(दो ण्णि)** दो गोत्र, **(य)** और **(पंच)** पाँच अंतराय **(एदाओ)** ये **(बंधपयडीओ)** बंधप्रकृतियाँ (१२०) **(भणिया)** कहीं है।

पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण सत्तट्ठी।
दोण्णि य पंच य भणिदा एदाओ उदयपयडीओ।।३६।।

अन्वयार्थ - ज्ञानावरणादि की **(कमेण)** क्रम से **(पंच)** पाँच, **(णव)** नौ, **(दोण्णि)** दो, **(अट्ठावीसं)** अठाईस, **(चउरो)** चार, **(सत्तट्ठी)** सडसठ, **(दोण्णि)** दो **(य)** और **(पंच)** पाँच **(एदाओ)** ये **(उदयपयडीओ)** उदयप्रकृतियाँ (१२२) **(भणिदा)** कहीं हैं।

भेदे छादालसयं इदरे बंधे हवंति बीससयं।
भेदे सव्वे उदये बावीससयं अभेदम्मि।।३७।।

अन्वयार्थ -(बंधे) बन्ध में **(भेदे)** भेद विवक्षा में **(छादालसयं)** एक सौ छियालीस प्रकृतियाँ होती हैं। **(इदरे)** अभेद विवक्षा में, **(बीससयं)** एक सौ बीस **(हवंति)** होती हैं। **(उदये)** उदय में **(भेदे)** भेद विवक्षा में **(सव्वे)** सब एक सौ अड़तालीस हैं और **(अभेदम्मि)** अभेदविवक्षा में **(बावीससयं)** एक सौ बाईस हैं।

पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण तेणउदी।
दोण्णि य पंच य भणिदा एदाओ सत्तपयडीओ।।३८।।

अन्वयार्थ - ज्ञानावरणादिक की **(कमेण)** क्रम से **(पंच)** पाँच, **(णव)** नौ, **(दोण्णि)** दो, **(अट्ठावीसं)** अठाईस, **(चउरो)** चार, **(तेणउदी)** तिरानवे, **(दोण्णि)** दो **(य)** और **(पंच)** पाँच **(एदाओ)** ये १४८ **(सत्तपयडीओ)** सत्त्व प्रकृतियाँ **(भणिया)**

कहीं हैं।

प्रकृति	अभेद विवक्षा	भेद विवक्षा	स्पष्टीकरण
बन्धयोग्य	१२०	१४६	१४६-२६ (५ बंधन, ५ संघात,१६ वर्णादि)
उदययोग्य	१२२	१४८	१४८-२६ (५ बंधन, ५ संघात,१६ वर्णादि)
सत्त्वयोग्य	—	१४८	

विशेषार्थ - सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्त्वप्रकृति का बन्ध नहीं होता अतः बन्धयोग्य १४६ ही हैं। शरीरों के साथ ५ बन्धन और ५ संघात का अविनाभाव होनेसे उनका शरीरों में ही अन्तर्भाव हो जाता है अतः इन १० प्रकृतियों को बन्ध और उदय में से कम किया। तथा वर्णादि ४ में २० भेदों का अन्तर्भाव हो जाता है इस कारण वर्णादि १६ कम हुये।

घातियाकर्म में सर्वघाति और देशघाति दो भेद हैं, उनमें प्रथम सर्वघाति प्रकृतियों को कहते हैं —

केवलणाणावरणं दंसणछक्कं कसायबारसयं।
मिच्छं च सव्वघादी सम्मामिच्छं अबंधम्मि।।३९।।

अन्वयार्थ -(केवलणाणावरणं) केवलज्ञानावरण, **(दंसणछक्कं)** दर्शनावरण की छह केवलदर्शनावरण और पाँच निद्रा, **(कसायबारसयं)** बारहकषाय (अनन्तानुबन्धी आदि) **(च)** और **(मिच्छं)** मिथ्यात्व **(सव्वघादी)** ये बीस प्रकृतियाँ सर्वघाति हैं **(अबंधम्मि)** अबंध की अपेक्षा **(सम्मामिच्छं)** सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति भी सर्वघाति है।

अब देशघाति प्रकृतियों को कहते हैं—

णाणावरणचउक्कं तिदंसणं सम्मगं च संजलणं।
णवणोकसायविग्घं छव्वीसा देसघादीओ।।४०।।

अन्वयार्थ - (णाणावरणचउक्कं) ज्ञानावरण की चार, **(तिदंसणं)** दर्शनावरण की तीन, **(सम्मगं)** सम्यक्त्व, **(संजलणं)** संज्वलन चार कषाय, **(णव णोकसाय)** नौ

नोकषाय, और **(विग्घं)** पाँच अन्तराय **(छव्वीसा)** ये छब्बीस प्रकृतियाँ **(देसघादीओ)** देशघाति हैं।

घाति	देशघातिप्रकृति		सर्वघातिप्रकृति	
ज्ञानावरण	४	मतिज्ञानावरणादि	१	केवलज्ञानावरण
दर्शनावरण	३	चक्षुर्दर्शनावरणादि	६	केवलदर्शनावरण १+५ निद्रा
मोहनीय	१४	सम्यक्प्रकृति, संज्वलन कषाय ४, ९ नोकषाय	१४	मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी आदि १२ कषाय
अंतराय	५	वीर्यान्तरायादि		
कुल	२६		२१	

अब अघातिकर्मों में प्रशस्त प्रकृतियों को दो गाथाओं से कहते हैं—

सादं तिण्णेवाऊ उच्चं णरसुरदुगं च पंचिंदी।
देहा बंधणसंघादंगोवंगाइ वण्ण चऊ।।४१।।
समचउरवज्जरिसहं उवघादूणगुरुछक्कसग्गमणं।
तसबारसट्ठसट्ठी बादालमभेददो सत्था।।४२।।

अन्वयार्थ - (सादं) साता वेदनीय, **(तिण्णेवाऊ)** तीन आयु - तिर्यंच, मनुष्य, देवायु **(उच्चं)** उच्च गोत्र, **(णरसुरदुगं)** मनुष्यद्विक, देवद्विक **(पंचिंदी)** पंचेंद्रिय जाति, **(देहा)** पाँच शरीर, **(बंधण संघाद)** पाँच बन्धन, पाँच संघात, **(अंगोवंगाइं)** तीन अंगोपांग, **(वण्ण चऊ)** वर्णचतुष्क, **(समचउर)** समचतुरस्त्र संस्थान, **(वज्जरिसहं)** वज्रर्षभनाराच संहनन, **(उवघादूणगुरुछक्क)** उपघात के बिना अगुरुलघुषट्क, **(सग्गमणं)** प्रशस्त विहायोगति, **(तसबारस)** त्रसादि बारह **(अट्ठसट्ठी)** ये अड़सठ प्रकृतियाँ **(सत्था)** प्रशस्तप्रकृतियाँ हैं **(अभेददो)** अभेदविवक्षा से **(बादालं)** बयालीस प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं।

अप्रशस्त प्रकृतियाँ दो गाथाओं से कहते हैं—

घादी णीचमसादं णिरयाऊ णिरयतिरियदुग जादी।
संठाणसंहदीणं चदुपणपणगं च वण्णचऊ।।४३।।
उवघादमसग्गमणं थावरदसयं च अप्पसत्था हु।
बंधुदयं पडि भेदे अडणउदिसयं दुचदुरसीदिदरे।।४४।।

अन्वयार्थ - **(घादी)** घातियाँ कर्म की ४७ प्रकृतियाँ, **(णीचं)** नीचगोत्र, **(असादं)** असाता वेदनीय, **(णिरयाऊ)** नरकायु, **(णिरयतिरियदुग)** नरकद्विक, तिर्यंचद्विक, **(जादी संठाणसंहदीणं चदुपणपणगं)** जाति चार, संस्थान ५, संहनन ५, **(वण्णचऊ)** अशुभ वर्णचतुष्क, **(उवघादं)** उपघात, **(असग्गमणं)** अप्रशस्तविहायोगति, **(थावरदसयं)** स्थावरदशक **(अप्पसत्था हु)** ये अप्रशस्त प्रकृतियाँ हैं। **(भेदे)** भेदविवक्षा में **(बंधुदयं पडिअडणउदि सयं)** बन्धरूप पापप्रकृतियाँ ९८ और उदयरूप प्रकृतियाँ १०० हैं **(इदरे)** इतर अर्थात् अभेदविवक्षा से **(दुचदुरसीदि)** बन्ध में बयासी और उदय में चौरासी पापरूप प्रकृतियाँ हैं।

	६८ प्रशस्त (पुण्य) प्रकृतियाँ	**अप्रशस्त (पाप) प्रकृतियाँ १००**	
१	सातवेदनीय	४७	घाति
३	तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु	१	असातवेदनीय
१	उच्चगोत्र	१	नरकायु
२	मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी	१	नीचगोत्र
२	देवगति, देवगत्यानुपूर्वी	२	नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी
१	पंचेन्द्रियजाति	२	तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी
५	शरीर	४	एकेन्द्रियादि ४ जाति
५	बंधन	५	न्यग्रोधपरिमंडलादि ५ संस्थान
५	संघात	५	वज्रनाराचादि ५ संहनन
३	अंगोपांग	२०	अशुभवर्ण ५,गंध २,रस ५,स्पर्श ८
२०	शुभवर्ण ५, गंध २, रस ५, स्पर्श ८	१	उपघात

६८ प्रशस्त (पुण्य) प्रकृतियाँ		अप्रशस्त (पाप) प्रकृतियाँ १००	
१ १ ५ १ १२	समचतुरस्रसंस्थान वज्रर्षभनाराचसंहनन अगुरुलघु,परघात,उच्छ्वास,आतप,उद्योत प्रशस्तविहायोगति त्रसादि १२ (त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग,सुस्वर, आदेय, यश:कीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर)	१ १०	अप्रशस्तविहायोगति स्थावर दशक (स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति)
६८	भेद विवक्षा	१००	कुल भेदविवक्षा से
६८ - २६ = ४२ अभेदविवक्षा (बंधन, संघात १०, वर्णादि १६)		१००-१६ वर्णादि = ८४ अभेदविवक्षा से उदययोग्य ९८-१६ वर्णादि = ८२ अभेदविवक्षा से बन्धयोग्य	

विशेषार्थ - वर्णादि २० भेद प्रशस्तरूप भी हैं और अप्रशस्तरूप भी हैं। जैसे बालों का काला वर्ण, दातों का सफेद वर्ण प्रशस्त है। बालों का सफेद वर्ण, दातों का काला वर्ण अप्रशस्त है। इसीप्रकार अन्य भी जानना।

कषाय का कार्य कहते हैं —

पढमादिया कसाया सम्मत्तं देससयलचारित्तं।
जहखादं घादंति य गुणणामा होंति सेसा वि।।४५।।

अन्वयार्थ - (पढमादिया कसाया) प्रथमादिक कषाय क्रम से **(सम्मत्तं)** सम्यक्त्व **(देससयलचारित्तं)** देशचारित्र, सकलचारित्र **(य)** और **(जहखादं)** यथाख्यातचारित्र का **(घादंति)** घात करते हैं अर्थात् अनंतानुबंधी कषाय सम्यक्त्व का, अप्रत्याख्यानावरण कषाय देशचारित्र का, प्रत्याख्यानावरण कषाय सकलचारित्र का और संज्वलनकषाय यथाख्यातचारित्र का घात करते हैं अत: **(गुणणामा)** गुणों के अनुसार

नामवाले हैं **(सेसावि)** इसीतरह शेष नोकषाय और ज्ञानावरण आदि भी सार्थक नामवाले हैं।

अब कषायों का वासनाकाल कहते हैं —

अंतोमुहुत्तपक्खं छम्मासं संखसंखणंतभवं।

संजलणमादियाणं वासणकालो दु णियमेण।।४६।।

अन्वयार्थ - (संजलणमादियाणं) संज्वलन आदिकों का **(वासणकालो)** वासना काल क्रम से **(णियमेण)** नियम से **(अंतोमुहुत्त पक्खं)** अन्तर्मुहूर्त, एक पक्ष (१५ दिन) **(छम्मासं)** छह मास और **(संखसंखणंतभवं)** संख्यात, असंख्यात, अनंतभव है।

विशेषार्थ - १) अनन्त अर्थात् मिथ्यात्व, उसके साथ जो संबंध करे वह अनन्तानुबन्धी कषाय।

२) अ+प्रत्याख्यान = अ अर्थात् ईषत् और प्रत्याख्यान अर्थात् संयम, देशसंयम को घातती है वह अप्रत्याख्यानावरण कषाय।

३) प्रत्याख्यान अर्थात् सकलसंयम उसको घातती है वह प्रत्याख्यानावरण कषाय।

४) संज्वलन 'सम्' अर्थात् एकरूप होकर जो संयम के साथ ज्वल अर्थात् प्रज्वलित रहे अर्थात् प्रकट रहे वह संज्वलनकषाय। इसप्रकार ये सार्थक नामवाले हैं।

कषाय का भेद	किसका घात करती है	वासनाकाल
अनन्तानुबन्धी कषाय	सम्यक्त्व को घातती है।	संख्यात, असंख्यात, अनन्तभव
अप्रत्याख्यानावरण कषाय	देशचारित्र को घातती है।	छह महीना
प्रत्याख्यानावरण कषाय	सकलचारित्रको घातती है।	पंद्रह दिन
संज्वलनकषाय	यथाख्यातचारित्रको घातती है।	अन्तर्मुहूर्त

उदय का अभाव होते हुए भी कषाय का संस्कार जितने कालतक रहे उसका नाम वासनाकाल है। जिसप्रकार क्रोध के उदय से किसी पुरुष ने दूसरे किसीपर क्रोध किया कुछ काल पश्चात् क्रोध का उदय नहीं है, किन्तु संस्कार विद्यमान है क्योंकि उसने जिसपर क्रोध किया उसके प्रति मन में क्षमाभाव नहीं है।

मानकषाय के उदय में ज्ञानादिक का अहंकार हो गया पश्चात् मान कषाय के उदय का अभाव होनेपर भी उसका संस्कार बना रहता है अर्थात् मृदुता नहीं है।

मायाकषाय के उदय से किसी कार्य में छलकपट किया पश्चात् उसका संस्कार जबतक बना रहता है अर्थात् सरलता नहीं होती तबतक वासनाकाल है। लोभ के उदय से किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा की, पश्चात् उसके उदय का अभाव होने पर भी मन में इच्छा सुप्तरूप से पड़ी है। संतोष भाव नहीं हुआ वह लोभ की वासना है।

पुद्‌गलविपाकी प्रकृतियों को कहते हैं —

देहादीफस्संता पण्णासा णिमिणतावजुगलं च।
थिरसुहपत्तेयदुगं अगुरुतियं पोग्गलविवाई ।।४७।।

अन्वयार्थ - (देहादी फस्संता) शरीरनामकर्म से स्पर्शनामकर्मतक **(पण्णासा)** (५०) पचास प्रकृतियाँ **(णिमिणतावजुगलं)** निर्माण, आतपयुगल अर्थात् आतप और उद्योत (**थिरसुहपत्तेयदुगं**) स्थिरयुगल, शुभयुगल, प्रत्येक युगल, **(अगुरुतियं)** अगुरुत्रिक अर्थात् अगुरुलघु, उपघात, परघात (ये ६२ प्रकृतियाँ) **(पोग्गलविवाई)** पुद्‌गल विपाकी हैं।

भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी और जीवविपाकी प्रकृतियों को कहते हैं —

आऊणि भवविवाई खेत्तविवाई य आणुपुव्वीओ।
अट्ठत्तरि अवसेसा जीवविवाई मुणेयव्वा ।।४८।।

अन्वयार्थ - (आऊणि) चारों आयु **(भवविवाई)** भवविपाकी हैं **(य)** और **(आणुपुव्वीओ)** चारों आनुपूर्वी **(खेत्तविवाई)** क्षेत्रविपाकी हैं। **(अवसेसा)** शेष **(अट्ठत्तरि)** अठहत्तर प्रकृतियाँ **(जीवविवाई)** जीवविपाकी हैं **(मुणेयव्वा)** ऐसा जानना चाहिये।

जीवविपाकी प्रकृतियों के नाम कहते हैं —

वेदणियगोदघादीणेक्कावण्णं तु णामपयडीणं ।
सत्तावीसं चेदे अट्ठत्तरि जीवविवाईओ ।।४९।।

अन्वयार्थ - (वेदणियगोदघादीण) वेदनीय की दो, गोत्र की दो और घातियाकर्म की ४७ **(एकावण्णं)** ये ५१ प्रकृतियाँ **(णामपयडीणं)** नामकर्म की **(सत्तावीसं)** सत्ताईस

(चेदे) ये **(अट्ठुत्तरि)** अठहत्तर प्रकृतियाँ **(जीवविवाईओ)** जीवविपाकी हैं।

जीवविपाकी नामकर्म की २७ प्रकृतियों को कहते हैं—

तित्थयरं उस्सासं बादरपज्जत्तसुस्सरादेज्जं।
जसतसविहायसुभगदु चउगइ पणजाइ सगवीसं।।५०।।

अन्वयार्थ - (तित्थयरं) तीर्थंकर **(उस्सासं)** उच्छ्‌वास **(बादरपज्जत्तसुस्सरादेज्जं जसतसविहायसुभगदु)** बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, सुस्वर-दुस्वर, आदेय-अनादेय, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति, त्रस-स्थावर, प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगति, सुभग-दुर्भग, **(चउगइ)** चार गति, **(पणजाइ)** पांच जाति **(सगवीसं)** ये सत्ताईस (२७) प्रकृतियाँ जीवविपाकी हैं।

२७ प्रकृतियों को दूसरे प्रकार से कहते हैं —

गदि जादी उस्सासं विहायगदि तसतियाण जुगलं च।
सुभगादी चउजुगलं तित्थयरं चेदि सगवीसं ।।५१।।

अन्वयार्थ - (गदि) चार गति, **(जादी)** पाँच जाति, **(उस्सासं)** उच्छ्‌वास **(विहायगदि)** दो विहायोगति **(तसतियाण जुगलं च)** त्रसत्रिकों का युगल अर्थात् त्रस-स्थावर, बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त **(सुभगादी चउजुगलं)** सुभगादिचतुष्क का युगल अर्थात् सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुस्वर, आदेय-अनादेय, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति **(च)** और **(तित्थयरं)** तीर्थंकर **(इदि)** इस प्रकार नामकर्म की **(सगवीसं)** सत्ताईस प्रकृतियाँ जीवविपाकी हैं।

प्र.सं.	पुद्गल विपाकी प्रकृति ६२	प्र.सं.	जीवविपाकी प्रकृति ७८	प्र.सं.	भवविपाकी प्रकृति ४	प्र.सं.	क्षेत्रविपाकी प्रकृति ४
५ ५ ५ ६ ३	शरीर बंधन संघात संस्थान अंगोपांग	४७ २ २ ४ ५	घाति वेदनीय गोत्र गति जाति	४	आयु	४	आनुपूर्वी

प्र.सं.	पुद्गल विपाकी प्रकृति ६२	प्र.सं.	जीवविपाकी प्रकृति ७८	प्र.सं.	भवविपाकी प्रकृति ४	प्र.सं.	क्षेत्रविपाकी प्रकृति ४
६	संहनन	३	उच्छ्वास, विहायोगतियुगल				
२०	वर्ण,गंध,रस,स्पर्श	२	त्रस, स्थावर				
३	अगुरुलघु, उपघात, परघात	२	बादर, सूक्ष्म				
२	आतप, उद्योत	२	पर्याप्त, अपर्याप्त				
२	स्थिर, अस्थिर	२	सुभग, दुर्भग				
२	शुभ, अशुभ	२	सुस्वर, दुस्वर				
२	प्रत्येक, साधारण	२	आदेय, अनादेय				
१	निर्माण	२	यशस्कीर्ति, अयशस्कीर्ति				
		१	तीर्थंकर				
६२		७८		४		४	

आगे ३४ गाथाओं से मूल तथा उत्तरप्रकृतियों में नामादि निक्षेपों का कथन करते हैं—

णामं ठवणा दवियं भावो त्ति चउव्विहं हवे कम्मं।
पयडी पावं कम्मं मलं ति सण्णा हु णाममलं।।५२।।

अन्वयार्थ - (कम्मं) कर्म सामान्य **(णामं)** नाम **(ठवणा)** स्थापना, **(दवियं)** द्रव्य, **(भावोत्ति)** भाव इस प्रकार **(चउव्विहं)** चार प्रकार का है। **(पयडी)** प्रकृति **(पावं)** पाप **(कम्मं)** कर्म **(मलं)** मल **(ति)** ऐसी **(सण्णा)** संज्ञा **(हु णाममलं)** नाममल है।

विशेषार्थ - जो किसी एक निश्चय या निर्णय में क्षेपण करे अर्थात अनिर्णीत वस्तु का उसके नामादिक द्वारा निर्णय करावे उसे निक्षेप कहते हैं।

निक्षेप का प्रयोजन - १) अप्रकृत अर्थ का निवारण २) प्रकृत अर्थ का निरूपण ३) संशय का विनाश ४) तत्त्व का अवधारण करना।

सामान्यकर्म चार प्रकार का है - १) नाम २) स्थापना ३) द्रव्य ४) भाव

१) नामकर्म — अन्यनिमित्तों की अपेक्षा रहित किसी की 'कर्म' ऐसी संज्ञा करने को नामकर्म कहते हैं। प्रकृति, पाप, कर्म, मल ऐसी संज्ञाएँ नाममल है।

सरिसासरिसे दव्वे मदिणा जीवट्ठियं खु जं कम्मं।
तं एदत्ति पदिट्ठा ठवणा तं ठावणा कम्मं।।५३।।

अन्वयार्थ - (सरिसासरिसे दव्वे) कर्म के समान अथवा असमान द्रव्य में **(मदिणा)** बुद्धि के द्वारा **(जीवट्ठियं)** 'जीव में स्थित **(जं कम्मं)** जो कर्म है **(तं एदत्ति)** वह यह है' ऐसी **(पदिट्ठा)** प्रतिष्ठा करना **(ठवणा)** स्थापना है **(तं)** वह **(ठावणा कम्मं)** स्थापना कर्म है।

विशेषार्थ - २) स्थापना कर्म — सदृश अथवा विसदृश वस्तु में अपनी बुद्धि से स्थापना द्वारा जीव के समस्त प्रदेशों में स्थित कर्म 'वह यह है' ऐसी प्रतिष्ठा करना स्थापना कर्म है। जैसे - बोर्डपर कर्म को समझाने के लिए ● ऐसी संदृष्टि करके 'यह कर्म है' ऐसी स्थापना की वह स्थापना कर्म है।

दव्वे कम्मं दुविहं आगमणोआगमं ति तप्पढमं।
कम्मागमपरिजाणगजीवो उवजोगपरिहीणो ।।५४।।

अन्वयार्थ - (दव्वे) द्रव्यनिक्षेप रूप **(कम्मं)** कर्म **(दुविहं)** दो प्रकार का है **(आगमणोआगमं ति)** आगम द्रव्यकर्म और नो आगम द्रव्यकर्म **(कम्मागम परिजाणग जीवो)** कर्मरूप शास्त्र को जाननेवाला है किन्तु **(उवजोगपरिहीणो)** वर्तमान उपयोग से रहित हैं, वह जीव आगमद्रव्यकर्मनिक्षेप है।

विशेषार्थ - ३) द्रव्यनिक्षेपकर्म — दो प्रकार का है - १) आगमद्रव्यकर्म २) नोआगमद्रव्यकर्म

१) आगमद्रव्यकर्म — जो कर्मरूपशास्त्र को जाननेवाला तो है, किन्तु वर्तमान में उस शास्त्र में उपयोग नहीं रखता है वह जीव आगमद्रव्यकर्म है। जिसप्रकार किसी जीव को कर्मकाण्ड शास्त्र का ज्ञान तो है, किन्तु वह भोजन कर रहा है या सो रहा है तब वह आगमद्रव्यकर्म कहलाता है।

जाणुगसरीर भवियं तव्वदिरित्तं तु होदि जं बिदियं।
तत्थ सरीरं तिविहं तियकालगयंति दो सुगमा ।।५५।।

अन्वयार्थ -(जं बिदियं) जो दूसरा नोआगमद्रव्यकर्म है वह **(जाणुगसरीर भवियं तव्वदिरित्तं)** ज्ञायक शरीर, भावि, तद्व्यतिरिक्त इसप्रकार तीन प्रकार का है। **(तत्थ)** उनमें **(सरीरं)** ज्ञायकशरीर **(तिविहं)** तीन प्रकार है **(तियकालगयंति)** तीन कालगत अर्थात् भूत, भावि, वर्तमानकालीन ये तीन प्रकार है **(दो सुगमा)** इनमें से दो अर्थात् वर्तमान और भावि शरीर सुगम हैं।

भूदं तु चुदं चयिदं चत्तंति तिधा चुदं सपाकेण।
पडिदं कदलीघादपरिच्चागेणूणयं होदि।।५६।।

अन्वयार्थ - (भूदं तु) ज्ञायकभूत शरीर के **(तिधा)** तीन प्रकार हैं - **(चुदं)** च्युत, **(चयिदं)** च्यावित और **(चत्तंति)** त्यक्त, उनमें से **(चुदं)** च्युत शरीर **(सपाकेण)** स्वयं पककर **(पडिदं)** छूटता है और यह **(कदलीघादपरिच्चागेणूणयं)** कदलीघात तथा संन्यास से रहित है।

विसवेयणरत्तक्खयभयसत्थग्गहणसंकिलेसेहिं।
उस्सासाहाराणं णिरोहदो छिज्जदे आऊ ।।५७।।

अन्वयार्थ - (विसवेयणरत्तक्खय) विष, वेदना, रक्तक्षय **(भयसत्थग्गहण-संकिलेसेहिं)** भय, शस्त्रघात, संक्लेश से **(उस्सासाहाराणं णिरोहदो)** श्वास के रूक जाने से, आहार के न मिलने से **(आऊ)** आयु का **(छिज्जदे)** क्षय हो जाता है उसे कदलीघात कहते हैं।

कदलीघादसमेदं चागविहीणं तु चइदमिदि होदि।
घादेण अघादेण व पडिदं चागेण चत्तमिदि ।।५८।।

अन्वयार्थ - ज्ञायक का जो भूतशरीर **(कदलीघादसमेदं)** कदलीघात से नष्ट हो गया है **(तु)** परन्तु **(चागविहीणं)** संन्यास से रहित होता है वह **(चइदं)** च्यावित **(इदि)** ऐसा **(होदि)** होता है। **(घादेण)** कदलीघात सहित **(व)** अथवा **(अघादेण)** उसके बिना

लेकिन **(चागेण)** संन्यासपूर्वक **(पडिदं)** छूटा है उसे **(चत्तं)** त्यक्त **(इदि)** ऐसा कहते हैं।

विशेषार्थ - २) नोआगमद्रव्यकर्म तीन प्रकार का है -

१) ज्ञायकशरीर २) भावी ३) तद्व्यतिरिक्त

१) ज्ञायकशरीरनोआगमद्रव्यकर्म — कर्मस्वरूप को जाननेवाले जीव का शरीर ज्ञायकशरीरनोआगमद्रव्यकर्म है। इसके तीन भेद हैं १) भूत शरीर २) वर्तमान शरीर ३) भावी शरीर

१) जीव जिस शरीरसहित कर्मस्वरूप का वर्तमान में ज्ञाता है वह शरीर वर्तमान शरीर है।

२) वही जीव पहले जिस शरीर को छोडकर आया है वह भूतशरीर है।

३) वही जीव आगे जो शरीर धारण करेगा वह भावी शरीर है।

ज्ञायकभूतशरीर तीन प्रकार का है — १) च्युत २) च्यावित ३) त्यक्त

१) च्युतशरीर - अन्य कारण के बिना स्वयं आयु पूर्ण होने से जो शरीर छूटता है वह च्युतशरीर है यह कदलीघात तथा संन्यास से रहित है।

२) च्यावित - जिसका शरीर कदलीघात से नष्ट हो गया है किन्तु संन्यास रहित हो वह च्यावित है। विषभक्षणादि से जो मरण होता है वह कदलीघात है।

३) त्यक्त - कदलीघातसहित या उसके बिना संन्यासपूर्वक छूटा है उसे त्यक्त कहते हैं।

त्यक्त शरीर के भेद कहते हैं—

भत्तपइण्णाइंगिणिपाओग्गविहीहि चत्तमिदि तिविहं।
भत्तपइण्णा तिविहा जहण्णमज्झिमवरा य तहा।।५९।।

अन्वयार्थ - (चत्तं) त्यक्तशरीर **(भत्तपइण्णाइंगिणिपाओग्गविहीहि)** भक्तप्रतिज्ञा,इंगिनी और प्रायोपगमन **(इदि)** इसप्रकार मरणविधि के भेद से **(तिविहं)** तीन प्रकार है **(तहा)** उसीप्रकार **(भत्तपइण्णा तिविहा)** भक्तप्रतिज्ञा तीन प्रकार की है **(जहण्णमज्झिमवरा)** जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट।

अब जघन्यादि भेदों का काल कहते हैं -

भत्तपइण्णायविही जहण्णमंतोमुहुत्तयं होदि।
बारसवरिसा जेट्ठा तम्मज्झे होदि मज्झिमया ।।६०।।

अन्वयार्थ - (भत्तपइण्णायविही) भक्तप्रतिज्ञा की विधि का **(जहण्णं)** जघन्य काल **(अंतोमुहुत्तयं)** अन्तर्मुहूर्त **(होदि)** है **(जेट्ठा)** उत्कृष्ट काल **(बारसवरिसा)** बारह वर्ष प्रमाण है। **(तम्मज्झे)** उन दोनों के मध्य में **(मज्झिमया)** मध्यमकाल **(होदि)** होता है।

अब इंगिनी और प्रायोपगमन का लक्षण कहते हैं —

अप्पोवयारवेक्खं परोवयारूणमिंगिणीमरणं।
सपरोवयारहीणं मरणं पाओवगमणमिदि ।।६१।।

अन्वयार्थ - (अप्पोवयारवेक्खं) जिसमें अपने शरीर का उपचार स्वयं करने की अपेक्षा है **(परोवयारूणं)** दूसरों से उपचार कराने से रहित है उसे **(इंगिणीमरणं)** इंगिनीमरण कहते हैं तथा जो **(सपरोवयारहीणं)** स्व पर दोनों के उपचार से रहित है वह **(पाओवगमणं मरणं)** प्रायोपगमन मरण है **(इदि)** ऐसा कहा जाता है।

विशेषार्थ - त्यक्त शरीर के तीन भेद —

१) भक्तप्रतिज्ञा २) इंगिनी ३) प्रायोग्यविधि (प्रायोपगमन)

भक्तप्रतिज्ञा - जिसमें विधिपूर्वक क्रम से भोजन का त्याग किया जाता है और जिसमें अपने शरीर की सेवा स्वयं भी करता है और दूसरों से भी कराता है उसे भक्तप्रतिज्ञा कहते हैं। भक्तप्रतिज्ञा तीन प्रकार की - १) उत्कृष्ट २) मध्यम ३) जघन्य

१) उत्कृष्ट - १२ वर्ष की प्रतिज्ञा करके जो संन्यासमरण होता है वह उत्कृष्ट।

२) जघन्य - अन्तर्मुहूर्त प्रतिज्ञा करके जो संन्यासमरण होता है वह जघन्य।

३) मध्यम - अन्तर्मुहूर्त अधिक एक समय से लेकर १२ वर्ष के पूर्वतक मध्य में जितने भेद हैं वे सब मध्यम भक्तप्रतिज्ञा हैं।

इंगिनीमरण — जिस संन्यासमरण में संन्यास धारण करनेवाला अपने शरीर का उपचार स्वयं तो करता है दूसरे से नहीं कराता वह इंगिनीमरण है।

प्रायोपगमन —जिस संन्यासमरण में अपना उपचार न स्वयं करता है, न दूसरे से

कराता है वह प्रायोपगमन मरण है।

नोआगमद्रव्य का दूसरा भेद भावी है उसको कहते हैं —

भवियंति भवियकाले कम्मागमजाणगो स जो जीवो।
जाणुगसरीरभवियं एवं होदित्ति णिद्दिट्ठं ।।६२।।

अन्वयार्थ -(जो) जो **(भवियकाले)** भविष्यकाल में **(कम्मागमजाणगो)** कर्मविषयक आगम का ज्ञाता **(भवियंति)** होगा **(स जीवो)** वह जीव **(भवियं जाणुगसरीर)** भावी ज्ञायकशरीरी **(होदित्ति)** होता है **(एवं)** इस प्रकार **(णिद्दिट्ठं)** सर्वज्ञदेव ने कहा है।

विशेषार्थ - भाविनोआगमद्रव्यकर्म — जो भविष्यकाल में कर्मविषयक आगम का ज्ञाता होगा वह जीव ज्ञायक भाविनोआगमद्रव्यकर्म है।

तद्व्यतिरिक्त भेद को कहते हैं —

तव्वदिरित्तं दुविहं कम्मं णोकम्ममिदि तहिं कम्मं।
कम्मसरूवेणागय कम्मं दव्वं हवे णियमा ।।६३।।

अन्वयार्थ - (तव्वदिरित्तं) तद्व्यतिरिक्त **(दुविहं)** दो प्रकार का है **(कम्मं)** कर्म और **(णोकम्मं)** नोकर्म **(इदि)** इस प्रकार। **(तहिं)** उनमें **(कम्मसरूवेणागय)** कर्मस्वरूप से आया हुआ **(दव्वं कम्मं)** द्रव्यकर्म **(णियमा)** नियम से **(कम्मं)** कर्मतद्व्यतिरिक्त **(हवे)** है।

कम्मद्दव्वादण्णं दव्वं णोकम्मदव्वमिदि होदि।
भावे कम्मं दुविहं आगमणोआगमंति हवे ।।६४।।

अन्वयार्थ - (कम्मद्दव्वाद्) कर्मद्रव्य से **(अण्णं दव्वं)** अन्य द्रव्य **(णोकम्मदव्वमिदि)** नोकर्म तद्व्यतिरिक्त द्रव्यकर्म **(होदि)** है। **(भावे कम्मं)** भावकर्म भी **(दुविहं)** दो प्रकार का है **(आगमणोआगमंति)** १) आगम भावकर्म और २) नोआगम भावकर्म इसप्रकार **(हवे)** है।

विशेषार्थ - तद्व्यतिरिक्त द्रव्यकर्म के दो भेद — १) कर्मतद्व्यतिरिक्त २) नोकर्मतद्व्यतिरिक्त

१) कर्मतद्व्यतिरिक्त - मूलोत्तरप्रकृतिरूप से परिणत पुद्गलद्रव्य

२) नोकर्मतद्व्यतिरिक्त - जो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव और भाव जिस प्रकृति के उदयस्वरूप फल देने में कारणभूत हो वह द्रव्य क्षेत्र आदि उन उन प्रकृति के नोकर्म द्रव्यकर्म समझना। जैसे- ज्ञानावरण का नोकर्म वस्त्र है।

भावनिक्षेपके दो भेद — १) आगमभावकर्म २) नोआगमभावकर्म

अब आगमभावनिक्षेप कर्म को कहते हैं -

कम्मागमपरिजाणगजीवो कम्मागमम्मि उवजुत्तो।
भावागमकम्मोत्ति य तस्स य सण्णा हवे णियमा ।।६५।।

अन्वयार्थ - (कम्मागमपरिजाणग जीवो) कर्मविषयक आगम का जाननेवाला जो जीव **(कम्मागमम्मि)** वर्तमान में कर्मागम में **(उवजुत्तो)** उपयोग लगा रहा है **(तस्स)** उस जीव की **(णियमा)** नियम से **(भावागमकम्मोत्ति)** आगम भावकर्म **(सण्णा)** संज्ञा **(हवे)** है।

अब नोआगमभावनिक्षेप कर्म को कहते हैं -

णोआगमभाओ पुण कम्मफलं भुंजमाणगो जीवो।
इदि सामण्णं कम्मं चउव्विहं होदि णियमेण ।।६६।।

अन्वयार्थ -(पुण) पुनः **(कम्मफलं)** कर्मफल को **(भुंजमाणगो)** भोगनेवाला **(जीवो)** जीव **(णोआगमभावो)** नोआगमभावकर्म है **(इदि)** इस प्रकार **(सामण्णं कम्मं)** सामान्य कर्म **(णियमेण)** नियम से **(चउव्विहं)** चार प्रकार का **(होदि) है।**

विशेषार्थ - १) आगमभावकर्म - जो जीव कर्मस्वरूप के प्रतिपादक आगम का जाननेवाला है तथा वर्तमानकाल में उसी शास्त्र के चिन्तनरूप उपयोग से सहित है उस जीव को आगमभावकर्म कहते हैं।

२) नोआगमभावकर्म - कर्मफल को भोगनेवाला जीव नोआगमभावकर्म है। पुद्गल-विपाकी प्रकृतियों का नोआगमभावकर्म नहीं है।

अब मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृतियों में नामादि चार निक्षेप के भेदों को कहते हैं —

मूलुत्तरपयडीणं णामादी एवमेव णवरिं तु।
सगणामेण य णामं ठवणा दवियं हवे भावो ।।६७।।

अन्वयार्थ - (मूलुत्तरपयडीणं) मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृतियों के नामादि चार निक्षेप **(एवमेव)** सामान्य कर्म के समान है, **(णवरिं तु)** परन्तु विशेषता यह है कि **(सगणामेण)** अपने-अपने नामानुसार **(णामं ठवणा दवियं भावो)** नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव **(हवे)** होते हैं।

विशेषार्थ - सामान्यकर्म की तरह ८ मूलप्रकृति और १४८ उत्तरप्रकृतियों में भी नामादि चार निक्षेप घटित करना चाहिए। विशेषता यह है कि जिस प्रकृति का जो नाम है उसी के अनुसार नाम, स्थापना, द्रव्य और भावनिक्षेप होते हैं।

मूलुत्तरपयडीणं णामादि चउव्विहं हवे सुगमं।
वज्जित्ता णोकम्मं णोआगमभावकम्मं च ।।६८।।

अन्वयार्थ -(मूलुत्तरपयडीणं) मूल और उत्तरप्रकृतियों के **(णोकम्मं णोआगमभावकम्मं च)** तद्व्यतिरिक्त नोकर्म और नोआगमभावकर्म **(वज्जित्ता)** छोड़कर **(णामादि चउव्विहं)** नामादि चार प्रकार के निक्षेप को जानना **(सुगमं)** सुगम **(हवे)** है।

विशेषार्थ - पहले द्रव्यनिक्षेप के दो भेद - आगम और नोआगमरूप किये हैं। नोआगम के भी ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्तरूप तीन भेद किये हैं। तद्व्यतिरिक्त के दो भेद है - कर्म और नोकर्म । नोकर्मद्रव्य इस शब्द से नोकर्म तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्य समझना चाहिए। जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव जिस प्रकृति के उदयरूप फल देने में कारणभूत हो वह द्रव्यक्षेत्रादि उन उन प्रकृति के नोकर्म द्रव्यकर्म समझना।

निक्षेप की अपेक्षा कर्म के भेद

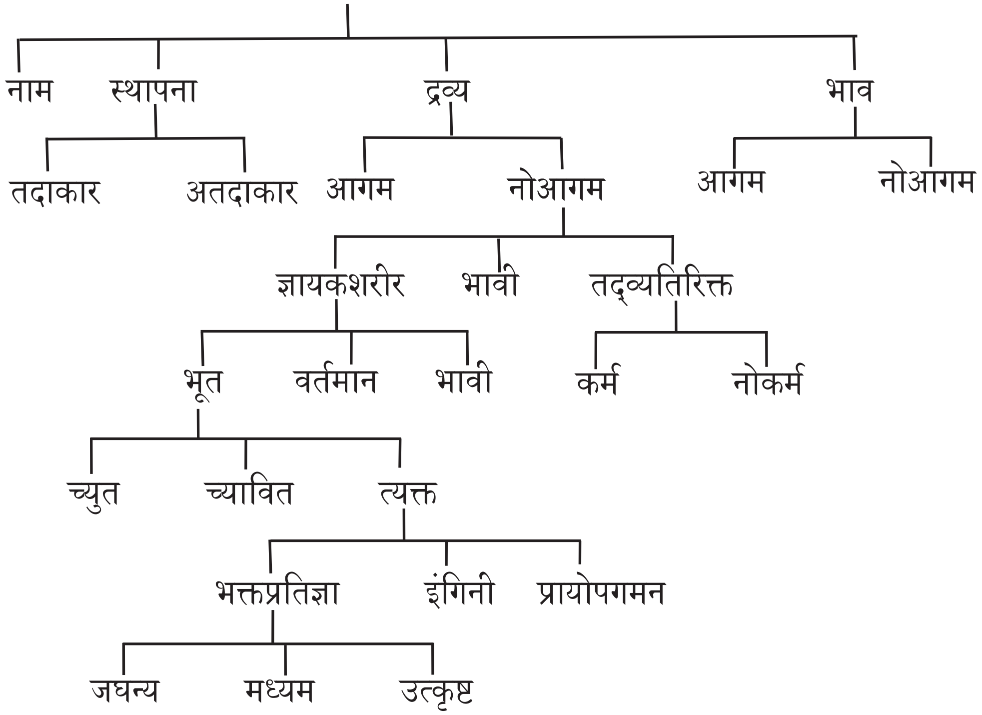

अब सर्वप्रथम मूलप्रकृतियों के नोकर्म कहते हैं—

पडपडिहारसिमज्झा आहारं देह उच्चणीचंगं।
भंडारी मूलाणं णोकम्मं दवियकम्मं तु ।।६९।।

अन्वयार्थ - (मूलाणं) ज्ञानावरणादि मूलप्रकृतियों के **(णोकम्मं दवियकम्मं तु)** नोकर्म द्रव्यकर्म क्रम से **(पडपडिहारसिमज्झा आहारं देह उच्चणीचंगं)** वस्त्र, प्रतिहार, तलवार, मदिरा, आहार, शरीर, ऊंचनीच शरीर **(भंडारी)** और भण्डारी ये आठ प्रकार हैं।

विशेषार्थ - ज्ञानावरण का नोकर्मद्रव्य वस्तु के चारों ओर लगा हुआ वस्त्र आदि है। जो वस्तु के ज्ञान को नहीं होने देता। दर्शनावरण का नोकर्मद्रव्य द्वारपर नियुक्त द्वारपाल है जो राजा के समान निजात्मरूप आत्मा का अवलोकन नहीं होने देता। वेदनीय कर्म का नोकर्म शहद लपेटी तलवार है जो वेदनीय कर्मोदय के लिए सुख दुःख का कारण है। मोहनीय कर्म का नोकर्म मद्य है जो जीव के सम्यग्दर्शनादि गुणों को घातता है। आयु का

नोकर्म चार प्रकार का आहार है जो शरीर के बल का कारण होने से शरीर में स्थिति का कारण है। नामकर्म का नोकर्म औदारिकादि शरीर है। गोत्रकर्म का नोकर्म द्रव्य ऊंचनीच शरीर है जो गोत्रकर्म के उदय के लिए ऊंचनीच कुल को प्रकट करता है। अन्तराय कर्म का नोकर्म द्रव्य भण्डारी है जो अन्तराय कर्म के लिए भोगउपभोगरूप वस्तु में विघ्न करता है।

अब उत्तरप्रकृतियों में सर्वप्रथम ज्ञानावरण के उत्तरभेदों के नोकर्म कहते हैं—

पडविसयपहुडिदव्वं मदिसुदवाघादकरणसंजुत्तं।
मदिसुदबोहाणं पुण णोकम्मं दवियकम्मं तु ।।७०।।

अन्वयार्थ -(मदिसुदवाघादकरणसंजुत्तं) मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में बाधा डालनेवाले (**पडविसयपहुडिदव्वं**) वस्त्र, इन्द्रियों के विषय इत्यादि द्रव्य **(मदिसुदबोहाणं)** मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरण के **(णोकम्मं दवियकम्मं तु)** नोकर्म द्रव्यकर्म है। वस्त्रादि मतिज्ञानावरण के और श्रुतज्ञानावरण के इन्द्रियविषय इत्यादि नोकर्म हैं।

ओहिमणपज्जवाणं पडिघादणिमित्तसंकिलेसयरं ।
जं बज्झट्ठं तं खलु णोकम्मं केवले णत्थि ।।७१।।

अन्वयार्थ -(ओहिमणपज्जवाणं) अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान का **(पडिघादणिमित्त संकिलेसयरं)** घात करने में निमित्त संक्लेशपरिणामों को करनेवाली (**जं बज्झट्ठं**) जो बाह्य वस्तु है (**तं खलु**) वह वास्तव में **(णोकम्मं)** अवधिज्ञान और मन:पर्यय ज्ञानावरण का नोकर्म द्रव्यकर्म हैं **(केवले)** केवलज्ञानावरण का **(णत्थि)** नोकर्म द्रव्यकर्म नहीं है। (केवलज्ञान क्षायिक है अत: उसको रोकनेवाली संक्लेशकारक कोई वस्तु नहीं है।)

दर्शनावरण की उत्तरप्रकृतियों के नोकर्म बताते हैं —

पंचण्हं णिद्दाणं माहिसदहिपहुडि होदि णोकम्मं।
वाघादकरपडादी चक्खुअचक्खूणणोकम्मं ।।७२।।

अन्वयार्थ - (पंचण्हं णिद्दाणं) पाँच निद्रारूप दर्शनावरण के **(णोकम्मं)** नोकर्म

(माहिसदहि -पहुडि) भैंस का दही आदि वस्तुएँ हैं। **(चक्खुअचक्खूण)** चक्षु और अचक्षुदर्शनावरण के **(णोकम्मं)** नोकर्म **(वाघादकरपडादी)** व्याघात डालनेवाले परदा आदि होते हैं।

ओहीकेवलदंसणणोकम्मं ताण णाणभंगोव्व।
सादेदरणोकम्मं इट्ठाणिट्ठण्णपाणादि ।।७३।।

अन्वयार्थ -(ओहीकेवलदंसणणोकम्मं) अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण का नोकर्म **(ताण णाणभंगोव्व)** उनके ज्ञान के समान मानना। **(सादेदरणोकम्मं इट्ठाणिट्ठण्णपाणादि)** सातावेदनीय का नोकर्म इष्ट अन्नपानादि और असातावेदनीय का नोकर्म अनिष्ट अन्नपानादि हैं।

मोहनीयकर्म की उत्तरप्रकृतियों के नोकर्म कहते हैं—

आयदणाणायदणं सम्मे मिच्छे य हवदि णोकम्मं ।
उभयं सम्मामिच्छे णोकम्मं होदि णियमेण ।।७४।।

अन्वयार्थ - (सम्मे) सम्यक्त्वप्रकृति के **(णोकम्मं)** नोकर्म **(आयदण)** जिनआयतन हैं **(य)** और **(मिच्छे)** मिथ्यात्वप्रकृति के नोकर्म **(अणायदणं)** अनायतन **(होदि)** हैं। **(सम्मामिच्छे)** सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति में **(णियमेण)** नियम से **(उभयं)** आयतन-अनायतन दोनों मिलकर ही **(णोकम्मं)** नोकर्म **(होदि)** हैं।

विशेषार्थ - जिनदेव, जिनमंदिर, जिनागम, शास्त्रज्ञ, सुतप और तपधारी ये छह आयतन हैं तथा कुदेव, कुदेवमन्दिर, मिथ्याशास्त्र, मिथ्याशास्त्रज्ञ, कुतप और कुतपधारी ये छह अनायतन हैं।

अणणोकम्मं मिच्छत्तायदणादी दु होदि सेसाणं।
सगसगजोग्गं सत्थं सहायपहुडी हवे णियमा।।७५।।

अन्वयार्थ - (अणणोकम्मं) अनन्तानुबन्धी के नोकर्म **(मिच्छत्तायदणादी)** मिथ्या आयतन अर्थात् अनायतन आदि **(होदि)** हैं। **(सेसाणं)** शेष कषायों के नोकर्म **(णियमा)** नियम से **(सगसगजोग्गं)** अपने-अपने योग्य **(सत्थं)** शास्त्र और **(सहायपहुडी)** सहायक विट्पुरुषादि **(हवे)** हैं।

थीपुंसंढसरीरं ताणं णोकम्म दव्वकम्मं तु।
वेलंबको सुपुत्तो हस्सरदीणं च णोकम्मं।।७६।।

अन्वयार्थ - (थीपुंसंढसरीरं) स्त्री का शरीर, पुरुष का शरीर, नपुंसक का शरीर **(ताणं)** उन उन वेदों का **(णोकम्म दव्वकम्मं)** नोकर्म द्रव्यकर्म है। **(हस्सरदीणं)** हास्य और रति का **(णोकम्मं)** नोकर्म क्रम से **(वेलंबको)** विदूषक और **(सुपुत्तो)** सुपुत्र है।

इट्ठाणिट्ठवियोगं जोगं अरदिस्स मुदसुपुत्तादी।
सोगस्स य सिंहादी णिंदिददव्वं च भयजुगले।।७७।।

अन्वयार्थ -(अरदिस्स) अरति का नोकर्म **(इट्ठाणिट्ठवियोगं जोगं)** इष्टवियोग और अनिष्टसंयोग है। **(सोगस्स)** शोक का नोकर्म **(मुदसुपुत्तादी)** सुपुत्रादि का मरण है। **(भयजुगुले)** भय और जुगुप्सा का नोकर्म क्रम से **(सिंहादी)** सिंह आदि **(च)** और **(णिंदिददव्वं)** निंदित (घृणायोग्य) वस्तु है।

णिरयाउस्सअणिट्ठाहारो सेसाणमिट्ठमण्णादी।
गदिणोकम्मं दव्वं चउग्गदीणं हवे खेत्तं।।७८।।

अन्वयार्थ -(णिरयाउस्स) नरकायु का नोकर्म **(अणिट्ठाहारो)** अनिष्ट आहार है। **(सेसाणं)** शेष तीन आयु का नोकर्म **(इट्ठमण्णादी)** इष्ट अन्नादि हैं। **(गदिणोकम्मं दव्वं)** सामान्य गतिनाम कर्म का नोकर्म द्रव्यकर्म **(चउग्गदीणं खेत्तं)** चारों गतियों का क्षेत्र **(हवे)** है।

णिरयादीण गदीणं णिरयादी खेत्तयं हवे णियमा।
जाईए णोकम्मं दव्विंदियपोग्गलं होदि।।७९।।

अन्वयार्थ -(णिरयादीण गदीणं) नरकादि चार गतियों का नोकर्म **(णियमा)** नियम से **(णिरयादी खेत्तयं)** नरकादि गतियों का अपना अपना क्षेत्र **(हवे)** है। **(जाईए णोकम्मं)** जातिकर्म का नोकर्म **(दव्विंदियपोग्गलं)** द्रव्येन्द्रियरूप पुद्गल की रचना **(होदि)** है।

एइंदियमादीणं सगसगदव्विंदियाणि णोकम्मं।
देहस्स य णोकम्मं देहुदयजदेहखंदाणि।।८०।।

अन्वयार्थ -(एइंदियमादीणं) एकेन्द्रियादि पाँच जाति के **(णोकम्मं)** नोकर्म **(सगसग-दव्विंदियाणि)** अपनी अपनी द्रव्येन्द्रियाँ हैं **(य)** और **(देहस्स णोकम्मं)** शरीर नामकर्म के नोकर्म **(देहुदयजदेहखंदाणि)** शरीर के उदय से उत्पन्न शरीररूप स्कन्ध हैं।

ओरालियवेगुव्विय आहारयतेजकम्मणोकम्मं।
ताणुदयजचउदेहा कम्मे विस्संचयं णियमा।।८१।।

अन्वयार्थ - (ओरालियवेगुव्विय आहारयतेजकम्मणोकम्मं) औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस शरीरनामकर्म के नोकर्म **(ताणुदयजचउदेहा)** उनके अपने अपने उदय से उत्पन्न चार शरीर हैं **(कम्मे)** कार्मणशरीर का नोकर्म **(णियमा)** नियम से **(विस्संचयं)** विस्रसोपचय (कर्मरूप होने योग्य कार्मण वर्गणा) हैं।

बंधणपहुडिसमण्णियसेसाणं देहमेव णोकम्मं।
णवरि विसेसं जाणे सगखेत्तं आणुपुव्वीणं।।८२।।

अन्वयार्थ -(बंधणपहुडि) बंधन नामकर्म से लेकर **(समण्णियसेसाणं)** पुद्गलविपाकी से सहित शेष जीवविपाकी प्रकृतियों का **(णोकम्मं)** नोकर्म **(देहमेव)** शरीर ही है। (**णवरि विसेसं**) केवल इतना विशेष **(जाणे)** जानना चाहिए कि **(आणुपुव्वीणं)** आनुपूर्वी नामकर्मों का नोकर्म **(सगखेत्तं)** अपना अपना क्षेत्र ही है।

थिरजुम्मस्स थिराथिररसरुहिरादीणि सुहजुगस्स सुहं।
असुहं देहावयवं सरपरिणदपोग्गलाणि सरे ।।८३।।

अन्वयार्थ -(थिरजुम्मस्स) स्थिर-अस्थिर नामकर्म का नोकर्म क्रम से **(थिराथिररसरु-हिरादीणि)** स्थिर रसरूधिरादि और अस्थिर रसरूधिरादि हैं। **(सुहजुगस्स)** शुभयुगल के नोकर्म **(सुहं असुहं देहावयवं)** शुभ अशुभ शरीर के अवयव हैं। **(सरे)** स्वर में नोकर्म (**सरपरिणदपोग्गलाणि**) स्वररूप से परिणत पुद्गल हैं।

उच्चस्सुच्चं देहं णीचं णीचस्स होदि णोकम्मं।

दाणादिचउक्काणं विग्घगणगपुरिसपहुदी हु।।८४।।

अन्वयार्थ - (उच्चस्सुच्चं देहं) उच्च गोत्र का उच्च शरीर और **(णीचस्स)** नीच गोत्र का **(णीचं)** नीच शरीर **(णोकम्मं)** नोकर्म **(होदि)** है। **(दाणादिचउक्काणं)** दानान्तरायादि चार अन्तरायों का नोकर्म (**विग्घगणगपुरिसपहुदी हु**) विघ्न करनेवाले पर्वत, नदी, पुरुष वगैरे हैं।

विरियस्स य णोकम्मं रुक्खाहारादिबलहरं दव्वं।

इदि उत्तरपयडीणं णोकम्मं दव्वकम्मं तु।।८५।।

अन्वयार्थ - (विरियस्स) वीर्यान्तिराय का **(णोकम्मं)** नोकर्म **(रुक्खाहारादिबलहरं)** रुखा खानपान आदि बलहारी **(दव्वं)** द्रव्य है। **(इदि)** इस प्रकार **(उत्तरपयडीणं)** उत्तरप्रकृतियों का **(णोकम्मं दव्वकम्मं तु)** नोकर्म द्रव्यकर्म कहा।

अब नोआगमभावकर्म कहते हैं—

णोआगमभावो पुण सगसगकम्मफलसंजुदो जीवो।

पोग्गलविवाइयाणं णत्थि खु णोआगमो भावो।।८६।।

अन्वयार्थ -(पुण) पुन: **(सगसगकम्मफलसंजुदो जीवो)** अपने-अपने कर्मफल को भोगता हुआ जीव उन उन प्रकृतियों का **(णोआगमभावो)** नोआगमभाव कर्म है। **(खु)** निश्चय से **(पोग्गलविवाइयाणं)** पुद्‌गलविपाकी प्रकृतियों का **(णोआगमो भावो)** नोआगम भावकर्म **(णत्थि)** नहीं है।

प्रकृति के नाम	नोकर्म
१) ज्ञानावरण	वस्तुपर ढका हुआ वस्त्र
२) दर्शनावरण	द्वारपाल
३) वेदनीय	शहद लपेटी तलवार
४) मोहनीय	मदिरा

प्रकृति के नाम	नोकर्म
५) आयु	चार प्रकार का आहार
६) नाम	औदारिकादि शरीर
७) गोत्र	उच्चनीच शरीर
८) अंतराय	भण्डारी

ज्ञानावरण के भेद	**नोकर्म**
मतिज्ञानावरण	मतिज्ञान को ढकनेवाले वस्त्रादि
श्रुतज्ञानावरण	श्रुतज्ञान को रोकनेवाले इंद्रिय विषय
अवधिज्ञानावरण	संक्लेशकर बाह्यवस्तु
मन:पर्ययज्ञानावरण	संक्लेशकर बाह्यवस्तु
केवलज्ञानावरण	नोकर्म नहीं है क्षायिक होने से
दर्शनावरण के भेद	**नोकर्म**
पांच निद्रा	भैंस का दही, लहसूण इ.
चक्षुर्दर्शनावरण	व्याघात कर वस्त्रादि
अचक्षुर्दर्शनावरण	व्याघात कर वस्त्रादि
अवधिदर्शनावरण	संक्लेश कारक बाह्यवस्तु
केवलदर्शनावरण	नोकर्म नहीं है
मोहनीय के भेद	**नोकर्म**
सम्यक्त्वप्रकृति	६ जिन आयतन
मिथ्यात्व	६ अनायतन
सम्यग्मिथ्यात्व	आयतन-अनायतन मिश्र
अनन्तानुबंधीकषाय	६ अनायतन
अप्रत्याख्यानावरण कषाय	देशचारित्र के घातक काव्य नाटक आदि शास्त्र
प्रत्याख्यानावरण कषाय	सकलचारित्र के घातक काव्य नाटक आदि शास्त्र

संज्वलनकषाय	यथाख्यातचारित्र के घातक काव्य नाटक आदि शास्त्र
स्त्रीवेद	स्त्री का शरीर
पुरुषवेद	पुरुष का शरीर
नपुंसकवेद	नपुंसक का शरीर
हास्य नोकषाय	हंसी, मजाक करनेवाले विदूषक, जोकर इ.
रति	गुणवान पुत्र
अरति	इष्टवियोग, अनिष्ट संयोग
शोक	सुपुत्रादि का मरण
भय	सिंहादि भयंकर वस्तुएँ
जुगुप्सा	निंदित वस्तु
आयु के भेद	**नोकर्म**
नरकायु	अनिष्ट आहार (विषरूप माटी)
शेष आयु	इष्ट अन्नपानादि
नाम के भेद	**नोकर्म**
चार गति	अपना अपना क्षेत्र (योनिस्थान)
जाति	द्रव्येन्द्रियरूप पुद्‌गल की रचना
एकेन्द्रियादि पाँच जाति	अपनी अपनी द्रव्येन्द्रियाँ
पाँच शरीर	
औदारिक शरीर	औदारिकशरीरनामकर्म के उदय से प्राप्त हुई शरीरवर्गणा
वैक्रियिक शरीर	वैक्रियिकशरीरनामकर्म के उदय से प्राप्त हुई शरीरवर्गणा
आहारक शरीर	आहारकशरीरनामकर्म के उदय से प्राप्त हुई शरीरवर्गणा
तैजसशरीर	तैजसशरीरनामकर्म के उदय से प्राप्त हुई शरीरवर्गणा
कार्मणशरीर	विस्रसोपचय कर्मरूप होने योग्य कार्मण वर्गणा
बंधनादि शेष प्रकृति	शरीर
४ आनुपूर्वी	अपना अपना विग्रहगतिरूप क्षेत्र

स्थिर	अपने अपने स्थानपर स्थिर रहनेवाला रस-रूधिरादि
अस्थिर	चलायमान (परिणमनरूप) रस रूधिरादि
शुभ	शरीर के सुन्दर अवयव
अशुभ	शरीर के अशुभ अवयव
सुस्वर	सुस्वररूप से परिणमित भाषावर्गणारूप पुद्‌गलस्कंध
दुस्वर	दुस्वररूप से परिणमित भाषावर्गणारूप पुद्‌गलस्कंध
गोत्र के भेद	**नोकर्म**
उच्चगोत्र	उत्तमकुल में उत्पन्न हुआ शरीर
नीचगोत्र	नीचकुल में उत्पन्न हुआ शरीर
अंतराय के भेद	**नोकर्म**
दानादिचतुष्क	दानादि में विघ्न करनेवाले पर्वत, नदी, पुरुष, स्त्री आदि
वीर्यांतराय	रुक्ष आहारादि बलनाशक पदार्थ

। प्रकृतिसमुत्कीर्तन नामक प्रथम अधिकार संपूर्ण हुआ।

२ बन्धोदयसत्त्व अधिकार

आचार्यदेव मंगलाचरणपूर्वक बन्धउदय-सत्त्व अधिकार का कथन करने की प्रतिज्ञा करते हैं -

णमिऊण णेमिचंदं असहायपरक्कमं महावीरं।
बंधुदयसत्तजुत्तं ओघादेसे थवं वोच्छं ।।८७।।

अन्वयार्थ -(असहायपरक्कमं) जिनका पराक्रम दूसरों की सहायता से रहित है और **(महावीरं)** जो महावीर हैं ऐसे **(णेमिचंदं)** नेमिनाथ तीर्थंकर को **(णमिऊण)** नमस्कार करके **(ओघादेसे)** गुणस्थान और मार्गणा में (**बंधुदयसत्तजुत्तं**) बन्धउदयसत्त्व से युक्त **(थवं)** स्तवरूप ग्रन्थ को **(वोच्छं)** कहूंगा।

विशेषार्थ - असहाय पराक्रमी महान् वीर ऐसे नेमिनाथ तीर्थंकर को नमस्कार करके गुणस्थान और मार्गणाओं में बन्ध-उदय-सत्त्व से युक्त स्तव रूप ग्रन्थ को कहूँगा।

कर्मरूपी शत्रु की सेनापर विजय प्राप्त करने में अन्य सहायता की अपेक्षा न करके अभेदरत्नत्रयात्मक आत्मस्वरूप की भावनारूप स्वसामर्थ्य ही पराक्रम है।

सयलंगेक्कंगेक्कंगहियार सवित्थरं ससंखेवं।
वण्णणसत्थं थयथुइ धम्मकहा होइ णियमेण।।८८।।

अन्वयार्थ -(सयलंगेक्कंगेक्कंगहियार) सकल अङ्गका, एक अङ्ग का और एक अङ्ग के अधिकार का **(सवित्थरं)** विस्तारसहित या **(ससंखेवं)** संक्षेपसहित (**वण्णणसत्थं**) वर्णन करनेवाला शास्त्र क्रम से **(णियमेण)** नियम से (**थयथुइ धम्मकहा**) स्तव, स्तुति, धर्मकथा कहा गया है।

विशेषार्थ - स्तव, स्तुति, वस्तु का लक्षण - जिसमें सकल अङ्ग का वर्णन विस्तार या संक्षेप से किया गया है उस शास्त्र को स्तव,जिसमें एक अङ्ग का वर्णन विस्तार या संक्षेप से किया गया है उस शास्त्र को स्तुति, जिसमें एक अङ्ग के अधिकार का वर्णन विस्तार या संक्षेप से किया गया है उस शास्त्र को धर्मकथा अथवा वस्तु कहते हैं। इसमें बंध,

उदय सत्त्वरूप अर्थ का कथन समस्त अंगसहित यथायोग्य विस्तार और संक्षेप से कहा जायेगा अत: यह शास्त्र स्तव नाम से कहा गया है।

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधोत्ति चदुविहो बंधो।
उक्कस्समणुक्कस्सं जहण्णमजहण्णग त्ति पुधं ।।८९।।

अन्वयार्थ -(पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधोत्ति) प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेशबंध इस प्रकार **(बंधो)** बंध **(चदुविहो)** चार प्रकार का है। उन चारों के भी **(पुधं)** जुदे जुदे **(उक्कस्समणुक्कस्सं जहण्णमजहण्णग त्ति)** उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य ऐसे चार भेद हैं।

विशेषार्थ - बन्ध ४ प्रकार का है — १) प्रकृति २) स्थिति ३) अनुभाग ४) प्रदेश

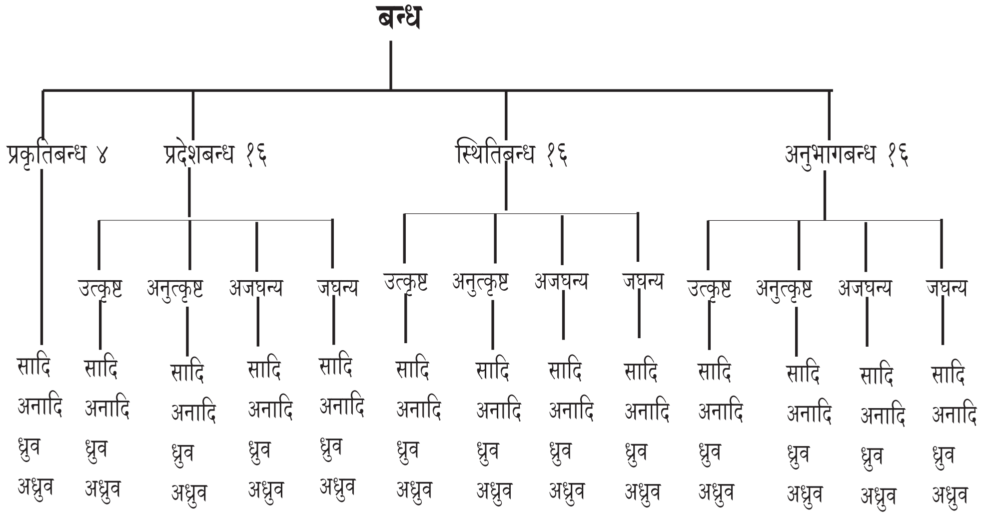

१) प्रकृतिबन्ध - मूलोत्तर कर्मप्रकृतियों का जीव के साथ संश्लेषसंबंध होना प्रकृतिबन्ध है।
२) स्थितिबन्ध - मूलोत्तर कर्मप्रकृतियों का जीव के साथ जितने कालपर्यन्त संबंध रहता है वह स्थितिबन्ध है।
३) अनुभागबन्ध - कर्मों की फलदानशक्ति अनुभागबन्ध है।
४) प्रदेशबन्ध - कर्मरूप हुए पुद्गलपरमाणुओं के प्रमाण को प्रदेशबन्ध कहते हैं।

प्रकृतिबन्ध के उत्कृष्टादि बन्धभेद नहीं हैं। शेष के उत्कृष्टादि ४ भेद हैं।

उनकी संदृष्टि स्थितिबन्ध 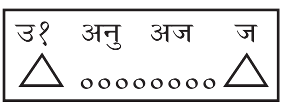

अनुभाग 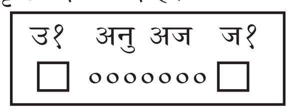

प्रदेशबन्ध

उ	अनु	अज	ज
स ३२	००	००	स १

उत्कृष्ट समयप्रबद्ध = स ३२ जघन्यसमयप्रबद्ध = स

अब उत्कृष्टादि के भेदों को कहते हैं—

सादिअणादि धुवअद्धुवो य बंधो दु जेट्ठमादीसु।
णाणेगं जीवं पडि ओघादेसे जहाजोग्गं ।।९०।।

अन्वयार्थ - (जेट्ठमादीसु) उत्कृष्टादि बंधों में **(सादिअणादि धुवअद्धुवो य)** सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव **(बंधो)** बंध **(णाणेगं जीवं पडि)** नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा **(ओघादेसे)** ओघ अर्थात् गुणस्थान और आदेश अर्थात् मार्गणा स्थान में **(जहाजोग्गं)** यथायोग्य होते हैं।

विशेषार्थ - उत्कृष्ट - सबसे अधिक बन्ध को उत्कृष्टबन्ध कहते हैं।

अनुत्कृष्ट - उत्कृष्ट से हीनबन्ध को अनुत्कृष्टबन्ध कहते हैं। उत्कृष्ट को छोडकर सब अनुत्कृष्ट हैं।

जघन्य - सबसे कम बन्ध को जघन्यबन्ध कहते हैं।

अजघन्य - जघन्य से अधिकबन्ध को अजघन्यबन्ध कहते हैं। जघन्य को छोडकर सब अजघन्य हैं। जैसे अंकसंदृष्टीसे १ से १०० संख्या में -

१०० - उत्कृष्ट, १ से ९९ - अनुत्कृष्ट, १ - जघन्य, २ से १०० - अजघन्य

सादिबंध - विवक्षित बंध का बीच में अभाव होकर पुन: जो बन्ध होता है वह सादिबंध है।

अनादिबंध - अनादिकाल से जिसका अभाव नहीं हुआ वह अनादिबन्ध है।

ध्रुवबंध - जिसका निरंतर बंध होता है वह ध्रुवबन्ध है। जिस बन्ध का अभाव नहीं होगा अभव्य की अपेक्षा से ध्रुव है।

अध्रुवबन्ध - जिस बंध का अभाव होता है वह अध्रुवबन्ध है।

ठिदिअणुभागपदेसा गुणपडिवण्णेसु जेसिमुक्कस्सा।
तेसिमणुक्कस्सो चउव्विहोऽजहण्णे वि एमेव।।९१।।

अन्वयार्थ -(जेसिमुक्कस्सा) जिन कर्मों का उत्कृष्ट **(ठिदिअणुभागपदेसा)** स्थितिबन्ध, अनुभागबंध और प्रदेशबन्ध **(गुणपडिवण्णेसु)** गुणप्रतिपन्न अर्थात् ऊपर-ऊपर के गुणस्थानों में होता है **(तेसिमणुक्कस्सो)** उन कर्मों का अनुत्कृष्ट स्थिति, अनुभाग और प्रदेशबन्ध **(चउव्विहो)** चार प्रकार का अर्थात् सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुव भेद से चार प्रकार का होता है तथा **(अजहण्णेवि)** अजघन्य में भी **(एमेव)** इसी प्रकार चार भेद होते हैं। →

विशेषार्थ - गुणप्रतिपन्न अर्थात् मिथ्यादृष्टि (करणपरिणामवर्ती), सासादन आदि ऊपर-ऊपर के गुणस्थानवर्ती जीवों में जिन कर्मों का स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध, प्रदेशबन्ध उत्कृष्ट होता है उन्ही कर्मों का अनुत्कृष्टबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव के भेद से चार प्रकार का होता है।

उसीप्रकार गुणप्रतिपन्न जीवों में जिन कर्मों का स्थिति, अनुभाग, प्रदेशबन्ध जघन्य होता है उन्ही कर्मों का अजघन्यबन्ध सादि आदि के भेद से चार प्रकार का होता है।

अनुत्कृष्ट बन्ध का उदाहरण -

१) उपशमश्रेणीपर चढनेवाला जीव सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में उच्चगोत्र का उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध करके उपशान्तकषाय गुणस्थान में गया। पुन: उतरनेपर दसवें गुणस्थान में आकर उसी जीव ने उसका अनुत्कृष्ट बन्ध किया तब वह बन्ध सादि होता है क्याकि पहले इस बन्ध का अभाव हुआ था पुन: बन्ध होने लगा।

२) सूक्ष्मसांपरायगुणस्थान से अधस्तन गुणस्थानवर्ती जीवों के गोत्र का बन्ध अनादि है।

३) अभव्यजीवों के ध्रुवबन्ध है तथा

४) उपशम श्रेणीवालों के अनुत्कृष्ट बन्ध का अभाव होकर उत्कृष्ट बन्ध होता है वह अध्रुवबन्ध है।

अजघन्यबन्ध का उदाहरण -

१) सप्तम नरक का मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख हुआ अनिवृत्तिकरण के अन्तिम समय में नीचगोत्र का जघन्य अनुभागबन्ध करके सम्यग्दृष्टि होकर पुन: मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यादृष्टि हुआ तब उसने नीचगोत्र का अजघन्य अनुभाग बन्ध किया इसप्रकार वहाँ पर गोत्र का अजघन्य अनुभागबन्ध सादिबन्ध है।

२)मिथ्यात्व के चरमसमय से पूर्व गोत्र का अजघन्य अनुभागबन्ध अनादि है।

३) अभव्यजीव के गोत्र का अजघन्य अनुभागबन्ध ध्रुव है।

४) अजघन्य को छोड़कर जघन्य को प्राप्त हुआ वह बन्ध अध्रुव है।

ऊपर उदाहरण में उच्चगोत्र और नीचगोत्र की अपेक्षा चार प्रकार का बन्ध घटित किया किन्तु यह सामान्य गोत्रकर्म की अपेक्षा जानना। उच्च और नीचगोत्र प्रतिपक्षी होने से इनका बन्ध निरन्तर नहीं है। आगे उनका दो ही प्रकार का बन्ध कहेंगे अत: यहाँ मूलगोत्रप्रकृति की अपेक्षा चार प्रकार का बन्ध समझना। सामान्य गोत्र का बन्ध निरन्तर है।

अब गुणस्थानों में प्रकृतिबन्ध का नियम कहते हैं—

सम्मेव तित्थबंधो आहारदुगं पमादरहिदेसु।
मिस्सूणे आउस्स य मिच्छादिसु सेसबंधो दु।।९२।।

अन्वयार्थ - (तित्थबंधो) तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध **(सम्मेव)** सम्यक्त्व अवस्था में ही होता है। **(आहारदुगं)** आहारकद्विक का बन्ध **(पमादरहिदेसु)** अप्रमत्त गुणस्थानों में होता है। **(आउस्स)** आयु कर्म का बन्ध **(मिस्सूणे)** मिश्र गुणस्थान के बिना अन्य गुणस्थानों में अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थान से अप्रमत्तगुणस्थान तक होता है। **(सेसबंधो दु)** शेष प्रकृतियों का बन्ध **(मिच्छादिसु)** मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में (अपनी अपनी बन्धव्युच्छित्तिपर्यन्त) जानना।

विशेषार्थ - गुणस्थानों में प्रकृतिबन्ध का नियम -

१) तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध ४ थे गुणस्थान से ८ वें के छट्ठे भाग पर्यन्त सम्यग्दृष्टियों में ही होता है।

२) आहारक, आहारक अंगोपांग का बन्ध ७ वें से ८ वें के छठे भागपर्यन्त प्रमादरहितों में ही होता है।

३) आयु का बन्ध मिश्र गुणस्थान को छोड़कर मिथ्यात्व गुणस्थान से ७ वें गुणस्थानतक होता है।

४) निवृत्ति अपर्याप्त अवस्था को प्राप्त मिश्रकाययोग में भी आयु का बन्ध नहीं होता।

तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध के विषय में विशेष नियम कहते हैं —

पढमुवसमिये सम्मे सेसतिये अविरदादिचत्तारि।
तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते।।९३।।

अन्वयार्थ - (पढमुवसमिये सम्मे) प्रथमोपशम सम्यक्त्व में तथा **(सेसतिय)** शेष तीन द्वितीयोपशम सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व में **(अविरदादि-चत्तारि)** असंयत गुणस्थान से लेकर अप्रमत्तपर्यन्त चार गुणस्थानवर्ती **(णरा)** मनुष्य ही **(केवलिदुगंत)** केवली अथवा श्रुतकेवली के पादमूल में **(तित्थयरबंधपारंभया)** तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ करते हैं।

विशेषार्थ - प्रथमोपशमसम्यक्त्व में तथा द्वितीयोपशमसम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्व में असंयत से अप्रमत्तगुणस्थान पर्यन्त मनुष्य ही तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध का प्रारम्भ केवली अथवा श्रुतकेवली के पादमूल में करते हैं, क्योंकि उस प्रकार की परिणामविशुद्धि अन्यत्र नहीं हो सकती है।

प्रथमोपशमसम्यक्त्व का काल अन्तर्मुहूर्त होने से उसमें तीर्थंकर का बन्ध नहीं हो सकता, ऐसा किन्ही आचार्यों का मत है। तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध तिर्यञ्चगति के बिना शेष तीन गतियों में होता है।

तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध का उत्कृष्टकाल =

३३ सागर + {दो पूर्वकोटि - (आठ वर्ष + अन्तर्मुहूर्त + वर्षपृथक्त्व)}

प्रथम मनुष्यभव में आठ वर्ष होने के बाद सम्यग्दर्शन प्राप्त करके तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध प्रारम्भ किया शेष पूर्वकोटिवर्ष की आयुपर्यन्त संयम का पालन करके सर्वार्थसिद्धि में गया वहाँ से च्युत होकर पूर्वकोटी आयुवाला मनुष्य हुआ। आयु समाप्त होने में वर्षपृथक्त्व काल शेष रहा तब क्षपकश्रेणी मांडकर केवली हुआ। उस जीव का उपर्युक्त उत्कृष्टकाल पाया जाता है। तीर्थंकर केवली कम से कम वर्षपृथक्त्व काल तक तीर्थंकर अवस्था में रहते हैं तथा विहार आदि करते हैं और तीर्थंकर प्रकृति की उदय अवस्था में तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध नहीं होता। अतः वर्षपृथक्त्व काल कम किया।[1]

---

१. धवल १२ /४९४, धवल ७/५७

अब गुणस्थानों में बन्धव्युच्छित्ति कहते हैं—

सोलस पणवीस णभं दस चउ छक्केक्क बंधवोच्छिण्णा।

दुग तीस चदुरपुव्वे पण सोलस जोगिणो एक्को।।९४।।

अन्वयार्थ - मिथ्यात्व से अप्रमत्तगुणस्थान पर्यन्त क्रम से **(सोलस पणवीस णभं दस चउ छक्केक्क बंधवोच्छिण्णा)** सोलह, पच्चीस, शून्य, दस, चार, छह और एक प्रकृति बंध से व्युच्छिन्न हो जाती हैं। **(अपुव्वे)** अपूर्वकरण गुणस्थान में **(दुग तीस चदुर्)** दो, तीस और चार प्रकृति बंध से व्युच्छिन्न होती हैं। अनिवृत्तिकरण में **(पण)** पाँच, दसवें में **(सोलस)** सोलह और **(जोगिणो एक्को)** सयोगकेवली के एक प्रकृति की बंधव्युच्छित्ति होती है।

अब सोलह आदि प्रकृतियों को आठ गाथाओं से कहते हैं—

मिच्छत्तहुंडसंढासंपत्तेयक्खथावरादावं।

सुहुमतियं वियलिंदी णिरयदुणिरयाउगं मिच्छे ।।९५।।

अन्वयार्थ - **(मिच्छत्तहुंडसंढासंपत्तेयक्खथावरादावं)** मिथ्यात्व, हुंडकसंस्थान, नपुंसकवेद, असंप्राप्त सृपाटिका संहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आताप **(सुहुमतियं)** सूक्ष्मत्रिक अर्थात् सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण **(वियलिंदी)** विकलेन्द्रिय अर्थात् द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय **(णिरयदुणिरयाउगं)** नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, ये १६ प्रकृतियाँ **(मिच्छे)** मिथ्यात्व गुणस्थान में व्युच्छिन्न होती हैं।

बिदियगुणे अणथीणतिदुभगतिसंठाणसंहदिचउक्कं।

दुग्गमणित्थीणीचं तिरियदुगुज्जोवतिरिआऊ।।९६।।

अन्वयार्थ - **(बिदियगुणे)** द्वितीय गुणस्थान में **(अण)** अनंतानुबंधी ४ कषाय, **(थीणति)** स्त्यानत्रिक अर्थात् स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला **(दुभगति)** दुर्भगत्रिक अर्थात् दुर्भग, दुस्वर, अनादेय **(संठाणसंहदिचउक्कं)** बीच के ४ संस्थान, ४ संहनन **(दुग्गमण)** अप्रशस्तविहायोगति **(इत्थी)** स्त्रीवेद **(णीचं)** नीचगोत्र **(तिरियदुग)** तिर्यंचद्विक अर्थात् तिर्यंचगति तिर्यंचगत्यानुपूर्वी **(उज्जोव)** उद्योत और **(तिरियाऊ)** तिर्यंचायु, ये २५ प्रकृतियाँ बंध से व्युच्छिन्न होती हैं।

अयदे बिदियकसाया वज्जं ओरालमणुदुमणुवाऊ।

देसे तदियकसाया णियमेणिह बंधबोच्छिण्णा।।९७।।

अन्वयार्थ - (अयदे) असंयत गुणस्थान में (**बिदियकसाया**) द्वितीय अप्रत्याख्यानावरण ४ कषाय, **(वज्जं)** वज्रर्षभनाराचसंहनन, **(ओरालमणुदुमणुवाऊ)** औदारिकद्विक, मनुष्यद्विक, (औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी) और मनुष्यायु ये दस प्रकृतियाँ बंध से व्युच्छिन्न होती हैं। **(देसे)** देशसंयतगुणस्थान में **(तदियकसाया)** तृतीय कषाय अर्थात् प्रत्याख्यानावरणकषाय **(णियमेण)** नियम से **(इह)** यहाँपर (**बंधबोच्छिण्णा**) बंध से व्युच्छिन्न होती है।

छट्ठे अथिरं असुहं असादमजसं च अरदिसोगं च।

अपमत्ते देवाऊ णिट्ठवणं चेव अत्थित्ति।।९८।।

अन्वयार्थ -(छट्ठे) छठे गुणस्थान में **(अथिरं असुहं असादमजसं च अरदिसोगं च)** अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयश, अरति और शोक ये ६ प्रकृतियाँ व्युच्छिन्न होती हैं। **(अपमत्ते देवाऊ)** अप्रमत्तगुणस्थान में देवायु की बंधव्युच्छित्ति होती है। **(णिट्ठवणं चेव अत्थित्ति)** सातवें गुणस्थान में आयु के बन्ध का निष्ठापन ही होता है अर्थात् वहाँ आयुबन्ध का प्रारंभ नहीं होता।

मरणूणम्मि णियट्टीपढमे णिद्दा तहेव पयला य।

छट्ठे भागे तित्थं णिमिणं सग्गमणपंचिंदी।।९९।।

तेजदुहारदुसमचउसुरवण्णगुरुगचउक्कतसणवयं।

चरिमे हस्सं च रदी भयं जुगुच्छा य वोच्छिण्णा।।१००।।

अन्वयार्थ -(मरणूणम्मि णियट्टीपढमे) अपूर्वकरण के मरणरहित प्रथम भाग में (**णिद्दा तहेव पयला य**) निद्रा और प्रचला की बंधव्युच्छित्ति होती है। **(छट्ठे भागे)** छठे भाग में **(तित्थं)** तीर्थंकर **(णिमिणं)** निर्माण (**सग्गमणपंचिंदी**) प्रशस्त विहायोगति, पंचेन्द्रिय (**तेजदुहारदुसम- चउसुरवण्णगुरुगचउक्कतसणवयं**) तैजस, कार्मण, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, समचतुरस्रसंस्थान, देवचतुष्क अर्थात् देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क-अर्थात् अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास त्रसनवक अर्थात् त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय ये तीस प्रकृतियाँ बंध से व्युच्छिन्न होती हैं। **(चरमे)** अंतिम भाग में **(हस्सं रदी भयं च जुगुच्छा)** हास्य, रति, भय और जुगुप्सा ये ४ प्रकृतियाँ **(बंधवोच्छिण्णा)** बंध से व्युच्छिन्न होती हैं।

पुरिसं चदु संजलणं कमेण अणियट्टि पंचभागेसु।
पढमं विग्घं दंसणचउ जस उच्चं च सुहुमंते।।१०१।।

अन्वयार्थ -(अणियट्टि पंचभागेसु) अनिवृत्तिकरण के पाँच भागों में **(कमेण)** क्रम से **(पुरिसं)** पुरुषवेद और **(चदु संजलणं)** संज्वलन चार कषाय बंध से व्युच्छिन्न होते हैं। **(सुहुमंते)** सूक्ष्मसांपराय के अंत में **(पढमं)** प्रथम अर्थात् पाँच ज्ञानावरण, **(विग्घं)** पाँच अंतराय, **(दंसणचउ)** चार दर्शनावरण, **(जस)** यशस्कीर्ति **(च)** और **(उच्चं)** उच्च गोत्र ये सोलह प्रकृतियाँ व्युच्छिन्न होती हैं।

उवसंतखीणमोहे जोगिम्मि य समइयट्ठिदी सादं।
णायव्वो पयडीणं बंधस्संतो अणंतो य ।।१०२।।

अन्वयार्थ - (उवसंतखीणमोहे) उपशांतमोह, क्षीणमोह **(य)** और **(जोगिम्मि)** सयोग-केवली में **(समइयट्ठिदी)** एक समय की स्थितिवाला **(सादं)** सातावेदनीय बंधता है। इस प्रकार **(पयडीणं बंधस्संतो)** प्रकृतियों के बन्ध का अन्त अर्थात् बन्ध व्युच्छित्ति, **(अणंतो)** बन्ध का अनन्त अर्थात् बन्ध का सद्भाव तथा **(य)** च शब्द से अबन्ध **(णायव्वो)** जानना चाहिये।

अब बन्ध-अबन्धरूप प्रकृतियों को दो गाथाओं से कहते हैं—

सत्तरसेक्कग्गसयंचउसत्तत्तरि सगट्ठि तेवट्ठि।
बंधा णवट्ठवण्णा दुवीस सत्तारसेक्कोघे ।।१०३।।

अन्वयार्थ - मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में क्रम से **(सत्तरसेक्कग्गसयं)** एकसौ सतरह, एकसौ एक **(चउसत्तत्तरि)** चौहत्तर, सतहत्तर **(सगट्ठि)** सडसठ **(तेवट्ठि)** त्रेसठ **(णवट्ठवण्णा)** उनसठ, अठावन **(दुवीस)** बाईस **(सत्तारस)** सतरह **(एक्कोघे)** एक-एक-एक प्रकृतियाँ बन्धरूप हैं।

तिय उणवीसं छत्तियतालं तेवण्ण सत्तवण्णं च।
इगिदुगसट्ठीबिरहिय तियसयउणवीससयत्ति विससयं।१०४।।

अन्वयार्थ -मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में क्रम से **(तिय)** तीन, **(उणवीसं)** उन्नीस, **(छत्तालं)** छियालीस, **(तियतालं)** तेतालीस, **(तेवण्ण)** तिरपन, **(सत्तवण्णं)** सत्तावन, **(इगिदुगसट्ठी)** इकसठ, बासठ **(विरहिय सय)** दोरहित सौ अर्थात् अठानवे **(तियसय उणवीससय)** एक सौ तीन,एक सौ उन्नीस **(वीससयं)** एकसौबीस अबन्धरूप प्रकृतियाँ हैं।

गुणस्थानों में बन्ध-अबन्ध-बन्धव्युच्छित्ति बन्धयोग्य १२०

गुणस्थान	अबन्ध का विवरण	अबन्ध	बन्ध	बंध व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१.मिथ्या-दृष्टि	३ = तीर्थंकर, आहारकद्विक	३	११७	१६	मिथ्यात्व, हुंडसंस्थान, नपुं.वेद, असंप्राप्ता संहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर,आतप,सूक्ष्म,अपर्याप्त, साधारण, द्वी,त्री,च., नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी,नरकायु
२.सासादन	३+१६ =	१९	१०१	२५	अनन्तानुबन्धिचतुष्टय, स्त्यानत्रिक,दुर्भग,दुस्वर,अनादेय, बीचके ४ संस्थान, बीच के ४ संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी,तिर्यगायु,उद्योत
३. मिश्र	१९+२५+२ = (मनुष्यायु,देवायु)	४६	७४	०	
४.असंयत	४६-३(तीर्थंकर मनुष्यायु,देवायु)	४३	७७	१०	अप्रत्याख्यान ४,वज्रवृषभ-नाराच संहनन, औदारिकद्विक, मनुष्यद्विक,मनुष्यायु
५.देशसंयत	४३+१० =	५३	६७	४	प्रत्याख्यान ४ कषाय
६.प्रमत्त-संयत	५३+४ =	५७	६३	६	अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयश:कीर्ति, अरति, शोक
७.अप्रमत्त-संयत	५७ +६-२ (आहारक द्विक)	६१	५९	१	देवायु

गुणस्थान	अबन्ध का विवरण	अबंध	बन्ध	बन्ध व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
८.अपूर्वकरण					
प्रथमभाग	६१+१ =	६२	५८	२	निद्रा प्रचला
छठा भाग		६४	५६	३०	तीर्थंकर,निर्माण, प्रशस्त विहायोगति,पंचेन्द्रिय,तैजसद्विक, आहारकद्विक,समचतुरस्त्र, देवद्विक, वैक्रियिकद्विक, वर्णादि ४,अगुरुलघु-चतुष्क,त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय
सातवाँ भाग		९४	२६	४	हास्य, रति, भय, जुगुप्सा
				३६	
९.अनिवृत्ति					
प्रथमभाग	९४+४	९८	२२	१	पुरुषवेद,
द्वितीयभाग		९९	२१	१	संज्वलनक्रोध
तृतीयभाग		१००	२०	१	संज्वलनमान,
चतुर्थभाग		१०१	१९	१	संज्वलनमाया
पंचमभाग		१०२	१८	१	संज्वलनलोभ
				५	
१०.सूक्ष्म सांपराय	१०२+१	१०३	१७	१६	ज्ञानावरण ५,अन्तराय ५, चक्षु-अचक्षु,अवधि,केवलदर्शनावरण ४, यश:कीर्ति, उच्चगोत्र
११.उपशांत	१०३+१६	११९	१	०	
१२.क्षीण-मोह	११९	११९	१	०	
१३.सयोग केवली	११९	११९	१	१	सातावेदनीय
१४.अयोग केवली	११९+१	१२०	०	०	

विशेषार्थ - बन्धव्युच्छित्ति का अर्थ - जिस गुणस्थान में जितनी प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति कहीं है उन प्रकृतियों का उन गुणस्थानों में बन्ध होता है, आगे के गुणस्थानों में उन प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता ऐसा अर्थ समझना।

व्युच्छित्ति नाम बिछुडने का है किन्तु जहां पर व्युच्छित्ति कही जाती है वहीं तक उनका संयोग रहता है। जैसे दो पुरुष एक नगर में रहते थे। उसमें से एक पुरुष दूसरे स्थान पर गया, वहाँ किसी ने पूछा कि तुम कहाँ बिछुडे थे तब उसने कहा कि हम अमुक नगर में बिछुडे थे। इसप्रकार जहाँ उनका संयोग था वहीं बिछुडना कहा, इसी तरह जहाँ जहाँ पर कर्मोंके बंध, उदय अथवा सत्त्व की व्युच्छित्ति है, वहाँ पर तो उन उन कर्मों का बंध, उदय अथवा सत्त्व रहता है, उससे आगे नहीं रहता। ऐसा उत्पादानुच्छेद अर्थात द्रव्यार्थिकनय का अभिप्राय है। इस नय के अभिप्राय से सत्त्व अवस्था में ही विनाश कहा जाता है। उत्पाद अर्थात् विद्यमान का अनुच्छेद अर्थात् अविनाश रूप जो है वह उत्पादानुच्छेद नय है।

उसी पुरुष को पूछनेपर ऐसा भी कहा गया कि हम अमुक नगर को छोड़कर अमुक नगर आये और वहाँ से पृथक् हुए तो जहाँ संयोग का अभाव हुआ, बिछुडना वही हुआ उसीप्रकार अबन्ध में बन्ध का अभाव जानना यह पर्यायार्थिक नय का अभिप्राय है। इसीको अनुत्पादानुच्छेद कहते हैं। उसके अनुसार असत्त्व अवस्था में अभाव का व्यवहार होता है। इसप्रकार द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा अपने अपने गुणस्थान के अंतिम समय में बन्धव्युच्छित्ति होती है। पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से उस अंतिम समय के अनन्तर समय में उन प्रकृतियों के बन्ध का नाश होता है।

अबन्ध प्रकृतियों की संख्या निकालने के लिये पूर्व के गुणस्थान के अबन्ध और बन्धव्युच्छित्तियों को जोडनेपर आगे के गुणस्थानों का अबन्ध निकलता है। प्रकृतिबन्ध के नियम के अनुसार जहाँ विशेष हो वहाँ स्पष्टीकरण किया है वह समझना। जैसे तीसरे गुणस्थान में आयु का बन्ध नहीं होता तो वहाँ जितनी आयु का अस्तित्व है उतनी आयु अबन्ध में चली जायेगी फिर चौथे गुणस्थान में उसका बन्ध होने लगता है तो अबन्ध में से कम होकर बन्ध में बढेगी ऐसे ही सर्वत्र जानना।

बन्धप्रकृतियों की संख्या निकालने के लिए बन्धयोग्य कुलप्रकृतियों में से उस गुणस्थान की अबन्ध प्रकृतियों को कम करना। जैसे दूसरे गुणस्थान में बन्धप्रकृतियाँ = बन्धयोग्य १२० - १९ अबन्ध = १०१ ऐसा सर्वत्र जानना।

प्रकृतियों को संक्षेप में समझने के लिए कुछ संकेत है उन संदृष्टियों का खुलासा -

१) नरकद्विक = नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी

२) तिर्यग्द्विक = तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी

३) मनुष्यद्विक = मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी

४) देवद्विक - देवगति, देवगत्यानुपूर्वी

५) औदारिकद्विक - औदारिकशरीर, औदारिक अंगोपांग

६) वैक्रियिकद्विक - वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग

७) आहारक द्विक - आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग

८) तैजस द्विक - तैजसशरीर, कार्मण शरीर

९) हास्ययुगल - हास्य, रति

१०) शोकयुगल - शोक, अरति

११) भययुगल - भय, जुगुप्सा

१२) अगुरुलघुद्विक - अगुरुलघु, उपघात

१३) सूक्ष्मत्रय - सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण

१४) दुर्भगत्रय - दुर्भग, दु:स्वर, अनादेय

१५) स्त्यानत्रिक - स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचला प्रचला

१६) विकलत्रय - द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय

१७) अनन्तानुबन्धिचतुष्क - अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ

१८) अप्रत्याख्यानादि चतुष्क - अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ

१९) नारकचतुष्क - नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग

२०) देवचतुष्क - देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग

२१) शतारचतुष्क - तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचायु, उद्योत (शतार सहस्रार स्वर्गपर्यंत इनका बन्ध होता है अत: इनकी शतार चतुष्क संज्ञा है)

२२) आहारक चतुष्क - आहारकशरीर, आहारक अंगोपांग, आहारकबंधन, आहारक संघात

२३) अगुरुलघुचतुष्क - अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास अथवा उद्योत

२४) त्रसचतुष्क - त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर

२५) स्थावरचतुष्क - स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण

२६) वर्णचतुष्क - वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श

२७) परघातचतुष्क - परघात, आतप. उद्योत, उच्छ्वास

२८) नारकषट्क - नारक चतुष्क + वैक्रियिक बन्धन, वैक्रियिक संघात

२९)वैक्रियिकषट्क - वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी,

३०) सुरषट्क - देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग,वैक्रियिक बंधन, वैक्रियिक संघात

३१)त्रसनवक -त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय

३२) त्रसदशक - त्रसनवक + यशस्कीर्ति

३३) स्थावर दशक - स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दु:स्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति

३४) तिर्यक् एकादश - तिर्यंचद्विक, एकेन्द्रियादि ४ जाति, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण (इनका उदय तिर्यंचगति में ही है अत: इनको तिर्यगेकादश कहते हैं।)

ओघे वा आदेसे णारयमिच्छम्मि चारि बोच्छिण्णा।
उवरिम बारस सुरचउ सुराउ आहारयमबंधा।।१०५।।

अन्वयार्थ -(आदेसे) मार्गणा में **(ओघे वा)** गुणस्थान के समान जानना। **(णारयमिच्छम्मि)** नरकगति में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में **(चारि)** चार की **(वोच्छिण्णा)** व्युच्छित्ति है। **(उवरिम बारस)** सोलह प्रकृतियों में से ऊपर की बारह एकेन्द्रियादि प्रकृतियाँ **(सुरचउ)** देवचतुष्क **(सुराउ)** देवायु **(आहारयमबंधा)** आहारकद्विक ये उन्नीस प्रकृतियाँ अबन्धरूप हैं।

घम्मे तित्थं बंधदि वंसामेघाण पुण्णगो चेव।
छट्ठोत्ति य मणुवाउ चरिमे मिच्छेव तिरियाऊ।।१०६।।

अन्वयार्थ -(घम्मे) घर्मा नामक प्रथम पृथ्वी में **(तित्थं)** तीर्थंकर प्रकृति का

(बंधदि) बंध करता है। **(वंसामेघाण)** वंशा और मेघा नामक दूसरी, तीसरी पृथ्वी में **(पुण्णगो चेव)** पर्याप्त जीव ही तीर्थंकर प्रकृति का बंध करता है। **(छट्ठोत्ति य)** छठी पृथ्वी तक ही **(मणुवाउ)** मनुष्यायु का बन्ध करता है। **(चरिमे)** अंतिम सातवी पृथ्वी में **(मिच्छेव)** मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ही **(तिरियाऊ)** तिर्यंचायु का बन्ध होता है।

मिस्साविरदे उच्चं मणुवदुगं सत्तमे हवे बंधो।
मिच्छा सासणसम्मा मणुवदुगुच्चं ण बंधंति।।१०७।।

अन्वयार्थ -(सत्तमे) सातवी पृथ्वी में **(मिस्साविरदे)** मिश्र और असंयत गुणस्थान में ही **(उच्चं मणुवदुगं)** उच्चगोत्र और मनुष्यद्विक का बन्ध होता है **(मिच्छा सासणसम्मा)** मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि **(मणुवदुगुच्चं)** मनुष्यद्विक और उच्चगोत्र का **(ण बंधंति)** बन्ध नहीं करते हैं।

नरकगति में बन्ध, अबन्ध का निरूपण

पर्याप्त अवस्थामें				अपर्याप्त अवस्थामें		
नरक	बन्ध	अबन्ध	प्रकृतियों का विवरण	बन्ध	अबन्ध	प्रकृतियों का विवरण
१से ३ नरक	१०१	१९	एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप सूक्ष्मत्रय, विकलत्रय, नरकद्विक, नरकायु, देवचतुष्क, देवायु, आहारकद्विक	९९	२१	पर्याप्त की १९+२ मनुष्यायु, तिर्यंचायु
४से ६ नरक	१००	२०	उपर्युक्त १९ + तीर्थंकर	९८	२२	२रे से ६ठे नरकतक २१+१ तीर्थंकर
सातवाँ नरक	९९	२१	२० + १ मनुष्यायु	९५	२५	२२+३ मनुष्यद्विक, उच्चगोत्र

विशेषार्थ- नियम- १) तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध तीसरे नरकतक ही होता है अर्थात् जिसे तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध हुआ है ऐसा मनुष्य तीसरे नरकतक ही उत्पन्न होता है।

२) दूसरे, तीसरे नरक में पर्याप्त अवस्था में ही तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होता है।

३) सातवें नरक में मनुष्यायु का बन्ध नहीं होता अर्थात् सातवें नरक का नारकी मरकर तिर्यंचगति में ही उत्पन्न होता है।

४) सातवें नरक में पहले दूसरे गुणस्थान में मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र का बन्ध नहीं होता। तीसरे, चौथे गुणस्थान में इनका बन्ध होता है।

५) जो प्रकृतियाँ आगामी भव में उदय के योग्य नहीं होती है उनका बन्ध उससे पूर्व भव में नहीं होता ऐसा सर्वत्र जानना।

पर्याप्त प्रथम, द्वितीय, तृतीय नरक में बंध, अबंध और बन्ध व्युच्छित्ति।
बंधयोग्यप्रकृतियाँ १०१

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व	१ तीर्थंकर,	१	१००	४	४ -मिथ्यात्व, हुंडकसंस्थान, नपुंसकवेद,सृपाटिका संहनन
सासादन	१+४	५	९६	२५	२५- सामान्य गुणस्थानवत्
मिश्र	५+२५+१(मनुष्यायु)	३१	७०	०	
असंयत	३१ - २ (तीर्थंकर, मनुष्यायु)	२९	७२	१०	१० - सामान्यवत्

पर्याप्त ४ से ६ नरक में बंध, अबंध और व्युच्छित्ति। बंधयोग्यप्रकृतियाँ १००

गुणस्थान	अबन्ध विवरण	अबन्ध	बंध	बंध व्युच्छित्ति	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व		०	१००	४	४ - उपर्युक्त,
सासादन	० + ४	४	९६	२५	२५- सामान्यवत्
मिश्र	४+२५+१(मनुष्यायु)	३०	७०	०	
असंयत	३०-१(मनुष्यायु)	२९	७१	१०	१० सामान्य गुणस्थानवत्

पर्याप्त सातवें नरक में बंध, अबंध, व्युच्छित्ति   बंधयोग्य प्रकृतियाँ ९९

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व	(उच्चगोत्र, मनुष्यद्विक)	३	९६	५	५=उपर्युक्त ४ +तिर्यंचायु १
सासादन	३ + ५ =	८	९१	२४	२४=२५ पूर्वोक्त-१ तिर्यंचायु
मिश्र	(८ + २४) - ३ (उच्चगोत्र,मनुष्यद्विक)	२९	७०	०	
असंयत	२९ + ०	२९	७०	९	९= पूर्वोक्त१० - १मनुष्यायु

अपर्याप्त अवस्था में प्रथम नरक में बंध, अबंध व व्युच्छित्ति

बंधयोग्य प्रकृतियाँ ९९

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व	१= तीर्थंकर,	१	९८	२८	२८ = प्रथम गुणस्थान की ४+ दूसरे गुणस्थान की २४
असंयत	१+२८-१ (तीर्थंकर)	२८	७१	९	९-उपर्युक्त

विशेषार्थ - दूसरे नरक से सातवें नरक तक अपर्याप्त अवस्था में एक मिथ्यात्व ही गुणस्थान होता है अत: उसका बंध अबंध अपर्याप्त अवस्था के समान जानना।

अब तिर्यञ्चगति सम्बन्धी बन्धव्युच्छित्ति, बन्ध अबन्ध का कथन करते हैं—

तिरिए ओघो तित्थाहारूणो अविरदे छिदी चउरो।
उवरिमछण्णं च छिदी सासणसम्मे हवे णियमा।।१०८।।

अन्वयार्थ -(तिरिये) तिर्यंचगति में **(ओघो)** गुणस्थान के समान है, किंतु विशेषता यह है **(तित्थाहारूणो)** तीर्थंकर और आहारकद्विक का बन्ध नहीं होता। **(अविरदे)** असंयत गुणस्थान में **(छिदी)** बंधव्युच्छित्ति **(चउरो)** चार प्रकृति की है। **(उवरिम छण्हं)** ऊपर की शेष छह प्रकृतियों की **(छिदी)** व्युच्छित्ति **(सासाणसम्मे)** सासादन सम्यक्त्व में **(णियमा)** नियम से **(हवे)** होती है।

सामण्णतिरियपचिंदियपुण्णगजोणिणीसु एमेव।
सुरणिरयाउ अपुण्णे वेगुव्वियछक्कमवि णत्थि।।१०९।।

अन्वयार्थ -(सामण्णतिरियपचिंदियपुण्णगजोणिणीसु) सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पर्याप्त तिर्यंच, योनिमतत्तिर्यंच इनमें **(एमेव)** इसी प्रकार का होता है। **(अपुण्णे)** लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंच में **(सुरणिरयाउ)** देवायु, नरकायु **(वेगुव्वियछक्कमवि)** वैक्रियिक षट्क भी **(णत्थि)** नहीं है (अर्थात् इन ८ का बंध नहीं होता)। वैक्रियिक षट्क अर्थात् देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक अंगोपांग।

तिर्यंच गति में बन्ध अबन्ध

तिर्यंच पर्याप्त अवस्था	बंध	अबंध	प्रकृति विवरण
१) सामान्य तिर्यंच २) पंचेंद्रियतिर्यंच ३) पर्याप्ततिर्यंच ४) योनिमत्तिर्यंच	११७	३	तीर्थंकर, आहारकद्विक

तिर्यंच अपर्याप्त अवस्था	बंध	अबंध	प्रकृति विवरण
निर्वृत्त्यपर्याप्त १) सामान्य तिर्यंच २) पंचेंद्रियतिर्यंच ३) पर्याप्ततिर्यंच ४) योनिमत्तिर्यंच	१११	९	तीर्थंकर, आहारकद्विक ४ आयु, नरकद्विक
५) लब्ध्यपर्याप्ततिर्यंच	१०९	११	तीर्थंकर, आहारकद्विक,नरकायु, देवायु, वैक्रियिकषट्क

पर्याप्त सामान्यादि चार तिर्यंचों में बंध, अबंध, बंधव्युच्छित्ति

बन्धयोग्य ११७

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व		०	११७	१६	१६= सामान्य गुणस्थानवत्
सासादन	० + १६ =	१६	१०१	३१	३१=पूर्वोक्त२५+६ (वज्र-वृषभनाराच संहनन,औदारिक द्विक,मनुष्यद्विक, मनुष्यायु,

गुणस्थान	अबन्ध विवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिश्र	१६+३१+१ (देवायु)	४८	६९	०	
असंयत	४८ - १ (देवायु)	४७	७०	४	अप्रत्याख्यान ४ कषाय
देशसंयत	४७ + ४	५१	६६	४	प्रत्याख्यान ४ कषाय

विशेषार्थ - तिर्यंच व मनुष्यगति में वज्रवृषभनाराचादि ६ प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति दूसरे गुणस्थान में ही होती है क्योंकि तिर्यंच व मनुष्य सम्यग्दर्शन होने के बाद एक देवगति का ही बन्ध करते हैं, इसलिए तिर्यंच व मनुष्यगति में दूसरे गुणस्थान में २५+ ६ = ३१ प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति होती है और चौथे गुणस्थान में ४ की बन्धव्युच्छित्ति होती है।

सामान्यादि ४ तिर्यंच निर्वृत्त्यपर्याप्त में बंध, अबंध, बंध व्युच्छित्ति, बन्धयोग्य १११

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व	४ -देवचतुष्क.	४	१०७	१३	१३= सामान्य गुणस्थान की १६-३ नरकद्विक,नरकायु
सासादन	४ + १३	१७	९४	२९	२९=३१-२ तिर्यंचायु, मनुष्यायु
असंयत	१७+२९=४६-४ देवचतुष्क	४२	६९	४	अप्रत्याख्यान ४ कषाय

लब्ध्यपर्याप्ततिर्यंच में १ मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है अत: उसका कोष्टक नहीं है।

नियम १) मिश्रकाययोग में चार आयु और नरकद्विक का बन्ध नहीं होता।

२) निर्वृत्त्यपर्याप्तकाल में मिथ्यादृष्टि और सासादन में देवचतुष्क का बन्ध नहीं होता।

३) लब्ध्यपर्याप्तक में मिश्रयोग होने पर भी तिर्यंचायु और मनुष्यायु का बन्ध संभव है। शेष देवायु, नरकायु और वैक्रियिकषट्क का बन्ध नहीं होता।

अब मनुष्यगतिसम्बन्धी बन्ध-अबन्ध-बन्धव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियों को कहते हैं-

तिरियेव णरे णवरि हु तित्थाहारं च अत्थि एमेव।
सामण्णपुण्णमणुसिणिणरे अपुण्णे अपुण्णेव।।११०।।

अन्वयार्थ -(तिरियेव) तिर्यंचगति के समान **(णरे)** मनुष्यगति में होता है **(णवरि हु)** विशेष यह है कि मनुष्यगति में **(तित्थाहारं)** तीर्थंकर और आहारकद्विक का बन्ध **(अत्थि)** होता है। **(एमेव)** इसी प्रकार **(सामण्णपुण्णमणुसिणिणरे)** सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यिनी में जानना। **(अपुण्णे)** अपर्याप्त मनुष्य में **(अपुण्णेव)** अपर्याप्त तिर्यंच के समान जानना।

विशेषार्थ - मनुष्यके चार भेद है - १) सामान्य मनुष्य २) पर्याप्त मनुष्य ३) योनिमत् मनुष्य (भावस्त्रीवेदी) ४) लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य

पर्याप्त अवस्था में मनुष्यगति में बन्ध अबन्ध

पर्याप्त अवस्थामें	बंध	अबंध	विवरण
सामान्य, पर्याप्त, मनुष्यिनी	१२०	०	सामान्यवत्

निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्था में बंध अबंध

निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्था में	बंध	अबंध	विवरण
सामान्य, पर्याप्त, मनुष्यिनी	११२	८	४ आयु, नरकद्विक, आहारकद्विक
लब्ध्यपर्याप्तमनुष्य	१०९	११	तिर्यंचलब्ध्यपर्याप्तवत्

सामान्य, पर्याप्त, मनुष्यिनी में सामान्य गुणस्थान की तरह १४ गुणस्थानों में बन्ध, अबन्ध और व्युच्छित्ति का कोष्टक जानना। विशेष इतना है कि यहाँ तिर्यंचवत् दूसरे गुणस्थान में ३१ और चौथे गुणस्थान में ४ की व्युच्छित्ति जानना।

निर्वृत्त्यपर्याप्त मनुष्य में बन्ध, अबन्ध, बन्धव्युच्छित्ति

बन्धयोग्य ११२

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व	५ = तीर्थंकर, देवचतुष्क.	५	१०७	१३	१३= प्रथम गुणस्थान १६-३ (नरकद्विक, नरकायु)
सासादन	५ + १३ =	१८	९४	२९	३१-२ मनुष्यायु, तिर्यंचायु
असंयत	(१८+२९) - ५ (तीर्थंकर,देवचतुष्क)	४२	७०	८	८ = अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानकषाय ४

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
प्रमत्त	४२ + ८	५०	६२	६१	६१=प्रमत्त की ६ + अपूर्वकरण की ३४ (आहारकद्विक रहित) + अनिवृत्तिकरण की ५ + सूक्ष्मसांपराय की १६
सयोगकेवली	५०+६१	१११	१	१	१ = सातावेदनीय

अब देवगति में कथन करते हैं—

णिरयेव होदि देवे आईसाणोत्ति सत्त वाम छिदी।
सोलस चेव अबंधो भवणतिये णत्थि तित्थयरं।।१११।।

अन्वयार्थ - (णिरयेव) नरकगति के समान **(देवे)** देवगति में **(होदि)** हैं। किन्तु **(आईसाणोत्ति)** ईशानस्वर्गपर्यन्त **(वाम)** मिथ्यात्व गुणस्थान में **(सत्त)** सात प्रकृतियों की **(छिदी)** व्युच्छित्ति है। **(सोलस चेव)** और सोलह प्रकृतियों के **(अबन्धो)** बन्ध का अभाव है **(भवणतिए)** भवनत्रिक देवों के **(तित्थयरं)** तीर्थंकर प्रकृति का **(णत्थि)** बन्ध नहीं होता है।

कप्पित्थीसु ण तित्थं सदरसहस्सारगोत्ति तिरियदुगं।
तिरियाऊ उज्जोवो अत्थि तदो णत्थि सदरचऊ।।११२।।

अन्वयार्थ - (कप्पित्थीसु) कल्पवासिनी स्त्रियों में **(तित्थं)** तीर्थंकर का बन्ध **(ण)** नहीं होता। (**सदरसहस्सारगोत्ति**) शतार सहस्रार स्वर्गतक ही **(तिरियदुगं)** तिर्यंचद्विक **(तिरियाऊ)** तिर्यंचायु और **(उज्जोवो)** उद्योत इन चार प्रकृतियों का बन्ध **(अत्थि)** होता है। **(तदो)** उससे आगे **(सदरचउ)** शतारचतुष्क का बन्ध **(णत्थि)** नहीं है।

देवगति में पर्याप्त अवस्था में बन्ध अबन्ध			
देवों का भेद	**बन्ध**	**अबन्ध**	**प्रकृति विवरण**
भवनत्रिक व कल्पवासी देवी	१०३	१७	सूक्ष्मत्रय, विकलत्रय, देवचतुष्क, नरकद्विक,नरकायु, देवायु, आहारकद्विक, तीर्थंकर
सौधर्म,ऐशान	१०४	१६	१७ - १ तीर्थंकर
३ से १२ स्वर्ग	१०१	१९	उपर्युक्त १६ + ३ एकेन्द्रिय,स्थावर, आतप
१३ से १६ स्वर्ग, नवग्रैवेयक	९७	२३	उपर्युक्त १९ + ४ शतारचतुष्क
९ अनुदिश, ५ अनुत्तर	७२	४८	चतुर्थगुणस्थान की बन्धयोग्य ७२ शेष ४८ अबन्ध

देवगति में अपर्याप्त अवस्था में बन्ध अबन्ध			
देवों का भेद	**बन्ध**	**अबन्ध**	**प्रकृति विवरण**
भवनत्रिक व कल्पवासी देवी	१०१	१९	पर्याप्तकी १७ + २ तिर्यंचायु,मनुष्यायु
सौधर्म,ऐशान	१०२	१८	पर्याप्त की १६ +२ तिर्यंचायु,मनुष्यायु
३ से १२ स्वर्ग	९९	२१	पर्याप्त की १९ +२ तिर्यंचायु,मनुष्यायु
१३ से १६ स्वर्ग, नवग्रैवेयक	९६	२४	पर्याप्त की २३ +१ मनुष्यायु
९ अनुदिश, ५ अनुत्तर	७१	४९	७१ = पर्याप्त की ७२ - १ मनुष्यायु

पर्याप्त भवनत्रिक व कल्पवासी देवियों में बन्ध, अबन्ध, बन्धव्युच्छित्ति

बन्ध योग्य १०३

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बंध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व		०	१०३	७	७=१६ में से प्रथम ७ प्रकृतियाँ
सासादन	० + ७	७	९६	२५	२५ = सामान्य गुणस्थानवत्
मिश्र	७+२५+१ (मनुष्यायु)	३३	७०	०	
असंयत	३३ - १ (मनुष्यायु)	३२	७१	१०	१० गुणस्थानवत्

पर्याप्त सौधर्म ईशान स्वर्ग में बन्ध, अबन्ध बंधव्युच्छित्ति

बन्धयोग्य १०४

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व	१ = तीर्थंकर	१	१०३	७	७ = उपर्युक्त भवनत्रिकवत्,
सासादन	१ + ७ =	८	९६	२५	२५ = सामान्य गुणस्थानवत्
मिश्र	८+२५+१ (मनुष्यायु)	३४	७०	०	
असंयत	३४-२ (तीर्थंकर, मनुष्यायु)	३२	७२	१०	१० = सामान्य गुणस्थानवत्

पर्याप्त अवस्था में ३ से १२ स्वर्गपर्यन्त बन्ध, अबन्ध, बन्धव्युच्छित्ति

बन्धयोग्य १०१

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व	१ = तीर्थंकर	१	१००	४	४-मिथ्यात्व, हुंडक, नपुंसकवेद, सृपाटिका संहनन
सासादन	१ + ४ =	५	९६	२५	२५ = सामान्य गुणस्थानवत्
मिश्र	५+२५+१ (मनुष्यायु)	३१	७०	०	
असंयत	३१-२ (तीर्थंकर, मनुष्यायु)	२९	७२	१०	सामान्य गुणस्थानवत्

पर्याप्त अवस्था में १३ से १६ स्वर्ग और नौ ग्रैवेयकदेवों में बन्ध, अबन्ध,व्युच्छित्ति

बन्धयोग्य ९७

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व	१ = तीर्थंकर	१	९६	४	४ = उपर्युक्त कोष्ठकवत्
सासादन	१ + ४ =	५	९१	२१	२५ - ४ शतारचतुष्क
मिश्र	५+२१+१ (मनुष्यायु)	२७	७०	०	
असंयत	२७-२ (तीर्थंकर, मनुष्यायु)	२५	७२	१०	१०= सामान्य गुणस्थानवत्

विशेषार्थ - नव अनुदिश व पाँच अनुत्तरों में सभी सम्यग्दृष्टि ही उत्पन्न होते हैं उनका चौथा गुणस्थान ही होता है। वहाँ उपर्युक्त कोष्ठकवत् ७२ प्रकृतियों का ही बन्ध होता है।

नियम १) दूसरे स्वर्ग पर्यन्त के देव ही एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं अत: वहाँ तक ही एकेन्द्रिय,स्थावर,आतप का बन्ध होता है। देव सूक्ष्म और साधारण में उत्पन्न नहीं होते। २) बारहवें स्वर्गपर्यन्त के ही देव तिर्यंच पंचेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं अत: वहाँ तक ही शतारचतुष्क का बन्ध होता है। ३) भवनत्रिक व कल्पवासिदेवियों में निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्था में चौथा गुणस्थान नहीं होता। क्योंकि सम्यग्दृष्टि मरकर वहाँ उत्पन्न नहीं होते।

निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्था में भवनत्रिक व कल्पवासिदेवियों में बन्ध, अबन्ध, व्युच्छित्ति

बन्धयोग्य १०१

गुणस्थान	**अबन्धविवरण**	**अबंध**	**बन्ध**	**बंध व्युच्छित्ति**	**बंध व्युच्छित्ति विवरण**
मिथ्यात्व		०	१०१	७	७ =पर्याप्तवत्
सासादन	० + ७ =	७	९४	२४	२४ = २५ - १ तिर्यंचायु

निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्था में सौधर्म ईशान स्वर्गों में बन्ध, अबन्ध, बन्धव्युच्छित्ति

बन्धयोग्य १०२

गुणस्थान	**अबन्धविवरण**	**अबंध**	**बन्ध**	**बंध व्यु.**	**बंध व्युच्छित्ति विवरण**
मिथ्यात्व	१ = तीर्थंकर	१	१०१	७	७ =पर्याप्तवत्
सासादन	१ + ७=	८	९४	२४	२४ = २५ - १ तिर्यंचायु
असंयत	८+२४-१ (तीर्थंकर)	३१	७१	९	१० - १ मनुष्यायु

निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्था में ३ से १२ स्वर्ग बन्धयोग्य ९९

गुणस्थान	**अबन्धविवरण**	**अबंध**	**बन्ध**	**बंध व्यु.**	**बंध व्युच्छित्ति विवरण**
मिथ्यात्व	१ = तीर्थंकर	१	९८	४	४ =पर्याप्तवत्
सासादन	१ + ४ =	५	९४	२४	२४ = २५ - १ (तिर्यंचायु)
असंयत	५+२४-१ (तीर्थंकर)	२८	७१	९	१० - १ मनुष्यायु

१३ से १६ स्वर्ग, नौ ग्रैवेयक निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्था में बंधत्रिभंगी

बन्धयोग्य ९६

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व	१ = तीर्थंकर	१	९५	४	४ = पूर्वोक्त
सासादन	१ + ४ =	५	९१	२१	२१ = २५-४ शतारचतुष्क
असंयत	५+२१ = २६-१(तीर्थंकर)	२५	७१	९	९ = १० - १ मनुष्यायु

आगे इन्द्रियमार्गणासम्बन्धी बन्ध, अबन्ध और बन्धव्युच्छित्ति का कथन करते हैं—

पुण्णिदरं इगिविगले तत्थुप्पण्णो हु सासणो देहे।
पज्जत्तिं ण वि पावदि इदि णरतिरियाउगं णत्थि।।११३।।

अन्वयार्थ -(इगिविगले) एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय में **(पुण्णिदरं व)** पर्याप्तेतर अर्थात् लब्ध्यपर्याप्तक के समान हैं। **(तत्थुप्पण्णो हु)** वहाँ उत्पन्न हुआ जीव **(सासणो)** सासादन गुणस्थान में **(देहे पज्जत्तिं)** शरीर पर्याप्ति को **(ण वि पावदि)** पूर्ण नहीं कर सकता। **(इदि)** इसलिये यहाँ **(णरतिरियाउगं)** मनुष्य और तिर्यंचायु का **(णत्थि)** बन्ध नहीं करता।

इन्द्रियमार्गणा में बन्ध, अबन्ध

पर्याप्त अवस्था में			
जीव	**बंध**	**अबंध**	**विवरण**
एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय	१०९	११	तीर्थंकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु, वैक्रियिकषट्क
पंचेन्द्रिय	१२०	०	सामान्यवत्

अपर्याप्त अवस्था में			
जीव	**बंध**	**अबंध**	**विवरण**
एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय	१०७	१३	पर्याप्तकी ११+२ तिर्यंचायु, मनुष्यायु
पंचेन्द्रिय	११२	८	आहारकद्विक, नरकद्विक, ४ आयु

एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रिय (पर्याप्त + निर्वृत्त्यपर्याप्त) में बंधत्रिभंगी बंधयोग्य १०९

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व		०	१०९	१५	१५=१६-३(नरकद्विक +नरकायु) +२ (मनुष्यायु, तिर्यंचायु)
सासादन	१५	१५	९४	२९	२९=३१-२=(मनुष्यायु,तिर्यंचायु)

विशेषार्थ - एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों में दूसरा गुणस्थान निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्था में ही पाया जाता है क्योंकि दूसरा गुणस्थान लेकर वहाँ उत्पन्न हुआ जीव दूसरे गुणस्थान में शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं कर सकता क्योंकि दूसरे गुणस्थान का काल अल्प है और निर्वृत्त्यपर्याप्तक का काल अधिक है। इसलिए मनुष्यायु और तिर्यंचायु की बन्धव्युच्छित्ति प्रथम गुणस्थान में हुई। दूसरे गुणस्थान में इनका बंध संभव नहीं है।

पर्याप्त पंचेन्द्रिय की बंध, अबंध, व्युच्छित्ति रचना सामान्य गुणस्थानवत् जानना।

पंचेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्त में बंधत्रिभंगी बंधयोग्य ११२

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व	५= तीर्थंकर, देवचतुष्क,	५	१०७	१३	१३= १६-३ नरकद्विक, नरकायु
सासादन	५ +१३ =	१८	९४	२४	२४ = २५ - १ तिर्यंचायु
असंयत	(१८+२४) - ५ (तीर्थंकर,देवचतुष्क)	३७	७५	१३	१३ = १०-१ मनुष्यायु + ४ प्रत्याख्यान कषाय
प्रमत्तसंयत	३७ + १३	५०	६२	६१	६१ = ६+१+३६+५+१६ =६४-३(देवायु,आहारकद्विक) छट्ठे गुणस्थान से १० वें गुणस्थानपर्यंत की व्युच्छित्तियों का योग ६४ ।
सयोगकेवली	५० + ६१	१११	१	१	१ = सातावेदनीय

विशेषार्थ - १) छठे गुणस्थान में आहारक शरीर की अपेक्षा आहारक मिश्रकाय योग में निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्था होती है।

२) तेरहवें गुणस्थान में केवलिसमुद्घात के समय औदारिक मिश्रकाय योग होता है, उस समय निर्वृत्त्यपर्याप्तावस्था होती है।

लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय में बंध १०९ प्रकृतियों का होता है, ११ का अबन्ध एकेन्द्रियवत् है।

पंचिदिएसु ओघं एयक्खे वा वणप्फदीयंते।
मणुवदुगं मणुवाऊ उच्चं ण हि तेउवाउम्मि।।११४।।

अन्वयार्थ - (पंचिदिएसु) पंचेन्द्रियों में **(ओघं)** गुणस्थान के समान जानना (**एयक्खे वा**) एकेन्द्रिय के समान (**वणप्फदीयंते**) पृथ्वीकाय से वनस्पतिकायपर्यंत व्युच्छित्ति आदि जानना। विशेष यह है कि **(तेउवाउम्मि)** तेजकायिक और वायुकायिक में **(मणुवदुगं मणुवाऊ उच्चं)** मनुष्यद्विक, मनुष्यायु और उच्चगोत्र इन चार का **(ण हि)** बन्ध नहीं होता।

ण हि सासणो अपुण्णे साहारणसुहुमगे य तेउदुगे।
ओघं तस मणवयणे ओराले मणुवगइभंगो।।११५।।

अन्वयार्थ - (अपुण्णे) लब्ध्यपर्याप्तक में **(साहारणसुहुमगे)** साधारण वनस्पति, सर्वसूक्ष्म **(य)** और **(तेउदुगे)** तेजकायिक, वायुकायिक में **(सासणो)** सासादन गुणस्थान **(ण हि)** नहीं होता। **(तस मणवयणे)** त्रसकाय, मनोयोग और वचनयोग मार्गणा में **(ओघं)** गुणस्थान के समान है। **(ओराले)** औदारिक काययोग में **(मणुवगइभंगो)** मनुष्यगति के समान जानना।

कायमार्गणा में बन्ध अबन्ध

जीव	बंधयोग्य	अबंध	विवरण (अबन्ध प्रकृतियों का)
पृथ्वी,जल वनस्पति	१०९	११	तीर्थंकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु, वैक्रियिकषट्क
अग्नि,वायु	१०५	१५	उपर्युक्त ११+४ मनुष्यायु, मनुष्यद्विक,उच्चगोत्र
त्रस	१२०	०	सामान्यवत्

पृथ्वी, जल, वनस्पतिकायिक में बन्ध त्रिभंगी बन्धयोग्य १०९

गुणस्थान	अबंध	बंध	व्युच्छित्ति	विशेष प्रकृति विवरण
मिथ्यात्व	०	१०९	१५	१५ = १६-३ (नरकद्विक, नरकायु) = १३+२ मनुष्यायु, तिर्यंचायु
सासादन	१५	९४	२९	२९ = ३१ - २ आयु

विशेष नियम -१) सर्व लब्ध्यपर्याप्तकों में, साधारण शरीरों में, सब सूक्ष्मकायों में और तेजकाय वायुकायिकों में, नरकगति निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्था में, सासादन गुणस्थान नहीं होता क्योंकि सासादनगुणस्थान में मरणकर इन पर्यायों में उत्पन्न नहीं होता और वहाँ जानेपर सासादन गुणस्थान की प्राप्ति असंभव है।

२) त्रसकायिकों में बन्ध, अबन्ध, बन्धव्युच्छित्ति की रचना सामान्य गुणस्थानवत् जानना।

३) अग्नि-वायुकायिक में १ मिथ्यात्व गुणस्थान ही है अत: उसकी रचना नहीं है।

योगमार्गणा में बन्ध अबन्ध

योग का नाम	बन्ध	अबन्ध	प्रकृति विवरण
चार मनोयोग,चार वचनयोग, औदारिक काययोग	१२०	०	
औदारिक मिश्रकाययोग	११४	६	आहारकद्विक, नरकद्विक, देवनरकायु
वैक्रियिक काययोग	१०४	१६	सौधर्म ऐशानस्वर्गवत्
वैक्रियिक मिश्रकाययोग	१०२	१८	१६ उपर्युक्त +२ (मनुष्य, तिर्यंचायु)
आहारक काययोग	६३	५७	छट्ठे गुणस्थानवत् बन्ध अबन्ध
आहारक मिश्रकाययोग	६२	५८	उपर्युक्त ५७+१ देवायु
कार्मण काययोग	११२	८	आहारक २, नरकद्विक, ४ आयु

४ मनोयोग और ४ वचनयोग में बन्ध, अबन्ध, व्युच्छित्ति की रचना गुणस्थानवत् असत्य मन व वचन, उभय मन व वचन में गुणस्थान १२ होते हैं। सत्य मन व वचन, अनुभय मन व वचन में गुणस्थान १३ होते हैं। औदारिक काययोग के बंध, अबन्ध, व्युच्छित्ति की रचना मनुष्यगतिवत् जानना।

अब औदारिक मिश्रकाय योग में कथन करते हैं—

ओराले वा मिस्से ण हि सुरणिरयाउहारणिरयदुगं।
मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं ण हि अविरदे अत्थि ।।११६।।

अन्वयार्थ - (मिस्से) औदारिक मिश्र काययोग में **(ओराले वा)** औदारिक काययोग के समान जानना। किन्तु विशेषता यह है कि **(सुरणिरयाउहारणिरयदुगं)** देवायु, नरकायु, आहारकद्विक और नरकद्विक **(ण हि)** बन्धयोग्य नहीं हैं। **(मिच्छदुगे)** मिथ्यादृष्टि और सासादन में **(देवचऊ तित्थं)** देवचतुष्क और तीर्थंकर इन ५ प्रकृतियों का **(ण)** बन्ध नहीं होता **(अविरदे)** असंयत गुणस्थान में **(अत्थि)** इनका बन्ध होता है।

पण्णारसमुणतीसं मिच्छदुगे अविरदे छिदी चउरो।
उवरिमपणसट्ठीवि य एक्कं सादं सजोगिम्मि ।।११७।।

अन्वयार्थ -(मिच्छदुगे) मिथ्यात्व और सासादन में क्रम से **(पण्णारसमुणतीसं)** पंद्रह और उनतीस प्रकृतियों की **(छिदी)** बंध व्युच्छित्ति होती हैं **(अविरदे)** असंयत गुणस्थान में **(चउरो)** अप्रत्याख्यान कषाय चार **(य)** और **(उवरिमपणसट्ठीवि)** ऊपर के गुणस्थानों की ६५ प्रकृतियाँ इस प्रकार कुल ६९ प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होती हैं। **(सजोगिम्मि)** सयोगकेवली में **(एक्कं सादं)** एक सातावेदनीय की बंधव्युच्छित्ति होती है।

औदारिक मिश्रकाययोग में बंध त्रिभंगी **बन्धयोग्य ११४**

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व	५=तीर्थंकर, देवचतुष्क,	५	१०९	१५	१५= पृथ्वीकायिकवत्
सासादन	५ +१५ =	२०	९४	२९	२९ = ३१ - २ आयु
असंयत	(२०+२९)- ५ (तीर्थंकर,देवचतुष्क)	४४	७०	६९	६९ = ७०-१ (सातावेदनीय चौथे से दसवें गुणस्थान तक की बंध व्युच्छित्ति)
सयोगकेवली	४४ + ६९	११३	१	१	१ = सातावेदनीय

विशेषार्थ - औदारिक मिश्र काययोग मनुष्य तिर्यंच की लब्ध्यपर्याप्त व निवृत्त्यपर्याप्त अवस्था में होता है। निर्वृत्त्यपर्याप्त में चारों आयु का बन्ध नहीं होता, किन्तु लब्ध्यपर्याप्त में मनुष्य-तिर्यंचायु का बन्ध होता है। लब्ध्यपर्याप्त में १ मिथ्यात्व ही गुणस्थान होता है अत: वहीं दोनों आयु की बन्धव्युच्छित्ति होती है। वैक्रियिक काययोग की रचना सौधर्म ऐशानस्वर्गवत् जानना।

देवे वा वेगुव्वे मिस्से णरतिरियआउगं णत्थि।
छट्टगुणं वाहारे तम्मिस्से णत्थि देवाऊ।।११८।।

अन्वयार्थ - (वेगुव्वे) वैक्रियिककाययोग में बन्धप्रकृति **(देवे वा)** देवगति के समान है **(मिस्से)** वैक्रियिक मिश्रकाययोग में **(णरतिरियआउगं)** मनुष्यायु, तिर्यंचायु का बन्ध **(णत्थि)** नहीं होता है। **(आहारे)** आहारक काययोग में **(छट्टगुणं वा)** छठे गुणस्थान के समान रचना है किन्तु **(तम्मिस्से)** आहारक मिश्रकाययोग में **(देवाऊ)** देवायु का **(णत्थि)** बन्ध नहीं होता है।

वैक्रियिक मिश्र काययोग में बंध त्रिभंगी **बन्धयोग्य १०२**

गुणस्थान	**अबन्धविवरण**	**अबंध**	**बन्ध**	**बंध व्यु.**	**बंध व्युच्छित्ति विवरण**
मिथ्यात्व	१ तीर्थंकर	१	१०१	७	७=प्रथम गुणस्थान की १६ में से प्रथम ७ प्रकृतियाँ
सासादन	१ + ७	८	९४	२४	२४ = २५ - १ तिर्यंचायु
असंयत	(८+२४)-१ (तीर्थंकर)	३१	७१	९	९=१०-१ मनुष्यायु

कम्मे उरालमिस्सं वा णाउदुगंपि णव छिदी अयदे।
वेदादाहारोत्ति य सगुणट्ठाणाणमोघं तु।।११९।।

अन्वयार्थ -(कम्मे) कार्मण काययोग में **(उरालमिस्सं वा)** औदारिक मिश्रकाययोग के समान है। किन्तु वहाँ **(आउदुगंपि)** दो आयुओं का भी **(ण)** बंध नहीं है। **(अयदे)** असंयत में **(णव)** नौ प्रकृतियों की **(छिदी)** व्युच्छित्ति होती है। **(वेदादाहारोत्ति य)** वेदमार्गणा से आहारमार्गणापर्यन्त **(सगुणट्ठाणाणमोघं तु)** अपने अपने गुणस्थानों के समान सामान्य कथन है।

कार्मण काययोग में बंध त्रिभंगी **बन्धयोग्य ११२**

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व	५= तीर्थंकर,देवचतुष्क	५	१०७	१३	१३= १६-३ नरकद्विक, नरकायु
सासादन	५ +१३ =	१८	९४	२४	२४ = २५ - १ तिर्यंचायु
असंयत	(१८+२४)- ५ (तीर्थंकर,देवचतुष्क)	३७	७५	७४	७४ = चौथे से दसवें तक व्युच्छिन्न प्रकृति (७८)-४ (मनुष्यदेवायु, आहारकद्विक)
सयोगकेवली	३७ + ७४	१११	१	१	१ सातावेदनीय

वेदमार्गणा में बंध-अबंध

पर्याप्तावस्था				निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्था		
वेद	बंध	अबंध	विवरण	बंध	अबंध	विवरण
स्त्रीवेद	१२०	०	सामान्यवत्	१०७	१३	४ आयु, तीर्थंकर, आहारकद्विक, वैक्रियिकषट्क
नपुंसकवेद	१२०	०	सामान्यवत्	१०८	१२	उपर्युक्त १३-१ (तीर्थंकर)
पुरुषवेद	१२०	०	सामान्यवत्	११२	८	४ आयु,आाहारकद्विक,नरकद्विक

विशेषार्थ - तीनों वेदो में गुणस्थान १ से ९ वें गुणस्थान के सवेद भागपर्यन्त अबंधादि सामान्यवत् जानना। स्त्रीवेद में सवेदभाग के द्विचरमसमय में ९८ अबंध, २२ बंध, १ व्युच्छित्ति। अन्तिम समय में ९९ अबन्ध, २१ बंध है क्योंकि स्त्रीवेद के उदय से चढ़े हुए जीव के सवेदभाग के द्विचरम समय में ही पुरुषवेद की बंधव्युच्छित्ति होती है।

स्त्रीवेद निर्वृत्त्यपर्याप्त में बंध त्रिभंगी बन्धयोग्य १०७

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व		०	१०७	१३	१३= १६-३ (नरकद्विक,नरकायु)
सासादन	० +१३ =	१३	९४	२४	२४ = २५ - १ तिर्यंचायु

सम्यग्दृष्टि मरकर स्त्रीवेद में उत्पन्न नहीं होता अत: स्त्रीवेद की निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्था में चौथा गुणस्थान नहीं होता।

नपुंसकवेद निर्वृत्त्यपर्याप्त में बंध त्रिभंगी बन्धयोग्य १०८

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व	१=तीर्थंकर	१	१०६	१३	१३ = १६-३ (नरकद्विक, नरकायु)
सासादन	१ + १३	१४	९४	२४	२४ = २५ - १ तिर्यंचायु
असंयत	(१४ + २४)-१तीर्थंकर	३७	७०	९	९=१०-१ मनुष्यायु

कृतकृत्यवेदक अथवा क्षायिक सम्यग्दृष्टि मरकर प्रथम नरक में जा सकता है, इसलिए नपुंसकवेद में निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्था में चौथा गुणस्थान संभव है, अन्यत्र संभव नहीं है।

लब्ध्यपर्याप्तक नपुंसकवेदी में १०९ प्रकृतियों का बंध होता है, अबंध ११। निर्वृत्त्यपर्याप्त में १२ अबंध है उसमें से यहाँ मनुष्यायु तिर्यंचायु का बंध होता है और तीर्थंकर का बंध नहीं होता अत: १२-२ = १० + १ = ११

पुंवेद निर्वृत्त्यपर्याप्त में बंध त्रिभंगी बन्धयोग्य ११२

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंधव्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व	५=तीर्थंकर,देवचतुष्क	५	१०७	१३	१३ = १६-३ (नरकद्विक, नरकायु)
सासादन	५ + १३	१८	९४	२४	२४ = २५ - १ तिर्यंचायु
असंयत	(१८ +२४)-५(तीर्थंकर, देवचतुष्क)	३७	७५	९	९=१०-१ मनुष्यायु

विशेष नियम - स्त्रीवेद और नपुंसकवेद में भी तीर्थंकर और आहारकद्विक का बन्ध संभव है, किन्तु इनका उदय नियम से पुरुषवेद में ही होता हैं।

कषायमार्गणा में बन्धयोग्य १२०,

गुणस्थान - क्रोधादिकषायों का अस्तित्व क्रम से नवमें गुणस्थान के द्वितीय, तृतीय, चतुर्थभागतक, पंचमभाग में बादर लोभ, दसवें गुणस्थान तक सूक्ष्मलोभ है। सब का बंध, अबंध, व्युच्छित्ति सामान्यवत् जानना।

ज्ञानमार्गणा में बंध-अबंध

ज्ञान	बंध	अबंध	विवरण
कुमति, कुश्रुत, विभंग	११७	३	३= तीर्थंकर, आहारकद्विक
मति, श्रुत, अवधिज्ञान	७९	४१	मिथ्यात्व व सासादन गुणस्थान की व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ १६+ २५ = ४१ अबंध
मन:पर्ययज्ञान	६५	५५	छट्ठे गुणस्थान का अबंध ५७-२(आहारकद्विक)
केवलज्ञान	१	११९	१= सातावेदनीय

कुमति कुश्रुत विभङ्ग में बंध त्रिभंगी **बन्धयोग्य ११७**

गुणस्थान	अबंध	बंध	व्युच्छित्ति	प्रकृति विवरण
मिथ्यात्व	०	११७	१६	सामान्यवत्
सासादन	१६	१०१	२५	सामान्यवत्

विशेषार्थ - मति श्रुत अवधि में गुणस्थान ४ से १२। बंध, अबंध, व्युच्छित्ति गुणस्थानवत् जानना। अबंध में सर्वत्र ४१ प्रकृतियाँ कम करना।

मन:पर्यय का आहारकद्वय के उदय के साथ ही विरोध है, अप्रमत्त और अपूर्वकरण में होनेवाले बन्ध के साथ विरोध नहीं है। मन:पर्यय में गुणस्थान ६ से १२ हैं बंध, अबंध, व्युच्छित्ति सामान्यवत्। केवल अबंध में सर्वत्र ५५ प्रकृतियाँ कम करना। केवलज्ञान में गुणस्थान १३, १४ और सिद्धों में भी है।

संयम मार्गणा में बंध-अबंध

संयममार्गणाभेद	बंध	अबंध	विवरण	गुणस्थान
१.असंयत	११८	२	२ = आहारकद्विक	१ से ४
२.देशसंयत	६७	५३	देशसंयत के समान	५ वाँ
३.सामायिक,४.छेदोपस्थापना	६५	५५	मन:पर्ययज्ञान के समान	६ से ९
५.परिहारविशुद्धि	६५	५५	मन:पर्ययज्ञान के समान	६ से ७
६.सूक्ष्मसांपराय	१७	१०३	दसवें गुणस्थान के समान	१० वाँ
७.यथाख्यात	१	११९	१-सातावेदनीय	११ से १४

सामान्य गुणस्थानों के समान ही इन सबकी अपने अपने गुणस्थान में बंध व्युच्छित्ति जाननी। अबंध में यथायोग्य प्रकृतियाँ कम करनी।

परिहारविशुद्धि संयम में आहारकद्विक का बन्ध है, उदय नहीं है।

दर्शनमार्गणा में बंध-अबंध

दर्शन	बंध	अबंध	गुणस्थान	विवरण
चक्षु,अचक्षुदर्शन	१२०	०	१ से १२	बन्ध,अबन्ध,व्युच्छित्ति गुणस्थानवत् जानना
अवधिदर्शन	७९	४१	४ से १२	अवधिज्ञान के समान
केवलदर्शन	१	११९	१३, १४	केवलज्ञान के समान

णवरि य सव्वुवसम्मे णरसुरआऊणि णत्थि णियमेण।
मिच्छस्संतिमणवयं बारं ण हि तेउपम्मेसु ।।१२०।।

अन्वयार्थ - (णवरि य) विशेषता यह है कि **(सव्वुवसम्मे)** प्रथमोपशम और द्वितीयोपशम में **(णियमेण)** नियम से **(णरसुरआऊणि)** मनुष्यायु और देवायु का **(णत्थि)** बन्ध नहीं है। **(तेउपम्मेसु)** पीत और पद्मलेश्या में **(मिच्छस्संतिम)** मिथ्यात्व की बंधव्युच्छिन्न प्रकृति- यों में से अंतिम **(णवयं बारं)** नौ और बारह प्रकृतियों का **(ण हि)** बन्ध नहीं होता।

सुक्के सदरचउक्कं वामंतिमबारसं च ण च अत्थि।
कम्मेव अणाहारे बंधस्संतो अणंतो य ।।१२१।।

अन्वयार्थ- **(सुक्के)** शुक्ललेश्या में **(सदरचउक्कं)** शतारचतुष्क अर्थात् तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचायु और उद्योत **(च)** और **(वामंतिमबारसं)** मिथ्यात्व गुणस्थान की अंतिम बारह प्रकृतियाँ, इन सोलह प्रकृतियों का बन्ध **(ण अत्थि)** नहीं होता है। **(कम्मेव)** कार्मणकाययोग के समान **(अनाहारे)** अनाहारक मार्गणा में **(बंधस्संतो)** बंध की व्युच्छित्ति **(अणंतो)** बंध **(य)** और अबंध जानना।

लेश्या मार्गणा में बंध अबंध

लेश्या	बंध	अबंध	गुणस्थान	विवरण
कृष्ण,नील,कपोत	११८	२	१ से ४	२ = आहारकद्विक
पीतलेश्या	१११	९	१ से ७	९= सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, विकलत्रय, नरकायु,नरकद्विक
पद्मलेश्या	१०८	१२	१ से ७	१२=उपर्युक्त ९+३(एकेन्द्रिय,स्थावर,आतप)
शुक्ललेश्या	१०४	१६	१ से १३	१६=उपर्युक्त १२+४(शतारचतुष्क)

विशेषार्थ - तीन अशुभलेश्याओं का कोष्टक सामान्यगुणस्थानवत् जानना, केवल अबंध में सर्वत्र २ (आहारकद्विक) कम करना।

दूसरे स्वर्गतक पीतलेश्या है, अत: इसमें एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप का बन्ध होता है। बारहवें स्वर्गतक पद्मलेश्या है अत: पद्मलेश्या में शतारचतुष्क का बन्ध होता है।

पीतलेश्या में बंध त्रिभंगी **बन्धयोग्य १११**

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व	३=तीर्थंकर,आहारकद्विक	३	१०८	७	७=१६ में से प्रथम सात
सासादन	३ + ७ =	१०	१०१	२५	सामान्य गुणस्थानवत्
मिश्र	२५ + १०+२ (मनुष्यायु, देवायु)	३७	७४	०	
असंयत	३७-३ (तीर्थंकर, मनुष्यायु,देवायु)	३४	७७	१०	सामान्यवत्

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्युच्छित्ति	बंध व्युच्छित्ति विवरण
देशसंयत	३४ + १० =	४४	६७	४	सामान्यवत्
प्रमत्तसंयत	४४ + ४ =	४८	६३	६	सामान्यवत्
अप्रमत्तसंयत	४८+६-२ आहारकद्विक =	५२	५९	१	१ = देवायु

पद्मलेश्या में बंध त्रिभंगी **बन्धयोग्य १०८**

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व	३=तीर्थंकर,आहारकद्विक	३	१०५	४	४=१६ में से प्रथम चार
सासादन	३ + ४ =	७	१०१	२५	२५ सामान्य गुणस्थानवत्
मिश्र	७+२५+२ (मनुष्यायु, देवायु)	३४	७४	०	
असंयत	३४-३ (तीर्थंकर, मनुष्यायु,देवायु)	३१	७७	१०	सामान्यवत्
देशसंयत	३१ + १० =	४१	६७	४	४ प्रत्याख्यानकषाय
प्रमत्तसंयत	४१ + ४ =	४५	६३	६	सामान्यवत्
अप्रमत्तसंयत	(४५+६)-२(आहारकद्विक)	४९	५९	१	१ = देवायु

शुक्ललेश्या में बंध त्रिभंगी **बन्धयोग्य १०४**

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व	३=तीर्थंकर,आहारकद्विक	३	१०१	४	४=१६ में से प्रथम चार
सासादन	३ + ४ =	७	९७	२१	२१=२५-४(शतारचतुष्क)
मिश्र	७+२१+२ (मनुष्यायु, देवायु)	३०	७४	०	
असंयत	३०-३ (तीर्थंकर, मनुष्यायु,देवायु)	२७	७७	१०	सामान्यवत्
देशसंयत	२७ + १० =	३७	६७	४	सामान्यवत्
प्रमत्तसंयत	३७ + ४ =	४१	६३	६	सामान्यवत्

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
अप्रमत्तसंयत	४१+६-२(आहारकद्विक)	४५	५९	१	सामान्यवत्
अपूर्वकरण	४५+१	४६	५८	३६	सामान्यवत्
अनिवृत्तिकरण	४६+३६	८२	२२	५	सामान्यवत्
सूक्ष्मसांपराय	८२+५	८७	१७	१६	सामान्यवत्
११,१२	८७+१६	१०३	१	०	सामान्यवत्
१३	१०३	१०३	१	१	सामान्यवत्

भव्यमार्गणा में बन्ध अबन्ध

भव्य	बन्ध १२०	अबन्ध ०	गुणस्थान १ से १४ रचना गुणस्थानवत्
अभव्य	बन्ध ११७	अबन्ध ३	३=(आहारकद्विक,तीर्थंकर),गुणस्थान १मिथ्यात्व

सम्यक्त्वमार्गणा में बन्ध अबन्ध

गुणस्थान	बंध	अबंध	विशेष प्रकृति विवरण	गुणस्थान
प्रथमोपशम	७७	४३	प्रथम दो गुणस्थान की व्युच्छिन्न प्र.१६+२५ =४१+देवायु,मनुष्यायु	४ से ७
द्वितीयोपशम	७७	४३	प्रथम दो गुणस्थान की व्युच्छिन्न प्र.१६+२५ =४१+देवायु,मनुष्यायु	४ से ११
वेदकसम्यक्त्व	७९	४१	प्रथम दो गुणस्थान की व्युच्छिन्न प्र.१६+२५=४१	४ से ७
क्षा.सम्यक्त्व	७९	४१	प्रथम दो गुणस्थान की व्युच्छिन्न प्र.१६+२५=४१	४ से १४
मिथ्यात्व	११७	३	प्रथमगुणस्थानवत्	१ ला
सासादन	१०१	१९	द्वितीयगुणस्थानवत्	२ रा
मिश्र	७४	४६	तृतीय गुणस्थानवत्	३ रा

नियम - प्रथमोपशम और द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में आयुबन्ध नहीं होता। बद्धायुष्क होने पर भी प्रथमोपशम सम्यक्त्व में मरण नहीं होता। किन्तु द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में (पूर्व में आयु बांधी हो तो ८ वें गुणस्थान के प्रथम भाग को छोड़कर) मरण हो सकता है।

द्वितीयोपशमसम्यक्त्व में बंध त्रिभंगी **बन्धयोग्य ७७**

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
असंयत	२= आहारकद्विक	२	७५	९	९=१०-१ मनुष्यायु
देशसंयत	२ + ९ =	११	६६	४	४= प्रत्याख्यानकषाय ४
प्रमत्तसंयत	११+४	१५	६२	६	६-अरति,शोक,असाता, अस्थिर,अशुभ,अयश:कीर्ति
अप्रमत्तसंयत	१५+६=२१-२ आहारकद्विक	१९	५८	०	
अपूर्वकरण	१९	१९	५८	३६	सामान्यवत्
अनिवृत्तिकरण	१९+३६	५५	२२	५	सामान्यवत्
सूक्ष्मसांपराय	५५+५	६०	१७	१६	सामान्यवत्
उपशांतमोह	६०+१६	७६	१	०	सामान्यवत्

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के समान ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व की रचना है केवल गुणस्थान ४ से ७ ही लगाना। दोनों उपशम सम्यक्त्व में आहारकद्विक का बन्ध हो सकता है।

क्षयोपशमसम्यक्त्व अथवा वेदक सम्यक्त्व में बंध त्रिभंगी **बन्धयोग्य ७९**

गुणस्थान	अबन्धविवरण	अबंध	बन्ध	बंध व्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
असंयत	२=आहारकद्विक	२	७७	१०	१० = सामान्यवत्
देशसंयत	२ +१० =	१२	६७	४	४ = सामान्यवत्
प्रमत्तसंयत	१२ + ४	१६	६३	६	६ सामान्यवत्
अप्रमत्तसंयत	(१६+६)-२आहारकद्विक	२०	५९	१	१ = देवायु

क्षायिकसम्यक्त्व में बन्धयोग्य प्रकृतियाँ ७९ हैं इसका कोष्टक सामान्य गुणस्थान के ४ से १४ गुणस्थान की तरह जानना। अबंध क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के समान ४-७ गुणस्थानों में जानना। आगे भी वैसे ही जानना चाहिए।

संज्ञी मार्गणा में बन्ध अबन्ध

संज्ञीमार्गणाभेद	बन्ध	अबन्ध	विवरण	गुणस्थान
संज्ञी	१२०	०		१ से १२ रचना गुणस्थानवत्
असंज्ञी	११७	३	तीर्थंकर,आहारकद्विक	१, २

असंज्ञी में बंध त्रिभंगी

गुणस्थान	अबन्ध	बन्ध	व्युच्छित्ति	विवरण
मिथ्यात्व	०	११७	१९	१९ = १६+३ आयु (मनुष्यायु,तिर्यंचायु देवायु)
सासादन	१९	९८	२९	२९ = ३१-२ मनुष्यायु, तिर्यंचायु

असंज्ञी जीव में दूसरा गुणस्थान निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्था में ही होता है। निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्था में आयु का बन्ध नहीं होता, अत: तीन आयु की बंधव्युच्छित्ति प्रथम गुणस्थान में ही की है।

आहारक मार्गणा में बन्ध अबन्ध

आहारक	बन्ध १२०	अबन्ध ०	गुणस्थान १ से १३ रचना गुणस्थानवत्
अनाहारक	बन्ध ११२	अबन्ध ८	४ आयु,आहारकद्विक,नरकद्विक, गुण. १,२,४,१३,१४

अनाहारक मार्गणा में बंध त्रिभंगी बन्धयोग्य ११२

गुणस्थान	अबंध विवरण	अबंध	बंध	बंव्यु.	बंध व्युच्छित्ति विवरण
मिथ्यात्व	तीर्थंकर, देवचतुष्क	५	१०७	१३	१३=१६-३(नरकद्विक,नरकायु)
सासादन		१८	९४	२४	२४ = २५-१ तिर्यंचायु
असंयत	२४+१८=४२-५ देवचतुष्क, तीर्थंकर	३७	७५	७४	४, ५, ६, ७, ८, ९, १० गुणस्थानकी व्यु. प्रकृतियाँ ↓ ↓ ↓ ↓ ↓ ↓ ↓ ९+४+६+०+३४+५+१६=७४ (९ मनुष्यायु विना)(आहारकद्विकविना ३४)
सयोगकेवली		१११	१	१	१ = सातावेदनीय
अयोगकेवली		११२	०	०	

आगे मूल प्रकृतियों के सादि आदि बन्ध के भेदों को कहते हैं—

सादिअणादी धुव अद्‌धुवो य बंधो दु कम्मछक्कस्स।
तदियो सादि य सेसो अणादि धुव सेसगो आऊ।।१२२।।

अन्वयार्थ -(कम्मछक्कस्स) छह कर्मों का **(बंधो दु)** प्रकृतिबन्ध **(सादि अणादी धुव अद्‌धुवो य)** सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुवरूप चारों प्रकार का है **(तदियो)** तीसरे अर्थात् वेदनीय का बन्ध **(सादि य सेसो)** सादि के बिना तीन प्रकार का होता है। **(आऊ)** आयुकर्म का **(अणादि धुव सेसगो)** अनादि और ध्रुव के बिना शेष अर्थात् सादि और अध्रुवबन्ध ही होता है।

अब सादि आदि बन्धों का लक्षण कहते हैं —

सादी अबंधबंधे सेढि अणारूढगे अणादी हु।
अब्भवसिद्धम्मि धुवो भवसिद्धे अद्‌धुवो बंधो।।१२३।।

अन्वयार्थ - (अबन्धबन्धे) अबन्ध होकर बन्ध होने पर **(सादी)** सादि कहते हैं। **(सेढि अणारूढगे)** जो श्रेणिपर नहीं चढ़ा उसके **(अणादी हु)** अनादि बन्ध है। **(अब्भवसिद्धम्मि)** अभव्यसिद्धजीवों में **(धुवो)** ध्रुवबन्ध होता है **(भवसिद्धे)** भव्यसिद्धों में **(अद्‌धुवो बंधो)** अध्रुव बंध है।

घादितिमिच्छकसाया भयतेजगुरुदुगणिमिणवण्णचऊ।
सत्तेत्तालधुवाणं चदुधा सेसाणयं तु दुधा।।१२४।।

अन्वयार्थ - (घादितिमिच्छकसाया) तीन घातियाँ कर्मों की १९ प्रकृतियाँ, मिथ्यात्व, १६ कषाय **(भयतेजगुरुदुगणिमिणवण्णचऊ)** भयद्विक, तैजसद्विक, अगुरुलघुद्विक, निर्माण, वर्णचतुष्क इन **(सत्तेत्तालधुवाणं)** सैतालीस ध्रुवबन्धी प्रकृतियों का **(चदुधा)** सादिआदि चारों प्रकार का बन्ध होता है **(तु)** किन्तु **(सेसाणयं)** शेष प्रकृतियों का **(दुधा)** सादि और अध्रुव दो प्रकार का बन्ध होता है।

विशेषार्थ - बंध ४ प्रकार का है - १) सादि २) अनादि ३) ध्रुव ४) अध्रुव। इनका लक्षण पूर्व में कहा है।

	प्रकृति के नाम		बंधप्रकार
मूलप्रकृति	ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, नाम गोत्र, अंतराय	४	सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव
	वेदनीय	३	अनादि ध्रुव, अध्रुव
	आयु	२	सादि, अध्रुव
उत्तरप्रकृति	५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, ५ अंतराय १ मिथ्यात्व, १६ कषाय, २ भयजुगुप्सा, १ तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, वर्णचतुष्क = ४७ ध्रुवप्रकृति	४	सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव
	शेष ७३ अध्रुवप्रकृतियाँ	२	सादि, अध्रुव

उत्तर प्रकृतियों में इन चार बन्धों की विशेषता कहते हैं—

सेसे तित्थाहारं परघादचउक्क सव्व आऊणि।
अप्पडिवक्खा सेसा सप्पडिवक्खा हु बासट्ठी।।१२५।।

अन्वयार्थ - (सेसे) शेष अध्रुवबन्धी प्रकृतियों में से **(तित्थाहारं)** तीर्थंकर, आहारकद्विक, **(परघादचउक्क)** परघातचतुष्क **(सव्व आऊणि)** सर्व आयु ४ ये ग्यारह प्रकृतियाँ **(अप्पडिवक्खा)** अप्रतिपक्षी हैं तथा **(सेसा हु बासट्ठी)** शेष ६२ प्रकृतियाँ **(सप्पडिवक्खा)** सप्रतिपक्षी हैं।

विशेषार्थ - ध्रुव प्रकृति - जबतक व्युच्छित्ति नहीं होती तबतक ४७ प्रकृतियाँ प्रतिसमय बंधती है अत: उन्हें ध्रुव प्रकृतियाँ कहा है।

अध्रुव प्रकृति - शेष ७३ प्रकृतियों का बन्ध कभी होता है, कभी नहीं होता अत: इन्हे अध्रुव प्रकृतियाँ कहा है।

अध्रुवप्रकृतियों में दो भेद हैं - १) अप्रतिपक्ष २) सप्रतिपक्ष (११ + ६२ = ७३)

अप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ ११ - तीर्थंकर, आहारकद्विक, चार आयु, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास।

जो अप्रतिपक्षी प्रकृतियाँ है उन प्रकृतियों का जिस समय बन्ध होता है उस समय उनका बन्ध होता है, जब बन्ध नहीं होता, तब नहीं होता। इनके बदले में बंधनेवाली

प्रकृतियाँ नहीं है।

सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ ६२ - २ वेदनीय, ७ नोकषाय, ४ गति, ५ जाति, २ औदारिकद्विक २ वैक्रियिकद्विक, ६ संस्थान, ६ संहनन, ४ आनुपूर्व्य, २ विहायोगति, २ त्रसस्थावर, २ स्थिर-अस्थिर, २ शुभाशुभ, २ सुभगदुर्भग,२ सुस्वरदुस्वर, २ आदेय-अनादेय, २ बादरसूक्ष्म, २ पर्याप्त-अपर्याप्त, २ प्रत्येक-साधारण, २ यश-अयश, २ गोत्र।

जो प्रकृतियाँ सप्रतिपक्षी होती हैं उनमें से एक समय में किसी एक का बन्ध अवश्य होता है। जैसे साता असाता में से किसी एक का बन्ध अवश्य होता है।

अवरो भिण्णमुहुत्तो तित्थाहाराण सव्वआऊणं।
समओ छावट्ठीणं बंधो तम्हा दुधा सेसा।।१२६।।

अन्वयार्थ -(तित्थाहाराण सव्वआऊणं) तीर्थंकर, आहारकद्विक और चार आयु इन सात प्रकृतियों का निरन्तर बंधने का **(अवरो)** जघन्य काल **(भिण्णमुहुत्तो)** अन्तर्मुहूर्त है। **(छावट्ठीणं बंधो)** ६६ प्रकृतियों का जघन्य बंधकाल **(समओ)** एक समय है। **(तम्हा)** इसलिए **(सेसा)** शेष ७३ प्रकृतियों का बन्ध **(दुधा)** दो प्रकार का है।

विशेषार्थ - अध्रुव ७३ प्रकृतियों में से ७ प्रकृतियों (तीर्थंकर, आहारकद्विक, ४ आयु)का निरंतर बंधकाल जघन्य एक अंतर्मुहूर्त है शेष ६६ प्रकृतियों का निरंतर जघन्य बंधकाल एक समय है अत: इनका सादि और अध्रुव बन्ध ही होता है।

उपशम श्रेणी चढ़ते और उतरते समय वेदनीय का सदैव बंध होता है व्युच्छित्ति नहीं होती अत: वेदनीय का सादि बंध नहीं होता।

आयुकर्म का बंध एक पर्याय में एक बार, दो बार अथवा अधिक से अधिक आठ बार ही होता है इसलिए सादि है और अंतर्मुहूर्त ही होता है अत: अध्रुव है इसप्रकार आयु का बंध सादि और अध्रुव दो प्रकार का ही होता है

। प्रकृतिबन्ध समाप्त ।

अथ स्थितिबंध

अब मूल प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति कहते हैं—

तीसं कोडाकोडी तिघादितदिएसु वीस णामदुगे।
सत्तरि मोहे सुद्धं उवही आउस्स तेतीसं ।।१२७।।

अन्वयार्थ -(तिघादितदिएसु) ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय ये तीन घातिकर्म और तीसरा वेदनीय कर्म इनमें (उत्कृष्ट स्थितिबंध) **(तीसं कोडाकोडी)** तीस कोडाकोडीसागर है। **(णामदुगे)** नाम और गोत्रकर्म में **(वीस)** बीस कोडाकोडीसागर **(मोहे)** मोहनीय में **(सत्तरि)** सत्तर कोडाकोडीसागर उत्कृष्ट स्थितिबंध होता है। **(आउस्स)** आयु का उत्कृष्ट स्थितिबंध **(सुद्धं)** शुद्ध **(तेतीसं उवही)** तैतीस सागर होता है।

अब उत्तरप्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध छह गाथाओं से कहते हैं—

दुक्खतिघादीणोघं सादित्थीमणुदुगे तदद्धं तु।
सत्तरि दंसणमोहे चरित्तमोहे य चत्तालं ।।१२८।।

अन्वयार्थ - उत्कृष्टस्थितिबन्ध **(दुक्खतिघादीणोघं)** असातावेदनीय और तीन घातिकी उन्नीस प्रकृतियों का ओघ के समान तीस कोडाकोडीसागर है। **(तु सादित्थीमणुदुगे)** साता वेदनीय, स्त्रीवेद, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी का **(तदद्धं)** उसका आधा अर्थात् पंद्रह कोडाकोडीसागर है। **(दंसणमोहे)** दर्शनमोहनीय का **(सत्तरि)** सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर **(य)** और **(चरित्तमोहे)** चारित्रमोहनीयरूप सोलहकषाय का **(चत्तालं)** चालीस कोडाकोडीसागर है।

संठाणसंहदीणं चरिमस्सोघं दुहीणमादित्ति।
अट्ठरसकोडकोडी वियलाणं सुहुमतिण्हं च ।।१२९।।

अन्वयार्थ -(संठाणसंहदीणं) संस्थान और संहननों में से **(चरिमस्स)** अंतिम संस्थान और अंतिम संहनन का **(ओघं)** सामान्य नामकर्म के समान बीस कोडाकोडीसागर है। **(दुहीणमादित्ति)** प्रथम संस्थान और संहनन तक दो-दो कोडाकोडीसागर कम है अर्थात् वामन संस्थान और कीलित संहनन का अठारह, कुब्जसंस्थान और अर्धनाराच संहनन का सोलह, स्वाति संस्थान और नाराच संहनन का चौदह, न्यग्रोधपरिमण्डल और वज्रनाराच संहनन का बारह और समचतुरस्र संस्थान और वज्रर्षभनाराच संहनन का दस कोडाकोडीसागर है। **(वियलाणं)** विकलत्रय **(च)** और **(सुहुमतिण्हं)** सूक्ष्मत्रय का **(अट्ठरसकोडकोडी)** अठारह कोडाकोडीसागर है।

अरदीसोगे संढे तिरिक्खभयणिरयतेजुरालदुगे।
वेगुव्वादावदुगे णीचे तसवण्णअगुरुतिचउक्के ।।१३०।।
इगिपंचिंदियथावरणिमिणासग्गमण अथिरछक्काणं।
वीसं कोडाकोडीसागरणामाणमुक्कस्सं ।।१३१।।

अन्वयार्थ - (अरदीसोगे) अरति शोक **(संढे)** नपुंसकवेद (**तिरिक्खभयणिरयतेजुरालदुगे**) तिर्यंचद्विक, भयद्विक, नरकद्विक, तैजसद्विक, औदारिकद्विक (**वेगुव्वादावदुगे**) वैक्रियिकद्विक, आतापद्विक **(णीचे)** नीच गोत्र **(तसवण्णअगुरुतिचउक्के)** त्रसचतुष्क, वर्णचतुष्क और अगुरुलघुचतुष्क **(इगिपंचिंदियथावरणिमिणासग्गमण अथिरछक्काणं)** एकेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, स्थावर, निर्माण अप्रशस्तविहायोगति और अस्थिरषट्क अर्थात् अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दु:स्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति इसप्रकार **(णामाणं)** इकतालीस नामकर्म की प्रकृतियों का **(उक्कस्सं)** उत्कृष्ट स्थितिबन्ध **(वीसं कोडाकोडीसागर)** बीस कोडाकोडीसागर है।

हस्सरदि उच्चपुरिसे थिरछक्के सत्थगमणदेवदुगे।
तस्सद्धमंतकोडाकोडी आहारतित्थयरे ।।१३२।।

अन्वयार्थ -(हस्सरदि उच्चपुरिसे) हास्य, रति, उच्चगोत्र, पुरुषवेद **(थिरछक्के)** स्थिरषट्क **(सत्थगमणदेवदुगे)** प्रशस्त विहायोगति, देवगतिद्विक इन प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबंध **(तस्सद्धं)** उससे आधा अर्थात् दस कोड़ाकोड़ीसागर है। **(आहारतित्थयरे)** आहारकद्विक और तीर्थंकर का **(अंतकोडाकोडी)** अंत: कोडाकोडीसागर है।

सुरणिरयाऊणोघं णरतिरियाऊण तिण्णि पल्लाणि।
उक्कस्सट्ठिदिबंधो सण्णीपज्जत्तगे जोग्गे ।।१३३।।

अन्वयार्थ -(सुरणिरयाऊणोघं) देवायु और नरकायु का सामान्य के सामान अर्थात् तैतीस सागर है **(णरतिरियाऊण)** मनुष्यायु, तिर्यंचायु का **(तिण्णि पल्लाणि)** तीन पल्य (**उक्कस्सट्ठिदिबंधो**) उत्कृष्ट स्थितिबंध (**जोग्गे सण्णीपज्जत्तगे**) योग्य संज्ञी पर्याप्तक को ही होता है।

प्रकृति	उत्कृष्ट स्थितिबंध	जघन्य स्थितिबंध
मूलप्रकृति		
ज्ञानावरण	३० कोडाकोडी सागर	अन्तर्मुहूर्त
दर्शनावरण	३० कोडाकोडी सागर	अन्तर्मुहूर्त
अन्तराय	३० कोडाकोडी सागर	अन्तर्मुहूर्त
वेदनीय	३० कोडाकोडी सागर	१२ मुहूर्त
मोहनीय	७० कोडाकोडी सागर	अन्तर्मुहूर्त
नाम	२० कोडाकोडी सागर	८ मुहूर्त
गोत्र	२० कोडाकोडी सागर	८ मुहूर्त
आयु	३३ सागर	अन्तर्मुहूर्त
उत्तरप्रकृति		
५ ज्ञानावरण	३० कोडाकोडी सागर	अन्तर्मुहूर्त
९ दर्शनावरण	३० कोडाकोडी सागर	अन्तर्मुहूर्त
५ निद्रा	३० कोडाकोडी सागर	अन्तर्मुहूर्त
५ अंतराय	३० कोडाकोडी सागर	अन्तर्मुहूर्त
वेदनीयकर्म		
असातावेदनीय	३० कोडाकोडी सागर	३/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
सातावेदनीय	१५ कोडाकोडी सागर	१२ मुहूर्त
मोहनीयकर्म		
मिथ्यात्व	७० कोडाकोडी सागर	१ सागर
१६ कषाय	४० कोडाकोडी सागर	सं.क्रोध, मान, माया लोभ २ मास,१ मास,अर्धमास,अन्तर्मुहूर्त
हास्य, रति	१० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
शोक, अरति भय, जुगुप्सा	२० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
पुंवेद	१० कोडाकोडी सागर	८ वर्ष
स्त्रीवेद	१५ कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
नपुंसकवेद	२० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)

प्रकृति	उत्कृष्ट स्थितिबंध	जघन्य स्थितिबंध
आयु		
तिर्यंचायु	३ पल्य	अन्तर्मुहूर्त
मनुष्यायु	३ पल्य	अन्तर्मुहूर्त
देवायु	३३ सागर	१० हजार वर्ष
नरकायु	३३ सागर	१० हजार वर्ष
नामकर्म		
नरकद्विक	२० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
तिर्यंचद्विक	२० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
मनुष्यद्विक	१५ कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
देवद्विक	१० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
एकेन्द्रिय	२० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
विकलत्रय	१८ कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
पंचेन्द्रिय	२० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
औदारिकद्विक	२० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
वैक्रियिकद्विक	२० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
तैजसद्विक	२० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
आहारकद्विक	अंत: कोडाकोडी सागर	अंत: कोडाकोडी सागर
हुंडक संस्थान	२० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
सृपाटिका संहनन	२० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
वामन संस्थान	१८ कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
कीलित संहनन	१८ कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
कुब्जक संस्थान	१६ कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
अर्धनाराचसंहनन	१६ कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
स्वातिसंस्थान,	१४ कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
नाराच संहनन	१४ कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
न्यग्रोधसंस्थान,	१२ कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
वज्रनाराचसंहनन	१२ कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)

प्रकृति	उत्कृष्ट स्थितिबंध	जघन्य स्थितिबंध
समचतुरस्रसंस्थान	१० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
वज्रर्षभनाराचसंहनन	१० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
वर्णचतुष्क	२० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
अगुरुलघुचतुष्क	२० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
अप्रशस्तविहायोगति	२० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
आतप, उद्योत	२० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
प्रशस्त विहायोगति	१० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
त्रसचतुष्क	२० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
स्थावर	२० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
सूक्ष्मत्रय	१८ कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
अस्थिरषट्क	२० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
स्थिरषट्क	१० कोडाकोडी सागर	यश:कीर्ति ८ मुहूर्त, शेष ऊपरवत्
निर्माण	२० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
तीर्थंकर	अंत: कोडाकोडी सागर	अंत: कोडाकोडी सागर
गोत्र		
नीचगोत्र	२० कोडाकोडी सागर	२/७ सागर-(पल्य ÷ असंख्यात)
उच्चगोत्र	१० कोडाकोडी सागर	८ मुहूर्त

सव्वट्ठिदीणमुक्कस्सओ दु उक्कस्ससंकिलेसेण ।
विवरीदेण जहण्णो आउगतियवज्जियाणं तु ।।१३४।।

अन्वयार्थ-(आउगतियवज्जियाणं) तीन आयुओं को छोड़कर शेष **(सव्वट्ठिदीणमुक्कस्सओ)** सर्व प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध **(उक्कस्ससंकिलेसेण)** उत्कृष्ट संक्लेशपरिणामों से होता है। **(जहण्णो)** तथा जघन्य स्थितिबन्ध **(विवरीदेण)**

विपरीत अर्थात् उत्कृष्ट विशुद्ध परिणाम से होता है।

विशेषार्थ - नरकायु को छोड़कर शेष तीन आयुओं का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशुद्ध परिणाम से और जघन्य स्थितिबन्ध संक्लेशपरिणाम से होता है।

प्रकृति	उत्कृष्ट स्थितिबंधकारण	जघन्यस्थितिबंधकारण
मनुष्यायु, तिर्यंचायु, देवायु	उत्कृष्टविशुद्ध परिणाम	जघन्यविशुद्धपरिणाम
शेष ११७ प्रकृतियाँ	उत्कृष्टसंक्लेश परिणाम	उत्कृष्टविशुद्धपरिणाम

सव्वुक्कस्सठिदीणं मिच्छाइट्ठी दु बंधगो भणिदो।
आहारं तित्थयरं देवाउं चावि मोत्तूण ।।१३५।।

अन्वयार्थ -(आहारं) आहारकद्विक **(तित्थयरं)** तीर्थंकर **(वा)** और **(देवाउ)** देवायु को **(विमोत्तूण)** छोड़कर शेष **(सव्वुक्कस्सठिदीणं)** सर्व प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थितियों का **(बंधगो)** बंधक **(मिच्छादिट्ठी दु)** मिथ्यादृष्टि को ही **(भणिदो)** कहा हैं।

विशेषार्थ - १) उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संज्ञी पंचेन्द्रियपर्याप्त जीवों को ही होता है।

२) आहारक २, तीर्थंकर और देवायु इन ४ प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सम्यग्दृष्टि को होता है। शेष ११६ प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मिथ्यादृष्टि जीवों को ही होता है।

देवाउगं पमत्तो आहारयमप्पमत्तविरदो दु ।
तित्थयरं च मणुस्सो अविरदसम्मो समज्जेइ ।।१३६।।

अन्वयार्थ -(देवाउगं) देवायु की उत्कृष्ट स्थिति को **(पमत्तो)** प्रमत्त गुणस्थानवाला जीव **(आहारयं)** आहारकद्विक की उत्कृष्टस्थिति को **(अप्पमत्तविरदो)** अप्रमत्तविरत जीव **(च)** और **(तित्थयरं)** तीर्थंकर की उत्कृष्ट स्थिति को **(अविरदसम्मो मणुस्सो)** अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्य **(समज्जेइ)** बांधता है।

णरतिरिया सेसाउं वेगुव्वियछक्कवियलसुहुमतियं ।
सुरणिरया ओरालियतिरियदुगुज्जोवसंपत्तं ।।१३७।।

अन्वयार्थ- (सेसाउं) देवायु बिना शेष तीन आयु **(वेगुव्वियछक्क)** वैक्रियिक

षट्क **(वियलतियं)** विकलत्रय और **(सुहुमतियं)** सूक्ष्मत्रिक इनका उत्कृष्ट स्थितिबंध **(णरतिरिया)** मनुष्य और तिर्यञ्च जीव ही करते हैं। **(ओरालियतिरियदुगुज्जोवसंपत्तं)** औदारिकद्विक, तिर्यञ्चद्विक, उद्योत, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन की उत्कृष्टस्थिति **(सुरणिरया)** मिथ्यादृष्टि देव और नारकीजीव बांधते हैं।

देवा पुण एइंदिय आदावं थावरं च सेसाणं ।
उक्कस्ससंकिलिट्ठा चदुगदिया ईसिमज्झिमया ।।१३८।।

अन्वयार्थ - (पुण एइंदिय आदावं थावरं च) एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर इन प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति **(देवा)** मिथ्यादृष्टि देव बांधते हैं। **(सेसाणं)** शेष ९२ प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति **(उक्कस्ससंकिलिट्ठा)** उत्कृष्ट संक्लेशवाले और **(ईसिमज्झिमया)** ईषत्मध्यम संक्लेश परिणाम वाले **(चदुगदिया)** चारों गतियों के जीव बांधते हैं।

विशेषार्थ - उत्कृष्ट ईषत् मध्यम संक्लेश परिणामों की उपपत्ति -

उत्कृष्ट स्थितिबन्ध के योग्य असंख्यातलोक परिणामों के पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र खण्ड करना। उन खण्डों में चरमखण्ड का नाम उत्कृष्ट संक्लेश है और प्रथम खण्ड को ईषत्संक्लेश कहते हैं। दोनों के बीच के खण्डों को मध्यमसंक्लेश कहते हैं।
इसीप्रकार शेष सब स्थिति के विकल्पों में जानना।

	प्रकृति	उत्कृष्ट स्थितिबंध का स्वामी जीव
	देवायु	अप्रमत्त गुणस्थान के अभिमुख प्रमत्तसंयत मुनि
	आहारकद्विक	प्रमत्तगुणस्थान के अभिमुख संक्लेश परिणामी अप्रमत्त
	तीर्थंकर	नरकगति में जानेके अभिमुख असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य
१५	नरक,तिर्यग् मनुष्यायु वैक्रियिकषट्क विकलत्रय, सूक्ष्मत्रय	मिथ्यादृष्टि मनुष्य अथवा तिर्यंच
६	औदारिकद्विक,तिर्यंचद्विक उद्योत, सृपाटिकासंहनन	मिथ्यादृष्टि देव अथवा नारकी
३	एकेंद्रिय,स्थावर,आतप	मिथ्यादृष्टि देव
९२	११६-२४ =९२ प्रकृतियाँ	उत्कृष्ट संक्लेशवाले अथवा ईषत्मध्यमसंक्लेशवाले चारों गति के जीव
११६		

जैसे अंकसंदृष्टि में स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान ३०७२, स्थितिविकल्प १६ , संख्यात = ३

$$\frac{\text{सर्वधन}}{\text{पदका वर्ग} \times \text{संख्यात}} = \text{चय} \qquad \frac{३०७२}{१६\times१६\times३} = \frac{३०७२}{२५६\times३} = ४ \text{ चय}$$

(ऊपर: १२)

$$\frac{\text{पद} - १}{२} \times \text{चय} \times \text{गच्छ} = \text{चयधन} \qquad \frac{१५}{२} \times ४ \times १६ = ४८० \text{ चयधन}$$

सर्वधन-चयधन = आदिधन

३०७२ - ४८० = २५९२

$$\frac{\text{आदिधन}}{\text{पद}} = \text{जघन्य स्थितिबंध के कारणभूत परिणाम संख्या}$$

$$\frac{२५९२}{१६} = १६२ \text{ जघन्य स्थितिबंध के कारणभूत परिणाम संख्या}$$

जघन्यस्थितिबंध कारणपरिणाम संख्या + चय = द्वितीयस्थितिबंधके कारणभूत परिणाम

१६२ + ४ = १६६ द्वितीय स्थितिबंध के कारणभूत परिणाम

इस प्रकार एक एक चय बढानेपर तृतीय चतुर्थादि उत्कृष्ट स्थितिपर्यन्त के कारणभूत परिणामों का प्रमाण आता है।

एक एक स्थिति विकल्प के कारणभूत परिणामों के अनुकृष्टि खंड करने का विधान -

तिर्यक्‌गच्छ (अनुकृष्टिपद) = ४ माना

ऊर्ध्वचय ÷ अनुकृष्टिपद = तिर्यक्‌चय = ४ ÷ ४ = १

$$\frac{\text{पद} - १}{२} \times \text{चय} \times \text{गच्छ} = \text{चयधन} \qquad \frac{३}{२} \times १ \times ४ = ६ \text{ अनुकृष्टि चयधन}$$

जघन्य स्थितिकारणभूत परिणाम (सर्वधन) - चयधन = अनुकृष्टि आदिधन

१६२ - ६ = १५६

आदिधन ÷ अनुकृष्टि गच्छ = प्रथमखंड १५६ ÷ ४ = ३९

इसमें एक एक तिर्यक्‌चय बढ़ानेपर द्वितीयादि खण्ड होतें हैं ४०।४१।४२

	स्थिति-विकल्प	स्थिति	परिणाम सं. अर्थसं.	परिणाम सं. अंकसं.	जघन्य	द्वितीय	तृतीय	उत्कृष्ट
१६	उत्कृष्ट	पल्य×संख्यात×संख्यात प११	≡ ∂	२२२	५४	५५	५६	५७
१५	उत्कृष्ट-१	पल्य×संख्यात×संख्यात-१ प^{१}११	≡ ∂	२१८	५३	५४	५५	५६
१४	उत्कृष्ट-२	पल्य×संख्यात×संख्यात-२ प^{२}११	≡ ∂	२१४	५२	५३	५४	५५
१३	उत्कृष्ट-३	पल्य×संख्यात×संख्यात-३ प^{३}११	≡ ∂	२१०	५१	५२	५३	५४
१२	०	०	≡ ∂	२०६	५०	५१	५२	५३
११	०	०	≡ ∂	२०२	४९	५०	५१	५२
१०	कुलस्थितिविकल्प		≡ ∂	१९८	४८	४९	५०	५१
९	०	० प$^{१ १}$१	≡ ∂	१९४	४७	४८	४९	५०
८	०	० ०	≡ ∂	१९०	४६	४७	४८	४९
७	०	० ०	≡ ∂	१८६	४५	४६	४७	४८
६	०	० ०	≡ ∂	१८२	४४	४५	४६	४७
५	०	० ०	≡ ∂	१७८	४३	४४	४५	४६
४	जघन्य+३	पल्य×संख्यात+३ प^{३}१	≡ ∂	१७४	४२	४३	४४	४५
३	जघन्य+२	पल्य×संख्यात+२ प^{२}१	≡ ∂	१७०	४१	४२	४३	४४
२	जघन्य+१	पल्य×संख्यात+१ प^{१}१	≡ ∂	१६६	४०	४१	४२	४३
१	जघन्य	पल्य×संख्यात प१	≡ ∂	१६२	३९	४०	४१	४२
					ज.ईषत् संक्लेश	मध्यम संक्लेश		उत्कृष्ट संक्लेश

आगे मूलप्रकृति के जघन्य स्थितिबन्ध को कहते हैं—

बारस य वेयणीये णामागोदे य अट्ठ य मुहुत्ता।
भिण्णमुहुत्तं तु ठिदी जहण्णयं सेसपंचण्हं ।।१३९।।

अन्वयार्थ - (वेयणीये) वेदनीय कर्म का जघन्य स्थितिबन्ध**(बारस मुहुत्ता)** बारह मुहूर्त है **(य)** और **(णामागोदे)** नाम व गोत्रकर्म का **(अट्ठ)** आठ मुहूर्त है **(सेसपंचण्हं)** अवशेष पाँच कर्मों का **(जहण्णयं ठिदी)** जघन्य स्थितिबंध **(भिण्णमुहुत्तं तु)** भिन्नमुहूर्त अर्थात् अन्तर्मुहूर्त है।

अब उत्तरप्रकृतियों का जघन्य स्थितिबन्ध कहते हैं —

लोहस्स सुहुमसत्तरसाणं ओघं दुगेक्कदलमासं ।
कोहतिये पुरिसस्स य अट्ठ य वस्सा जहण्णठिदी ।।१४०।।

अन्वयार्थ - (लोहस्स) लोभ और (**सुहुमसत्तरसाणं**) सूक्ष्मसांपराय में बन्धनेवाली सतरह प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध **(ओघं)** अपनी अपनी मूलप्रकृतियों के समान है। **(कोहतिये)** संज्वलन क्रोध, मान, माया का क्रम से (**दुगेक्कदलमासं**) दो मास, एक मास और पन्द्रह दिन है **(य)** और **(पुरिसस्स)** पुरुषवेद की **(जहण्णठिदि)** जघन्य स्थिति **(अट्ठ य वस्सा)** आठ वर्ष है।

तित्थाहाराणंतोकोडाकोडीजहण्णठिदिबंधो ।
खवगे सगसगबंधणछेदणकाले हवे णियमा ।।१४१।।

अन्वयार्थ -(तित्थाहाराण) तीर्थंकर और आहारकद्विक का **(जहण्णठिदिबंधो)** जघन्य स्थितिबंध **(अंतोकोडाकोडी)** अन्त:कोडाकोडीसागर प्रमाण है। वह **(खवगे)** क्षपकश्रेणी में **(सगसगबंधणछेदणकाले)** अपनी अपनी बन्धव्युच्छित्ति के समय **(णियमा)** नियम से **(हवे)** होता है।

भिण्णमुहुत्तो णरतिरिआऊणं वासदससहस्साणि ।
सुरणिरय आउगाणं जहण्णओ होदि ठिदिबंधो ।।१४२।।

अन्वयार्थ -(णरतिरिआऊणं) मनुष्यायु और तिर्यञ्चायु का जघन्य स्थितिबंध (**भिण्णमुहुत्तो**) अन्तर्मुहूर्त (श्वास का अठारहवाँ भाग) और **(सुरणिरय आउगाणं)** देवायु और नरकायु का **(जहण्णओ ठिदिबंधो)** जघन्य स्थितिबंध **(वासदस-सहस्साणि)** दशहजार वर्ष प्रमाण **(होदि)** है।

सेसाणं पज्ञत्तो बादरएइंदियो विसुद्धो य ।
बंधदि सव्वजहण्णं सगसग उक्कस्सपडिभागे ।।१४३।।

अन्वयार्थ -(सेसाणं) उपर्युक्त गाथाओं में वर्णित २९ प्रकृतियों के बिना शेष ९१ प्रकृतियों में से ८४ प्रकृतियों का **(विसुद्धो बादरएइंदियो)** विशुद्ध बादर एकेन्द्रिय जीव **(सगसग उक्कस्सपडिभागे)** अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति के प्रतिभाग में **(सव्वजहण्णं)** सब से जघन्य स्थिति को **(बंधादि)** बांधता है।

विषयार्थ - दसवें गुणस्थान में बन्धयोग्य १७ प्रकृतियाँ, ४ कषाय, तीर्थंकर, आहारकद्विक, ४ आयु, पुरुषवेद इन २९ प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध पूर्व में (कोष्टक में) बताया है। शेष९१ प्रकृतियों में से वैक्रियिक षट्क और मिथ्यात्व के बिना ८४ प्रकृतियों की जघन्य स्थिति को बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त उसके योग्य विशुद्धता का धारक होकर बाँधता है। वह अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति के प्रतिभाग द्वारा त्रैराशिक विधान के अनुसार बाँधता है।

जघन्यस्थिति की विधि और प्रमाण दिखाते हैं—

एयं पणकदि पण्णं सयं सहस्सं च मिच्छवरबंधो।
इगिविगलाणं अवरं पल्लासंखूणसंखूणं ।।१४४।।

अन्वयार्थ - (इगिविगलाणं) एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों के **(मिच्छवरबंधो)** मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध क्रम से **(एयं)** एक सागर **(पणकदि)** पच्चीस सागर **(पण्णं)** पचास सागर **(सयं)** सौ सागर **(च)** और **(सहस्सं)** हजार सागर होता है **(अवरं)** जघन्य स्थितिबंध एकेन्द्रिय जीव अपनी उत्कृष्ट स्थिति से **(पल्लासंखूण)** पल्य के असंख्यातवें भाग कम और द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपनी अपनी उत्कृष्टस्थिति से **(पल्लसंखूण)** पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण कम बांधता है।

विशेषार्थ - उत्कृष्ट स्थिति में से एक कम स्थितिविकल्पों को घटाने पर एकेन्द्रियादि में मोहनीय की जघन्य स्थिति का प्रमाण आता है,

$$\text{जैसे एक सागर} - \left(\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}} - १\right) = \text{जघन्य स्थिति}$$

एकेन्द्रियादि में मिथ्यात्वप्रकृति की उत्कृष्ट और जघन्यस्थिति का प्रमाण

जीव	उत्कृष्ट स्थिति	संदृष्टि	जघन्य स्थिति	संदृष्टि
एकेन्द्रिय	एक सागर	सा १	उत्कृष्टस्थिति- (पल्य का असंख्यातवा भाग - १)	$\text{सा१}_{\cup}\frac{\text{१ प}}{\partial}$
द्वीन्द्रिय	पच्चीससागर	सा २५	उत्कृष्टस्थिति-$\left(\frac{\text{पल्य}}{\text{संख्यात ४ बार}} - \text{१}\right)$	$\text{सा२५}_{\cup}\frac{\text{१ प}}{\text{२।४}}$
त्रीन्द्रिय	पचाससागर	सा ५०	उत्कृष्टस्थिति-$\left(\frac{\text{पल्य}}{\text{संख्यात ३ बार}} - \text{१}\right)$	$\text{सा५०}_{\cup}\frac{\text{१ प}}{\text{२।३}}$
चतुरिन्द्रिय	सौ सागर	सा १००	उत्कृष्टस्थिति-$\left(\frac{\text{पल्य}}{\text{संख्यात २ बार}} - \text{१}\right)$	$\text{सा१००}_{\cup}\frac{\text{१ प}}{\text{२।२}}$
असंज्ञी पंचेंद्रिय	हजारसागर	सा१०००	उत्कृष्टस्थिति-$\left(\frac{\text{पल्य}}{\text{संख्यात १ बार}} - \text{१}\right)$	$\text{सा१०००}_{\cup}\frac{\text{१ प}}{\text{२।१}}$
संज्ञी पंचेंद्रिय	७०कोडाकोडी सागर	सा ७० को.२	अंत:कोडाकोडीसागर	सा अंत: को२

जदि सत्तरिस्स एत्तियमेत्तं किं होदि तीसियादीणं ।
इदि संपादे सेसाणं इगिविगलेसु उभयठिदी ।।१४५।।

अन्वयार्थ - (जदि) यदि **(सत्तरिस्स)** ७० कोडाकोडीसागर स्थितिवाले मिथ्यात्व का **(एत्तियमेत्तं)** इतना स्थितिबंध होता है तो **(तीसियादीणं)** तीस कोडाकोडीसागर आदि स्थितिवाले कर्मों का **(किं)** कितना स्थितिबंध **(होदि)** होता है **(इदि)** इस प्रकार **(संपादे)** त्रैराशिक करने पर **(इगिविगलेसु)** एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों में **(सेसाणं)** शेष प्रकृतियों की **(उभयठिदी)** उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति का प्रमाण निकल आता है।

विशेषार्थ - संज्ञी पंचेन्द्रिय के उत्कृष्ट स्थितिबन्ध की अपेक्षा एकेन्द्रियादिक के उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति बन्ध का प्रमाण निकालते हैं।

सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवाले मिथ्यात्व का यदि एकेन्द्रिय जीव

एक सागर प्रमाण बन्ध करता है तो तीस कोडाकोडीसागर आदि प्रमाण स्थितिवाले कर्मों का कितना बन्ध करता है ऐसा त्रैराशिक करना चाहिये।

	प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्धराशि
ज्ञानवरणादि ३+अंतरायकी	सा७० को.२	१ सागर	सा ३०को.२?	$\frac{\text{सा१} \times \text{सा ३० को.२}}{\text{सा ७० को.२}} = \text{सा}\frac{३}{७}$
चारित्रमोहनीय	सा७० को२	१ सागर	सा ४०को २?	$\frac{\text{सा१} \times \text{सा ४० को.२}}{\text{सा ७० को.२}} = \text{सा}\frac{४}{७}$
नाम, गोत्र	सा७० को२	१ सागर	सा २०को २?	$\frac{\text{सा१} \times \text{सा २० को.२}}{\text{सा ७० को.२}} = \text{सा}\frac{२}{७}$

इसी प्रकार पच्चीस, पचास, सौ और हजार सागर इन चार को फलराशि करके द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञीपञ्चेन्द्रिय के क्रम से स्थितिबन्ध निकालना चाहिये।

त्रैराशिक से सिद्ध उत्कृष्ट स्थितिबन्ध

जीव	चालीसिय चारित्रमोहनीय का उ.स्थिति बन्ध	तीसिय का उ.स्थितिबन्ध ज्ञानावरणादि ३, अंतराय	वीसिय का उ.स्थिति-बन्ध नामगोत्र
एकेन्द्रिय	$\text{सा}\frac{४}{७}$	$\text{सा}\frac{३}{७}$	$\text{सा}\frac{२}{७}$
द्वीन्द्रिय	$\text{सा२५} \times \frac{४}{७} \left(\frac{\text{१०० सा}}{७}\right)$	$\text{सा२५} \times \frac{३}{७} \left(\frac{\text{सा ७५}}{७}\right)$	$\text{सा२५} \times \frac{२}{७} \left(\frac{\text{सा ५०}}{७}\right)$
त्रीन्द्रिय	$\text{सा ५०} \times \frac{४}{७} \left(\frac{\text{सा २००}}{७}\right)$	$\text{सा ५०} \times \frac{३}{७} \left(\frac{\text{सा १५०}}{७}\right)$	$\text{सा ५०} \times \frac{२}{७} \left(\frac{\text{सा १००}}{७}\right)$
चतुरि-न्द्रिय	$\text{सा१००} \times \frac{४}{७} \left(\frac{\text{सा ४००}}{७}\right)$	$\text{सा१००} \times \frac{३}{७} \left(\frac{\text{सा ३००}}{७}\right)$	$\text{सा१००} \times \frac{२}{७} \left(\frac{\text{सा २००}}{७}\right)$
असंज्ञी पंचेन्द्रिय	$\text{सा१०००} \times \frac{४}{७} \left(\frac{\text{सा ४०००}}{७}\right)$	$\text{सा१०००} \times \frac{३}{७} \left(\frac{\text{सा ३०००}}{७}\right)$	$\text{सा१०००} \times \frac{२}{७} \left(\frac{\text{सा २०००}}{७}\right)$

आबाधा की कुछ विशेषता दिखाते हैं—

सण्णि असण्णिचउक्के एगे अंतोमुहुत्तमाबाहा ।
जेट्ठे संखेज्जगुणा आवलिसंखं असंखभागहियं ।।१४६।।

अन्वयार्थ -(सण्णि) संज्ञी जीव **(असण्णिचउक्के)** असंज्ञीचतुष्क **(एगे)** एकेन्द्रिय में **(आबाधा)** जघन्य आबाधा **(अंतोमुहुत्तं)** अन्तर्मुहूर्त है **(जेट्ठे)** उत्कृष्ट आबाधा संज्ञी जीवों में अपनी जघन्य आबाधा से **(संखेज्जगुणा)** संख्यातगुणी, असञ्ज्ञीचतुष्क में **(आवलिसंखं)** जघन्य आबाधा से आवली के संख्यातवें भाग अधिक तथा एकेन्द्रिय में **(असंखभागहियं)** जघन्य आबाधा से आवलि के असंख्यातवें भाग अधिक जानना।

एकेन्द्रियादिक के उत्कृष्ट व जघन्य आबाधा का प्रमाण

जीव	जघन्य आबाधा	उत्कृष्ट आबाधा	
एकेन्द्रिय	अन्तर्मुहूर्त २१	जघन्य आबाधा + आवली / असंख्यात	२ ∂ २१
द्वीन्द्रिय	अन्तर्मुहूर्त×२५ २१।२५	जघन्य आबाधा + आवली / संख्यात चारबार	२ ११११ २१।२५
त्रीन्द्रिय	अन्तर्मुहूर्त×५० २१।५०	जघन्य आबाधा + आवली / संख्यात तीनबार	२ १११ २१।५०
चतु-रिन्द्रिय	अन्तर्मुहूर्त×१०० २१।१००	जघन्य आबाधा + आवली / संख्यात दोबार	२ ११ २१।१००
असंज्ञी पंचेंद्रिय	अन्तर्मुहूर्त×१००० २१।१०००	जघन्य आबाधा + आवली / संख्यात	२ १ २१।१०००
संज्ञी पंचेंद्रिय	अन्तर्मुहूर्त×संख्यात २११	जघन्य आबाधा × संख्यात	२११।४

विशेषार्थ - अर्थसंदृष्टि में अधिक संख्या ऊपर लिखने की पद्धति है अत: अंतर्मुहूर्त के ऊपर आवली का असंख्यातवाँ भाग अधिक आदि संख्या लिखी है।

$$\text{आबाधा विकल्प} = \left\{\frac{\overset{\text{उत्कृष्ट - जघन्य}}{\text{अन्त-आदि}}}{\text{वृद्धि}}\right\} + \text{वृद्धि} = $$ कुल विकल्प (भेद) निकालने का सूत्र

इस सूत्र के द्वारा सब के आबाधा विकल्प निकालते हैं।

एकेन्द्रिय के आबाधा विकल्प = (उत्कृष्ट आबाधा - जघन्य आबाधा) + १

$$\underset{\text{उत्कृष्ट}}{\overset{\overset{२}{\partial}}{२१}} - \underset{\text{जघन्य}}{२१} = \underset{\partial}{२} + १ = \underset{\partial}{२}^{१-}$$

अन्तर्मुहूर्त में से अन्तर्मुहूर्त कम हो गया। अधिक जो आवली का असंख्यातवाँ भाग वह शेष रहा। उसमें वृद्धि एक की है क्यों कि जघन्य से लेकर उत्कृष्टतक एक एक समय से आबाधा बढ़ती हुई पायी जाती है। एक का भाग देनेपर वही संख्या रही। उसमें एक मिलाया। इसी प्रकार द्वीन्द्रियादिक के आबाधा विकल्प निकालना।

द्वीन्द्रिय के आबाधा विकल्प $\underset{\text{उत्कृष्ट}}{\overset{\overset{२}{१११}}{२१।२५}} - \underset{\text{जघन्य}}{२१।२५} = \underset{१११}{२} + १ = \boxed{\begin{matrix}१-\\२\\२१।४\end{matrix}}$

त्रीन्द्रिय के आबाधा विकल्प $\underset{\text{उत्कृष्ट}}{\overset{\overset{२}{१११}}{२१।५०}} - \underset{\text{जघन्य}}{२१।५०} = \underset{१११}{२} + १ = \boxed{\begin{matrix}१-\\२\\२१।३\end{matrix}}$

चतुरिन्द्रिय के आबाधा विकल्प $\underset{\text{उत्कृष्ट}}{\overset{\overset{२}{११}}{२१}}।१०० - \underset{\text{जघन्य}}{२१।१००} = \underset{११}{२} + १ = \boxed{\begin{matrix}१-\\२\\२१।२\end{matrix}}$

असंज्ञीपंचेन्द्रिय के आबाधाविकल्प $\underset{\text{उत्कृष्ट}}{\overset{\overset{२}{१}}{२१}}।१००० - \underset{\text{जघन्य}}{२१।१०००} = \underset{१}{२} + १ = \boxed{\begin{matrix}१-\\२\\१\end{matrix}}$

संज्ञीपंचेन्द्रिय के आबाधाविकल्प २ ११ । ४ - २११ = २ ११ $|^{१ \frown}$४ + १ = $\boxed{१ \text{——} \; २११^{१ \frown}|४}$

समान संख्याओं को अलग निकालकर शेष रहे चार गुणकार के ऊपर ऋणराशि का १ गुणकार घाटि करना और शेष सर्व संख्या में एक मिलाना।

जघन्य स्थितिबन्ध को सिद्ध करने के लिये गणितसूत्र कहते हैं—

जेट्ठाबाहोवट्टियजेट्ठं आबाहकंडयं तेण ।
आबाहवियप्पहदेणेगूणेणूण जेट्ठमवरठिदी ।।१४७।।

अन्वयार्थ - (जेट्ठाबाहोवट्टियजेट्ठं) उत्कृष्ट आबाधा से भाजित उत्कृष्ट स्थिति को **(आबाहकंडयं)** आबाधा काण्डक कहते हैं **(तेण)** उस आबाधाकांडक से **(आबाहवियप्पहदेण)** आबाधा विकल्प को (आबाधा भेदों को) गुणा करनेपर जो प्राप्त हो उसमें से **(एगूणेण)** एक कम करके जो प्रमाण आवे उसे **(ऊणजेट्ठं)** उत्कृष्ट स्थिति में से घटाने पर **(अवरठिदी)** जघन्यस्थिति का प्रमाण आता है।

विशेषार्थ - जघन्यस्थितिबन्ध का प्रमाण निकालने का सूत्र -

$$\frac{\text{उत्कृष्ट स्थिति}}{\text{उत्कृष्ट आबाधा}} = \text{आबाधाकांडक}$$

जैसे उत्कृष्टस्थिति ६४ मानी, उत्कृष्ट आबाधा १६ $\frac{६४}{१६}$ = ४ आबाधाकांडक

जघन्य स्थिति = उत्कृष्ट स्थिति - {(आबाधा कांडक × आबाधा विकल्प) - १}

६४ - {(४×५) - १} = ६४ - १९ = ४५ जघन्यस्थिति

आबाधाकांडक = जितने स्थितिविकल्पों में सदृश आबाधा होती है उतने स्थितिविकल्पों को एक आबाधाकांडक कहते हैं। उत्कृष्टस्थिति में उत्कृष्ट आबाधा का भाग देनेपर आबाधा कांडक का प्रमाण आता है जैसे $\frac{६४}{१६}$ = ४ अर्थात् ६४ से लेकर ४ स्थितिभेदों की १६ ही आबाधा रहेगी।

६४,६३,६२,६१ इन चार स्थितिभेदों में १६ समय ही आबाधा रहेगी।
६०,५९,५८,५७ इन चार स्थितिभेदों में १५ समय ही आबाधा रहेगी।
५६,५५,५४,५३ इन चार स्थितिभेदों में १४ समय ही आबाधा रहेगी।
५२,५१,५०,४९ इन चार स्थितिभेदों में १३ समय ही आबाधा रहेगी।
४८,४७,४६,४५ इन चार स्थितिभेदों में १२ समय ही आबाधा रहेगी।

कुल आबाधा विकल्प = १६-१२ = ४+१ = $\boxed{५}$

एकेन्द्रिय के मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति — उपर्युक्त सूत्रानुसार—

उत्कृष्ट स्थिति - {(आबाधा कांडक×आबाधा विकल्प) - १} = जघन्यस्थिति

अंकसंदृष्टि — ६४ - {(४ × ५) - १} = ६४ - १९ = $\boxed{४५}$ = जघन्यस्थिति

अर्थसंदृष्टि — उत्कृष्ट आबाधा $२१ + \frac{२}{\partial}$ = यहाँ २ आवली सदृश है उसे रखकर धनराशि में $\frac{१}{\partial}$ भाग शेष रहता है उसे संख्यात गुणकार के ऊपर साधिक करना २१ यह उत्कृष्ट आबाधा है।

$$\frac{\text{उत्कृष्ट स्थिति}}{\text{उत्कृष्ट आबाधा}} = \text{आबाधाकांडक}$$

एकेन्द्रिय की उत्कृष्टस्थिति एक सागर, इसका पल्य में रूपांतर करनेपर संख्यातपल्यमात्र प११ होते हैं।

$$\boxed{\frac{प११}{२१}} \longrightarrow \text{आबाधाकाण्डक}$$

आबाधाकाण्डक ×आबाधाविकल्प = $\frac{प११}{२१} \times \frac{१-}{\frac{२}{\partial}}$ इसका अपवर्तन करनेपर पल्य का असंख्यातवा भाग आता है $\frac{प}{\partial}$

इसमें एक कम करके उत्कृष्ट स्थिति में से घटानेपर जघन्यस्थिति का प्रमाण आता है।

$$\text{सा} - \frac{प}{\partial}\,^{१\frown} = \boxed{\text{सा}\ \frac{प}{\partial}\,^{१\frown}\,)} \longrightarrow \text{एकेन्द्रिय की जघन्यस्थिति}$$

$$\left\{\frac{\text{उत्कृष्टस्थिति - जघन्यस्थिति}}{१}\right\} + १ = \text{स्थितिविकल्प}$$

अंकसंदृष्टि $\longrightarrow \frac{६४-४५}{१} = १९ + १ = \boxed{२०}$ स्थितिविकल्प

अर्थसंदृष्टि $\longrightarrow \left(\frac{\text{सा-सा}}{१^{⌒}\,\text{प}\,\partial}\right) = \frac{१^{⌒}}{\text{प}\,\partial} + १ = \boxed{\text{प}\,\partial}$ एकेन्द्रिय के मिथ्यात्व के सर्व स्थितिविकल्प

द्वीन्द्रियजीव की मिथ्यात्व की जघन्यस्थिति $\longrightarrow$

उत्कृष्ट आबाधा = $\frac{२}{१११\,२१\,।२५}$ अपवर्तन करके $\frac{।}{२१\,।२५}$ $\frac{\text{उत्कृष्ट स्थिति}}{\text{उत्कृष्ट आबाधा}} = \boxed{\frac{\text{सा २५}}{२१\,।२५}}$

$\boxed{\text{सा}\;।\;२१}$ = आबाधाकाण्डक सागर के पल्य करने पर संख्यात पल्य होते हैं प१।

उत्कृष्ट स्थिति - $\left\{(\text{आबाधाकाण्डक} \times \text{आबाधा विकल्प}) - १\right\}$ = जघन्य स्थिति

$$\text{सा २५} - \left\{\left(\frac{\text{प१}}{।\,२१} \times \frac{१-\;२}{१११}\right) - १\right\}$$ अपवर्तन करनेपर $\frac{१^{⌒}}{\text{प}\;१११}$

$\boxed{\frac{\text{सा २५}}{१^{⌒}\;\text{प}\;१११}\Big)}$ $\longrightarrow$ द्वीन्द्रिय की जघन्य स्थिति

द्वीन्द्रिय के मिथ्यात्व के स्थितिविकल्प $\longrightarrow \left\{\frac{\text{उत्कृष्टस्थिति - जघन्य स्थिति}}{१}\right\} + १$

सा २५ - $\left(\text{सा २५} - \frac{१^{⌒}}{\text{प}\;१११}\right)$ पच्चीस सागर में से पच्चीस सागर गये

ऋण का ऋण राशि का धन होता है अत: शेष $\frac{१^{⌒}}{\text{प}\;१११} + १ = \boxed{\frac{\text{प}}{१११}}$ $\longrightarrow$ द्वीन्द्रिय के मिथ्यात्व के स्थितिविकल्प

एक घाटि और एक अधिक = ० (-१+१=०)

त्रीन्द्रिय की मिथ्यात्व की जघन्यस्थिति →

उत्कृष्ट आबाधा २ / १११ / २१।५० = २१।५० (।) आवली का संख्यातवाँ भाग अधिक है उसके लिए कुछ अधिक की '।' यह सहनानी की है।

उत्कृष्टस्थिति ÷ उत्कृष्ट आबाधा = सा ५० / २१।५० = सा / २१ → आबाधाकाण्डक

उत्कृष्टस्थिति - {(आबाधाकाण्डक × आबाधाविकल्प) - १} = जघन्यस्थिति

सा ५० - {सा / २१ × २ / १११ (१—)} सागर का पल्य में परिवर्तन करनेपर प१ / २१ × २ / १११ (१—) = प - १ / १११

१⌓ प / १११ इसे उत्कृष्टस्थिति में कम करना

| सा५० १⌓ प / १११ | = जघन्यस्थिति

स्थितिविकल्प = { सा ५० - {(सा ५० - १⌓ प / १११) } + १ = | प / १११ |

ऋण का ऋण राशि का धन होता है इसलिए पचास सागर में से ५० सागर को घटाया और १⌓ प / १११ शेष रह गया उसमें एक मिलानेपर -१+१= ०

चतुरिन्द्रिय की मिथ्यात्व की जघन्यस्थिति ⟶

उत्कृष्ट आबाधा २१। १०० + २ = २१ (।) / ११ । १००

उत्कृष्ट स्थिति ÷ उत्कृष्ट आबाधा सा १०० / २१।१०० = सा / २१ आबाधाकाण्डक। सागर का पल्य में रूपान्तर प१ / २१

उत्कृष्ट स्थिति -{ (आबाधाकाण्डक × आबाधाविकल्प) - १ } = जघन्यस्थिति

= सा १०० - {(प१ / २१ × २ / ११ (१—)) - १} = सा १०० - १⌓ प / ११

सा १०० $\overset{१}{}\frac{प}{११}$)

→ चतुरिन्द्रिय की जघन्यस्थिति

$$\text{स्थितिविकल्प} = \text{सा } १०० - \left(\text{सा}१०० - \overset{१}{}\frac{\text{प}}{११}\right) + १$$

$$= \left\{\text{सा } १०० - \text{सा } १०० + \overset{१}{}\frac{\text{प}}{११}\right\} + १ \quad = \boxed{\frac{\text{प}}{११}}$$

असंज्ञी पंचेन्द्रिय की मिथ्यात्व की जघन्यस्थिति -

$$\text{उत्कृष्ट आबाधा} = २१ \mid १००० + \frac{२}{१} = २१ \mid १०००$$

$$\frac{\text{उत्कृष्ट स्थिति}}{\text{उत्कृष्ट आबाधा}} = \frac{\text{सा } १०००}{२१ \mid १०००} = \frac{\text{सा}}{२१} \quad \text{आबाधाकाण्डक}$$

सागर का पल्य में रूपान्तर करने पर $\frac{\text{प}१}{२१}$

उत्कृष्ट स्थिति - {(आबाधाकाण्डक× आबाधाविकल्प) - १} = जघन्य स्थिति

$$\text{सा } १००० - \left\{\left(\frac{\text{प}१}{२१} \times \frac{२}{१}\right) - १\right\} = \frac{\text{प}}{१} - १ = \overset{१}{}\frac{\text{प}}{१}$$

सा १००० $\overset{१}{}\frac{प}{१}$)

→ असंज्ञी पंचेन्द्रिय की जघन्यस्थिति

$$\text{स्थितिविकल्प} = \left\{\text{सा } १००० - \left(\text{सा } १००० - \overset{१}{}\frac{\text{प}}{१}\right)\right\} + १$$

$$\left\{\text{सा } १००० - \text{सा } १००० + \overset{१}{}\frac{\text{प}}{१}\right\} + १ = \boxed{\frac{\text{प}}{१}}$$

स्थि.वि.	६४	६३	६२	६१	६०	५९	५८	५७	५६	५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५
निषेक र.	४८	४७	४६	४५	४५	४४	४३	४२	४२	४१	४०	३९	३९	३८	३७	३६	३६	३५	३४	३३
आबाधा	१६	१६	१६	१६	१५	१५	१५	१५	१४	१४	१४	१४	१३	१३	१३	१३	१२	१२	१२	१२

स्थिति में से आबाधा कम करनेपर जितनी स्थिति शेष रहती है उतनी ही निषेकरचना होती है। आबाधा में निषेकरचना नहीं होती।

इसी प्रकार एकेन्द्रिय आदिक के सब प्रकृतियों के जघन्य स्थितिबन्ध को लाना चाहिए। त्रैराशिकों के द्वारा उसे लाते हैं —

सत्तर कोडाकोडी सागर स्थितिवाले मिथ्यात्व कर्म का यदि एकेन्द्रिय जीव एक कम पल्य के असंख्यातवें भाग से हीन एक सागर प्रमाण जघन्य स्थितिबन्ध करता है तो चालीस कोडाकोडी सागर की स्थितिवाले कर्म की जघन्यस्थिति कितनी बाँधेगा ?

एकेन्द्रियकी जघन्यस्थिति	प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	$\frac{\text{प्रमाण} \times \text{इच्छा}}{\text{फल}}$ = लब्धराशि
चारित्र मोहनीय चालीसिय	सा ७० को.२	सा १ ⌓/प ∂	सा ४० को.२	= सा १ ⌓/प ∂ × सा ४० को.२ / सा ७० को.२ = सा १ ⌓/प ∂ ४/७
ज्ञानावरणादि ४ तीसिय	सा ७० को.२	सा १ ⌓/प ∂	सा ३० को.२	= सा १ ⌓/प ∂ × सा ३० को.२ / सा ७० को.२ = सा १ ⌓/प ∂ ३/७
नाम, गोत्र वीसिय	सा ७० को.२	सा १ ⌓/प ∂	सा २० को.२	= सा १ ⌓/प ∂ × सा २० को.२ / सा ७० को.२ = सा १ ⌓/प ∂ २/७
द्वीन्द्रिय की जघन्य स्थिति				
चारित्र मोहनीय चालीसिय	सा ७० को.२	सा २५ १ ⌓/प २।४	सा ४० को.२	= सा २५ १ ⌓/प २।४ × सा ४० को.२ / सा ७० को.२ = सा २५ १ ⌓/प २।४ ४/७
ज्ञानावरणादि ४ तीसिय	सा ७० को.२	सा २५ १ ⌓/प २।४	सा ३० को.२	= सा २५ १ ⌓/प २।४ × सा ३० को.२ / सा ७० को.२ = सा २५ १ ⌓/प २।४ ३/७
नाम, गोत्र वीसिय	सा ७० को.२	सा २५ १ ⌓/प २।४	सा २० को.२	= सा २५ १ ⌓/प २।४ × सा २० को.२ / सा ७० को.२ = सा २५ १ ⌓/प २।४ २/७
त्रीन्द्रिय की जघन्य स्थिति				
चारित्र मोहनीय चालीसिय	सा ७० को.२	सा ५० १ ⌓/प २।३	सा ४० को.२	सा ५० १ ⌓/प २।३ × सा ४० को.२ / सा ७० को.२ = सा ५० १ ⌓/प २।३ ४/७
ज्ञानावरणादि ४ तीसिय	सा ७० को.२	सा ५० १ ⌓/प २।३	सा ३० को.२	सा ५० १ ⌓/प २।३ × सा ३० को.२ / सा ७० को.२ = सा ५० १ ⌓/प २।३ ३/७

	प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	प्रमाण × इच्छा / फल = लब्धराशि
नाम, गोत्र वीसिय	सा ७० को.२	सा ५० १ — प) २।३	सा २० को.२	सा ५० १ — प) × सा २० को.२ / सा ७० को.२ = सा ५० १ — प) २/७ २।४ ... २।३
चतुरिन्द्रिय की जघन्य स्थिति				
चारित्र मोहनीय चालीसिय	सा ७० को.२	सा १०० १ — प) २।२	सा ४० को.२	= सा १०० १ — प) × सा ४० को.२ / सा ७० को.२ = सा १०० १ — प) ४/७ २।२ ... २।२
ज्ञानावरणादि ४ तीसिय	सा ७० को.२	सा १०० १ — प) २।२	सा ३० को.२	= सा १०० १ — प) × सा ३० को.२ / सा ७० को.२ = सा १०० १ — प) ३/७ २।२ ... २।२
नामगोत्र वीसिय	सा ७० को.२	सा १०० १ — प) २।२	सा २० को.२	सा १०० १ — प) × सा २० को.२ / सा ७० को.२ = सा १०० १ — प) २/७ २।२ ... २।२
असंज्ञीपंचेन्द्रिय की जघन्य स्थिति				
चारित्र मोहनीय चालीसिय	सा ७० को.२	सा १००० १ — प) २।	सा ४० को.२	= सा १००० १ — प) × सा ४० को.२ / सा ७० को.२ = सा १००० १ — प) ४/७ २। ... २।
ज्ञानावरणादि ४ तीसिय	सा ७० को.२	सा १००० १ — प) २।	सा ३० को.२	= सा १००० १ — प) × सा ३० को.२ / सा ७० को.२ = सा १००० १ — प) ३/७ २। ... २।
नामगोत्र वीसिय	सा ७० को.२	सा १००० १ — प) २।	सा २० को.२	सा १००० १ — प) × सा २० को.२ / सा ७० को.२ = सा १००० १ — प) २/७ २। ... २।

इसी प्रकार जिन कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति अठारह, सोलह, पन्द्रह, चौदह, बारह और दस कोडाकोडीसागर प्रमाण है उनके भी जघन्य स्थितिबन्ध का प्रमाण लाना चाहिये।

स्थितिविकल्प पीछे निकाले हुए	एकेन्द्रिय	द्वीन्द्रिय	त्रीन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय	असंज्ञीपंचेन्द्रिय	संज्ञिपंचेन्द्रिय
	प ∂	प २।४	प २।३	प २।२	प २	१— १ प ११

चौदह जीवसमासों में उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिबन्ध का विभाग करके दर्शाते हैं—

बासूप बासूअ वरट्ठिदीओ सूबाअ सूबापजहण्णकालो ।
बीबीवरो बीविजहण्णकालो सेसाणमेवं वयणीयमेदं ।१४८।

अन्वयार्थ - (बासूप बासूअ वरट्ठिदीओ) बादर पर्याप्त, सूक्ष्म पर्याप्त, बादर अपर्याप्त, सूक्ष्म अपर्याप्त, एकेन्द्रियों की उत्कृष्ट स्थिति **(सूबाअ सूबापजहण्णकालो)** सूक्ष्म अपर्याप्त, बादर अपर्याप्त, सूक्ष्म पर्याप्त, बादर पर्याप्त एकेन्द्रियों की जघन्य स्थिति **(बीबीवरो)** द्वीन्द्रिय पर्याप्त और द्वीन्द्रिय अपर्याप्त की उत्कृष्ट स्थिति **(बीविजहण्णकालो)** द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय पर्याप्त की जघन्य स्थिति जानना। **(एवं)** इसी प्रकार **(सेसाणं)** शेष त्रीन्द्रिय से संज्ञी पंचेन्द्रियपर्यन्त स्थिति के चार चार भेद **(एदं वयणीयम्)** कहना चाहिये।

विशेषार्थ - एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवों के स्थितिबन्ध के भेद

संदृष्टि संक्षिप्त	जीवसमास में उत्कृष्ट जघन्य स्थिति का भेद	अन्तराल की स्थिति शलाका	अन्तराल के स्थितिभेद	स्थिति बंध
१ बा.प.उ	बादर पर्याप्त एकेन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति			४६०२
		१९६	३९२	
२ सू.प.उ	सूक्ष्म पर्याप्त एकेन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति			४२११
		२८	५६	
३ बा.अ.उ	बादर अपर्याप्त एकेन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति			४१५५
		४	८	
४ सू.अ.उ	सूक्ष्म अपर्याप्त एकेन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति			४१४७
		१	२	
५ सू.अ ज	सूक्ष्म अपर्याप्त एकेन्द्रिय की जघन्य स्थिति			४१४५
		२	४	
६ बा.अ.ज	बादर अपर्याप्त एकेन्द्रिय की जघन्य स्थिति			४१४१

संदृष्टि संक्षिप्त	जीव समास में उत्कृष्ट जघन्य स्थिति का भेद	अन्तराल की स्थिति शलाका	अन्तराल के स्थिति भेद	स्थिति बंध
७ सू.प ज	सूक्ष्म पर्याप्त एकेन्द्रिय की जघन्य स्थिति	१४	२८	४१११३
८ बा.प ज	बादर पर्याप्त एकेन्द्रिय की जघन्य स्थिति	९८	१९६	३९११७
९ द्वी.प.उ	द्वीन्द्रिय पर्याप्त की उत्कृष्ट स्थिति	४	८	१००००
१० द्वी.अ.उ	द्वीन्द्रिय अपर्याप्त की उत्कृष्ट स्थिति	१	२	९९९३
११ द्वी.अ.ज	द्वीन्द्रिय अपर्याप्त की जघन्य स्थिति	२	४	९९९१
१२ द्वी.प.ज	द्वीन्द्रिय पर्याप्त की जघन्य स्थिति			९९८७
१३ त्री.प.उ	त्रीन्द्रिय पर्याप्त की उत्कृष्ट स्थिति	४	८	२००००
१४ त्री.अ.उ	त्रीन्द्रिय अपर्याप्त की उत्कृष्ट स्थिति	१	२	१९९९३
१५ त्री.अ.ज	त्रीन्द्रिय अपर्याप्तकी जघन्य स्थिति	२	४	१९९९१
१६ त्री.प.ज	त्रीन्द्रिय पर्याप्तकी जघन्य स्थिति			१९९८७
१७ चतु.प.उ	चतुरिन्द्रिय पर्याप्तकी उत्कृष्ट स्थिति	४	८	२५०००
१८ चतु.अ.उ	चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तकी उत्कृष्ट स्थिति	१	२	२४९९३
१९ चतु.अ.ज	चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तकी जघन्य स्थिति	२	४	२४९९१
२० चतु.प.ज	चतुरिन्द्रिय पर्याप्तकी जघन्य स्थिति			२४९८७
२१असंपं.प.उ	असंज्ञीपंचेद्रिय पर्याप्तकी उत्कृष्ट स्थिति	४	८	४००००
२२असंपं.अ.उ	असंज्ञीपंचेद्रिय अपर्याप्तकी उत्कृष्ट स्थिति	१	२	३९९९३
२३असंपं.अ.ज	असंज्ञीपंचेद्रिय अपर्याप्तकी जघन्य स्थिति	२	४	३९९९१
२४असंपं.प.ज	असंज्ञीपंचेद्रिय पर्याप्तकी जघन्य स्थिति			३९९८७
२५ संपं.प.उ	संज्ञीपंचेद्रिय पर्याप्तकी उत्कृष्ट स्थिति		५६०००	७१००१
२६ संपं.अ.उ	संज्ञीपंचेद्रिय अपर्याप्तकी उत्कृष्ट स्थिति		११२००	१५००२
२७ संपं.अ.ज	संज्ञीपंचेद्रिय अपर्याप्तकी जघन्य स्थिति		२८००	३८०२
२८ संपं.प.ज	संज्ञीपंचेद्रिय पर्याप्तकी जघन्य स्थिति			१००२

ऊपर अंकों में लिखे हुए स्थितिभेद, स्थितिबंध माने हुए हैं वास्तविक नहीं हैं। वास्तविक भेद आगे दिखाये हैं।

एकेन्द्रिय के स्थितिबन्ध के ८ भेद दिखाये हैं उनकी स्थिति निकालने की रीति-
नंबर ४ से ५ पर्यन्त के भेद सबसे कम है। उन भेदों की १ शलाका मानी १
उनसे नंबर ५ से ६ पर्यन्त के स्थितिभेद संख्यातगुणित हैं संख्यात की संख्या २ मानी
उनसे नंबर ४ से ३ पर्यन्त के स्थितिभेद संख्यातगुणित है २ × २ = ४
७
इन तीनों भेदों के जोड से ६ से ७ पर्यन्त के स्थितिभेद संख्यातगुणित है ७×२=१४
उनसे ३ से २ पर्यन्त के स्थितिभेद संख्यातगुणित है १४×२ = २८
४९
ऊपर के सब भेदों के जोड़ से नं.७ से ८ पर्यंत के स्थितिभेद
संख्यातगुणित ४९ × २ = ९८
उनसे नंबर २ से १ पर्यंत के स्थितिभेद संख्यातगुणित ९८×२ = १९६
एकेन्द्रिय के स्थितिभेदों की शलाका— ३४३

एकेन्द्रिय की मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति एक सागर है। सागर की संख्या ४६०२ मानी उत्कृष्ट से जघन्य पर्यन्त के स्थिति के भेद पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण है। वे ६८६ माने नंबर १ से २ पर्यन्त की शलाका १९६ है तो स्थिति के भेद कितने हुए?

प्रमाणराशि	फलराशि		इच्छाराशि	लब्धराशि	
	अंक	अर्थ			
३४३ शलाका में	६८६	(प / ∂) विकल्प	१९६ शलाका में कितने?	(६८६ (काटकर २) × १९६) / ३४३ (काटकर)	अंकसंदृष्टि = ३९२

बादरपर्याप्तकउत्कृष्ट स्थितिबंध से (१ से २) सूक्ष्मपर्याप्तक उत्कृष्टपर्यन्त
स्थितिविकल्प अर्थसंदृष्टि से (प १९६ / ∂ ३४३)

नंबर १ की स्थिति ४६०२ - (३९२-१) = ४६०२-३९१ = ४२११

नंबर १ की स्थिति बतायी है,३९२ नंबर के स्थितिभेद की स्थिति निकालना है इसलिए ३९२ में से १ कम किया। आगे आगे के नंबर की स्थिति निकालने के लिए उनके बीच के स्थितिभेदों को ही कम करना क्यों कि प्रत्येक स्थितिभेद की स्थिति एक एक समय से बढ़ती हुई है।

नंबर २ की सूक्ष्मपर्याप्तक उत्कृष्ट स्थिति अर्थसंदृष्टि से ⟶ $१ \overset{सा}{\frown} - \frac{प \; १९६}{\partial \; ३४३}$

२) नंबर २ से ३ तक के स्थितिभेद ⟶

प्रमाणराशि	फलराशि		इच्छाराशि	लब्धराशि
	अंकसं.	अर्थसंदृष्टि		
३४३ शलाका में	६८६	$(\frac{प}{\partial})$ विकल्प	२८ शलाका में कितने ?	$\frac{\overset{२}{\cancel{६८६}} \times २८}{\cancel{३४३}} = ५६$ अंकसंदृष्टि $\boxed{\frac{प \; २८}{\partial \; ३४३}}$ अर्थसंदृष्टि

बादर पर्याप्त उत्कृष्ट नंबर ३ की स्थिति = नंबर २ की स्थिति - २ से ३ के स्थितिभेद

अंकसंदृष्टि ⟶ ४२११ - ५६ = ४१५५

अर्थसंदृष्टि ⟶ $१ \overset{सा}{\frown} - \frac{प \; १९६}{\partial \; ३४३} - \frac{प \; २८}{\partial \; ३४३}$

अर्थात् यह संख्या ऐसी है = $\left\{\left(सा \; १ - \frac{प \; १९६}{\partial \; ३४३}\right) - \frac{प \; २८}{\partial \; ३४३}\right\}$

एक सागर में से दो ऋणराशि घटाना है इसलिए दोनों ऋणों को जोड़ करके १ सागर में से घटाना

$$\frac{प \; १९६}{\partial \; ३४३} + \frac{प \; २८}{\partial \; ३४३} = \frac{प \; २२४}{\partial \; ३४३} = १ \overset{सा}{\frown} - \frac{प \; २२४}{\partial \; ३४३}$$

३) नंबर ३ से ४ तक के स्थितिभेद ⟶

प्रमाणराशि	फलराशि		इच्छाराशि	लब्धराशि
३४३ शलाका में	६८६ अंकसं.	$(\frac{प}{\partial})$ विकल्प अर्थसंदृष्टि	४ शलाका में कितने ?	$\frac{\overset{२}{\cancel{६८६}} \times ४}{\underset{१}{\cancel{३४३}}} = ८$ अंकसंदृष्टि $\boxed{\frac{प \; ४}{\partial \; ३४३}}$ अर्थसंदृष्टि

नंबर ४ सूक्ष्म अपर्याप्त की उत्कृष्ट स्थिति = ४१५५ - ८ = ४१४७

$$\left(\text{सा १} - \overset{\text{१}\frown}{\frac{\text{प २२४}}{\partial\ \text{३४३}}}\right) - \frac{\text{प ४}}{\partial\ \text{३४३}}$$

ऊपर के समान दो ऋणराशि मिलाकर १ सागर में घटाना

$$\text{सा १}\ \overset{\text{१}\frown}{\frac{\text{प २२८}}{\partial\ \text{३४३}}}$$ सूक्ष्म अपर्याप्त का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध

४) नंबर ४ से ५ तक के स्थितिभेद

प्रमाणराशि	फलराशि		इच्छाराशि	लब्धराशि
३४३ शलाका में	६८६	$\left(\frac{\text{प}}{\partial}\right)$ विकल्प	१ शलाका में कितने ?	अंकसंदृष्टि $\frac{\overset{२}{\cancel{६८६}} \times १}{\cancel{३४३}} = २$ अर्थसंदृष्टि $\boxed{\frac{\text{प १}}{\partial\ \text{३४३}}}$

नंबर ५ सूक्ष्म अपर्याप्त की जघन्य स्थिति ४१४७ - २ = ४१४५

$$\left\{\left(\text{सा} - \overset{\text{१}\frown}{\frac{\text{प २२८}}{\partial\ \text{३४३}}}\right) - \frac{\text{प १}}{\partial\ \text{३४३}}\right\} = \text{सा} - \overset{\text{१}\frown}{\frac{\text{प २२९}}{\partial\ \text{३४३}}} = \boxed{\text{सा}\ \overset{\text{१}\frown}{\frac{\text{प २२९}}{\partial\ \text{३४३}}}}$$

५) नंबर ५ से ६ तक के स्थितिभेद

प्रमाणराशि	फलराशि		इच्छाराशि	लब्धराशि
३४३ शलाका में	६८६	$\left(\frac{\text{प}}{\partial}\right)$ विकल्प	२ शलाका में कितने ?	अंकसंदृष्टि $\frac{\overset{२}{\cancel{६८६}} \times २}{\cancel{३४३}} = ४$ अर्थसंदृष्टि $\boxed{\frac{\text{प २}}{\partial\ \text{३४३}}}$

नंबर ६ बादर अपर्याप्त की जघन्य स्थिति ४१४५ - ४ = ४१४१

$$\left\{\left(\text{सा} - \overset{\text{१}\frown}{\frac{\text{प २२९}}{\partial\ \text{३४३}}}\right) - \frac{\text{प २}}{\partial\ \text{३४३}}\right\} = \text{सा} - \overset{\text{१}\frown}{\frac{\text{प २३१}}{\partial\ \text{३४३}}} = \boxed{\text{सा}\ \overset{\text{१}\frown}{\frac{\text{प २३१}}{\partial\ \text{३४३}}}}$$

बादर अपर्याप्त जघन्य स्थितिबन्ध

६) नंबर ६ से ७ तक के स्थितिभेद

प्रमाणराशि	फलराशि		इच्छाराशि	लब्धराशि
३४३ शलाका में	६८६	$\left(\frac{\text{प}}{\partial}\right)$ विकल्प	१४ शलाका में कितने ?	$\frac{\cancel{\text{६}}\text{८६}^{\text{२}} \times \text{१४}}{\text{३}\cancel{\text{४}}\text{३}} = \text{२८}$ अंकसंदृष्टि ; $\boxed{\frac{\text{प १४}}{\partial\ \text{३४३}}}$ अर्थसंदृष्टि

नंबर ७ सूक्ष्म पर्याप्त की जघन्य स्थिति = ४१४१ - २८ = ४११३

$$\left\{\left(\text{सा} - \frac{\overset{\text{१}}{\text{प}}\ \overline{\text{२३१}}}{\partial\ \text{३४३}}\right) - \frac{\text{प १४}}{\partial\ \text{३४३}}\right\} = \text{सा} - \frac{\overset{\text{१}}{\text{प}}\ \overline{\text{२४५}}}{\partial\ \text{३४३}} = \boxed{\text{सा}\ \frac{\overset{\text{१}}{\text{प}}\ \overline{\text{२४५}}}{\partial\ \text{३४३}}}$$

सूक्ष्म पर्याप्त जघन्य स्थितिबन्ध

७) नंबर ७ से ८ तक के स्थितिभेद

प्रमाणराशि	फलराशि		इच्छाराशि	लब्धराशि
३४३ शलाका में	६८६	$\left(\frac{\text{प}}{\partial}\right)$ विकल्प	९८ शलाका में कितने ?	$\frac{\text{६८६} \times \text{९८}}{\text{३४३}} = \text{१९६}$ अंकसंदृष्टि ; $\boxed{\frac{\text{प ९८}}{\partial\ \text{३४३}}}$ अर्थसंदृष्टि

नंबर ८ बादर पर्याप्त की जघन्य स्थिति ४११३ - १९६ = ३९१७

$$\left\{\left(\text{सा १} - \frac{\overset{\text{१}}{\text{प}}\ \overline{\text{२४५}}}{\partial\ \text{३४३}}\right) - \frac{\text{प ९८}}{\partial\ \text{३४३}}\right\} = \text{सा} - \frac{\overset{\text{१}}{\text{प}}\ \text{३}\cancel{\text{४}}\text{३}}{\partial\ \text{३}\cancel{\text{४}}\text{३}} = \boxed{\text{सा}\ \frac{\overset{\text{१}}{\text{प}}}{\partial}}$$

बादर पर्याप्त जघन्य स्थितिबन्ध

एकेन्द्रिय के मिथ्यात्व की उत्कृष्ट आबाधा आवली के असंख्यातवें भाग से अधिक अन्तर्मुहूर्त मात्र है २१ + $\frac{\text{२}}{\partial}$ और जघन्य आबाधा आधिक्य के बिना केवल अन्तर्मुहूर्तमात्र है २१। आबाधा के पूर्वोक्त भेद $\frac{\overline{\text{१}}}{\text{२}}$ । जैसे स्थितिबन्ध के कथन में आठ स्थानों के सात अन्तरालों में भेदों का प्रमाण ∂ लाने के लिए सात त्रैराशिक किये वैसे ही आबाधा का प्रमाण लाने के लिए भी करना चाहिए। फलराशि में स्थितिभेदों के स्थानपर आबाधाविकल्प रखना।

आबाधा भेद	प्रमाण	फल	इच्छा	आबाधा भेद	आबाधा निकालने की विधि	आबाधा
नं१ से २तक	३४३ शलाका	१— २ ∂	१९६ शलाका	१— २।१९६ ∂।३४३	उत्कृष्ट आबाधा — (१से२तक आबाधाभेद -१)	२ ∂ २१ १—१—⌓ २।१९६ ∂।३४३) नं २
नं २ से ३ तक	३४३ शलाका	१— २ ∂	२८ शलाका	१— २।२८ ∂।३४३	नं.२ की आबाधा — २ से ३तक आबाधाभेद	२ ∂ २१ १—१—⌓ २।२२४ ∂।३४३) नं ३
नं ३ से ४ तक	३४३ शलाका	१— २ ∂	४ शलाका	१— २।४ ∂।३४३	नं.३ की आबाधा — ३ से ४तक आबाधाभेद	२ ∂ २१ १—१—⌓ २।२२८ ∂।३४३) नं ४
नं ४ से ५ तक	३४३ शलाका	१— २ ∂	१ शलाका	१— २।१ ∂।३४३	नं.४ की आबाधा — ४ से ५तक आबाधाभेद	२ ∂ २१ १—१—⌓ २।२२९ ∂।३४३) नं ५
नं ५ से ६ तक	३४३ शलाका	१— २ ∂	२ शलाका	१— २।२ ∂।३४३	नं.५ की आबाधा — ५ से ६तक आबाधाभेद	२ ∂ २१ १—१—⌓ २।२३१ ∂।३४३) नं ६
नं ६ से ७ तक	३४३ शलाका	१— २ ∂	१४ शलाका	१— २।१४ ∂।३४३	नं.६ की आबाधा — ६ से७ तक आबाधाभेद	२ ∂ २१ १—१—⌓ २।२४५ ∂।३४३) नं ७

आबाधा भेद	प्रमाण	फल	इच्छा	आबाधा भेद	आबाधा निकालने की विधि	आबाधा
नं ७ से ८ तक	३४३ शलाका	$\frac{१—}{\frac{२}{\partial}}$	९८ शलाका	$\frac{१—}{\frac{२।९८}{\partial।३४३}}$	नं.७ की आबाधा — ७ से८ तक आबाधाभेद	$\left(\overset{२}{\partial}\,२१ \;\; \frac{१—१\frown}{\frac{२।३४३}{\partial।३४३}}\right)$ नं ८

नंबर १ से लेकर नंबर २ तक के आबाधा भेदों में से एक कम करके जो लब्ध आवें उसे उत्कृष्ट आबाधा में से कम करनेपर नंबर २ की आबाधा निकलती है। आबाधा भेदों में उत्कृष्ट आबाधा का एक भेद गर्भित है अत: एक कम किया।

जैसे नं. १ से लेकर नंबर २ तक ३९२ भेद हैं। नंबर १ की आबाधा ४६०२ है तो ३९२ वें नंबर की आबाधा कितनी है उसका प्रमाण निकालने के लिए ३९१ कम करने पड़ेंगे ४६०२ - ३९१ = ४२११ शेष आबाधा निकालने के लिए एक कम नहीं करना क्यों कि आगे के आबाधा भेदों में पीछे की आबाधा का भेद गर्भित नहीं है। जैसे ३ नंबर की आबाधा ४२११ - ५६ = ४१५५ आती है।

नंबर ८ की आबाधा = नं ७ की आबाधा - ७ से ८ तक के आबाधा भेद

$$\left(\frac{\overset{२}{\partial}}{२१} - \frac{१—१\frown}{\frac{२।२४५}{\partial।३४३}}\right) - \frac{१—}{\frac{२।९८}{\partial।३४३}}$$

दो ऋणों को मिलाना और मूलराशि में से घटाना

$$\frac{\overset{२}{\partial}}{२१} - \left(\frac{१—१\frown}{\frac{२।२४५}{\partial।३४३}} + \frac{१—}{\frac{२।९८}{\partial।३४३}}\right)$$

$$\frac{\overset{२}{\partial}}{२१} - \frac{१—१\frown}{\frac{२।३४३}{\partial।३४३}} = \left(\overset{२}{\partial}\,२१\;\; \frac{१—१\frown}{\frac{२।\cancel{३४३}}{\partial।\cancel{३४३}}}\right) \quad \left(\overset{२}{\partial}\,२१\;\; \frac{१\;१\frown}{\frac{२}{\partial}}\right)$$

$(२१ + \overset{२}{\partial}) - \overset{२}{\partial} = २१$ अन्तर्मुहूर्त में आवली का असंख्यातवाँ भाग मिलाया और उसमें से आवली का असंख्यातवाँ भाग घटाया तो अन्तर्मुहूर्त ही शेष रहा। जघन्य आबाधा अन्तर्मुहूर्त २१ सिद्ध हुई।

मज्झे थोवसलागा हेट्ठा उवरिं च संखगुणिदकमा ।
सव्वजुदी संखगुणा हेट्ठुवरिं संखगुणमसण्णित्ति ।।१४९।।

अन्वयार्थ - (मज्झे) मध्य भाग में **(थोवसलागा)** सब से कम शलाका (संख्या) हैं **(हेट्ठा उवरिं च)** मध्यभाग से नीचे की और ऊपर की शलाका **(संखगुणिदकमा)** क्रम से संख्यातगुणी हैं। पुनः **(सव्वजुदी)** इन तीनों को जोड़कर जो लब्ध आता है उससे **(हेट्ठुवरिं)** नीचे और ऊपर क्रम से **(संखगुणा)** संख्यात गुणी हैं इस प्रकार **(संखगुणमसण्णित्ति)** असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त नीचे ऊपर संख्यातगुणा जानना।

विशेषार्थ - द्वीन्द्रिय के स्थितिभेदों का प्रमाण -

द्वीन्द्रिय के जो (९ से १२ तक) चार भेद हैं उनमें १० से ११ तक के स्थिति के भेद सबसे कम हैं अत: उनकी १ शलाका है। उससे ११ से १२ तक के स्थिति के भेद संख्यात गुणित है इसलिए १×२ = २ शलाका। उससे १० से ९ तक के स्थिति के भेद संख्यात गुणित है इसलिए २×२ = ४। इसप्रकार △४△१△२△ = ७ शलाका कुल हुई।

द्वीन्द्रिय की मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति पच्चीस सागर (सा २५) है। जघन्य स्थिति

सा २५ - $\frac{प \; १\overline{\frown}}{२२२२}$ (पच्चीस सागर में, एक कम चार बार संख्यात से भाजित पल्य कम करना)

पूर्वोक्त स्थिति के भेद $\frac{प}{२२२२}$ । चार भेदों में स्थिति का प्रमाण त्रैराशिक से सिद्ध करना।

स्थितिभेद	प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध	अंकसंदृष्टि से		
					प्रमाण	फल	इच्छा
नं ९ से १० तक के द्वी.प.उ.से द्वी.अ.उ.तक	७ शलाका में	प भेद ११११	४ शलाका ?	प ४ ११११ ७	७	१४	४ ?
						$\frac{१४ \times ४}{७} = ८$	
नं १० से ११ तक के द्वी.प.उ.से द्वी.अ.ज.तक	७ शलाका में	प भेद ११११	१ शलाका ?	प १ ११११ ७	७	१४	१ ?
						$\frac{१४ \times १}{७} = २$	
नं ११ से १२ तक के द्वी.अ.ज.से द्वी.प.ज.तक	७ शलाका में	प भेद ११११	२ शलाका ?	प २ ११११ ७	७	१४	२ ?
						$\frac{१४ \times २}{७} = ४$	

नंबर ९ द्वीन्द्रिय पर्याप्तक की उत्कृष्ट स्थिति = सा २५

नंबर १० द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक की = नं.९ की उ.स्थिति - (९ से १० तक के स्थितिभेद -१)
उत्कृष्ट स्थिति

$$= \text{सा } २५ - \frac{\overset{१\frown}{\text{प}}\ ४}{११११\ ७} \quad = \quad \boxed{\text{सा } २५ \ \frac{\overset{१\frown}{\text{प}}\ ४}{११११\ ७}}$$

नंबर ११ द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक की = नं.१० की उ.स्थिति - १० से ११ तक के स्थितिभेद
जघन्य स्थिति

$$= \left(\text{सा } २५ - \frac{\overset{१\frown}{\text{प}}\ ४}{११११\ ७}\right) - \frac{\text{प}\ १}{११११\ ७}$$

$$\text{सा } २५ - \left(\frac{\overset{१\frown}{\text{प}}\ ४}{११११\ ७} + \frac{\text{प}\ १}{११११\ ७}\right) = \boxed{\text{सा } २५ - \frac{\overset{१\frown}{\text{प}}\ ५}{११११\ ७}}$$

नंबर १२ द्वीन्द्रिय पर्याप्तक की = नं.११ की जघन्य स्थिति - ११ से १२ तक के स्थितिभेद
जघन्य स्थिति

(सा २५ - (प १— ५) / (२२२२ ७)) - (प २) / (२२२२ ७)

सा २५ - ((प १— ५) / (२२२२ ७) + (प २) / (२२२२ ७)) = **सा २५ - (प १— ७) / (२२२२ ७)** = **सा २५ - (प १—) / (२२२२)**

द्वीन्द्रिय की मिथ्यात्व की उत्कृष्ट आबाधा २१। २५ + २/२२२२ पूर्वोक्त

द्वीन्द्रिय की मिथ्यात्व की जघन्य आबाधा २१। २५ पूर्वोक्त

द्वीन्द्रिय के मिथ्यात्व के आबाधा विकल्प (२ १—) / (२२२२) पूर्वोक्त

यहाँ भी द्वीन्द्रिय के चार भेदों में आबाधा निकालने के लिए स्थितिभेद के समान आबाधा के भेद त्रैराशिक से निकालना। स्थितिभेद के स्थानपर फलराशि में आबाधाभेद रखना। त्रैराशिक करनेपर

	९ से १० तक	१० से ११	११ से १२
आबाधाभेद	(२ १— ।४) / (२२२२ ।७)	(२ १— ।१) / (२२२२ ।७)	(२ १— ।२) / (२२२२ ।७)
आबाधा	नं १० की २१। २५ + २/२२२२ (१ १— / २ १— ।४ / २२२२ ।७)	नं ११ की २१। २५ + २/२२२२ (१ १— / २ १— ।५ / २२२२ ।७)	नं १२ की २१। २५ + २/२२२२ (१ १— / २ १— ७ / २२२२ ७) = २१। २५

द्वीन्द्रिय के समान ही त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय के स्थितिभेद, स्थिति, आबाधाभेद, आबाधा निकालना चाहिए। उसमें विशेष इतना है कि स्थिति और आबाधा का प्रमाण भिन्न भिन्न है। पूर्व में सबके उत्कृष्टस्थिति, जघन्य स्थिति और आबाधा का प्रमाण कहा है वह जान लेना।

	अन्तराल के स्थितिभेद	स्थिति	अन्तराल के आबाधाभेद	आबाधा
त्री.प.उ.		सा ५०		२१।५० + २ १११
त्री.अ.उ.	प ४ १११ ७	सा. ५० १ ⌓ प ४ १११ ७	१— २। ४ १११।७	२१।५०+ २ १ ⌓ १११ १— २ ४ १११ ७
त्री.अ.ज.	प १ १११ ७	सा. ५० १ ⌓ प ५ १११ ७	१— २ १ १११७	२१।५०+ २ १ ⌓ १११ १— २ ५ १११ ७
त्री.प.ज.	प २ १११ ७	सा. ५० १ ⌓ प ७ १११ ७	१— २ २ १११७	२१।५०+ २ १ ⌓ १११ १— २ ७ १११ ७ = २१।५०
च.प.उ.		सा १००		२१।१००+ २ ११
च.अ.उ.	प ४ ११ ७	सा.१०० १ ⌓ प ४ ११ ७	१— २।४ ११।७	२१।१०० + २ १ ⌓ ११ १— २।४ ११।७
च.अ.ज.	प १ ११ ७	सा.१०० १ ⌓ प ५ ११ ७	१— २ ।१ ११।७	२१।१०० +२ १ ⌓ ११ १— २ ।५ ११।७
च.प.ज.	प २ ११ ७	सा.१०० १ ⌓ प ७ ११ ७	१— २ ।२ ११।७	२१।१०० + २ १ ⌓ ११ १— २ ७ ११ ७ = २१।१००

	अन्तराल के स्थितिभेद	स्थिति	अन्तराल के आबाधाभेद	आबाधा
असं.पं.प.उ.		सा १०००		२१।१०००+ २ १
असं.पं.अ.उ	प ४ १ ७	सा.१००० १—⌓ प ४ १ ७	१— २ ।४ १।७	२१।१०००+ २ १—⌓ १ १— २ ४ १ ७
असं.पं.अ.ज	प १ १ ७	सा.१००० १—⌓ प ५ १ ७	१— २ ।१ १।७	२१।१०००+ २ १—⌓ १ १— २ ।५ १ ।७
असं.पं.अ.ज	प । २ १ ।७	सा.१००० १—⌓ प ७ १ ७	१— २।२ १।७	२१।१०००+ २ १—⌓ १ १— २ ७ १ ७ = २१।१०००

सण्णिस्स दु हेट्ठादो ठिदिठाणं संखगुणिदमुवरुवरिं ।
ठिदिआयामो वि तहा सगठिदिठाणं व आबाहा ।।१५०।।

अन्वयार्थ -(सण्णिस्स) संज्ञी पंचेन्द्रिय के चार भेदों में **(हेट्ठादो)** नीचे से लेकर **(उवरुवरिं)** ऊपर ऊपर **(ठिदिठाणं)** स्थितिस्थान **(संखगुणिदं)** संख्यातगुणित हैं **(ठिदिआयामो- वि)** स्थिति आयाम अर्थात् समयों का प्रमाण भी संख्यातगुणा है **(तहा)** तथा **(आबाहा)** आबाधा काल का प्रमाण **(सगठिदिठाणं व)** अपने स्थितिस्थानों के समान ही समझना चाहिए।

विशेषार्थ - संज्ञी पञ्चेन्द्रिय के भेदों में स्थितिबन्धादिक का प्रमाण —

संज्ञी पर्याप्तक के जघन्य स्थितिबन्ध से लगाकर ऊपर ऊपर उन चार भेदों के अन्तराल में स्थिति के भेदों का प्रमाण क्रम से संख्यातगुणा है। स्थितिसमयों का प्रमाण भी ऊपर ऊपर क्रम से संख्यातगुणित है।

संज्ञी पंचेन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति	जघन्य स्थिति	स्थितिभेद
सा.७० को. २	अंत: को.२ सा.	$\frac{१}{\text{प}११ \frac{१}{⌒}}$
सागर का पल्य में रूपांतर प११	प १	प११

अंकसंदृष्टि से माना

उ.स्थिति	जघन्य स्थिति	स्थितिभेद
७१००१समय	१००२ समय	७००००

२५ से २६ नंबर तक के स्थितिभेद = कुल स्थितिभेदों का संख्यात बहुभाग,

संख्यात ५ माना $\frac{७००००}{५} \times ४ = \boxed{५६०००}$ बहुभाग एकभाग १४०००

२६ से २७ नंबर तक के स्थितिभेद = शेष एकभाग का बहुभाग

$\frac{१४००० \times ४}{५} = \boxed{११२००}$ शेष एकभाग २८००

२७ से २८ नंबर तक के स्थितिभेद = शेष एकभाग = २८००

नं. २५ संज्ञिपंचेन्द्रिय पर्याप्तक की उत्कृष्टस्थिति ७१००१

नं.२६ सं.पं.अ.उत्कृष्ट स्थिति = ७१००१ -(५६०००-१)= ७१००१-५५९९९ = १५००२

नं. २७ सं.पं. अ. जघन्य स्थिति = १५००२ - ११२०० = ३८०२

नं. २८ सं.पं. प जघन्य स्थिति = ३८०२ - २८०० = १००२

इसी प्रकार अर्थसंदृष्टि से प्रमाण निकालना।

नं. २५ से २६ तक के स्थितिभेद = $\frac{\text{स्थितिबंध} \times \text{संख्यात} - १}{\text{संख्यात}}$

$\frac{१ \text{—} १ ⌒}{\text{प}११ \times ५ - १}$ = $\frac{१ \text{—} १ ⌒}{\text{प}११ ४}$ बहुभाग; शेष एकभाग $\frac{१ \text{—} १ ⌒}{\text{प}११}$
५   ५   ५

२६ नं. संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त उत्कृष्ट स्थिति = संज्ञि प.उत्कृष्ट स्थिति - (२५ से २६ तक स्थितिभेद-१)

सा ७० को २ - $\frac{१ \text{—} १ ⌒}{\text{प}११}$ (५) संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त उत्कृष्ट स्थिति

२) नं.२६ से २७ तक के स्थितिभेद = $\frac{\text{शेष एकभाग}}{\text{संख्यात}}$ ×एक कम संख्यात= प ११ ४ / ५ ५

नं. २७ संज्ञी पं. अ जघन्य स्थिति = सं.अ.उत्कृष्ट स्थिति-२६ से २७ तक स्थितिभेद

(सा ७० को २ - प ११ । / ५ ।) – प ११ ।४ / ५ । ५

सा ७० को २ -(प ११ । ५ / ५ । ५ + प ११ ४ / ५ ५)= सा ७० को २ - प ११ ४ ५ / ५ ५

३) नं. २७ से २८ तक के स्थितिभेद = शेष एकभागप्रमाण प ११ १ / ५ ५

नं. २८ सं.पं. प. जघन्यस्थिति = सं. अ.जघन्य स्थिति- २७ से २८ तक स्थितिभेद

(सा ७० को २ - प ११ ४ ।५ / ५ ।५)- प ११ १ / ५५

सा ७० को २ -(प ११ ४ ।५ / ५ ।५ + प ११ १ / ५ ५)= सा ७० को २ - प ११ ~~५~~ ~~५~~ / ~~५~~ ~~५~~

स्थितिस्थान के समान आबाधा के भेदों का कथन समझना

मिथ्यात्व की उत्कृष्ट आबाधा ७००० वर्ष = २१११ वर्षों का आवली में रूपांतर किया।

मिथ्यात्व की जघन्य आबाधा मुहूर्त -१ समय =२११ मुहूर्त का आवली में रूपांतर किया।

मिथ्यात्व के आबाधा भेद २१११ (पूर्व में निकाले है वहाँ से जानना)

अन्तराल के आबाधाभेद स्थितिभेदों के समान जघन्य से उत्कृष्ट तक संख्यात गुणित है।

	२५ से २६	२६ से २७	२७ से २८
आबाधाभेद	१ —— १ ⌓ २११।२।४ ५	१ —— १ ⌓ २११।२।४ ५ ५	१ —— १ ⌓ २११।२।१ ५ ५

सत्तरसपंचतित्थाहाराणं सुहुमबादरोऽपुव्वो ।
छव्वेगुव्वमसण्णी जहण्णमाऊण सण्णी वा ।।१५१।।

अन्वयार्थ - (सत्तरसपंचतित्थाहाराणं) सत्रह प्रकृतियाँ (दसवें गुणस्थान की बंध प्रकृतियाँ), पाँच प्रकृतियाँ (पुंवेद, ४ संज्वलन कषाय) और तीर्थंकर आहारकद्विक इन प्रकृतियों का **(जहण्ण)** जघन्य स्थितिबंध **(सुहुमबादरोऽपुव्वो)** क्रम से सूक्ष्मसांपरायवर्ती, बादर अनिवृत्तिकरण और अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती करता है **(छव्वेगुव्वमसण्णी)** वैक्रियिक षट्क का जघन्य स्थितिबंध असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव करता है **(आऊण)** आयुकर्मों का जघन्य स्थितिबंध **(सण्णी वा)** संज्ञी अथवा असंज्ञी करता है।

	प्रकृति	जघन्य स्थितिबन्ध का स्वामी
१७	५ ज्ञानावरण,५ अंतराय,४ दर्शनावरण यश:कीर्ति, उच्चगोत्र, सातावेदनीय	क्षपक श्रेणी में सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवर्ती
५	पुरुषवेद, ४ संज्वलनकषाय	क्षपक श्रेणी में अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती
३	तीर्थंकर, आहारकद्वय	क्षपक श्रेणी में अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती
६	वैक्रियिकषट्क	असंज्ञी पंचेन्द्रिय
४	आयुकर्म	संज्ञी अथवा असंज्ञी
८५	शेष प्रकृतियाँ	बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त

अजहण्णट्ठिदिबंधो चदुव्विहो सत्तमूलपयडीणं ।
सेसतिये दुवियप्पो आउचउक्केवि दुवियप्पो ।।१५२।।

अन्वयार्थ -(सत्तमूलपयडीणं) सात मूलप्रकृतियों का **(अजहण्णट्ठिदिबंधो)** अजघन्य स्थितिबंध **(चदुव्विहो)** चार प्रकार का अर्थात् सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव है और **(सेसतिये)** शेष तीन प्रकार का अर्थात् जघन्य, उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबंध **(दुवियप्पो)** दो प्रकार का अर्थात् सादि और अध्रुव होता है **(आउचउक्केवि)** आयुकर्म का चारों ही प्रकार का स्थितिबंध **(दुवियप्पो)** सादि और अध्रुव भेद से दो ही प्रकार का है।

संजलणसुहुमचोद्दसघादीणं चदुविधो दु अजहण्णो ।
सेसतिया पुण दुविहा सेसाणं चदुविधा वि दुधा ।।१५३।।

अन्वयार्थ - (संजलणसुहुमचोद्दसघादीणं) संज्वलन चार कषाय और सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में व्युच्छिन्न होनेवाली चौदह घातिकर्म प्रकृतियों का **(अजहण्णो)** अजघन्य स्थितिबन्ध **(चदुविधो दु)** सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव चारों प्रकार का है **(सेसतिया)** शेष जघन्यादि तीन भेदों के **(दुविहा)** सादि व अध्रुवरूप दो प्रकार हैं। **(सेसाणं)** शेष प्रकृतियों का **(चदुविधा वि)** चारों प्रकार का भी स्थितिबंध **(दुधा)** सादि और अध्रुवरूप दो प्रकार हैं।

सव्वाओ दु ठिदीओ सुहासुहाणं पि होंति असुहाओ ।
माणुसतिरिक्खदेवाउगं च मोत्तूण सेसाणं ।।१५४।।

अन्वयार्थ -(माणुसतिरिक्खदेवाउगं च मोत्तूण) मनुष्यायु, तिर्यञ्चायु और देवायु को छोड़कर **(सेसाणं)** शेष सर्व **(सुहासुहाणं पि)** शुभ और अशुभ प्रकृतियों की **(सव्वाओ दु ठिदीओ)** सर्व स्थितियाँ **(असुहाओ)** अशुभरूप **(होंति)** होती हैं।

विशेषार्थ - पूर्व में बन्ध के जघन्य, अजघन्य, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट ४ भेद बताये हैं इन स्थितिभेदों में होनेवाले सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव बन्ध →

स्थितिभेदों में होनेवाले सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव बन्ध →

	मूलप्रकृति में अजघन्यादि बन्ध	**प्रकार**	**सादि आदि बन्ध**
७	आयु बिना शेष सात प्रकृतियों का अजघन्य स्थितिबंध	४	सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव
	शेष उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य स्थितिबन्ध	२	सादि, अध्रुव
१	आयुकर्म का अजघन्य, जघन्य, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट	२	सादि, अध्रुव
	उत्तरप्रकृति में अजघन्यादि भेदों में		
१८	४ संज्वलनकषाय, १४ घातिप्रकृतियों (ज्ञानावरण ५, अंतराय ५, दर्शनावरण ४) का अजघन्य	४	सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव
१८	उपर्युक्त १८ प्रकृतियों का जघन्य, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट	२	सादि, अध्रुव
१०२	शेष सर्व प्रकृतियों का चारों प्रकार का स्थितिबन्ध	२	सादि, अध्रुव

४ संज्वलनकषाय का उपशमश्रेणी में ९ वें गुणस्थान में व्युच्छित्ति के समय जघन्य स्थितिबन्ध किया। फिर श्रेणी चढकर वापस ग्यारहवें गुणस्थान से क्रम से नीचे उतरकर कषाय का स्थितिबन्ध प्रारम्भ किया वह अजघन्य बन्ध सादि कहलाता है। श्रेणी आरोहण के ९ वें गुणस्थान को प्राप्त होने के पूर्व अजघन्य बन्ध अनादि है। अभव्य की अपेक्षा इसका ध्रुव बन्ध है। भव्य जीव के अजघन्य स्थितिबन्ध का अभाव हुआ इसलिये अध्रुव है।

उच्च गोत्र, यश:कीर्ति, सातावेदनीय प्रकृतियाँ प्रतिपक्षी होने से इनका अनादि और ध्रुव बन्ध नहीं है। सामान्य मूलप्रकृति की अपेक्षा वेदनीय और गोत्र का अनादि और ध्रुव बन्ध पाया जाता है। (गाथा ९१ का नियम यहाँ ध्यान में रखना। देखो पृ. ५६)

जिन प्रकृतियों का उत्कृष्ट अथवा जघन्य स्थितिबन्ध गुणस्थानप्रतिपन्न (ऊपर के गुणस्थानों) में होता है उन्हीं का अनुत्कृष्ट अथवा अजघन्य स्थितिबन्ध सादि आदि चारों प्रकार का पाया जाता है।

अब आबाधा का लक्षण कहते हैं—

कम्मसरूवेणागयदव्वं ण य एदि उदयरुवेण ।
रूवेणुदीरणस्स व आबाहा जाव ताव हवे ।।१५५।।

अन्वयार्थ - (कम्मसरूवेणागयदव्वं) कर्मस्वरूप से आया हुआ पुद्‌गल द्रव्य **(जाव)** जबतक **(उदयरुवेण)** उदयरूप से **(य)** अथवा **(उदीरणस्स रूवेण)** उदीरणा के रूप से **(ण य एदि)** नहीं आता **(ताव)** तबतक का काल **(आबाहा)** आबाधा **(हवे)** है।

उदयं पडि सत्तण्हं आबाहा कोडकोडि उवहीणं ।
वाससयं तप्पडिभागेण य सेसट्ठिदीणं च ।।१५६।।

अन्वयार्थ -(सत्तण्हं) आयु के बिना सात कर्मों की **(उदयं पडि)** उदय की अपेक्षा **(आबाहा)** आबाधा **(कोडकोडि उवहीणं)** एक कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थिति की **(वाससयं)** एक सौ वर्ष है। **(तप्पडिभागेण य)** उसके प्रतिभाग से **(सेसट्ठिदीणं च)** शेष स्थितियों की आबाधा जानना।

अंतोकोडाकोडिट्ठिदिस्स अंतोमुहुत्तमाबाहा ।
संखेज्जगुणविहीणं सव्वजहण्णट्ठिदिस्स हवे ।।१५७।।

अन्वयार्थ - (अंतोकोडाकोडिट्ठिदिस्स) अन्त:कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थिति की **(आबाहा)** आबाधा **(अंतोमुहुत्तं)** अन्तर्मुहूर्त है और **(सव्वजहण्णट्ठिदिस्स)** सर्व कर्मों की जघन्य स्थिति की आबाधा **(संखेज्जगुणविहीणं)** उससे संख्यातगुणाहीन **(हवे)** है।

विशेषार्थ - आबाधा का लक्षण - बन्धरूप से अवस्थित पौद्‌गलिक कर्म जबतक उदयरूप या उदीरणारूप नहीं होते उतने काल को आबाधा कहते हैं।

बाधा के अभाव को आबाधा कहते हैं और आबाधा ही आबाधा कहलाती है। आयु छोड़कर शेष सात कर्मों की उदय की अपेक्षा आबाधा एक कोडाकोडी सागर प्रमाण स्थिति की सौ वर्ष होती है। शेष स्थितियों की आबाधा इसी प्रतिभाग से जानना।

प्रकृति	प्रमाण	फल	इच्छा	उत्कृष्ट आबाधा
मिथ्यात्व	सा१ को.२	१०० वर्ष	सा ७०को.२?	(१००× सा ७० को.२) / (सा १ को २) = ७००० वर्ष
चारित्र मोहनीय	सा१ को.२	१०० वर्ष	सा ४०को.२?	(१००× सा ४० को.२) / (सा १ को २) = ४००० वर्ष
ज्ञानावरणादि तीसिय	सा१ को.२	१०० वर्ष	सा ३०को.२?	(१००× सा ३० को.२) / (सा १ को २) = ३००० वर्ष
नाम गोत्र	सा१ को.२	१०० वर्ष	सा २०को.२?	(१००× सा २० को.२) / (सा १ को २) = २००० वर्ष

इसी प्रकार दो इन्द्रियादिक की आबाधा अन्तर्मुहूर्त कहीं है उसका भी प्रमाण त्रैराशिक से निकालना।

प्रमाण	फल	इच्छाराशि
सा २५ की	-२१|२५+ २/११११ इतनी आबाधा तो	(सा.२५ ४/७) की कितनी आबाधा?
[(२१|२५+ २/११११) × सा/२५ ४/७] / सा/२५ = (२१|२५+ २/११११) × ४/७		

अन्त:कोटाकोटी सागरप्रमाण स्थिति की आबाधा → अन्तर्मुहूर्त प्रमाण २१

१ दिन के मुहूर्त ३०, १ वर्ष के दिन ३६०, १ वर्ष के मुहूर्त = ३०× ३६० = १०,८००

१०० वर्ष के मुहूर्त = १०,८००× १०० = १०,८०.००० दस लाख अस्सी हजार। सो इतनी आबाधा एक कोडाकोडी सागर की होती है तो एक मुहूर्त आबाधा कितनी स्थिति की होगी? १ कोटी × १ कोटी = १००००००००००००००

प्रमाण	फलराशि	इच्छाराशि
१०,८०.००० मुहूर्तआबाधा	१००००००००००००००० स्थिति सागर	१ मुहूर्त आबाधा कितनी स्थिति की?
		$\frac{१००००००००००००००००}{१०,८०.०००}$ = ९,२५,९२,५९२ $\frac{६४}{१०८}$ सागर इतनी स्थिति की एक मुहूर्त आबाधा

प्रमाण	फलराशि	इच्छाराशि
१ को.२ सागर स्थितिकी	१०,८०००० मुहूर्त आबाधा	९,२५,९२,५९२ $\frac{६४}{१०८}$ सागर स्थिति की कितनी आबाधा?
		$\frac{१०,८०.००० \times ९,२५,९२,५९२\frac{६४}{१०८}}{१०००००००००००००००}$ = १ मुहूर्त

१ मुहूर्त के उच्छ्वास ३७७३

१०० वर्ष के उच्छ्वास = १०,८०००० × ३७७३ = ४०७४८४०००० उच्छ्वास
मुहूर्त

प्रमाण	फलराशि	इच्छाराशि
१००००००००००००००० सागर की	४०७४८४०००० उच्छ्वास आबाधा	तो १ सागर की कितने उच्छ्वास आबाधा?
		$\frac{४०७४८४००००}{१०००००००००००००००}$ = $\frac{१}{२}$ उच्छ्वास

पुव्वाणं कोडितिभागादासंखेप अद्धवो त्ति हवे ।
आउस्स य आबाहा ण ट्ठिदिपडिभागमाउस्स ।।१५८।।

अन्वयार्थ - (आउस्स य आबाहा) आयुकर्म की आबाधा **(पुव्वाणं कोडितिभागादा-संखेप अद्धवो त्ति)** एक कोटि पूर्व वर्ष के त्रिभाग से लेकर असंक्षेपाद्धा काल तक **(हवे)** है। **(आउस्स)** आयुकर्म की आबाधा **(ट्ठिदिपडिभागं)** स्थिति के

प्रतिभाग के अनुसार **(ण)** नहीं है।

विशेषार्थ -आयुकर्म की आबाधा →

उत्कृष्ट आबाधा = एक कोटी पूर्व वर्ष का तीसरा भाग

जघन्य आबाधा = अन्तर्मुहूर्त अथवा असंक्षेपाद्धा $\left(\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}\right)$

जिससे छोटा काल दूसरा नहीं है उसे असंक्षेपद्धा कहते हैं अर्थात् इससे कम आयुकर्म की आबाधा नहीं होती। यह काल आवली का असंख्यातवाँ भाग प्रमाण है। आयुकर्म की आबाधा इसी प्रकार है, स्थिति के प्रतिभाग के अनुसार नहीं है।

देव और नारकियों के अपनी स्थिति में छह मास और भोगभूमियों के अपनी स्थिति में नौ मास शेष रहनेपर उसके त्रिभाग में आयु का बन्ध होता है और कर्मभूमियाँ मनुष्य और तिर्यंचों में अपनी पूर्ण आयु के त्रिभाग में आयुबन्ध होता है। कर्मभूमियों की उत्कृष्ट स्थिति कोटि पूर्व वर्ष प्रमाण है। इससे उसी का त्रिभाग उत्कृष्ट आबाधाकाल कहा है।

यदि कदाचित् आठ अपकर्षो में से किसी भी अपकर्ष में आयु का बन्ध नहीं हुआ तो आयु के अन्त में आवली का असंख्यातवाँ भाग शेष रहनेपर अथवा आचार्यान्तर की अपेक्षा (मुहूर्त -१ समय) इतना प्रमाण शेष रहनेपर उसके पहले आयु का बन्ध पूर्ण होता है।

उदीरणा की अपेक्षा आबाधा कहते हैं -

आवलियं आबाहोदीरणमासेज्ज सत्तकम्माणं ।
परभवियआउगस्स य उदीरणा णत्थि णियमेण ।।१५९।।

अन्वयार्थ - (उदीरणमासेज्ज) उदीरणा का आश्रय लेकर **(सत्तकम्माणं)** आयु के बिना सात कर्मो की **(आबाहा)** आबाधा **(आवलियं)** आवलिप्रमाण है **(परभवियआउगस्स)** परभवसंबंधी आयुकर्म की **(णियमेण)** नियम से **(उदीरणा)** उदीरणा **(णत्थि)** नहीं होती।

विशेषार्थ - आयु को छोडकर सात मूल प्रकृतियों की उदीरणा की अपेक्षा आबाधा एक आवलीप्रमाण ही होती है। कर्म बंधने के पश्चात् एक आवली प्रमाण काल बीतनेपर ही उदीरणा रूप हो सकता है। एक आवली तक तो जैसा बंधा है वैसा ही रहता

है, उदयरूप या उदीरणा रूप नहीं होता इसी से इस आवली को अचलावली कहते हैं।

अचलावली के बीतने के बाद कर्मपरमाणुओं का अपकर्षण करके उदयावली और

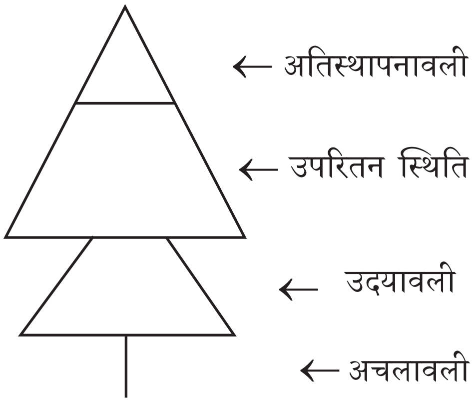

उपरितन स्थिति में देता है। उदयावली में दिये (कर्मपरमाणुओं को) द्रव्य को उदीरणा द्रव्य कहते हैं।अन्तिमआवली प्रमाण निषेकों को छोड़कर शेष सब उपरितन स्थितियों में देता है। उस अन्तिम आवली को अतिस्थापनावली कहते हैं।

उदयावली में द्रव्य देनेका विधान —

$$\frac{\text{सर्वधन (उदयावलीमें देनेयोग्य द्रव्य)}}{\text{गच्छ (आवली)}} = \text{मध्यमधन}$$

$$\frac{\text{मध्यमधन}}{\text{निषेकहार} - \left(\frac{\text{गच्छ} - १}{२}\right)} = \text{चय।}\ \text{चय} \times \text{दो गुणहानि} = \text{प्रथम समय में देने योग्य द्रव्य}$$

अंकसंदृष्टि - सर्वधन ३२००, गच्छ ८, निषेकहार (दो गुणहानि) = १६

$$\frac{३२००}{८} = ४०० \text{ मध्यमधन} \qquad \frac{४००}{१६ - \frac{७}{२}} = \frac{४००}{\frac{१६ \times २}{२} - \frac{७}{२}} = \frac{४००}{\frac{३२ - ७}{२}}$$

$$\frac{४००}{\frac{२५}{२}} = \frac{\overset{१६}{\cancel{४००}} \times २}{\cancel{२५}} = ३२ \text{ चय}$$

$$३२ \times १६ = ५१२ \text{ प्रथम समय का द्रव्य}$$

द्वितीयादि समयों में एक एक चयहीन परमाणु खिरते हैं। ४८०, ४४८, ४१६ इ. आयुकर्म में जिस आयु को भोग रहा है उसी की उदीरणा होती है। जो आगामी आयु बांधी है उसकी इस भव में उदीरणा नियम से नहीं होती।

निषेक का स्वरूप —

आबाहूणियकम्मट्ठिदि णिसेगो दु सत्तकम्माणं ।
आउस्स णिसेगो पुण सगट्ठिदी होदि णियमेण ।।१६०।।

अन्वयार्थ -(आबाहूणिय कम्मट्ठिदि) आबाधा से कम कर्मस्थिति प्रमाण **(सत्तकम्माणं)** आयु के बिना सात कर्मों के **(णिसेगो दु)** निषेक हैं। **(पुण आउस्स)** परन्तु आयुकर्म के **(णिसेगो)** निषेक **(सगट्ठिदी)** अपनी स्थितिप्रमाण ही **(णियमेण)** नियम से **(होदि)** होते हैं, ऐसा जानना।

विशेषार्थ - प्रतिसमय जितने परमाणु खिरते हैं उन कर्मपरमाणुओं के समूह को निषेक कहते हैं।

७ मूलप्रकृतियों के निषेक = कर्मस्थिति - आबाधाकाल (आबाधा से हीन स्थितिप्रमाण)

आयुकर्म के निषेक = पूर्ण स्थितिप्रमाण

आयुकर्म की आबाधा तो जिस भव में बन्ध किया उसी भव में पूर्ण हो गयी। पीछे जो पर्याय धारण की वहाँ प्रथम समय से लगाकर अन्तसमयपर्यंत प्रतिसमय आयुकर्म के निषेक खिरते हैं। अत: आयुकर्म के जितने समयों की स्थिति बाँधी है उतने ही उसके निषेक होते हैं। जैसे ७ कर्मों की स्थिति ५२ समय बाँधी उसकी आबाधा ४ समय है तो उसकी निषेक रचना ५२ - ४ = ४८ समयों में ही होगी। आयुकर्म की स्थिति ५२ समय है तो उसकी निषेक रचना पूर्ण ५२ समयों में ही होगी।

आबाहं बोलाविय पढमणिसेगम्मि देइ बहुगं तु ।
तत्तो विसेसहीणं बिदियस्सादिमणिसेगोत्ति ।।१६१।।

अन्वयार्थ - (आबाहं बोलाविय) आबाधा का उल्लंघन करके **(पढमणिसेगम्मि)** प्रथम निषेक में **(बहुगं)** बहुत द्रव्य **(देइ)** दिया जाता है **(तत्तो)** उसके अनन्तर **(बिदियस्सादिमणिसेगोत्ति)** द्वितीय गुणहानि के प्रथमनिषेक पर्यन्त **(विसेसहीणं)** विशेष हीन क्रम से द्रव्य दिया जाता है।

विशेषार्थ - आबाधाकाल को छोड़कर जो अनन्तर प्रथम समय है वह प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक है उसमें बहुत द्रव्य दिया जाता है। दूसरे निषेक से लेकर द्वितीय गुणहानि के प्रथम निषेकपर्यन्त निषेकों में एक एक चयहीन क्रम से द्रव्य दिया जाता है।

बिदिये बिदयणिसेगे हाणी पुव्विल्लहाणिअद्धं तु ।
एवं गुणहाणिं पडि हाणी अद्धद्धयं होदि ।।१६२।।

अन्वयार्थ -(बिदिये) द्वितीय गुणहानि के **(बिदयणिसेगे)** दूसरे निषेक में **(पुव्विल्ल हाणि अद्धं तु)** पूर्व गुणहानि के चय से आधा चयरूप **(हाणी)** हानि होती है। **(एवं)** इसी प्रकार **(गुणहाणिं पडि)** प्रत्येक गुणहानि में **(अद्धद्धयं)** आधा आधा प्रमाण **(हाणी)** हानि होती जाती है।

विशेषार्थ - द्वितीय गुणहानि के दूसरे निषेक में प्रथमगुणहानि के चय से आधा चयरूप द्रव्य कम दिया जाता है। आगे तीसरी गुणहानि के प्रथम निषेकपर्यन्त इतना चयहीन क्रम से द्रव्य दिया जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक गुणहानि में आधा आधा चय प्रमाण घटता द्रव्य जानना।

जैसे विवक्षित कर्मपरमाणु ६३०० माने, आबाधाहीन स्थिति = ४८ समय

गुणहानि आयाम = ८ समय, नानागुणहानि $\frac{४८}{८}$ = ६

दो गुणहानि (निषेकहार) = १६ समय

अन्योन्याभ्यस्त राशि → नानागुणहानिप्रमाण २ का अंक रखकर परस्पर गुणने पर जो संख्या आती है उसे अन्योन्याभ्यस्त राशि कहते हैं।

नानागुणहानि ६ है अत: = २×२×२×२×२×२ = ६४ अन्योन्याभ्यस्त राशि

$$\frac{\text{सर्वपरमाणु}}{(\text{अन्योन्याभ्यस्तराशि} - १)} = \text{अन्तिमगुणहानि का द्रव्य}$$

$$\frac{६३००}{६४-१} = \frac{६३००}{६३} = १०० \text{ अन्तिम गुणहानिद्रव्य}$$

इससे दूने दूने परमाणु प्रथमगुणहानिपर्यन्त जानना।

छठी	पाँचवी	चौथी	तीसरी	दूसरी	प्रथमगुणहानि का द्रव्य
१००	२००	४००	८००	१६००	३२००

पीछे के पृष्ठपर चय निकालने का सूत्र बताया है वह जानना। वही चय का प्रमाण यहाँ प्रथम गुणहानि में समझना। दूसरा चय निकालने का सूत्र -

$$\frac{\text{गुणहानिद्रव्य}}{\frac{(\text{निषेकहार} + \text{गुणहानि आयाम} + १)\times\text{गुणहानि आयाम}}{२}} = \text{चय}$$

$$\frac{३२००}{\frac{(१६+८+१)\times८}{२}} = \frac{३२००}{\frac{२००}{२}} = \frac{३२००}{१००} = \boxed{३२}\ \text{चय}$$

चय×दो गुणहानि = प्रथम निषेक ३२×१६ = ५१२

इससे एक-एक चय घटानेपर द्वितीयादि निषेकसंबंधी प्रमाण होता है ५१२, ४८०, ४४८, ४१६, ३८४, ३५२,३२०,२८८। २८८ में एक चय कम करनेपर द्वितीय गुणहानि का प्रथम निषेक २५६ आता है, जो प्रथम गुणहानि के प्रथम निषेक का आधाप्रमाण है।

$$\text{दूसरी गुणहानि का चय} = \frac{\text{प्रथम गुणहानि चय}}{२} = \frac{३२}{२} = १६$$

इतना चय तीसरी गुणहानि के प्रथमनिषेकपर्यन्त घटाना। २५६, २४०, २२४, २०८, १९२, १७६, १६०, १४४। १२८ तृतीय गुणहानि प्रथम निषेक। इसप्रकार अन्तिमगुणहानि पर्यन्त सर्वधन, निषेकों में द्रव्य और चय का प्रमाण आधा आधा जानना। इस अनुक्रम से ६३०० परमाणुओं की निषेक रचना होती है। इस प्रकार इस दृष्टान्त से वास्तविक कर्मपरमाणुओं की निषेकरचना का स्वरूप जानना।

नानागुणहानि निषेकरचना

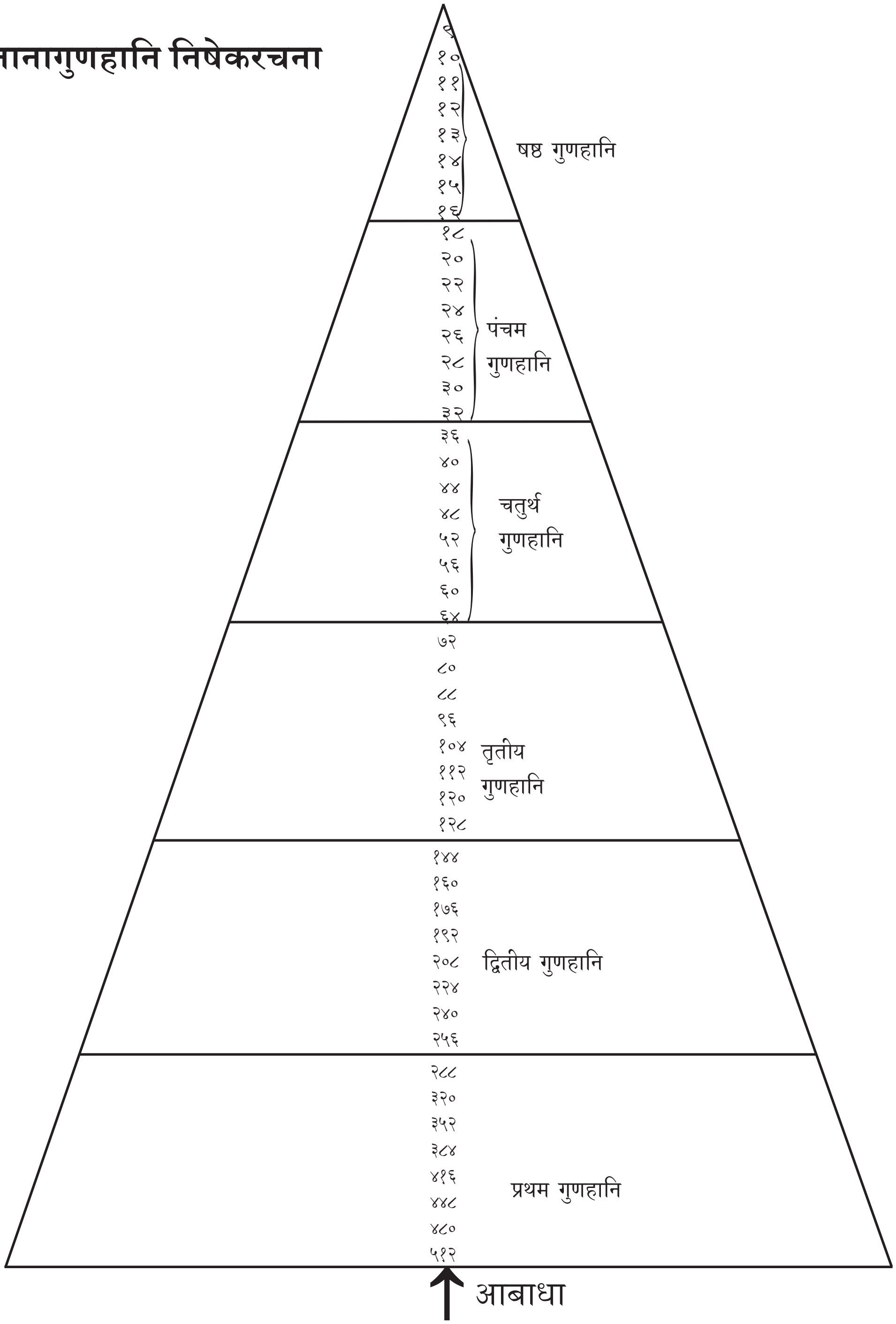

३ अनुभागबन्ध

सुहपयडीण विसोही तिव्वो असुहाण संकिलेसेण ।
विवरीदेण जहण्णो अणुभागो सव्वपयडीणं ।।१६३।।

अन्वयार्थ - (सुहपयडीण) शुभप्रकृतियों का **(तिव्वो)** तीव्र अनुभागबंध **(विसोही)** विशुद्ध परिणामों से होता है **(असुहाण)** अशुभप्रकृतियों का तीव्र अनुभाग बंध **(संकिलेसेण)** संक्लेश परिणामों से होता है। **(सव्वपयडीणं)** सर्व प्रकृतियों का **(जहण्णो अणुभागो)** जघन्य अनुभागबंध **(विवरीदेण)** विपरीत परिणामों से होता है अर्थात् शुभ प्रकृतियों का जघन्य अनुभाग बन्ध संक्लेश परिणामों से और अशुभ प्रकृतियों का जघन्य अनुभाग बन्ध विशुद्धपरिणामों से होता है।

अनुभागबन्ध का नियम —

	सातादि शुभप्रकृति ४२	**असातादि अशुभ प्रकृति ८२**
विशुद्ध परिणाम से	तीव्र अनुभागबन्ध	मन्द अनुभागबन्ध
संक्लेश परिणाम से	मन्द अनुभागबन्ध	तीव्र अनुभागबन्ध

विशेषार्थ - शंका - संक्लेशपरिणामों से शुभप्रकृतियों का बन्ध ही नहीं होता, क्योंकि संक्लेशपरिणामों को पापपरिणाम कहते हैं। पापपरिणामों से शुभ का बन्ध कैसे हो सकता है?

समाधान - शुभपरिणामों से शुभप्रकृतियों का ही आस्रव व बन्ध होता है और अशुभ परिणामों से पापप्रकृतियों का ही आस्रव और बन्ध होता है ऐसा एकान्त नियम नहीं है, क्योंकि ४७ ध्रुवबन्धिप्रकृतियों में पुण्य और पाप दोनों प्रकार की प्रकृतियाँ हैं जिनका शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के परिणामों में निरन्तर आस्रव व बन्ध होता है। ध्रुवबंधी ४७ प्रकृतियों के नाम देखो गाथा १२२-१२३.

इनमें तैजसशरीर, कार्मणशरीर, अगुरुलघु, निर्माण ये चार शुभप्रकृतियाँ है शेष ४३ अशुभ प्रकृतियाँ है। इस प्रकार अशुभपरिणामों में उपर्युक्त चार शुभप्रकृतियों का अवश्य बंध होता है। इनके अतिरिक्त औदारिक, वैक्रियिक, पंचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, तिर्यंचायु का भी यथायोग्य बन्ध सम्भव है उनका जघन्य अनुभागबन्ध होता है। शुभपरिणामों से ४३ ध्रुवबन्धी अशुभप्रकृतियों का मन्द अनुभागबंध होता है।

बादालं तु पसत्था विसोहिगुणमुक्कडस्स तिब्बाओ ।
बासीदि अप्पसत्था मिच्छुक्कडसंकिलिट्ठस्स ।।१६४।।

अन्वयार्थ -(बादालं तु पसत्था) बयालीस पुण्यप्रकृतियों का **(तिव्वाओ)** तीव्र अनुभागबंध **(विसोहिगुणमुक्कडस्स)** उत्कृष्ट विशुद्धिगुणयुक्त जीव के होता है और **(बासीदि अप्पसत्था)**बयासी अप्रशस्त प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभाग बंध **(मिच्छुक्कड-संकिलिट्ठस्स)** उत्कृष्ट संक्लेशपरिणाम युक्त मिथ्यादृष्टि जीव के होता है।

आदाओ उज्जोओ मणुवतिरिक्खाउगं पसत्थासु ।
मिच्छस्स होंति तिब्बा सम्माइट्ठिस्स सेसाओ ।।१६५।।

अन्वयार्थ - (पसत्थासु) बयालीस प्रशस्त प्रकृतियों में से **(आदाओ उज्जोओ मणुवतिरिक्खाउगं)** आतप, उद्योत, मनुष्यायु और तिर्यञ्चायु का तीव्र अनुभागबंध **(मिच्छस्स)** विशुद्ध मिथ्यादृष्टि के होता है और **(सेसाओ)** शेष ३८ प्रकृतियों का **(तिव्वा)** तीव्र अनुभागबंध **(सम्माइट्ठिस्स)** विशुद्ध सम्यग्दृष्टि के होता है।

मणुओरालदुवज्जं विसुद्धसुरणिरयअविरदे तिव्वा।
देवाउ अप्पमत्ते खवगे अवसेस बत्तीसा ।।१६६।।

अन्वयार्थ -(मणुओरालदुवज्जं) मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक, वज्रर्षभनाराच संहनन का **(तिव्वा)** तीव्र अनुभाग बंध **(विसुद्धसुरणिरयअविरदे)** विशुद्ध परिणामी असंयत सम्यग्दृष्टि देव और नारकी जीव करता है। **(देवाउ)** देवायु का उत्कृष्ट अनुभागबंध **(अप्पमत्ते)** अप्रमत्त गुणस्थान में होता है **(अवसेस बत्तीसा)** शेष रही बत्तीस पुण्य प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभागबंध **(खवगे)** क्षपक श्रेणी में होता है।

अब उन बत्तीस प्रकृतियों के नाम कहते हैं—

उवघादहीणतीसे अपुव्वकरणस्स उच्चजससादे ।
सम्मेलिदे हवंति हु खवगस्सवसेसबत्तीसा ।।१६७।।

अन्वयार्थ -(अपुव्पकरणस्स) अपूर्वकरण के छठे भाग में व्युच्छिन्न **(उवघादहीणतीसे)** तीस प्रकृतियों में से उपघात रहित शेष उनतीस प्रकृतियाँ और **(उच्चजससादे)** उच्चगोत्र, यशकीर्ति, सातावेदनीय ये तीन प्रकृतियाँ **(सम्मेलिदे)** मिलाने पर **(खवगस्स)** क्षपक की **(अवसेसबत्तीसा)** शेष रही बत्तीस प्रकृतियाँ **(हवंति हु)** होती हैं।

मिच्छस्संतिमणवयं णरतिरियाऊणि वामणरतिरिए ।
एइंदिय आदावं थावरणामं च सुरमिच्छे ।।१६८।।

अन्वयार्थ -(मिच्छस्संतिमणवयं) मिथ्यात्व गुणस्थान की बंध से व्युच्छिन्न अंतिम सूक्ष्मादि नौ प्रकृतियाँ और **(णरतिरियाऊणि)** मनुष्यायु और तिर्यञ्चायु का उत्कृष्ट अनुभागबंध **(वामणरतिरिए)** मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यञ्च में होता है **(एइंदिय आदावं थावरणामं च)** एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर नामकर्म का उत्कृष्ट अनुभागबंध **(सुरमिच्छे)** मिथ्यादृष्टि देव में होता है।

उज्जोओ तमतमगे सुरणारयमिच्छगे असंपत्तं ।
तिरियदुगं सेसा पुण चदुगदिमिच्छे किलिट्ठे य ।।१६९।।

अन्वयार्थ -(तमतमगे) तमस्तमनामक सातवी पृथ्वी में **(उज्जोओ)** उद्योत प्रकृति का उत्कृष्ट अनुभागबंध होता है **(असंपत्तं)** असंप्राप्तासृपाटिका संहनन **(तिरियदुगं)** तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी का तीव्रानुभागबंध **(सुरणारयमिच्छगे)** मिथ्यादृष्टि देव व नारकी बांधते हैं **(पुण सेसा)** पुनः शेष अड़सठ प्रकृतियों का तीव्र अनुभागबंध **(चदुगदि मिच्छे किलिट्ठे य)** चारों गति के संक्लेश परिणाम वाले मिथ्यादृष्टि जीव बांधते हैं।

प्र. सं.	प्रकृति	तीव्र(उत्कृष्ट) अनुभाग बंधका स्वामी
८६	**अशुभप्रकृतियाँ ८२ +४** आतप,उद्योत,मनुष्यायु,तिर्यंचायु	८२ का स्वामी मिथ्यादृष्टि संक्लेश परिणामी, विशुद्ध मिथ्यादृष्टि (४ शुभप्रकृतियों का)
३८	उपर्युक्त ४ को छोडकर शेष शुभप्रकृतियाँ	विशुद्ध सम्यग्दृष्टि
३८ प्रकृतियों का विशेष नियम		
५	मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक, वज्रर्षभनाराचसंहनन	अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन करनेवाले अनिवृत्तिकरण के अन्तिम समयवर्ती असंयत सम्यग्दृष्टि देव व नारकी
१	देवायु	अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती
३२	उपघात छोडकर आठवें गुणस्थान में व्युच्छिन्न २९, उच्चगोत्र यश:कीर्ति, सातावेदनीय	क्षपक श्रेणिवाले जीव के व्युच्छित्ति के समय
८६ प्रकृतियों का विशेष नियम		
२	मनुष्यायु, तिर्यंचायु	विशुद्ध परिणामी मनुष्य और तिर्यंच - मिथ्यादृष्टि
९	सूक्ष्मत्रय, विकलत्रय, नरकद्विक, नरकायु	संक्लेश परिणामी मिथ्यादृष्टि मनुष्य व तिर्यंच
२	एकेन्द्रिय, स्थावर	संक्लेश परिणामी मिथ्यादृष्टिदेव अंतिम ६ महिनों में
१	आतप	विशुद्ध परिणामी मिथ्यादृष्टि देव अंतिम ६ महिनों में
३	असंप्राप्तसृपाटिका, तिर्यंचद्विक	मिथ्यादृष्टि देव व नारकी
१	उद्योत	७ वें नरक में उपशम सम्यक्त्व सन्मुख मिथ्यादृष्टि नारकी
६८	उपर्युक्त १८ छोड़कर शेष प्रकृतियाँ	चारों गति के संक्लेशपरिणामी मिथ्यादृष्टि जीव

अब जघन्य अनुभागबंध के स्वामी कहते हैं —

वण्णचउक्कमसत्थं उवघादो खवगघादि पणवीसं ।
तीसाणमवरबंधो सगसगवोच्छेदठाणम्मि ।।१७०।।

अन्वयार्थ -(असत्थं वण्णचउक्कं) अप्रशस्त वर्णचतुष्क **(उवघादो)** उपघात और **(खवगघादि पणवीसं)** क्षपक श्रेणी में व्युच्छिन्न होनेवाली घातिया कर्मों की पच्चीस प्रकृतियाँ अर्थात् ५ ज्ञानावरण, ५ अंतराय, ४ दर्शनावरण, निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, संज्वलन ४ कषाय इन **(तीसाणं)** तीस प्रकृतियों का **(अवरबंधो)** जघन्य अनुभागबंध **(सगसगवोच्छेदठाणम्हि)** अपने अपने बंध व्युच्छित्ति स्थान में होता है।

अणथीणतियं मिच्छं मिच्छे अयदे हु बिदियकोहादी ।
देसे तदियकसाया संजमगुणपत्थिदे सोलं ।।१७१।।

अन्वयार्थ - (अणथीणतियं) अनन्तानुबंधी की चार कषाय, स्त्यानगृद्धि त्रिक और **(मिच्छं)** मिथ्यात्व ये ८ प्रकृति **(मिच्छे)** मिथ्यात्व गुणस्थान में, **(बिदियकोहादी)** द्वितीय अप्रत्याख्यान क्रोधादि चार कषाय **(हु अयदे)** असंयत गुणस्थान में, **(तदियकसाया)** तृतीय प्रत्याख्यान चार कषाय **(देसे)** देशसंयत गुणस्थान में, इसप्रकार **(सोलं)** सोलह प्रकृतियाँ **(संजमगुणपत्थिदे)** संयमगुण को धारण करने के सन्मुख जीव के अंतिम समय में जघन्य अनुभागसहित बंधती हैं।

आहारमप्पमत्ते पमत्तसुद्धेव अरदिसोगाणं ।
णरतिरिये सुहुमतियं वियलं वेगुव्वछक्काऊ ।।१७२।।

अन्वयार्थ -(आहारं) आहारकद्विक का जघन्य अनुभागबंध **(अप्पमत्ते)** संक्लेशपरिणाम युक्त अप्रमत्त गुणस्थान में होता है। **(अरदिसोगाणं)** अरति और शोक का जघन्य अनुभागबंध **(पमत्तसुद्धेव)** तत्प्रायोग्यविशुद्ध प्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव को होता है **(सुहुमतियं)** सूक्ष्मत्रिक अर्थात् सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण **(वियलं)** द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय **(वेगुव्वछक्काऊ)** वैक्रियिक षट्क और चार आयु इन सोलह प्रकृतियों का जघन्य अनुभागबंध **(णरतिरिये)** मनुष्य व तिर्यंच करता है।

सुरणिरये उज्जोवोरालदुगं तमतमम्मि तिरियदुगं ।
णीचं च तिगदिमज्झिमपरिणामे थावरेयक्खं ।।१७३।।

अन्वयार्थ - (उज्जोवोरालदुगं) उद्योत और औदारिकद्विक का जघन्य अनुभागबंध **(सुरणिरये)** संक्लेशपरिणामी देव और नारकी के होता है । **(तिरियदुगं)** तिर्यंचद्विक **(च)** और **(णीचं)** नीच गोत्र प्रकृति **(तमतमम्मि)** महातम:प्रभा नामक सप्तम पृथ्वी नरक में जघन्य अनुभागसहित बंधती है। **(थावरेयक्खं)** स्थावर और एकेन्द्रिय प्रकृति **(तिगदिमज्झिमपरिणामे)** नरक के बिना तीन गतिवाले जीव के मध्यमपरिणाम में जघन्य अनुभागसहित बंधती है।

सोहम्मोत्ति य तावं तित्थयरं अविरदे मणुस्सम्मि ।
चदुगदिवामकिलिट्ठे पण्णरस दुवे विसोहीये ।।१७४।।

अन्वयार्थ -(तावं) आतप प्रकृति **(सोहम्मोत्ति य)** सौधर्मयुगलतक के देवों में जघन्य अनुभागसहित बंधती है **(तित्थयरं)** तीर्थंकर प्रकृति **(अविरदे मणुस्सम्मि)** असंयत मनुष्य में जो द्वितीय-तृतीय नरक जाने के संमुख है उसमें जघन्य अनुभागसहित बंधती है **(पण्णरस)** आगे की गाथा में कही गयी पंद्रह प्रकृतियाँ **(चदुगदिवामकिलिट्ठे)** चारों गति के संक्लेशपरिणामी मिथ्यादृष्टि जीव के **(दुवे)** दो प्रकृतियाँ चारों गति के विशुद्ध परिणामी मिथ्यादृष्टि जीव के जघन्य अनुभागसहित बंधती हैं।

आगे उन्हीं प्रकृतियों के नाम कहते हैं—

परघाददुगं तेजदु तसवण्णचउक्क णिमिणपंचिंदी ।
अगुरुलहुं च किलिट्ठे इत्थिणउंसं विसोहीये ।।१७५।।

अन्वयार्थ - (परघाददुगं) परघात, उच्छ्वास **(तेजदु)** तैजस, कार्मण **(तसवण्णचउक्क)** त्रसचतुष्क (त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक), वर्णचतुष्क, **(णिमिणपंचिंदी)** निर्माण, पंचेन्द्रिय **(अगुरुलहुं च)** और अगुरुलघु ये **(किलिट्ठे)** संक्लेशपरिणाम में बंधनेवाली पंद्रह प्रकृतियाँ है और **(इत्थिणउंसं)** स्त्रीवेद और नपुंसकवेद ये दो प्रकृतियाँ (**विसोहीये**) विशुद्ध परिणाम में जघन्य अनुभागसहित बंधती हैं।

सम्मो वा मिच्छो वा अट्ठ अपरियट्ट मज्झिमो य जदि ।
परिवट्टमाणमज्झिममिच्छाइट्ठी दु तेवीसं ।।१७६।।

अन्वयार्थ - (अट्ठ) आगे की गाथा में बतायी गयी आठ प्रकृतियों को **(अपरियट्ट मज्झिमो)** अपरिवर्तमान मध्यमपरिणामी **(सम्मो वा मिच्छो वा)** सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि जीव जघन्यअनुभागसहित बांधता है **(दु)** परंतु **(तेवीसं)** तेईस प्रकृतियों को **(परिवट्टमाण- मज्झिममिच्छाइट्ठी)** परिवर्तमान मध्यम परिणामी मिथ्यादृष्टि जीव जघन्य अनुभागसहित बांधता है।

उन्हीं आठ और तेईस इस प्रकार इकतीस प्रकृतियों को कहते हैं—

थिरसुहजससाददुगं उभये मिच्छेव उच्चसंठाणं ।
संहदिगमणं णरसुरसुभगादेज्जाण जुम्मं च ।।१७७।।

अन्वयार्थ - (थिरसुहजससाददुगं) स्थिरद्विक, शुभद्विक, यशद्विक और साताद्विक ये आठ प्रकृतियाँ **(उभये)** सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि के जघन्य अनुभागसहित बंधती हैं तथा **(उच्चसंठाणं)** उच्चगोत्र, छहसंस्थान **(संहदिगमणं)** छह संहनन, प्रशस्त, अप्रशस्त विहायोगति **(णरसुरसुभगादेज्जाण जुम्मं च)** मनुष्यद्विक, देवद्विक, सुभगद्विक, आदेयद्विक ये तेईस प्रकृतियाँ मिथ्यादृष्टि के ही जघन्य अनुभागसहित बंधती हैं।

	प्रकृति	जघन्य अनुभाग बंध का स्वामी
३०	४ अशुभवर्णादि, उपघात ५ ज्ञानावरण,५अंतराय,४दर्शनावरण, निद्रा, प्रचला,हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुंवेद, ४ संज्वलन	अपनी अपनी बन्धव्युच्छित्ति के स्थान में
८	अनंतानुबंधी ४,स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व	संयमगुण के अभिमुख विशुद्ध मिथ्यादृष्टि
४	अप्रत्याख्यानकषाय	संयमगुण के अभिमुख विशुद्ध असंयत-सम्यग्दृष्टि

	प्रकृति	जघन्य अनुभाग बंध का स्वामी
४	प्रत्याख्यानकषाय	संयमगुण के अभिमुख विशुद्ध देशसंयत
२	आहारकद्विक	प्रमत्तगुणस्थान अभिमुख संक्लेश परिणामी अप्रमत्त
२	अरति, शोक	अप्रमत्तगुणस्थान अभिमुख विशुद्ध प्रमत्त गुणस्थानवर्ती
१६	सूक्ष्मत्रय, विकलत्रय, वैक्रियिक ६, आयु ४	मनुष्य व तिर्यंच
१	उद्योत	संक्लेशपरिणामी देव व नारकी
२	औदारिकद्विक	देव व नारकी
३	तिर्यंचद्विक, नीचगोत्र	सातवें नरक में विशुद्ध परिणामी नारकी
२	स्थावर, एकेन्द्रिय	नारकी छोडकर शेष तीन गतिवाले मध्यम परिणामी
१	आतप	भवनत्रिक व सौधर्मयुगल के संक्लेश-परिणामी देव
१	तीर्थंकर	नरक जाने के सन्मुख असंयत मनुष्य
१५	परघात, उच्छ्वास, तैजसद्विक, त्रसचतुष्क, शुभवर्णादि ४, निर्माण,पंचेन्द्रिय,अगुरुलघु	चारों गति के संक्लेशपरिणामी मिथ्यादृष्टि
२	स्त्रीवेद, नपुंसकवेद	चारों गति के विशुद्धपरिणामी मिथ्यादृष्टि
८	स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यश-अयश, साता-असाता	अपरिवर्तमान मध्यमपरिणामी सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि
२३	उच्चगोत्र, संस्थान ६,संहनन ६, विहायोगति २, मनुष्यद्विक, देवद्विक सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय	परिवर्तमान मध्यमपरिणामी मिथ्यादृष्टि
१२४		

विशेषार्थ - वर्णादि ४ शुभ और अशुभ दो प्रकार के हैं अतः बंधयोग्य १२० प्रकृतियों में चार प्रकृतियाँ बढ़कर १२४ हुई।

अपरिवर्तमानपरिणाम → जो परिणाम संक्लेश अथवा विशुद्धि से प्रतिसमय बढ़ते ही जावे या घटते ही जावे पुनः पूर्वावस्था को प्राप्त न हो उन्हें अपरिवर्तमान परिणाम कहते हैं।

परिवर्तमान परिणाम → जो परिणाम एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त होकर पुनः पूर्वावस्था को प्राप्त हो सके उन्हें परिवर्तमान परिणाम कहते हैं।

परिणाम तीन प्रकार के हैं → १) उत्कृष्ट २) मध्यम ३) जघन्य। उनमें से सर्वोत्कृष्ट विशुद्ध परिणामों से जघन्य अनुभागबन्ध नहीं होता है क्योंकि अप्रशस्त प्रकृतियों के अनुभाग से प्रशस्त प्रकृतियों के अनुभाग की अनन्तगुणी वृद्धि का प्रसंग प्राप्त होता है। तेईस प्रकृतियों में प्रशस्त अप्रशस्त दोनों ही प्रकार की प्रकृतियाँ है। यदि सर्वोत्कृष्ट विशुद्ध परिणामों से उनका जघन्य अनुभागबन्ध कहते हैं तो अप्रशस्त में जितना अनुभागबन्ध होगा उससे अनन्तगुणा अनुभागबन्ध प्रशस्त प्रकृतियों का होगा तब जघन्य अनुभागबन्ध नहीं रहता। इसी तरह तीव्र संक्लेश परिणामों से भी जघन्य अनुभागबन्ध नहीं होता। क्योंकि तीव्र संक्लेश से अशुभ प्रकृतियों के अनुभाग की वृद्धि का प्रसंग आता है। अतः दोनों को छोड़कर परिवर्तमान मध्यम परिणामों से उनका जघन्य अनुभागबन्ध कहा है।

मूलप्रकृतियों के उत्कृष्टादि अनुभाग के सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव भेदों को कहते हैं —

घादीणं अजहण्णोणुक्कस्सो वेयणीयणामाणं ।
अजहण्णमणुक्कस्सो गोदे चदुधा दुधा सेसा ।।१७८।।

अन्वयार्थ - (घादीणं) घातिकर्मों का **(अजहण्णो)** अजघन्य अनुभागबन्ध **(वेयणीय-णामाणं)** वेदनीय और नामकर्म का **(अणुकस्सो)** अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध **(गोदे)** गोत्रकर्म का **(अजहण्णमणुक्कस्सो)** अजघन्य और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध **(चदुधा)** सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव इसप्रकार चार प्रकार का होता है। **(सेसा)** शेष सभी बंध **(दुधा)** सादि और अध्रुव के भेदों से दो प्रकार हैं।

आगे ध्रुवप्रकृतियों में प्रशस्त अप्रशस्त एवं अध्रुवप्रकृतियों के जघन्य, अजघन्य, अनुत्कृष्ट और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध में संभव सादि आदि भेद कहते हैं —

सत्थाणं धुवियाणमणुक्कस्समसत्थगाण धुवियाणं ।
अजहण्णं च य चदुधा सेसा सेसाणयं च दुधा ।।१७९।।

अन्वयार्थ - (सत्थाणं धुवियाणं) प्रशस्त ध्रुवप्रकृतियों का **(अणुक्कस्सं)** अनुत्कृष्ट बंध **(च)** और **(असत्थगाण धुवियाणं)** अप्रशस्त ध्रुवप्रकृतियों का **(अजहण्णं)** अजघन्यबंध **(चदुधा)** सादि आदि चार प्रकार का है **(य)** और **(सेसा)** इन दोनों के शेष बंध **(च)** और **(सेसाणयं)** शेष अध्रुव प्रकृतियों के जघन्यादि सभी बंध **(दुधा)** सादि और अध्रुव के भेद से दो प्रकार के हैं।

उत्कृष्टादि अनुभाग के सादि अनादि ध्रुव अध्रुव भेदों का प्ररूपण

	मूलप्रकृति	**सादि आदि भेद**
४	घातिकर्मों का अजघन्य बन्ध	सादि,अनादि, ध्रुव, अध्रुव ४ प्रकार का
२	वेदनीय व नामकर्म का अनुत्कृष्टबन्ध	सादि,अनादि, ध्रुव, अध्रुव ४ प्रकार का
१	गोत्रकर्म का अजघन्य व अनुत्कृष्टबन्ध	सादि, अनादि, ध्रुव,अध्रुव ४ प्रकार का
४	घातिया कर्मों का जघन्य, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट	सादि,अध्रुव २ प्रकार का
२	वेदनीय और नामकर्म का, उत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य	सादि, अध्रुव २ प्रकार का
१	आयु का जघन्यादि ४ प्रकार का बंध	सादि, अध्रुव २ प्रकार का
१	गोत्र कर्म का जघन्य, उत्कृष्ट	सादि, अध्रुव २ प्रकार का
	उत्तरप्रकृति	
८	तैजसद्विक, अगुरुलघु, निर्माण,प्रशस्त-वर्णादि ४ इन ध्रुवबन्धी ८ प्रशस्त प्रकृतियों का अनुत्कृष्ट बन्ध	सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव ४ प्रकार का
४३	ज्ञानावरण ५,दर्शनावरण९,अन्तराय ५, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, अशुभवर्णादि ४, उपघात इन ध्रुवबंधी अप्रशस्त प्रकृतियों का अजघन्य बन्ध	सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव ४ प्रकार का
	उपर्युक्त ध्रुवबन्धी प्रकृतियों के शेष तीन बंध	सादि, अध्रुव २ प्रकार का
७३	अध्रुवबन्धी ७३प्रकृतियों के चारों अनुभागबंध	सादि, अध्रुव २ प्रकार का
१२४		

विशेषार्थ - घातिकर्मों का जघन्य अनुभागबन्ध ९ वें, १० वें गुणस्थान में होता है अत: उनका अजघन्य अनुभागबन्ध सादि आदि चारों प्रकार का संभव है।

वेदनीय (साता) और नामकर्म (यश:कीर्ति) का उत्कृष्ट अनुभागबन्ध दसवें गुणस्थान में होता है अत: उनका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध चारों प्रकार का पाया जाता है। उच्च गोत्र का उत्कृष्ट अनुभागबन्ध दसवें गुणस्थान में होता है और नीचगोत्र का जघन्य अनुभागबन्ध ७ वे नरक में सम्यक्त्वसन्मुख अनिवृत्तिकरण परिणाम के अन्तिम समय में होता है अत: गोत्रकर्म का अनुत्कृष्ट और अजघन्य अनुभाग बन्ध चारों प्रकार का है। इसीप्रकार उत्तर प्रकृतियों में जानना।

	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय	ध्रुवप्रकृति		अध्रुव प्र.
									प्रशस्त	अप्रशस्त	
उत्कृष्ट	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
अनुत्कृष्ट	२	२	४	२	२	४	४	२	४	२	२
अजघन्य	४	४	२	४	२	२	४	४	२	४	२
जघन्य	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२

अब अनुभाग का स्वरूप प्रथम घातिकर्मों में कहते हैं —

सत्ती य लतादारू अट्ठीसेलोवमाहु घादीणं ।
दारुअणंतिमभागोत्ति देसघादी तदो सव्वं ।।१८०।।

अन्वयार्थ -(घादीणं) घातिया कर्मों की **(सत्ती)** शक्ति **(लतादारू अट्ठीसेलोवमाहु)** लता, दारु, अस्थि और शैल के समान है तथा **(दारुअणंतिमभागोत्ति)** दारुभाग के अनन्तवें भागपर्यन्त शक्ति **(देसघादि)** देशघाति है **(तदो)** उसके आगे शैलभागपर्यन्त शक्ति **(सव्वं)** सर्वघाति है।

विशेषार्थ - चार घातिकर्मों का अनुभाग ४ प्रकार का — लता, दारु, अस्थि, शैल। जिसप्रकार लता आदि में क्रम से अधिक अधिक कठोरता पाई जाती है उसीप्रकार इन कर्मस्पर्धकों में फल देने की शक्तिरूप अनुभाग क्रम से अधिक अधिक पाया जाता है। लता = बेल, दारु = लकडी, अस्थि = हड्डी, शैल = पर्वत।

इस अनुभाग के दो भेद हैं - १) देशघाति २) सर्वघाति

- देशघाति
  - लता के सर्व स्पर्धक
  - दारु के अनंतवें भाग स्पर्धक
- सर्वघाति
  - दारु के अनंत बहुभाग स्पर्धक
  - अस्थि के सर्व स्पर्धक
  - शैल के सर्व स्पर्धक

अब मिथ्यात्वप्रकृति में विशेषता बताते हैं—

देसोत्ति हवे सम्मं तत्तो दारु अणंतिमे मिस्सं ।
सेसा अणंतभागा अत्थिसिलाफड्ढयामिच्छे ॥१८१॥

अन्वयार्थ - **(देसोत्ति)** देशघातिस्पर्धक तक शक्ति **(सम्मं)** सम्यक्त्वप्रकृति रूप **(हवे)** है **(तत्तो)** उसके पश्चात् दारू के शेष अनन्तबहुभाग के **(अणंतिमे)** अनंतवें भागरूप शक्ति **(मिस्सं)** मिश्ररूप है **(सेसा अणंतभागा)** दारू के शेष अनंतबहुभाग स्पर्धक तथा **(अत्थिसिलाफड्ढया)** अस्थि और शैलरूप स्पर्धक **(मिच्छे)** मिथ्यात्वप्रकृति में हैं।

विशेषार्थ - मिथ्यात्वप्रकृति के अनुभाग की विशेषता—

सम्यक्त्वरूप स्पर्धक	**सम्यग्मिथ्यात्व स्पर्धक**	**मिथ्यात्व प्रकृति के स्पर्धक**
लता से दारु के अनंतवें भाग तक देशघातिस्पर्धक	दारू के शेष बहुभाग का एकभाग (जात्यंतर सर्वघाति)	दारु का शेष बहुभाग, अस्थि, शैल, सर्वघाति

जैसे अंकसंदृष्टि से - दर्शनमोहनीय के कुल स्पर्धक १२० माने उसमें लताभाग के स्पर्धक ८, दारु के १६, अस्थिभाग के ३२, शैलभाग के ६४ स्पर्धक माने ८+१६+३२+६४ = १२० अनन्त की संख्या ४ मानी।

सम्यक्त्वरूप स्पर्धक	**सम्यग्मिथ्यात्व स्पर्धक**	**मिथ्यात्व प्रकृति के स्पर्धक**
लता+दारु का अनंतवाँ भाग	$\frac{\text{शेषदारु का बहुभाग}}{\text{अनंत}}$	शेषदारुभाग+अस्थि+शैल
$८+\frac{१६}{४}=८+४=\boxed{१२}$	$\frac{१२}{४}=\boxed{३}$	$९ + ३२ + ६४ = \boxed{१०५}$

१६ में से १२ शेष रहे   दारू में ४ + ३ = ७   १६ - ७ = ९ शेष रहे

दारू का एकभाग $\text{दा}\,\frac{1}{\text{ख}}$ बहुभाग $\text{दा}\,\frac{\text{ख}-1}{\text{ख}}$ बहुभाग का एकभाग $\text{दा}\,\frac{\text{ख}-1}{\text{ख ख}}$

शेष दारु का बहुभाग $\text{दा}\,\frac{\text{ख}-1}{\text{ख}}\,\frac{\text{ख}-1}{\text{ख}}$

मिथ्यात्व शैल	शै	बहुभाग	$९\,\text{ना}\,\frac{\text{ख}-1}{\text{ख}}$
अस्थि	अ	एकभाग का बहुभाग	$९\,\text{ना}\,\frac{\text{ख}-1}{\text{ख ख}}$
दारू का शेष बहुभाग	$\text{दा}\,\frac{\text{ख}-1}{\text{ख}}\,\frac{\text{ख}-1}{\text{ख}}$	फिर एकभाग का बहुभाग	$९\,\text{ना}\,\frac{\text{ख}-1}{\text{ख ख ख}}$
मिश्र दारू के बहुभाग का एकभाग	$\text{दा}\,\frac{\text{ख}-1}{\text{ख ख}}$		
सम्यक्त्व दारू का एकभाग	$\frac{\text{दा}}{\text{ख}}$	शेष एकभाग	$९\,\text{ना}\,\frac{1}{\text{ख ख ख}}$
लता	ल		

कुल शक्ति = स्पर्धक शलाका × नाना गुणहानि   ९ × ना = ९ ना

इसमें अनंत बहुभाग स्पर्धक शैलरूप होते हैं अत: शैलरूप = $९\,\text{ना}\,\frac{\text{ख}-1}{\text{ख}}$

शेष एकभाग के बहुभाग अस्थिरूप - $९\,\text{ना}\,\frac{\text{ख}-1}{\text{ख ख}}$

पुन: शेष एकभाग के बहुभाग दारू के सर्वघाति स्पर्धक- $९\,\text{ना}\,\frac{\text{ख}-1}{\text{ख ख ख}}$ शेष एकभाग देशघातिरूप $९\,\text{ना}\,\frac{1}{\text{ख ख ख}}$

१) मिथ्यात्व का अनुभाग तीन भाव से परिणत होता है — १) शैल अस्थि दारू
२) अस्थि दारू ३) दारू

२) सम्यक्त्व का अनुभाग दो भाव से परिणत होता है — १) दारू, लता २) लता

३) मिश्र का अनुभाग एक भाव से परिणत होता है — १) दारू का एकभाग

आवरणदेसघादंतरायसंजलणपुरिससत्तरसं।
चदुविधभावपरिणदा तिविहा भावा हु सेसाणं ।।१८२।।

अन्वयार्थ - (आवरणदेसघाद) ज्ञानावरण, दर्शनावरण में देशघाती ७ प्रकृतियाँ **(अंतराय-संजलणपुरिससत्तरसं)** ५ अंतराय, संज्वलन चार कषाय, पुरुषवेद इस प्रकार सतरह प्रकृतियाँ **(चदुविधभावपरिणदा)** चारों प्रकार के भावरूप परिणमन करती हैं **(सेसाणं)** शेष सर्व प्रकृतियाँ (**तिविहा भावा हु**) तीन प्रकार के भावरूप परिणमन करती हैं।

विशेषार्थ - १) ४ ज्ञानावरण, ३ दर्शनावरण, ५ अंतराय, ४ संज्वलन, पुरुषवेद ये १७ प्रकृतियाँ देशघाति हैं इनमें लता, दारु, अस्थि व शैल चारों प्रकार के स्पर्धक पाये जाते हैं और वे चार भावरूप से परिणत होते हैं -१) शैल, अस्थि, दारु, लता २) अस्थि, दारु लता ३) दारु लता ४) केवल लता। जैसे - मिथ्यात्व अवस्था में चारों प्रकार के स्पर्धक या शैल के बिना तीन प्रकार के स्पर्धक पाये जाते हैं। करणपरिणाम में आनेपर द्विस्थानीय अनुभाग होता है। ऊपर ९ वें गुणस्थान में केवल लतारूप अनुभाग पाया जाता है।

२) पुरुषवेद को छोड़कर आठ नोकषायों में भी शैल, अस्थि, दारु, लता चारों प्रकार के स्पर्धक पाये जाते हैं किन्तु वे तीन भावरूप से ही परिणत होते हैं - १) शैल, अस्थि, दारु, लता २) अस्थि, दारु, लता ३) दारु, लता। केवल लतारूप एक भावरूप नहीं पाया जाता क्योंकि नववें गुणस्थान के पूर्व ही इनकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है। उपर्युक्त १७ और ८ प्रकृतियाँ देशघाति होने से इनमें देशघाति और सर्वघाति दोनों प्रकार के स्पर्धक पाये जाते हैं।

३) मिथ्यात्व व मिश्र को छोडकर शेष सर्वघाति प्रकृतियाँ २१ - २ = १९
१ केवलज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण (१केवल + ५ निद्रा), १२ अनन्तानुबन्ध्यादि कषाय इनमें शैल, अस्थि व दारु का शेष बहुभागरूप सर्वघाति स्पर्धक ही होते है क्योंकि सर्वघाति प्रकृतियों में सर्वघाति स्पर्धक ही होते हैं। ये तीन प्रकार के स्पर्धक तीन भावरूप से परिणत होते हैं - १) शैल, अस्थि, दारू का बहुभाग २) अस्थि, दारू का बहुभाग ३) दारू का बहुभाग।

दारू का एकभाग देशघाति स्पर्धक हैं और बहुभाग सर्वघाति स्पर्धक हैं इसलिए यहाँ सर्वघाति प्रकृतियों में दारु के बहुभागरूप स्पर्धक ही ग्रहण किए हैं।

१७ प्रकृतियाँ — ४ ज्ञानावरण, ३ दर्शनावरण, ५ अंतराय, ४ संज्वलन, पुरुषवेद

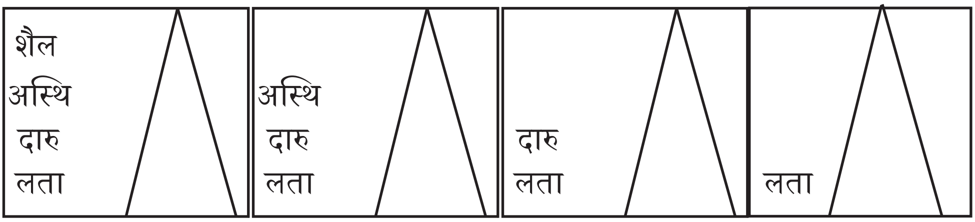

८ नोकषाय (पुरुषवेद छोड़कर शेष)

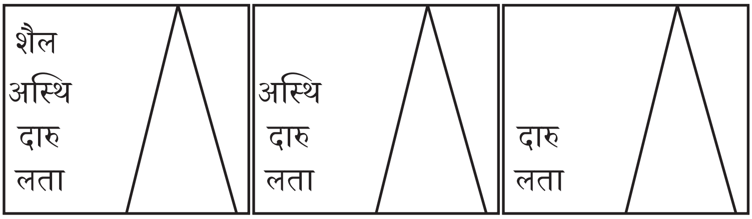

१९ सर्वघाति -

१ केवलज्ञानावरण, १ केवलदर्शनावरण, ५ निद्रा, १२ अनन्तानुबन्ध्यादि कषाय

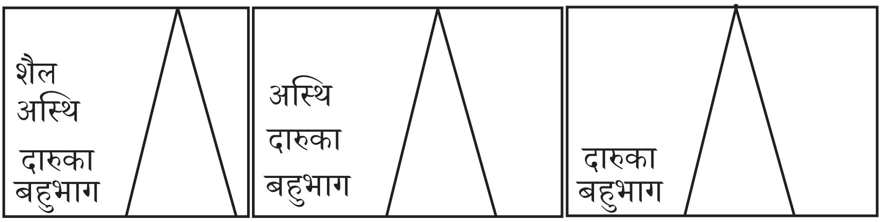

अवसेसा पयडीओ अघादिया घादियाण पडिभागा ।
ता एव पुण्णपावा सेसा पावा मुणेदव्वा ।।१८३।।

अन्वयार्थ -(अवसेसा अघादिया पयडीओ) शेष अघातिया कर्मो की प्रकृतियाँ **(घादियाण पडिभागा)** घातियाँ कर्मो के समान प्रतिभागयुक्त हैं अर्थात् उनके स्पर्धक भी तीन भावरूप परिणत होते हैं। **(ता एव)** अघातिया कर्मप्रकृतियाँ ही **(पुण्णपावा)** पुण्य और पापरूप होती हैं **(सेसा)** शेष घातिकर्म प्रकृतियाँ **(पावा)** पापरूप ही **(मुणेदव्वा)** जानना चाहिये।

गुडखंडसक्करामियसरिसा सत्था हु णिंबकंजीरा ।
विसहालाहलसरिसाऽसत्था हु अघाडिपडिभागा ।।१८४।।

अन्वयार्थ -(अघाडिपडिभागा) अघातिकर्मों की **(सत्था)** प्रशस्त प्रकृतियों में शक्ति के भेद **(गुडखंडसक्करामियसरिसा)** गुड, खांड, शर्करा और अमृत के समान हैं **(असत्था हु)** अप्रशस्तप्रकृतियों में **(णिंबकंजीरा विसहालाहलसरिसा)** निम्ब, कांजीर, विष, हलाहल के समान अनुभाग है।

विशेषार्थ - घातिकर्मों की सब प्रकृतियाँ पापरूप ही होती हैं। अघातिकर्मों में पुण्य और पाप ऐसे दो भेद होते हैं।

प्रशस्त (पुण्य) प्रकृतियों के अनुभाग की उपमा— गुड, खांड, शर्करा, अमृत

अप्रशस्त (पाप) प्रकृतियों के अनुभाग की उपमा — निंब, कांजीर, विष, हलाहल

जैसे गुड, खांड आदि अधिक-अधिक मिष्ट होने से सुखदायक हैं वैसे प्रशस्त प्रकृतियों के स्पर्धक सुखदायक होते हैं। जैसे नीम आदि अधिक-अधिक कटुक होने से दुःखदायक होते हैं वैसे ही अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग दुःखदायक होता है।

उदययोग्य १२२ प्रकृतियों में ४७ घाति, शेष ७५ अघाति, उसमें ४२ प्रशस्त, शेष ३३ + अशुभ वर्णादि ४ = ३७ अप्रशस्तप्रकृतियाँ हैं। अघाति कर्मों का अनुभाग तीन भावरूप से परिणत है।

४२ प्रशस्तप्रकृतियाँ —

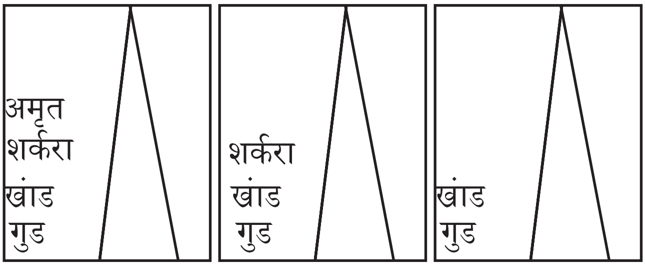

३७ अप्रशस्तप्रकृतियाँ —

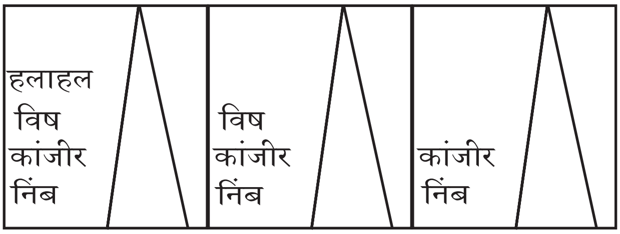

केवल गुडरूप अथवा केवल निंबरूप अनुभाग किसी भी प्रकृति का नहीं होता।

।अनुभागबन्ध प्रकरण समाप्त।

४ प्रदेशबन्ध प्रकरण

आगे तैंतीस गाथाओं से प्रदेशबन्ध को कहते हैं —

एयक्खेत्तोगाढं सव्वपदेसेहिं कम्मणो जोग्गं ।
बंधदि सगहेदूहिं य अणादियं सादियं उभयं ।।१८५।।

अन्वयार्थ -(एयक्खेत्तोगाढं) एकक्षेत्र में अवगाढरूप से स्थित **(कम्मणो जोग्गं)** कर्मरूप परिणमन के योग्य **(अणादियं)** अनादि **(सादियं)** सादि **(उभयं)** और उभयरूप जो पुद्‌गलद्रव्य है उसे यह जीव (**सगहेदूहिं**) मिथ्यादर्शनादिक अपने अपने निमित्त से (**सव्वपदेसेहिं**) सर्व आत्मप्रदेशों से **(बंधदि)** बांधता है।

एयसरीरोगाहियमेयक्खेत्तं अणेयखेत्तं तु ।
अवसेसलोयखेत्तं खेत्तणुसारिट्ठियं रूवि ।।१८६।।

अन्वयार्थ - (एयसरीरोगाहियं एयक्खेत्तं) एक शरीर की अवगाहना से रोका गया जो स्थान है वह एक क्षेत्र है **(तु)** और **(अवसेसलोयखेत्तं)** शेष सर्वलोक का क्षेत्र **(अणेयखेत्तं)** अनेक क्षेत्र है। (**खेत्तणुसारिट्ठियं रूवि**) अपने अपने क्षेत्र के अनुसार स्थित रूपी द्रव्य का प्रमाण है।

विशेषार्थ - कर्मरूप पुद्‌गलों का आत्मप्रदेशों के साथ संश्लेषसम्बन्ध होना प्रदेशबन्ध कहलाता है। एकक्षेत्र अवगाढरूप से स्थित और कर्मरूप परिणमन के योग्य अनादि अथवा सादि या उभयरूप जो पुद्‌गलद्रव्य है उसे यह जीव सर्वप्रदेशों से अपने अपने निमित्त से बांधता है। इसका स्पष्टीकरण -

क्षेत्र दो प्रकार का है - १) एकक्षेत्र २) अनेकक्षेत्र

१) एकक्षेत्र — एक शरीर से रुके हुए आकाश को एकक्षेत्र कहते हैं।

२)अनेकक्षेत्र — शेष सर्वलोक के क्षेत्र को अनेकक्षेत्र कहते हैं।

यद्यपि शरीर की अवगाहना जघन्य से उत्कृष्टपर्यन्त अथवा समुद्‌घात की अपेक्षा लोकप्रमाण है। तथापि बहुत जीव घनाङ्गुल के असंख्यातवें भागप्रमाण शरीर की अवगाहना

हुए रूपीद्रव्य में से अनंतवाँ भागरूप द्रव्य **(जोग्गं)** कर्मरूप होने के योग्य है। **(तु)** और (**अवसेसं**) शेष अनन्तबहुभाग प्रमाण द्रव्य **(अजोग्गं)** कर्मरूप होने के अयोग्य है **(तत्थ)** एक एक भेद में भी **(सादि अणादी)** सादि द्रव्य और अनादि द्रव्य **(हवे)** हैं।

विशेषार्थ - आगे इन सब द्रव्यों का प्रमाण निकालते हैं।

समस्तलोक में सर्व पुद्गलद्रव्य = जीवराशि × अनंत (१६ ख) है तो एकक्षेत्र में कितना द्रव्य अथवा अनेक क्षेत्र में कितना द्रव्य पाया जाता है त्रैराशिक से निकालते हैं --

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध
१) सर्वलोक $\equiv$	सर्वपुद्गल १६ ख	एकक्षेत्र $\substack{\text{६}\\ \text{प}\\ \partial}$?	$\frac{\text{१६ ख} \times \text{६}}{\equiv \quad \substack{\text{प}\\ \partial}}$ एकक्षेत्रस्थित पुद्गलद्रव्य
२) सर्वलोक $\equiv$	सर्वपुद्गल १६ ख	अनेकक्षेत्र $\equiv \substack{\text{-६}\\ \text{प}\\ \partial}$?	$\frac{\text{१६ ख}}{\equiv} \times \left(\equiv \substack{\text{-६}\\ \text{प}\\ \partial} \right)$ अनेकक्षेत्रस्थित पुद्गलद्रव्य

अपने अपने द्रव्य का अनंतवाँ भाग योग्य और शेष बहुभाग अयोग्य द्रव्य हैं।

एकक्षेत्रस्थितद्रव्य		अनेकक्षेत्रस्थितद्रव्य	
योग्य अनंतवाँ भाग $\frac{\text{१६ ख}}{\equiv} \substack{\text{६}\\ \text{प ख}\\ \partial}$	अयोग्य अनन्त बहुभाग $\frac{\text{१६ ख}}{\equiv} \substack{\text{६ } \overset{\text{१}-}{\text{ख}}\\ \text{प ख}\\ \partial}$	योग्य अनंतवाँ भाग $\frac{\text{१६ ख}}{\equiv} \equiv \substack{\text{-६}\\ \text{प ख}\\ \partial}$	अयोग्य अनन्त बहुभाग $\frac{\text{१६ ख}}{\equiv} \equiv \substack{\text{-६ } \overset{\text{१}-}{\text{ख}}\\ \text{प ख}\\ \partial}$

अनंतवाँ एकभाग निकालने के लिए अनंत (ख) का भाग देना और अनंत बहुभाग निकालने के लिए अनंत (ख) का भाग देकर एक कम अनंत से गुणा करना।

१) सादिद्रव्य—जिस पुद्गलद्रव्य को पूर्व में कर्मत्व प्राप्त हुआ है अर्थात् जो जीव के द्वारा पूर्व में कर्मरूप से ग्रहण किया गया है और अनंतर उसकी निर्जरा हो गयी वह सादि द्रव्य है।

२) अनादिद्रव्य — जिस पुद्गलद्रव्य को कभी कर्मत्व प्राप्त नहीं हुआ अर्थात्

को धारण करनेवाले हैं अत: मुख्यता से एक क्षेत्र का प्रमाण घनाङ्गुल के असंख्यातवें भाग मात्र कहा है। इस क्षेत्र को छोडकर अवशेष लोकाकाश का सर्वक्षेत्र अनेकक्षेत्र है।

एकक्षेत्र = घनाङ्गुल / (पल्य / असंख्यात) ६ प ∂ एकक्षेत्र अंक संदृष्टिसे ४ प्रदेश माना	अनेकक्षेत्र = लोक - एकक्षेत्र ≡ - ६ प ∂ ६४ - ४ = ६० ६० प्रदेश संपूर्ण लोक ६४ प्रदेश माने

$\frac{६४००}{६४}$ = १०० × ४ = ४०० एकक्षेत्र स्थित द्रव्य

१०० × ६० = ६००० अनेकक्षेत्र स्थित द्रव्य

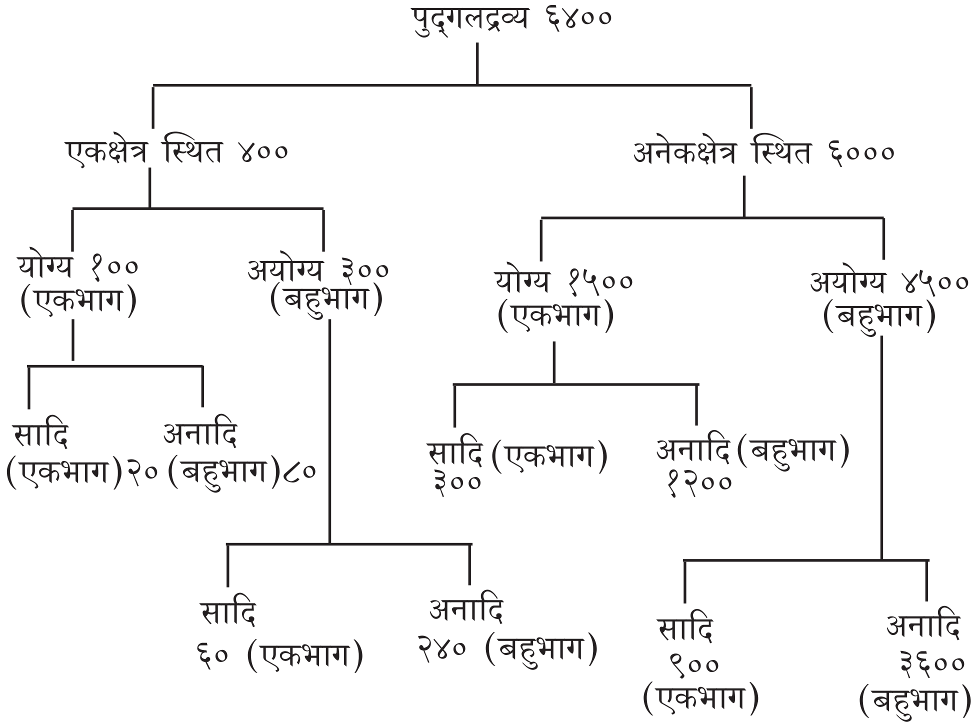

एयाणेयखेत्तट्ठियरूवि अणंतिमं हवे जोग्गं ।

अवसेसं तु अजोग्गं सादि अणादी हवे तत्थ ।।१८७।।

अन्वयार्थ - (एयाणेयखेत्तट्ठियरूवि अणंतिमं) एक और अनेक क्षेत्रों में ठहरे

अनादिकाल से जीव ने जिसको कभी ग्रहण नहीं किया उसे अनादिद्रव्य कहते हैं।

अब सादिद्रव्य का प्रमाण कहते हैं—

जेट्ठे समयपबद्धे अतीतकालाहदेण सव्वेण ।
जीवेण हदे सव्वं सादी होदित्ति णिद्दिट्ठं ।।१८८।।

अन्वयार्थ -(जेट्ठे समयपबद्धे) उत्कृष्ट समयप्रबद्ध को **(अतीतकालाहदेण)** अतीत काल से गुणित **(सव्वेण जीवेण)** सर्व जीवराशि से **(हदे)** गुणा करने पर जो प्रमाण प्राप्त होवे वह **(सव्वं सादी)** सर्वसादि द्रव्य का प्रमाण **(होदित्ति)** है ऐसा (**णिद्दिट्ठं**) जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है।

विशेषार्थ - सादिद्रव्य का प्रमाण निकालने का सूत्र —

उत्कृष्ट समयप्रबद्ध × अतीतकाल × सर्वजीव = सर्वजीवसम्बन्धि सादिद्रव्य

स ३२ × अ × १६ = स ३२ अ १६

उत्कृष्ट समयप्रबद्ध × अतीतकाल = एकजीवसम्बन्धि सादिद्रव्य

स ३२ × अ = स ३२ अ

अतीत काल = संख्यातआवली × सिद्धराशि

प्रत्येक जीव को मोक्ष जाने के लिए संख्यात आवली काल लगता है इसलिए संख्यात आवली से सिद्धराशि को गुणनेपर अतीत काल का प्रमाण आता है।

त्रैराशिक से एकक्षेत्र और अनेकक्षेत्र का सादिद्रव्य निकालते हैं —

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध
१)सर्वलोक ≡	सादिद्रव्य स ३२ अ १६ इतना	एकक्षेत्र में ६ प ∂ ?	स ३२ अ १६ × ६ ≡ प ∂
२)सर्वलोक ≡	सादिद्रव्य स ३२ अ १६ इतना	अनेकक्षेत्र में ≡ -६ प ∂ ?	स ३२अ १६×≡ -६ ≡ प ∂

अब सादिद्रव्य में योग्य-अयोग्य द्रव्य का प्रमाण कहते हैं —

सगसगखेत्तगयस्स य अणंतिमं जोग्गदव्वगयसादी ।
सेसं अजोग्गसंगयसादी होदित्ति णिद्दिट्ठं ।।१८९।।

अन्वयार्थ - (सगसगखेत्तगयस्स) अपने अपने एक-अनेक क्षेत्र में स्थित सादिद्रव्य में से **(अणंतिमं)** अनन्तवें भाग **(जोग्गदव्वगयसादी)** अपना अपना योग्य सादिद्रव्य है **(य)** और **(सेसं)** शेष अनन्तबहुभाग **(अजोग्गसंगयसादी)** अयोग्य सादिद्रव्य **(होदित्ति)** है ऐसा **(णिद्दिट्ठं)** सर्वज्ञ भगवान ने कहा है।

विशेषार्थ - अपने अपने सादिद्रव्य में अनंत का भाग देनेपर एकभाग सादि योग्य, बहुभाग सादि अयोग्य द्रव्य हैं,

एकक्षेत्र सादिद्रव्य		**अनेकक्षेत्र सादिद्रव्य**	
योग्य सादि स ३२ अ १६× ६ १ ≡ प ख ∂ एकभाग	अयोग्य सादि १— स ३२ अ १६ ६ ख ≡ प ख ∂ बहु भाग	योग्य सादि स ३२ अ१६≡-६ १ ≡ प ख ∂ एकभाग	अयोग्य सादि १— स ३२ अ१६≡-६ ख ≡ प ख ∂ बहुभाग

अब अनादिद्रव्य का प्रमाण कहते हैं—

सगसगसादिविहीणे जोग्गाजोग्गे य होदि णियमेण ।
जोग्गाजोग्गाणं पुण अणादिदव्वाण परिमाणं ।।१९०।।

अन्वयार्थ - (जोग्गाजोग्गे) एकक्षेत्र में और अनेक क्षेत्र में स्थित सर्व योग्य द्रव्य और अयोग्यद्रव्य में से **(सगसगसादिविहीणे)** अपने अपने सादिद्रव्य का प्रमाण घटाने पर **(णियमेण)** नियम से **(जोग्गाजोग्गाणं पुण अणादिदव्वाण)** अपने अपने योग्य और अयोग्य अनादिद्रव्यों का **(परिमाणं)** प्रमाण आता है।

विशेषार्थ - अनादि द्रव्य का प्रमाण निकालने की पद्धति -

१)एकक्षेत्रस्थित योग्य द्रव्य - एकक्षेत्रस्थित योग्यसादि द्रव्य = एक क्षेत्र योग्य अनादि द्रव्य
अंक से १०० - २० = ८०

१६ ख ६ १ - स ३२ अ १६।६ १ = एक क्षेत्र योग्य अनादि द्रव्य
≡ पख ≡ प ख
∂ ∂

२) एकक्षेत्र स्थित अयोग्यद्रव्य - एकक्षेत्र स्थित अयोग्य सादिद्रव्य = एकक्षेत्रस्थित अयोग्य अनादि द्रव्य

अंक से ३०० - ६० = २४०

१६ ख ≡ ६ ख (१) / प ख ∂ - स ३२ अ ≡ १६।६ ख (१) / प ख ∂ = एकक्षेत्रस्थित अयोग्य अनादिद्रव्य

---

३) अनेकक्षेत्र स्थित योग्य द्रव्य - अनेकक्षेत्रस्थ योग्य सादि द्रव्य = अनेकक्षेत्रस्थित योग्य अनादि द्रव्य

अंक से १५०० - ३०० = १२००

१६ ख ≡ -६ १ / ≡ प ∂ ख - स ३२ अ ≡ १६ ≡ -६ १ / प ∂ ख = अनेकक्षेत्रस्थित योग्य अनादि द्रव्य

---

४) अनेकक्षेत्रस्थ अयोग्यद्रव्य - अनेकक्षेत्रस्थ अयोग्यसादि द्रव्य = अनेक क्षेत्रस्थ अयोग्य अनादि द्रव्य

अंक से ४५०० - ९०० = ३६००

१६ ख ≡ -६ ख (१) / ≡ प ∂ ख - स ३२ अ ≡ १६ ≡ -६ ख (१) / प ∂ ख अनेक क्षेत्रस्थ अयोग्य अनादि द्रव्य

इनमें से योग्य सादि द्रव्य में से अथवा योग्य अनादि द्रव्य में से अथवा योग्य उभयद्रव्य में से एकसमयप्रबद्ध प्रमाण मूल और उत्तरप्रकृतिरूप से प्रतिसमय प्रदेशबन्ध करता है।

आगे समयप्रबद्ध का प्रमाण कहते हैं —

सयलरसरूवगंधेहिं परिणदं चरिमचदुहिं फासेहिं ।
सिद्धादो अभव्वादोऽणंतिमभागं गुणं दव्वं ।।१९१।।

अन्वयार्थ -(सयलरसरूवगंधेहिं) सर्व रस, सर्व रूप, सर्व गन्धों से तथा **(चरिमचदुहिं फासेहिं)** अन्तिम चार स्पर्शों से **(परिणदं)** परिणत **(सिद्धादो अणंतिमभागं)** और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण तथा **(अभव्वादोऽणंतिम गुणं)** अभव्यों से अनन्तगुणा **(दव्वं)** द्रव्य समयप्रबद्धरूप पुद्गल परमाणुओं का प्रमाण जानना।

विशेषार्थ - समयप्रबद्ध का प्रमाण — एक समयप्रबद्ध में सिद्धराशि के अनन्तवें भाग और अभव्यराशि से अनन्तगुणे परमाणु होते हैं। इतने परमाणुओं को प्रतिसमय ग्रहण करके कर्मरूप परिणमाता है। उन परमाणुओं में सब रस, सब रूप, सब गंध और चार स्पर्श (शीत, उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष) पाये जाते हैं। उनमें गुरु, लघु, मृदु, कठिन ये चार स्पर्श नहीं

होते। एक समय में ग्रहण किया हुआ समयप्रबद्ध आठ मूल प्रकृतिरूप परिणमता है। उनमें बटवारे का क्रम आगे कहते हैं।

अब मूलप्रकृतियों में द्रव्य का विभाग कहते हैं —

आउगभागो थोवो णामागोदे समो तदो अहियो ।
घादितिये वि य तत्तो मोहे तत्तो तदो तदिए ।।१९२।।

अन्वयार्थ -(आउगभागो थोवो) आयुकर्म का भाग सब से कम है **(णामागोदे समो)** नाम व गोत्रकर्म का भाग आपस में समान है तो भी **(तदो अहियो)** आयुकर्म के भाग से अधिक है **(तत्तो)** उससे **(घादितिये वि)** तीन घातियाँ कर्मों का भाग आपस में समान होते हुए भी अधिक है। **(तत्तो)** उससे **(मोहे)** मोहनीय कर्म का भाग अधिक है **(तदो)** उससे **(तदिये)** वेदनीय कर्म का भाग अधिक है।

विशेषार्थ - सब प्रकृतियों में आयुकर्म का भाग थोड़ा है, उससे अधिक नामगोत्र का (परस्पर समान), उससे अधिक ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का (परस्पर तीनों का भाग समान), उससे मोहनीय का अधिक है, उससे वेदनीय का भाग अधिक है। सातवें गुणस्थानतक आयु के बन्ध के समय ८ कर्मों में बटवारा होता है।

आगे नववें गुणस्थानतक ७ कर्मों में, दसवें गुणस्थान में मोहनीय बिना ६ कर्मों में ११, १२, १३ वें गुणस्थान में एक वेदनीय में द्रव्यों का बटवारा होता है।

सुहदुक्खणिमित्तादो बहुणिज्झरगोत्ति वेयणीयस्स ।
सव्वेहिंतो बहुगं दव्वं होदित्ति णिद्दिट्ठं ।।१९३।।

अन्वयार्थ - (वेयणीयस्स) वेदनीय कर्म **(सुहदुक्खणिमित्तादो)** सुख और दु:ख में निमित्त होने से **(बहुणिज्झरगोत्ति)** उसकी निर्जरा बहुत होती है इसलिये **(सव्वेहिंतो)** अन्य सब कर्मों से वेदनीय को **(बहुगं दव्वं)** बहुत द्रव्य **(होदित्ति)** मिलता है ऐसा **(णिद्दिट्ठं)** जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

सेसाणं पयडीणं ठिदिपडिभागेण होदि दव्वं तु ।
आवलिअसंखभागो पडिभागो होदि णियमेण ।।१९४।।

अन्वयार्थ - (सेसाणं पयडीणं) वेदनीय के बिना शेष सब मूलप्रकृतियों का **(दव्वं)** द्रव्य **(ठिदिपडिभागेण)** स्थिति के प्रतिभाग के अनुसार **(होदि)** होता है अर्थात् जिनकी स्थिति अधिक है उनको अधिक तथा जिनकी स्थिति कम है उनको कम हिस्सा मिलता है। **(पडिभागो)** इसका विभाग करने में प्रतिभागहार **(णियमेण)** नियम से **(आवलिअसंखभागो)** आवलि के असंख्यातवें भाग प्रमाण **(होदि)** होता है।

विशेषार्थ - वेदनीयकर्म संसारी जीवों को सुखदु:ख का कारण है, अत: इसकी निर्जरा अधिक है इसी कारण अन्य कर्मों से वेदनीय को अधिक भाग मिलता है। अन्य सब कर्मों में स्थिति के अनुसार विभाग होता है। जिनकी स्थिति अधिक है उनको अधिक, जिनकी स्थिति कम है उनको कम और समान स्थितिवालों में समान बटवारा होता है। अधिक का प्रमाण लाने के लिए आवली का असंख्यातवाँ भाग भागहार है, उसकी संदृष्टि ९

आगे विभाग का क्रम कहते हैं —

बहुभागे समभागो अट्ठण्हं होदि एक्कभागम्हि ।
उत्तकमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देओ दु ।।१९५।।

अन्वयार्थ - (बहुभागे) बहुभाग में **(समभागो)** आठ समान भाग करके **(अट्ठण्हं)** आठ प्रकृतियों को एक एक भाग **(होदि)** देना होता है **(एक्कभागे)** शेष एक भाग रहा **(उत्तकमो)** उसको पूर्वोक्त क्रम से देना **(दु)** किन्तु उसमें भी **(बहुगस्स)** जिसका बहुत द्रव्य हो उसको **(बहुभागे)** बहुभाग **(देओ)** देना चाहिये।

विशेषार्थ - द्रव्य विभाग का विधान — बहुभाग के समान भाग करके आठ प्रकृतियों को देना, शेष एकभाग में आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देते जाना। उसमें भी जो बहुत द्रव्यवाला हो उसको बहुभाग देते जाना इसप्रकार अन्तपर्यन्त जानना। अन्तिम एकभाग अन्तवाले को देना। अंकसंदृष्टि से समयप्रबद्ध के परमाणूओं की संख्या ७५००० मानी। आवली का असंख्यातवा भाग ५ माना।

$$\frac{७५०००}{५} = १५००० \text{ एकभाग}, \quad १५००० \times ४ = ६०००० \text{ बहुभाग}$$

बहुभाग के ८ भाग करके ८ कर्मों को समानरूप से दिया $\frac{६००००}{८} = ७५००$ प्रत्येक का

एकभाग १५००० उसको भागहार का भाग देकर $\frac{१५०००}{५}$ = ३०००, १२०००→बहुभाग
एकभाग

वेदनीय को देना, $\frac{३०००}{५}$ = ६०० एकभाग, २४०० बहुभाग - मोहनीय को देना

$\frac{\text{शेष एकभाग}}{\text{भागहार}}$ $\frac{६००}{५}$ =१२० एकभाग,४८० बहुभाग तीन को अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय को समान भाग करके देना $\frac{४८०}{३}$=१६० प्रत्येक को इतना देना,

शेष एकभाग $\frac{१२०}{५}$ = २४ एकभाग ९६ बहुभाग बहुभाग नाम गोत्र को समान भाग करके देना

$\frac{९६}{२}$ = ४८ शेष एकभाग २४ आयु को देना

	वेदनीय	मोहनीय	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	अंतराय	नाम	गोत्र	आयु	कुलजोड
बहुभाग के समान भाग	७५००	७५००	७५००	७५००	७५००	७५००	७५००	७५००	६००००
एकभाग के बहुभाग	१२०००	२४००	१६०	१६०	१६०	४८	४८	२४	१५०००
	१९५००	९९००	७६६०	७६६०	७६६०	७५४८	७५४८	७५२४	७५०००

अर्थसंदृष्टि से :- समयप्रबद्ध स∂ — एकभाग, बहुभाग — आवली के असंख्यातवाँ भाग की संदृष्टि ९

बहुभाग के समान आठ भाग $\frac{स\partial ८}{९\ ८}$ एकभाग $\frac{स\partial}{९}$ बहुभाग $\frac{स\partial ८}{९}$

एकभाग $\frac{स\partial}{९}$ का एकभाग $\frac{स\partial}{९९}$ और बहुभाग $\frac{स\partial ८}{९९}$ — बहुभाग वेदनीय को देना

शेष एकभाग $\frac{स\partial}{९९}$ का एकभाग $\frac{स\partial}{९९९}$ और बहुभाग $\frac{स\partial।८}{९९९}$ — बहुभाग मोहनीय को देना

शेष एकभाग $\frac{स\partial}{९९९}$ का एकभाग $\frac{स\partial}{९९९९}$ और बहुभाग $\frac{स\partial।८}{९९९९}$ — इसको तीन में समान ज्ञा.दर्श.अंतराय भाग करके देना। तीन भाग करने के लिए तीन से भाग देना $\frac{स\partial।८}{९९९९\ ३}$

शेष एकभाग स∂/९९९९ का एकभाग स∂/९९९९९ बहुभाग स∂।८/९९९९९ → इसमें समान दो भाग करके नाम और गोत्र को देना स∂।८/९९९९९ २ शेष एकभाग स∂ १/९९९९९ आयु को देना।

	वेदनीय	मोहनीय	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	अंतराय	नाम	गोत्र	आयु
समभाग	स∂८/९।८	स∂८/९।८	स∂८/९।८	स∂८/९।८	स∂८/९।८	स∂८/९।८	स∂८/९।८	स∂८/९।८
एकभाग के बहुभाग	स∂।८/९९	स∂।८/९९९	स∂।८/९९९९३	स∂।८/९९९९३	स∂।८/९९९९३	स∂।८/९९९९९२	स∂।८/९९९९९२	स∂।१/९९९९९

अब उत्तरप्रकृतियों में विभाग का क्रम कहते हैं—

उत्तरपयडीसु पुणो मोहावरणा हवंति हीणकमा ।
अहियकमा पुण णामा विग्घा य ण भंजणं सेसे ।।१९६।।

अन्वयार्थ - (उत्तरपयडीसु पुणो) उत्तरप्रकृतियों में **(मोहावरणा)** मोहनीय, ज्ञानावरण और दर्शनावरण ये तो **(हीणकमा)** हीनक्रम **(हवंति)** होते हैं अर्थात् इनकी उत्तरप्रकृतियों में क्रम से घटता घटता द्रव्य दिया जाता है **(पुण)** पुन: **(णामा विग्घा)** नाम और अन्तराय कर्म **(अहियकमा)** अधिकक्रम है अर्थात् इनके भेदों में क्रम से अधिक अधिक द्रव्य दिया जाता है। **(सेसे)** अन्य कर्म की प्रकृतियों में **(भंजणं ण)** विभाग नहीं होता।

अब घातिकर्मों में सर्वघाति और देशघाति द्रव्य का बटवारा कहते हैं—

सव्वावरणं दव्वं अणंतभागो दु मूलपयडीणं ।
सेसा अणंतभागा देसावरणे हवे दव्वं ।।१९७।।

अन्वयार्थ -(मूलपयडीणं) मूलप्रकृतियों का **(अणंतभागो दु)** अनंतवाँ भाग प्रमाण **(दव्वं)** द्रव्य **(सव्वावरणं)** सर्वघाति है **(सेसा अणंतभागा)** शेष अनंतबहुभाग प्रमाण **(दव्वं)** द्रव्य **(देसावरणं)** देशघाति **(हवे)** है।

विशेषार्थ - उत्तरप्रकृतियों में विभाग का क्रम →

१) ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय के भेदों में क्रम से हीन हीन द्रव्य है।

२) नाम व अन्तराय कर्म के भेदों में क्रम से अधिक अधिक द्रव्य है।

३) आयु, गोत्र व वेदनीयकर्म के भेदों में बटवारा नहीं होता क्योंकि इनके एक काल में एक ही प्रकृति का बंध होता है। मूलप्रकृति का पूर्ण द्रव्य उसी एक को मिलता है।

घातिकर्म

सर्वघातिद्रव्य — अनन्तवाँ एकभाग द्रव्य

देशघातिद्रव्य — अनन्त बहुभाग द्रव्य

जैसे ज्ञानावरण के विभाग में आया द्रव्य (समभाग) $\frac{\text{स}\partial\,\text{८}}{\text{९८}}$ + (एकभाग का बहुभाग) $\frac{\text{स}\partial\,\text{८}}{\text{९९}}$ दूसरी राशि प्रथम राशि में साधिक करना $\frac{\text{स}\partial\,|\text{८}}{\text{९८}}$ गुणकार में एक कम को न गिनकर अपवर्तन करना $\frac{\text{स}\,\partial\,|}{\text{८}}$ इस ज्ञानावरण के द्रव्य को जिनदृष्ट अनन्त से भाग देना, उसमें से एकभाग $\frac{\text{स}\,\partial\,|\,\text{१}}{\text{८ ख}}$ सर्वघाति द्रव्य, शेष बहुभाग $\frac{\text{स}\,\partial\,|\,\text{ख}\overline{\text{१}}}{\text{८ ख}}$ देशघातिद्रव्य जानना।

देसावरणण्णोण्णब्भत्थं तु अणंतसंखमेत्तं खु ।
सव्वावरणधणट्ठं पडिभागो होदि घादीणं ।।१९८।।

अन्वयार्थ - (देसावरणण्णोण्णब्भत्थं) देशघाति प्रकृतियों की अन्योन्याभ्यस्त-राशि **(अणंत-संखमेत्तं खु)** अनंतसंख्याप्रमाण है वह **(घादीणं)** घाति प्रकृतियों का **(सव्वावरणधणट्ठं)** सर्वघाति द्रव्य लाने के लिये **(पडिभागो)** भागहार का प्रमाण **(होदि)** है।

विशेषार्थ - चार ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण, पांच अन्तराय, चार संज्वलन, नौ नोकषाय के द्रव्य की नाना गुणहानियाँ अनन्त हैं। उनकी अन्योन्याभ्यस्त राशि भी अनन्त है।

यहाँ जो अन्योन्याभ्यस्त राशि का प्रमाण है वही सर्वघातिद्रव्य का परिमाण लाने के लिए प्रतिभाग होता है।

मतिज्ञानावरणादि चारप्रकृतियों का द्रव्य =

देशघातिद्रव्य + (सर्वघातिद्रव्य - केवलज्ञानावरण का द्रव्य)

इन देशघातिप्रकृतियों को अपना देशघातिद्रव्य मिलता है और सर्वघातिद्रव्य भी मिलता है। वह सर्वघाति द्रव्य केवलज्ञानावरण का जितना भाग है उससे कम है। इसप्रकार मतिज्ञानावरणादि चार का द्रव्य ⟶ अपने सर्वघाति द्रव्यसहित स ∂ ८।५ (१–) देशघातिद्रव्य
८।ख।९।५

(सर्वघातिद्रव्य ९ का भाग देकर बहुभाग लिया, ५ में विभाग के लिए ५ का भाग दिया एक केवलज्ञान का कम करने के लिए गुणकार में एक कम किया।) है वह कुछ अधिक समयप्रबद्ध के आठवें भागप्रमाण है।

स ∂ - मतिज्ञानावरणादि ४ का द्रव्य, इसे एक कम अन्योन्याभ्यस्तराशि से भाग देनेपर
८

शैलभाग की अन्तिम गुणहानि के द्रव्य का प्रमाण आता है। अन्योन्याभ्यस्त राशि = ख ख।

स ∂ (१–) ⟶ शैल की अन्तिमगुणहानि का प्रमाण।
८ ख ख

उसके नीचे की गुणहानियों में द्रव्य दूना-दूना होता है। ऐसे दूना दूना होते होते दारु के बहुभाग की प्रथमगुणहानि में स ∂ (१–) ख यथायोग्य आधे अनन्त से
८ ख ख २

अन्तिमगुणहानि के द्रव्य को गुणा करनेपर द्रव्य का प्रमाण आता है। अर्थात शैलभाग से दारु के बहुभागतक जितनी गुणहानियाँ हुई उतने प्रमाण २ के अंक रखकर परस्पर गुणा करने से अन्योन्याभ्यस्त राशि आती है। उस अन्योन्याभ्यस्तराशि के आधे से अन्तिमगुणहानि के द्रव्य को गुणा करनेपर प्रथम गुणहानि के द्रव्य का प्रमाण आता है।

शैलभाग, अस्थिभाग, दारू के बहुभागतक सब गुणहानियों के द्रव्य को जोडने पर जो प्रमाण हो उतना परिणाम सर्वघातिद्रव्य का जानना, क्योंकि सर्वघाति द्रव्य, सर्वघाति स्पर्धक रूप से ही परिणमित होता है।

शैल, अस्थि, दारु का बहुभागरूप से परिणत द्रव्य सर्वघाति है।दारु का एकभाग व लताभागरूप से परिणत द्रव्य देशघाति है।

दारु बहुभाग के प्रथमगुणहानि द्रव्य से नीचे की दारु एकभाग के अन्तिमगुणहानि का

प्रमाण दुगुणा है → स∂ १ / ८ ख ख ख / २ × २ उसके नीचे दुगुणा दुगुणा क्रम से

सर्वघातिद्रव्य, सर्वघाति और देशघाति प्रकृतियों में हीनक्रम से विभाग करके देना। किन्तु देशघातिद्रव्य देशघाति प्रकृतियों में ही दिया जाता है, सर्वघातिप्रकृतियों में नहीं दिया जाता है।

स∂ १ / ८ ख ख × ख ख / २ = स∂ ख ख / ८ ख १ ख २   अंकसंदृष्टि से १०० × ३२ / २ = १६००

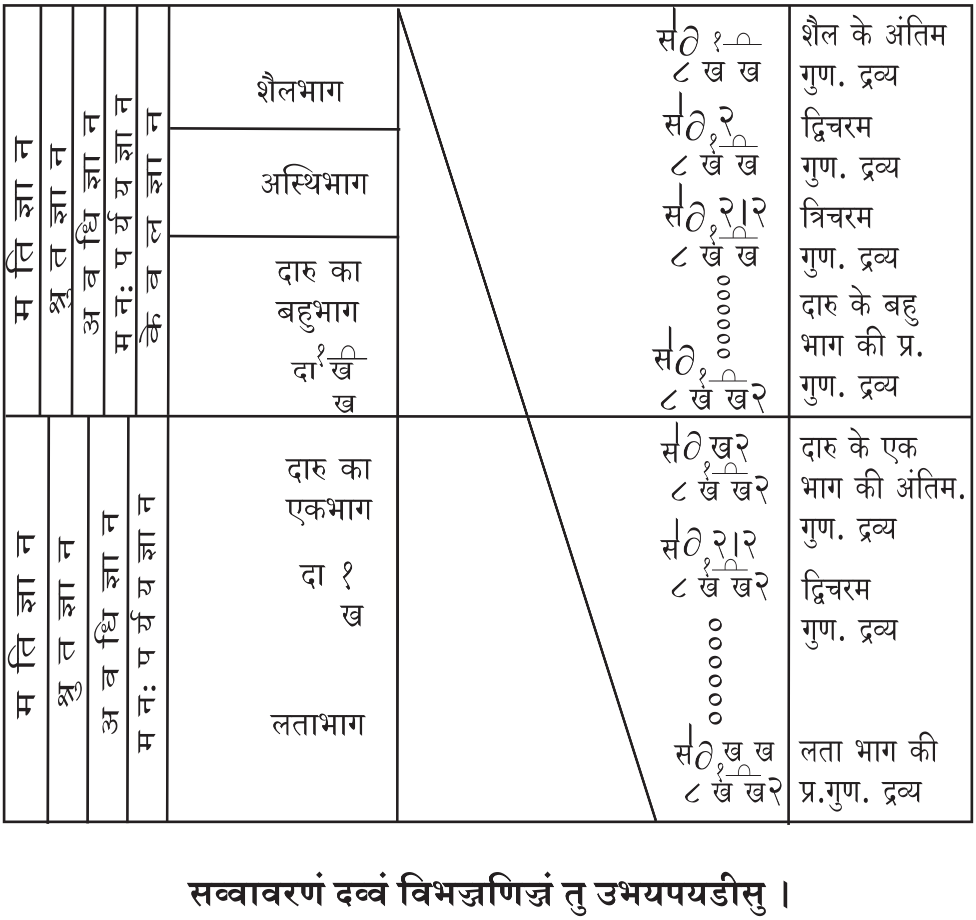

सव्वावरणं दव्वं विभज्जणिज्जं तु उभयपयडीसु ।
देसावरणं दव्वं देसावरणेसु णेविदरे ।।१९९।।

अन्वयार्थ - (सव्वावरणं दव्वं) सर्वघाति द्रव्य **(उभयपयडीसु)** सर्वघाति और देशघाति दोनों प्रकृतियों में **(विभज्जणिज्जं)** विभाग करके देना चाहिए **(तु)** किन्तु **(देसावरणं दव्वं)** देशघाति द्रव्य **(देसावरणेसु)** देशघाति प्रकृतियों में ही देना चाहिए **(णेविदरे)** इतर में नहीं।

उत्तरप्रकृतियों में देने का क्रम —

बहुभागे समभागो बंधाणं होदि एक्कभागम्हि ।
उत्तकमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देओ दु ।।२००।।

अन्वयार्थ - (बंधाणं) एक साथ बंधनेवाली उत्तर प्रकृतियों में **(बहुभागे समभागो)** बहुभाग के समान भाग करके देना चाहिए। **(एक्कभागम्हि)** शेष एक भाग में से **(उत्तकमो)** ऊपर बताये क्रमानुसार देना चाहिये **(तत्थवि)** उसमें भी **(बहुगस्स)** जिसका बहुत द्रव्य कहा हो उसे **(बहुभागो)** बहुभाग **(देओ दु)** देना चाहिए।

विशेषार्थ - अपने अपने पिण्डरूप द्रव्य में आवली के असंख्यातवें भाग से भाग देना जो बहुभाग आता है उसको एकसाथ बंधनेवाली उत्तरप्रकृतियों को समान भाग करके देना। जो शेष एक भाग है उसमें से बहुभाग-बहुभाग क्रम से देना। जिसका बहुत द्रव्य कहा हो उसे प्रथम बहुभाग देना।

ज्ञानावरण की उत्तरप्रकृतियों में विभाग —

ज्ञानावरण का सर्वद्रव्य स∂ / ८ इसे अनंत का भाग देकर स∂ / ८ ख यह एकभाग सर्वघातिद्रव्य है।

इसे ज्ञानावरण के ५ भेदों में विभाग करके देना।

सर्वघाति द्रव्य / आवली का असंख्यातवाँ भाग — स∂ / ८ ख ९ एकभाग — स∂८ / ८ ख ९ बहुभाग इसके समान ५ भाग करने के लिए ५ का भाग देकर प्रत्येक को देना। स∂८१ / ८ ख ९ ५

शेष एकभाग / प्रतिभागहार = एकभाग स∂ / ८ ख९९ | बहुभाग स∂८ / ८ ख९९ मतिज्ञानावरण को देना

शेष एकभाग / प्रतिभागहार = स। ∂ / ८ ख९९९ | बहुभाग स। ∂ ८ / ८ ख९९९ श्रुतज्ञानावरण को देना

शेष एकभाग / प्रतिभागहार = स। ∂ / ८ ख९९९९ | बहुभाग स। ∂ ८ / ८ ख९९९९ अवधिज्ञानावरण को देना

शेष एकभाग / प्रतिभागहार = स। ∂ / ८ ख९९९९९ | बहुभाग स। ∂ ८ / ८ ख९९९९९ मन:पर्ययज्ञानावरण को देना

शेष एकभाग = स। ∂ / ८ ख९९९९९ | केवलज्ञानावरण को देना

उपर्युक्त सर्वघातिद्रव्य को छोड़कर शेष बहुभाग मात्र देशघाति द्रव्य स। ∂ ख (१ ⌒) / ८ ख

देशघातिद्रव्य / प्रतिभागहार स। ∂ ख (१ ⌒) / ८ ख ९ इसका बहुभाग स। ∂ ख (१ ⌒) ८ / ८ ख ९ इसको मत्यादि ४ में प्रत्येक में समान विभाग करके देना स। ∂ ख (१ ⌒) ८ / ८ ख ९।४ (चार में विभाग करने के लिए ४ का भाग दिया।)

उपर्युक्त शेष एकभाग / प्रतिभागहार = स। ∂ ख (१ ⌒) / ८ ख ९९ इसका बहुभाग स। ∂ ख (१ ⌒) ८ / ८ ख ९९ मतिज्ञानावरण को देना

इसप्रकार शेष एकभाग के बहुभाग करके क्रम से श्रुतज्ञानावरण स। ∂ ख (१ ⌒) ८ / ८ ख ९९९ को,

शेष एकभाग का बहुभाग स। ∂ ख (१ ⌒) ८ / ८ ख ९९९९ अवधिज्ञानावरण को और शेष एक भाग

स। ∂ ख (१ ⌒) १ / ८ ख ९९९९ मन:पर्ययज्ञानावरण को देना।

इसीप्रकार दर्शनावरणीय कर्म के सर्वद्रव्य के परिमाण में अनन्त का भाग देकर जो एकभागमात्र सर्वघातिद्रव्य है उसको ९ में विभाग करके देना। उसका क्रम स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, निद्रा, प्रचला, चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल इस प्रकार हीनक्रम से देना। शेष बहुभागमात्र देशघाति द्रव्य चक्षु, अचक्षु, अवधिदर्शनावरण, इन तीन

देशघाति प्रकृतियों में विभाग करके देना।

	स्त्यानगृद्धि	निद्रा निद्रा	प्रचला प्रचला	निद्रा	प्रचला
समानभाग	स।∂८ ८ ९ख ९	स।∂८ ८।९।ख।९	स।∂८ ८।९।ख।९	स।∂८ ८।९।ख।९	स।∂८ ८।९।ख।९
एकभाग का बहुभाग	स।∂८ ८ ख ९९	स।∂८ ८ ख९९९	स।∂८ ८।९।ख९९९९	स।∂८ ८।९।ख९९९९९	स।∂८ ८।९।ख९९९९९९

	चक्षुर्दर्शनावरण	अचक्षुर्दर्शनावरण	अवधिदर्शनावरण	केवलदर्शनावरण
समानभाग	स।∂८ ८ ९ख ९	स।∂८ ८।९ ख९	स।∂८ ८।९।ख९	स।∂८ ८।९।ख९
एकभाग का बहुभाग	स।∂८ ८ ख९९९९९९९	स।∂८ ८।९ख९९९९९९९९	स।∂८ ८।९ख९९९९९९९९	स।∂ ८।९।ख९९९९९९९९

देशघातिद्रव्य			
समानभाग	स।∂ख८ (१ ⌓) ८ख ९।३	स।∂ख८ (१ ⌓) ८ख ९।३	स।∂ख८ (१ ⌓) ८ख ९।३
एकभाग का बहुभाग	स।∂ख ८ (१ ⌓) ८ख ९। ९	स।∂ ख ८ (१ ⌓) ८ख ९।९।९	स।∂ ख१ (१ ⌓) ८ख ९।९।९

घादितियाणं सगसगसव्वावरणीयसव्वदव्वं तु ।
उत्तकमेण य देयं विवरीयं णामविग्घाणं ।।२०१।।

अन्वयार्थ - (घादितियाणं) ज्ञानावरण, दर्शनावरण और मोहनीय इन तीन घातिकर्मों का **(सगसगसव्वावरणीयसव्वदव्वं तु)** अपना अपना सर्वघाति का सर्वद्रव्य **(उत्तकमेण)** क्रमश: आदि से अन्तपर्यंत **(देयं)** देना चाहिए **(णामविग्घाणं)** नाम और अन्तराय का द्रव्य **(विवरीयं)** विपरीत क्रम से अर्थात् अन्त से आदिपर्यन्त देना चाहिए।

ज्ञानावरण की उत्तरप्रकृतियों में विभाग अंकसंदृष्टि से →

ज्ञानावरण को बटवारे में मिला हुआ द्रव्य १,५०,००० माना, अनन्त ६ माना

$\frac{१५००००}{६}$ = २५००० एकभाग सर्वघातिद्रव्य   २५०००×५ =१,२५,००० बहुभाग देशघातिद्रव्य

सर्वघातिद्रव्य का बटवारा ज्ञानावरण की ५ प्रकृतियों में होगा। आवली का→ ५ असंख्यातवाँ भाग

$\frac{२५०००}{५}$ = ५००० एकभाग   ५००० × ४ = २०००० बहुभाग

बहुभाग के समान ५ भाग करके प्रत्येक को देना।

$\frac{५०००}{५}$ = १००० एकभाग   १०००×४ = ४००० बहुभाग मतिज्ञानावरण को देना।

$\frac{१०००}{५}$ = २०० एकभाग २०० × ४ = ८०० बहुभाग श्रुतज्ञानावरण को देना।

$\frac{२००}{५}$ = ४० एकभाग ४० × ४ = १६० बहुभाग अवधिज्ञानावरण को देना।

$\frac{४०}{५}$ = ८ एकभाग ८ × ४ = ३२ बहुभाग मन:पर्ययज्ञानावरण को देना।

शेष ८ एकभाग केवलज्ञानावरण को देना।

देशघातिद्रव्य का बटवारा ज्ञानावरण की ४ देशघातिप्रकृतियों में होगा।

देशघातिद्रव्य $\frac{१२५०००}{५}$ = २५००० एकभाग, १,००,००० बहुभाग

बहुभाग के समान ४ भाग करके प्रत्येक को देना।

$\frac{२५०००}{५}$ = ५००० एकभाग, ५००० × ४ =२०००० बहुभाग मतिज्ञानावरणको देना।

$\frac{५०००}{५}$ =१००० एकभाग, १००० × ४ = ४००० बहुभाग श्रुतज्ञानावरण को देना।

$\frac{१०००}{५}$ = २०० एकभाग, २०० × ४ = ८०० बहुभाग अवधिज्ञानावरण को देना।

शेष एकभाग २०० मन:पर्ययज्ञानावरण को देना।

सर्वघातिद्रव्य का विभाग

	मतिज्ञानावरण	श्रुतज्ञानावरण	अवधिज्ञाना.	मन:पर्ययज्ञाना.	केवलज्ञानावरण
समानभाग	४०००	४०००	४०००	४०००	४०००
एकभाग का बहुभाग	४०००	८००	१६०	३२	८
कुल जोड	८०००	४८००	४१६०	४०३२	४००८

देशघातिद्रव्य का विभाग

	मतिज्ञानावरण	श्रुतज्ञानावरण	अवधिज्ञानावरण	मन:पर्ययज्ञानावरण
बहुभाग के समभाग	२५०००	२५०००	२५०००	२५०००
एकभाग का बहुभाग	२००००	४०००	८००	२००
कुल जोड	४५०००	२९०००	२५८००	२५२००

अंतराय कर्म का विभाग→

अंतरायकर्म की पाँचों प्रकृतियाँ देशघाति हैं। उसमें अधिक क्रम से कर्मपरमाणुओं का बटवारा होगा। उसके द्रव्य में सर्वघाति और देशघाति विभाग न करके सीधा बटवारा किया है।

सर्वद्रव्य / प्रतिभागहार = स|∂ (८९) एकभाग, बहुभाग स|∂८ (८ ९) बहुभाग के पाँच समान भाग करके

एक एक प्रकृति को देना स|∂८ (८ ९ ५) शेष एकभाग में प्रतिभागहार का भाग देकर बहुभाग

स|∂८ (८ ९ ९) वीर्यान्तराय को देना, शेष एकभाग का बहुभाग उपभोगान्तराय को, शेष

एकभाग का बहुभाग भोगान्तराय को, शेष एकभाग का बहुभाग लाभान्तराय को, शेष एकभाग दानान्तराय को देना।

	वीर्यान्तराय	उपभोगान्तराय	भोगान्तराय	लाभान्तराय	दानान्तराय
समानभाग	स।∂८ ८।९।५	स।∂८ ८।९।५	स।∂८ ८।९।५	स।∂८ ८।९।५	स।∂८ ८।९।५
एकभागका बहुभाग	स।∂८ ८ ९९	स।∂८ ८ ९९९	स।∂८ ८।९९९९	स।∂८ ८।९९९९९	स।∂ ८।९९९९९

मोहनीयकर्म में विभाग करने का कुछ विशेष है उसे कहते हैं —

मोहे मिच्छत्तादी सत्तरसण्हं तु दिज्जदे हीणं ।
संजलणाणं भागेव होदि पणणोकसायाणं ।।२०२।।

अन्वयार्थ - (मोहे) मोहनीय कर्म में सर्वघाति द्रव्य **(मिच्छत्तादी सत्तरसण्हं)** मिथ्यात्वादि सर्वघाति सतरह प्रकृतियों में **(हीणं)** हीनक्रम से **(दिज्जदे)** द्रव्य दिया जाता है। **(संजलणाणं भागेव)** संज्वलनकषाय को जो भाग प्राप्त हुआ है उसी में से **(पणणोकसायाणं)** पाँच नोकषायों का बँटवारा **(होदि)** प्राप्त होता है।

अब नोकषाय के विभाग को कहते हैं—

संजलणभागबहुभागद्धं अकसायसंगयं दव्वं ।
इगिभागसहियबहुभागद्धं संजलणपडिबद्धं ।।२०३।।

अन्वयार्थ -(संजलणभागबहुभागद्धं) संज्वलन कषाय को जो सर्वघातिद्रव्य प्राप्त हुआ है उसका बहुभाग निकालकर उसमें से अर्धभाग प्रमाण **(अकसायसंगयं दव्वं)** नोकषाय संबंधी द्रव्य है और **(इगिभागसहियबहुभागद्धं)** शेष एकभागसहित बहुभाग का अर्धभागप्रमाण द्रव्य **(संजलणपडिबद्धं)** संज्वलन संबंधी है।

विशेषार्थ - मोहनीयकर्म का विभाग - मोहनीयकर्म में मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी लोभ, माया, क्रोध, मान, संज्वलन लोभ, माया, क्रोध, मान, प्रत्याख्यानावरण लोभ, माया, क्रोध, मान, अप्रत्याख्यानावरण लोभ, माया, क्रोध,मान इन सतरह प्रकृतियों में क्रम से हीन द्रव्य देना। नोकषाय नौ हैं किन्तु एक समय में उनमें से

पाँच ही बंधती है। तीनों वेदो में से एक, रति अरति में से एक, हास्य शोक में से एक और भय, जुगुप्सा इसतरह एक साथ पाँच ही बंधती हैं। मोहनीय द्रव्य के दो भाग - १) अनन्तवाँ एकभाग सर्वघातिद्रव्य २) बहुभाग देशघाति द्रव्य। देशघाति द्रव्य में आवली के असंख्यातवें भाग से भाग देकर एकभाग आता है उसे अलग रखना और बहुभाग के दो भाग करना उसमें एकभाग नोकषाय को देना। शेष आधा भाग और अलग रखा एक भाग संज्वलनकषाय को देना।

संज्वलनकषाय को = आधाभाग + एकभाग

नोकषाय को = केवल आधा भाग

जैसे देशघातिद्रव्य ५००० माना, उसमें ५ का भाग दिया $\frac{५०००}{५}$ =१००० एकभाग, शेष ४००० के दो भाग २०००, २०००

संज्वलन को = २००० + १००० = ३०००, नोकषाय को २०००

मोहनीय का सर्वघातिद्रव्य = $\frac{\text{स}|\partial १}{८\text{ख}}$ देशघातिद्रव्य $\frac{\text{स}|\partial\,\overline{\text{ख}}^{\,१}}{८\ \text{ख}}$ इसके गुणकार के एकहीन रूप को न गिनकर अपवर्तन करनेपर $\frac{\text{स}|\partial}{८}$ समयप्रबद्ध का आठवाँ भाग इसे आवली के असंख्यातवें भाग से भाग देना $\frac{\text{स}|\partial १}{८\ ९}$ एकभाग, शेष $\frac{\text{स}|\partial ८}{८|९}$ बहुभाग इसको दो से भाग देकर नोकषाय को देना $\frac{\text{स}|\partial ८}{८|९|२}$ शेष बहुभाग का अर्द्धभाग $\frac{\text{स}|\partial ८}{८|९|२}$ और एकभाग $\frac{\text{स}|\partial १}{८|९}$ संज्वलनकषाय को देना। इसप्रकार मोहनीय में तीन द्रव्य हुये।

१) सर्वघातिद्रव्य में १७ विभाग करना- $\frac{\text{सर्वघातिद्रव्य}}{\text{आवली असं. भाग}}$ $\frac{\text{स}|\partial १}{८|\text{ख}|९}$ एकभाग

बहुभाग $\frac{\text{स}|\partial ८}{८\text{ख}९}$ इसे १७ का भाग देकर सतरह में समान भाग देना $\frac{\text{स}|\partial ८}{८|\text{ख}|९|१७}$

शेष एकभाग में प्रतिभाग से भाग देकर बहुभाग-बहुभाग मिथ्यात्वादि प्रकृतियों में उक्त क्रमसे देकर अंतिम शेष एकभाग अप्रत्याख्यान मान में देना। संज्वलन चार कषायों में जो सर्वघातिद्रव्य प्राप्त होता है, उसीमें से नोकषाय को भी प्राप्त होता है। टीका में उसका बटवारा नहीं बताया है लेकिन नोकषाय देशघाति प्रकृति होने से उसे देशघाति और

सर्वघाति दोनों द्रव्य प्राप्त होते हैं। संज्वलन के प्राप्त सर्वघातिद्रव्य में आवली के असंख्यातवें भाग से भाग देकर जो एक भाग आता है उसे अलग रखकर बहुभाग के समान दो भाग करके एक भाग नोकषाय को देना और अलग रखा हुआ एकभाग और समान एक भाग दोनों मिलाकर संज्वलन कषायों को देना।

२) दूसरा संज्वलन का देशघातिद्रव्य $\frac{\text{स}^{|}\partial\text{८}}{\text{८।९।२}} + \frac{\text{स}^{|}\partial\text{१}}{\text{८।९}}$ दो का समच्छेद करके

$\frac{\text{स}^{|}\partial\text{८}}{\text{८।९।२}} + \frac{\text{स}^{|}\partial\text{२}}{\text{८।९।२}}$ दो में से एक रूप ग्रहण करके प्रथमार्ध में मिलाना।

$\frac{\text{स}^{|}\partial\text{८}^{\text{१-}}}{\text{८।९।२}}$ = आवली के असंख्यातवाँ भाग का अपवर्तन करना, शेष इतना $\frac{\text{स}^{|}\partial}{\text{८।२}}$

इसमें शेष रहा असंख्यात का एकभाग साधिक करना $\frac{\text{स}^{|}\partial}{\text{८।२}}$ इसमें ४ बटवारा करना है

इसलिए सर्वद्रव्य में आवलि के असंख्यातवें भाग से भाग देकर एकभाग $\frac{\text{स}^{|}\partial\text{१}}{\text{८।२।९}}$ अलग

रखना। शेष $\frac{\text{स}^{|}\partial\text{८}}{\text{८।२।९}}$ इस बहुभाग को ४ का भाग देकर चार कषायों में देना।

अलग रखे एकभाग को $\frac{\text{स}^{|}\partial\text{१}}{\text{८।२।९}}$ प्रतिभाग का भाग देकर जो बहुभाग आवे

$\frac{\text{स}^{|}\partial\text{८}}{\text{८।२।९।९}}$ वह संज्वलनलोभ में देना। शेष एकभाग का बहुभाग $\frac{\text{स}^{|}\partial\text{८}}{\text{८।२।९।९।९}}$ संज्वलनमाया

में शेष एकभाग के बहुभाग को $\frac{\text{स}^{|}\partial\text{८}}{\text{८।२।९।९।९।९}}$ संज्वलनक्रोध में देना। शेष एकभाग को

$\frac{\text{स}^{|}\partial\text{१}}{\text{८।२।९।९।९।९}}$ संज्वलनमान में देना।

तण्णोकसायभागो सबंधपणणोकसायपयडीसु ।
हीणकमो होदि तहा देसे देसावरणदव्वं ।।२०४।।

अन्वयार्थ -(तण्णोकसायभागो) वह नोकषाय के हिस्से में आया हुआ द्रव्य **(सबंधपणणोकसायपयडीसु)** एकसाथ बंधनेवाली पाँच नोकषाय प्रकृतियों में **(हीणकमो)** हीनक्रम से **(होदि)** प्राप्त होता है **(तहा)** उसीप्रकार **(देसावरणदव्वं)**

देशघाति द्रव्य **(देसे)** देशघातिप्रकृतियों में मिलता है।

विशेषार्थ - ३) नोकषाय प्रतिबद्ध देशघातिद्रव्य $\frac{\text{स}|\partial\text{८}}{\text{८।२।९}}$ गुणकार में एक कम को न गिनकर अपवर्तन करना $\frac{\text{स}|\partial}{\text{८।२}}$ प्रतिभाग से भाग देकर बहुभाग के $\frac{\text{स}|\partial\text{८}}{\text{८।२।९}}$ समान पाँच भाग करके $\frac{\text{स}|\partial\text{८}}{\text{८।२।९।५}}$ प्रत्येक नोकषाय को देना। शेष एकभाग में $\frac{\text{स}|\partial}{\text{८।२।९}}$ प्रतिभाग से भाग देकर बहुभाग $\frac{\text{स}|\partial\text{८}}{\text{८।२।९।९}}$ वेद को, शेष एकभाग के बहुभाग को $\frac{\text{स}|\partial\text{८}}{\text{८।२।९।९।९}}$ रति या अरति में देना। शेष एकभाग का बहुभाग $\frac{\text{स}|\partial\text{८}}{\text{८।२।९।९।९।९}}$ हास्य या शोक को, शेष एकभाग का बहुभाग $\frac{\text{स}|\partial\text{८}}{\text{८।२।९।९।९।९।९}}$ भय में देना शेष एकभाग $\frac{\text{स}|\partial\text{१}}{\text{८।२।९।९।९।९।९}}$ जुगुप्सा में देना।

नोकषायों में से पाँच प्रकृतियों का युगपत् बंध कौन कौन से गुणस्थान में होता है वह कहते हैं -

१) पुरुषवेद, रति, हास्य, भय, जुगुप्सा इनका बंध १ से ८ गुणस्थानतक होता है।
२) पुरुषवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इनका बंध १ से ६ गुणस्थानतक होता है।
३) स्त्रीवेद, रति, हास्य, भय, जुगुप्सा इनका बंध १ से २ गुणस्थानतक होता है।
४) स्त्रीवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इनका बंध १ से २ गुणस्थानतक होता है।
५) नपुंसकवेद, रति, हास्य, भय, जुगुप्सा इनका बंध १ प्रथम गुणस्थान में ही होता है।
६) नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इनका बंध १ प्रथम गुणस्थान में ही होता है।
७) पुरुषवेद का बंध नववें गुणस्थान के सवेद भागपर्यन्त होता है।

अब नोकषाय का निरन्तर बन्धकाल कहते हैं—

पुंबंधद्धा अंतोमुहुत्त इत्थिम्मि हस्सजुगले य ।
अरदिजुगे संखगुणा णउंसगद्धा विसेसहिया ।।२०५।।

अन्वयार्थ - (पुंबंधद्धा) पुरुषवेद का निरन्तर बन्धकाल **(अंतोमुहुत्त)** अंतर्मुहूर्त है। उससे **(इत्थिम्मि)** स्त्रीवेद, **(हस्सजुगल)** हास्ययुगल **(य)** और **(अरदिजुगे)** अरतिद्विक का क्रम से **(संखगुणा)** संख्यातगुणा है। उससे **(णउंसगद्धा)** नपुंसकवेद का बंधकाल **(विसेसहिया)** कुछ अधिक है।

विशेषार्थ - पुरुषवेद का निरन्तर बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त २१।२, उससे स्त्रीवेद का बन्धकाल संख्यातगुणा २१ ।२ × २ = २१।४, उससे हास्यरति का बन्धकाल संख्यातगुणा २१।४ × ४ = २१।१६, उससे अरति शोक का बन्धकाल संख्यातगुणा है। २१।१६ × २ = २१।३२, उससे नपुंसकवेद का विशेष अधिक है २१।४२

तीनों वेदों का मिलाकर काल = २१।२ + २१।४ + २१।४२ = २१।४८

हास्यरति + अरतिशोक का काल = २१।१६ + २१।३२ = २१।४८ मिले हुए काल को प्रमाणराशि, पिण्डरूप द्रव्य को फलराशि और अपने अपने काल को इच्छाराशि करनेपर त्रैराशिकद्वारा अपने अपने द्रव्य का प्रमाण आता है।

नोकषाय का द्रव्य बहुभाग का आधा $\frac{\text{स}^{|}\partial}{८।२}$

एक नोकषाय का द्रव्य $\frac{\text{स}^{|}\partial}{८।२×५} = \frac{\text{स}^{|}\partial}{८।१०}$ ५ नोकषाय में बटवारा करने के लिए ५ का भाग दिया है।

	प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्धराशि
पुरुषवेद द्रव्य	मु २१।४८	$\frac{\text{स}^{|}\partial}{८।१०}$	मु २१।२?	$\frac{\text{स}^{|}\partial\ \text{२१}\ २}{८।१०\ \text{२१}\ ४८} = \frac{\text{स}^{|}\partial\ २}{८।१०।४८}$
स्त्रीवेद द्रव्य	मु २१।४८	$\frac{\text{स}^{|}\partial}{८।१०}$	मु २१।४?	$\frac{\text{स}^{|}\partial\ \text{२१}\ ४}{८।१०\ \text{२१}\ ४८} = \frac{\text{स}^{|}\partial\ ४}{८।१०।४८}$
नपुंसकवेद द्रव्य	मु २१।४८	$\frac{\text{स}^{|}\partial}{८।१०}$	मु २१।४२?	$\frac{\text{स}^{|}\partial\ \text{२१}।४२}{८।१०\ \text{२१}\ ४८} = \frac{\text{स}^{|}\partial\ ४२}{८।१०।४८}$

	प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्धराशि
रतिनोकषाय द्रव्य	मु २१।४८	स।∂ ८।१०	मु २१।१६?	स।∂ ~~२१~~।१६ = स।∂ १६ ८।१० ~~२१~~ ४८ ८ ।१०।४८
अरति का द्रव्य	मु २१।४८	स।∂ ८।१०	मु २१।३२?	स।∂ ~~२१~~।३२ = स।∂ ३२ ८।१० ~~२१~~ ४८ ८ ।१०।४८
हास्य का द्रव्य	मु २१।४८	स।∂ ८।१०	मु २१।१६?	स।∂ ~~२१~~।१६ = स।∂ १६ ८।१० ~~२१~~ ४८ ८ ।१०।४८
शोक का द्रव्य	मु २१।४८	स।∂ ८।१०	मु २१।३२?	स।∂ ~~२१~~।३२ = स।∂ ३२ ८।१० ~~२१~~ ४८ ८ ।१०।४८

अंकसंदृष्टि से संख्यात आवली की संख्या ५ मानी तो पुरुषवेद का काल ५ × २ = १० समय स्त्रीवेद का काल १० × २ = २०, हास्यरति का २० × ४ = ८०, अरति शोक ८० × २ = १६० , नपुंसकवेद का काल ५ × ४२ = २१०

तीनों वेदों का काल पु. १० + स्त्री. २० + नपुं. २१० = २४०

तीनों वेदों के कर्मपरमाणुओं की संख्या ७२०० मानी।

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्धराशि
२४० समयों में	७२०० द्रव्य	१० समयों में?	$\frac{७२००×१०}{२४०}$ = ३०० परमाणु पुरुषवेद के बटवारे में
२४० समयों में	७२०० द्रव्य	२० समयों में?	$\frac{७२००×२०}{२४०}$ = ६०० परमाणु स्त्रीवेद के बटवारे में
२४० समयों में	७२०० द्रव्य	२१० समयों में?	$\frac{७२००×२१०}{२४०}$ = ६३०० परमाणु नपुं.वेद के बटवारे में

नामकर्म की उत्तरप्रकृतियों में विभागक्रम-

पणविग्घे विवरीयं सबंधपिंडिदरणामठाणे वि ।
पिंडं दव्वं च पुणो सबंधसगपिंडपयडीसु ।।२०६।।

अन्वयार्थ - (पणविग्घे) अन्तराय कर्म की पाँच प्रकृतियों में **(विवरीयं)** विपरीत क्रम है। **(सबंधपिंडिदरणामठाणे वि)** नामकर्म के स्थानों में एक समय में बंध को प्राप्त होनेवाली पिंड और अपिंडप्रकृतियों में भी विपरीत क्रम से प्राप्त होता है। **(पुणो)** पुनः **(पिंडं दव्वं)** पिंडद्रव्य **(सबंधसगपिंडपयडीसु)** एकसाथ बंधनेवाली अपनी पिंडप्रकृतियों में भी विपरीत क्रम से प्राप्त होता है।

विशेषार्थ - नामकर्म की जितनी प्रकृतियों का बंध एक काल में एक जीव को होता है उसका बटवारा अधिक क्रम से होता है हीनक्रम से नहीं। अर्थात् एकभाग का बहुभाग प्रथम अंतिम प्रकृतिको मिलेगा ऐसे ही बहुभाग बहुभाग उतरे क्रम से देकर एकभाग प्रथम को मिलेगा। उसके उत्तरोत्तर भेदों में भी यही क्रम है। नामकर्म के ८ बंधस्थान हैं— २३,२५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ इसका खुलासा आगे करेंगे नामकर्म के इन बंधस्थानों में से एक जीव को एकसमय में एक बंधस्थान का बंध होगा। २३ प्रकृति बंधस्थान में निम्नलिखित प्रकृतियाँ आती हैं —

तिर्यंचगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिक, तैजस, कार्मण, १ हुंडक संस्थान, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति, निर्माण।

इन २३ प्रकृतियों का युगपत् बंध मनुष्य अथवा तिर्यंच मिथ्यादृष्टि को होता है। नामकर्म का जितना द्रव्य है उसका २३ में बटवारा न होकर २१ में ही बटवारा होगा। क्योंकि शरीर पिण्ड प्रकृति है उसको जो बटवारा मिलेगा उसमें फिर तीन विभाग करना है।

सम भाग एकभाग का मिला हुआ भाग

नामकर्म का सर्वद्रव्य $\frac{\text{स}|\partial ८}{९|८} + \frac{\text{स}|\partial ८}{९९९९९|२} = \frac{\text{स}|\partial ८}{९|८}$ एकभाग को समानभाग में साधिक किया

यहाँ एकहीन रूप गुणकार को न गिनकर अपवर्तन करनेपर $\frac{\text{स}|\partial}{८}$ समयप्रबद्ध का आठवाँ भाग नामकर्म का द्रव्य होता है इसको आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर जो बहुभाग आयेगा उसे २१ जगह समान विभाग करके देना $\frac{\text{स}|\partial ८}{९|८}$ बहुभाग इक्कीस जगह देने के लिए २१ का भाग देना $\frac{\text{स}|\partial ८}{८|९|२१}$ इतना प्रत्येक को देना। जो शेष एकभाग है उसे फिर प्रतिभाग का भाग देकर जो बहुभाग आता है वह $\frac{\text{स}|\partial ८}{८|९|९}$ निर्माण को देना फिर शेष एकभाग के

बहुभाग को अयशस्कीर्ति में देना। इसप्रकार एकभाग के बहुभाग-बहुभाग को अनादेयादि में उलटे क्रम से देकर अन्तिम एकभाग तिर्यंचगति में देना चाहिए।

शरीर पिण्ड प्रकृति में मिले हुए द्रव्य का ३ में विभाग करना। बहुभाग के समान ३ भाग करना। फिर एकभाग के बहुभाग को कार्मण में देना, शेष एकभाग के बहुभाग को तैजस में देना। शेष एकभाग औदारिक में देना। इसप्रकार द्रव्य देनेपर क्रम से अधिक द्रव्य प्राप्त होता है।

	तिर्यंच गति	**एकेन्द्रिय जाति**	**औ.तै.का. शरीर**	**हुंडक संस्थान**	**वर्ण**	**गंध**	**रस**
समभाग	स।∂८ ८।९।२१	स।∂८ ८।९।२१	स।∂८ ८।९।२१	स।∂८ ८।९।२१	स।∂८ ८।९।२१	स।∂८ ८।९।२१	स।∂८ ८।९।२१
एकभाग का बहुभाग	स।∂१ ८।९।९।२०	स।∂८ ८।९।९।२०	स।∂८ ८।९।९।१९	स।∂८ ८।९।९।१८	स।∂८ ८।९।९।१७	स।∂८ ८।९।९।१६	स।∂८ ८।९।९।१५

	स्पर्श	**तिर्यंच गत्यानु**	**अगुरुलघु.**	**उपघात**	**स्थावर**	**सूक्ष्म**	**अपर्याप्त**
समभाग	स।∂८ ८।९।२१	स।∂८ ८।९।२१	स।∂८ ८।९।२१	स।∂८ ८।९।२१	स।∂८ ८।९।२१	स।∂८ ८।९।२१	स।∂८ ८।९।२१
एकभाग का बहुभाग	स।∂८ ८।९।९।१४	स।∂८ ८।९।९।१३	स।∂८ ८।९।९।१२	स।∂८ ८।९।९।११	स।∂८ ८।९।९।१०	स।∂८ ८।९।९।९	स।∂८ ८।९।९।८

	साधारण	**अस्थिर**	**अशुभ**	**दुर्भग**	**अनादेय**	**अयश:कीर्ति**	**निर्माण**
समभाग	स।∂८ ८।९।२१	स।∂८ ८।९।२१	स।∂८ ८।९।२१	स।∂८ ८।९।२१	स।∂८ ८।९।२१	स।∂८ ८।९।२१	स।∂८ ८।९।२१
एकभाग का बहुभाग	स।∂८ ८।९।९।७	स।∂८ ८।९।९।६	स।∂८ ८।९।९।५	स।∂८ ८।९।९।४	स।∂८ ८।९।९।३	स।∂८ ८।९।९।२	स।∂८ ८।९।९।१

एकभाग के बहुभाग में ९।१   ९।२ इत्यादि भागहार में लिखा है उसका अर्थ आवलि के असंख्यातवे भाग का भाग, एकबार, दोबार, तीनबार इत्यादि समझना। एक, दो, तीन भागहार नहीं समझना।

अब उत्कृष्टादि प्रदेशबन्ध के सादि आदि भेद कहते हैं—

छण्हंपि अणुक्कस्सो पदेसबंधो दु चदुवियप्पो दु ।
सेसतिये दुवियप्पो मोहाऊणं च दुवियप्पो ।।२०७।।

अन्वयार्थ -(**छण्हंपि**) ज्ञानावरणादि छह कर्मों का (**अणुक्कसो**) अनुत्कृष्ट (**पदेसबंधो दु**) प्रदेशबन्ध (**चदुवियप्पो दु**) सादि आदि चार प्रकार का होता है। (**सेसतिये**) शेष उत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध में (**दुवियप्पो**) सादि और अध्रुवरूप दो भेद हैं। (**मोहाऊणं**) मोहनीय और आयुकर्म का उत्कृष्टादि चारों बन्ध (**दुवियप्पो**) सादि और अध्रुव इन दो प्रकार का ही है।

तीसण्हमणुक्कस्सो उत्तरपयडीसु चदुविहो बंधो ।
सेसतिये दुवियप्पो सेसचउक्केवि दुवियप्पो ।।२०८।।

अन्वयार्थ - (**उत्तरपयडीसु**) उत्तरप्रकृतियों में (**तीसण्हं**) ३० प्रकृतियों का (**अणुक्कस्सो बंधो**) अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध (**चदुविहो**) सादि आदि चार प्रकार का है। (**सेसतिये**) शेष उत्कृष्ट, अजघन्य और जघन्य प्रदेशबन्ध (**दुवियप्पो**) सादि और अध्रुव इस प्रकार दो प्रकार का है (**सेसचउक्केवि**) शेष ९० प्रकृतियों का उत्कृष्टादि चारों प्रकार का प्रदेशबन्ध (**दुवियप्पो**) सादि और अध्रुव इन दो प्रकार का ही है।

अब ३० प्रकृतियों के नाम गिनाते हैं—

णाणंतरायदसयं दंसणछक्कं च मोह चोद्दसयं ।
तीसण्हमणुक्कस्सो पदेसबंधो चदुवियप्पो ।।२०९।।

अन्वयार्थ -(**णाणंतरायदसयं**) ५ ज्ञानावरण, ५ अंतराय (**दंसणछक्कं**) निद्रा, प्रचला, चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवलदर्शनावरण ये दर्शनावरण की ६ प्रकृतियाँ और (**मोह चोद्दसयं**) मोहनीय कर्म की १४ प्रकृतियाँ (अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ और भय, जुगुप्सा) (**तीसण्हं**) इन ३० प्रकृतियों के (**अणुक्कस्सो**) अनुत्कृष्ट (**पदेसबंधो**) प्रदेशबंध (**चदुवियप्पो**) सादि आदि चार प्रकार का है।

प्रदेशबंध में साद्यादि चार प्रकार के बंध का वर्णन

प्रकृति संख्या	उत्कृष्टादि प्रदेशबन्ध	सादिआदि ४ प्रकार
मूलप्रकृति ६	ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय नाम, गोत्र,अन्तराय का अनुत्कृष्ट	४ सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव
	उपर्युक्त ६ कर्मों का उत्कृष्ट,जघन्य,अजघन्य	२ सादि, अध्रुव
२	मोहनीय और आयु का उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य	२ सादि, अध्रुव
उत्तरप्रकृति ३०	५ ज्ञानावरण, ५ अन्तराय, ६ दर्शनावरण अप्रत्या.,प्रत्या, संज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ, भय और जुगुप्सा इनका अनुत्कृष्ट	४ सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव
	उपर्युक्त ३० प्रकृतियोंका उत्कृष्ट,जघन्य,अजघन्य	२ सादि, अध्रुव
९०	शेष ९० प्रकृतियों का उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट जघन्य, अजघन्य	२ सादि, अध्रुव

उत्कृष्ट प्रदेशबंध होने की सामग्री बताते हैं—

उक्कडजोगो सण्णी पज्जत्तो पयडिबंधमप्पदरो ।
कुणदि पदेसुक्कस्सं जहण्णये जाण विवरीयं ।।२१०।।

अन्वयार्थ - जो जीव **(उक्कडजोगो)** उत्कृष्ट योगों से सहित हो **(सण्णी)** संज्ञी **(पज्जत्तो)** पर्याप्त (**पयडिबंधमप्पदरो**) जो अल्पप्रकृतियों का बंधक होता है वही जीव **(पदेसुक्कस्सं)** उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध को **(कुणदि)** करता है तथा **(जहण्णये)** जघन्य प्रदेशबन्ध में इससे **(विवरीदं)** विपरीत **(जाण)** जानना।

विशेषार्थ - उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध की सामग्री→ उत्कृष्ट योग, संज्ञी, पर्याप्त, अल्प प्रकृतियों का बन्धक

जघन्य प्रदेशबन्ध की सामग्री→जघन्य योग, असंज्ञी, अपर्याप्त, बहुत प्रकृतियों का बन्धक

आउक्कस्सपदेसं छक्कं मोहस्स णव दु ठाणाणि ।
सेसाणं तणुकसाओ बंधदि उक्कस्सजोगेण ।।२११।।

अन्वयार्थ - (आउक्कस्सपदेसं) आयुकर्म का उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध **(छक्कं)** तृतीय गुणस्थान को छोड़कर छह गुणस्थानवर्ती बांधते हैं **(मोहस्स)** मोहनीय का उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध **(णव दु ठाणाणि)** नौ गुणस्थानवर्ती करते हैं **(सेसाणं)** शेष कर्मों का उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध **(तणुकसाओ)** सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवर्ती **(उक्कस्सजोगेण)** उत्कृष्ट योग से **(बंधदि)** बांधता है।

सत्तर सुहुमसरागे पंच अणियट्टिम्मि देसगे तदियं ।
अयदे बिदियकसायं होदि हु उक्कस्सदव्वं तु ।।२१२।।

अन्वयार्थ -(सत्तर) ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय, यश:कीर्ति, उच्चगोत्र, सातावेदनीय इन सतरह प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध **(सुहुमसरागे)** सूक्ष्म साम्पराय में होता है **(पंच)** पुरुषवेद और चार संज्वलन कषाय इन पाँच प्रकृतियों का **(अणियट्टिम्मि)** अनिवृत्तिकरण में **(तदियं)** तीसरी प्रत्याख्यान कषायों का **(देसगे)** देशसंयत गुणस्थान में **(विदियकसायं)** दूसरी अप्रत्याख्यान कषायों का **(अयदे)** असंयत गुणस्थान में **(उक्कस्सदव्वं)** उत्कृष्टद्रव्य **(होदि)** होता है।

छण्णोकसायणिद्दापयलातित्थं च सम्मगो य जदी ।
सम्मो वामो तेरं णरसुरआऊ असादं तु ।।२१३।।
देवचउक्कं वज्जं समचउरं सत्थगमणसुभगतियं ।
आहारमप्पमत्तो सेसपदेसुक्कडो मिच्छो ।।२१४।।

अन्वयार्थ -(छण्णोकसायणिद्दापयलातित्थं) छह नोकषाय, निद्रा, प्रचला और तीर्थंकर का उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध **(सम्मगो य)** सम्यग्दृष्टि करता है। **(तेरं)** आगे कही गयी तेरह प्रकृतियों का **(सम्मो वामो)** सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि करता है वे तेरह इस प्रकार (**णरसुरआऊ असादं देवचउक्कं वज्जं समचउरं सत्थगमणसुभगतिय**) मनुष्यायु, देवायु, असातावेदनीय, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग,

वज्रर्षभनाराचसंहनन, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय। **(आहारं)** आहारकद्विक का उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध **(अप्पमत्तो)** अप्रमत्त जीव करता है **(सेसपदेसुक्कडो)** शेष ६६ प्रकृतियों का उत्कृष्टप्रदेशबन्ध **(मिच्छो)** मिथ्यादृष्टि जीव करता है।

प्रकृति संख्या	**प्रकृति नाम**	**उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध का स्वामी**
	मूलप्रकृति	
१	आयु	मिश्र छोडकर १ से ७ गुणस्थानवर्ती
१	मोहनीय	१ से ९ गुणस्थानवर्ती
६	शेष छह कर्म	१० सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवर्ती
	उत्तरप्रकृति	
१७	दसवें गुणस्थान में बन्धयोग्य	१० वा सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवर्ती
५	संज्वलनकषाय ४, १ पुंवेद	९ वा अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती
४	प्रत्याख्यानकषाय	५ वा देशसंयत गुणस्थानवर्ती
४	अप्रत्याख्यानकषाय	४ था असंयतसम्यग्दृष्टि
९	६ नोकषाय, निद्रा, प्रचला, तीर्थंकर	सम्यग्दृष्टि
१३	मनुष्यायु, देवायु, असाता, देवद्विक वैक्रियिकद्विक, वज्रर्षभनाराच, समचतुरस्र, प्रशस्तगमन, सुभगत्रिक	सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि
२	आहारकद्विक	अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती
५४		
६६	शेष छियासठ प्रकृति	मिथ्यादृष्टि

अब जघन्य प्रदेशबन्ध सम्बन्धी स्वामित्व कहते हैं—

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्य पढ़मे जहण्णए जोगे ।

सत्तण्हं तु जहण्णं आउगबंधेवि आउस्स ।।२१५।।

अन्वयार्थ -(सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्य) सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजीव **(पढ़मे)**

अपने भव के प्रथम समय में **(जहण्णए जोगे)** जघन्य उपपाद योग में **(सत्तण्हं तु)** आयु के बिना सात मूल प्रकृतियों का **(जहण्णं)** जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। **(आउगबंधेवि)** पश्चात् आयु का बंध होने पर वही जीव **(आउस्स)** आयु का भी जघन्यप्रदेश बन्ध करता है।

घोडणजोगोऽसण्णी णिरयदुसुरणिरय आउगजहण्णं ।
अपमत्तो आहारं अयदो तित्थं च देवचऊ ।।२१६।।

अन्वयार्थ - (घोडणजोगो) घोटमानयोगों का धारक **(असण्णी)** असंज्ञी जीव **(णिरय-दुसुरणिरय आउगजहण्णं)** नरकद्विक, देवायु और नरकायु का जघन्य प्रदेशबन्ध करता है **(अपमत्तो)** अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव **(आहारं)** आहारकद्विक का जघन्य प्रदेशबन्ध करता है **(अयदो)** असंयत गुणस्थानवर्ती जीव **(तित्थं च देवचऊ)** तीर्थंकर और देवचतुष्क का जघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

चरिम अपुण्णभवत्थो तिविग्गहे पढमविग्गहम्मि ठियो ।
सुहुमणिगोदो बंधदि सेसाणं अवरबंधं तु ।।२१७।।

अन्वयार्थ -(चरिम अपुण्णभवत्थो) ६०१२ क्षुद्रभवों में से अन्तिम क्षुद्रभव में स्थित **(तिविग्गहे)** विग्रहगति के तीन मोडों में से **(पढमविग्गहम्मि ठियो)** प्रथम मोडे में स्थित **(सुहुमणिगोदो)** सूक्ष्मनिगोदिया जीव **(सेसाणं)** शेष एक सौ नौ प्रकृतियों का **(अवरबंधं तु)** जघन्य प्रदेशबन्ध **(बंधदि)** करता है।

प्रकृति संख्या	प्रकृति नाम	जघन्य प्रदेशबन्ध का स्वामी
७	आयु विना ७ मूलप्रकृति	सूक्ष्म निगोदी अपर्याप्तक भव के प्रथम समय में जघन्ययोग के द्वारा
१	आयु	सूक्ष्म निगोदी अपर्याप्तक आयुबन्ध के समय में
	उत्तरप्रकृति	
४	नरकद्विक, नरकायु, देवायु	घोटमान योगधारी असंज्ञी जीव
२	आहारकद्विक	अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती

प्रकृति संख्या	प्रकृति नाम	जघन्य प्रदेशबन्ध का स्वामी
५	तीर्थंकर, देवचतुष्क	असंयत सम्यग्दृष्टि (भवग्रहण के प्रथमसमय में जघन्य उपपाद योगवाला)
१०९	उपर्युक्त ११ छोडकर शेष	सूक्ष्म निगोदी लब्ध्यपर्याप्तक ६०१२ क्षुद्र भवों में से अन्तिम भव में विग्रह गति के तीन मोडे में से प्रथम मोडे में स्थित जीव

उत्कृष्टादि स्थितिबन्ध के सादि आदि ४ प्रकार

	ज्ञानावरण	दर्शना	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय	उत्तरप्रकृति	
									१८ प्र.	१०२ प्र.
उत्कृष्ट	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
अनुत्कृष्ट	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
जघन्य	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
अजघन्य	४	४	४	४	२	४	४	४	४	२

१८ प्रकृति = ४ संज्वलन + १४ घाति (५ ज्ञानावरण, ५ अंतराय, ४ दर्शनावरण)

उत्कृष्टादि अनुभागबन्ध के सादि आदि ४ प्रकार

	ज्ञाना	दर्शना	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय	ध्रुवप्रकृति		अध्रुव
									८ प्रशस्त	४३अप्र.	७३
उत्कृष्ट	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
अनुत्कृष्ट	२	२	४	२	२	४	४	२	४	२	२
जघन्य	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
अजघन्य	४	४	२	४	२	२	४	४	२	४	२

उत्कृष्टादि प्रदेशबन्ध के सादि आदि ४ प्रकार

	ज्ञाना	दर्शना	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय	३० प्र.	९० प्र.
उत्कृष्ट	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
अनुत्कृष्ट	४	४	४	२	२	४	४	४	४	२
जघन्य	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
अजघन्य	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२

२ = सादि, अध्रुव, ४ = सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव

विशेषार्थ - घोटमान योग - जिन योगस्थानों की वृद्धि भी होती है, हानि भी होती है और जैसे के तैसे भी रहते हैं उनको घोटमान योगस्थान अथवा परिणाम योगस्थान कहते हैं।

एक जीव को एक समय में जितनी प्रकृतियों का बन्ध होता है उसे बंधस्थान कहते हैं।

१) ज्ञानावरण का ५ प्रकृतिक एक ही बंधस्थान है।

२) दर्शनावरण के तीन बंधस्थान १) ९ २) ६ (स्त्यानत्रिक विना)३) ४ (दर्शनावरण)

३) वेदनीय - १ प्रकृति का १ ही बंधस्थान है।

४) मोहनीय - १० बंधस्थान - १)२२ प्रकृतिक - मिथ्यात्व, १६ कषाय, ५ नोकषाय (भय, जुगुप्सा, वेद, हास्य, रति)

२) २१ प्रकृतिक = २२ - १ (मिथ्यात्व)
३) १७ प्रकृतिक = २१ - ४ (अनन्तानुबन्धी कषाय)
४) १३ प्रकृतिक = १७ - ४ (अप्रत्याख्यानावरण कषाय)
५) ९ प्रकृतिक = १३ - ४ (प्रत्याख्यानावरण कषाय)
६) ५ प्रकृतिक = ९ - ४ (हास्य, रति, भय, जुगुप्सा)
७) ४ प्रकृतिक = ५ - १ (पुरुषवेद)
८) ३ प्रकृतिक = ४ - १ (संज्वलनक्रोध)
९) २ प्रकृतिक = ३ - १ (संज्वलनमान)
१०) १ प्रकृतिक = २ - १ (संज्वलनमाया)

५) नामकर्म बन्धस्थान - ८ हैं, २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ प्रकृतिक

१)२३ प्रकृतिक - ९ ध्रुवप्रकृति (तैजसकार्मण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, वर्णादि ४) २ तिर्यंचद्विक, एकेन्द्रिय, औदारिक शरीर, हुंडकसंस्थान, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयश:कीर्ति

जो कोई जीव एकेन्द्रिय अपर्याप्त का बंध करता है वह उपर्युक्त २३ प्रकृतियों को एकसाथ बांधता है। एकेंद्रिय अपर्याप्त में इन्ही २३ प्रकृतियों का उदय होगा।

२) २५ प्रकृतिक बंधस्थान के ६ प्रकार हैं

प्रथम प्रकार १) एकेन्द्रिय पर्याप्तयुत→ उपर्युक्त २३ में से अपर्याप्त कम करना और पर्याप्त,उच्छ्वास, परघात ये तीन प्रकृतियाँ मिलाना। इसमें स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यश-अयश में से किसी एक एक का बंध कहना चाहिये।

द्वितीय प्रकार २) द्वीन्द्रिय अपर्याप्तयुत→ २३ प्रकृतियों में एकेन्द्रिय, स्थावर कम करना और उसमें द्वीन्द्रिय, त्रस, सृपाटिका संहनन, औदारिक अंगोपांग ये ४ प्रकृतियाँ मिलाना।

तृतीय प्रकार ३) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तयुत → उपर्युक्त द्वीन्द्रिय अपर्याप्तयुत में से द्वीन्द्रिय निकालकर त्रीन्द्रिय जाति मिलाना।

चतुर्थ प्रकार ४) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तयुत → उपर्युक्त द्वीन्द्रिय अपर्याप्तयुत में से द्वीन्द्रिय निकालकर चतुरिन्द्रिय जाति मिलाना।

पंचम प्रकार ५) पंचेन्द्रिय अपर्याप्तयुत → उपर्युक्त द्वीन्द्रिय अपर्याप्तयुत में से द्वीन्द्रिय निकालकर पंचेन्द्रिय जाति मिलाना।

छठा प्रकार ६)मनुष्य अपर्याप्तयुत → पंचेन्द्रिय अपर्याप्तयुत में से तिर्यंचद्विक निकालकर मनुष्यद्विक मिलाना।

---

३) २६ प्रकृतिक बंधस्थान के २ प्रकार हैं -

१) एकेन्द्रिय पर्याप्त आतपयुत → उपर्युक्त एकेन्द्रियपर्याप्तयुत २५ प्रकृतियों में १ आतप मिलाना

२) एकेन्द्रिय पर्याप्त उद्योतयुत → उपर्युक्त एकेन्द्रियपर्याप्तयुत २५ प्रकृतियों में १ उद्योत मिलाना

---

४) २८ प्रकृतिक बंधस्थान के २ प्रकार हैं -

१) **देवगतियुत** → ९ ध्रुव प्रकृति, देवद्विक, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकद्विक, समचतुरस्र सं., प्रशस्तविहायोगति, उच्छ्वास, परघात, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर अस्थिर में से एक, शुभ अशुभ में से एक, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश अयश में से एक

२)**नरकगतियुत** → ९ ध्रुव प्रकृति, नरकद्विक, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक २, हुंडकसंस्थान, उच्छ्वास, परघात, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, अयश

---

५) २९ प्रकृतिक बन्धस्थान के ६ प्रकार हैं -

१) **द्वीन्द्रियपर्याप्तयुत** → ९ ध्रुवप्रकृति, तिर्यंचद्विक, द्वीन्द्रियजाति, औदारिकद्विक, हुंडक संस्थान, सृपाटिका संहनन, उच्छ्वास, परघात, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर-अस्थिर में से एक, शुभ अशुभ में से एक, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, यश अयश में से एक।

२) **त्रीन्द्रियपर्याप्तयुत** → द्वीन्द्रिय पर्याप्तयुत में से द्वीन्द्रिय निकालकर त्रीन्द्रिय मिलाना।

३) **चतुरिन्द्रियपर्याप्तयुत** → द्वीन्द्रिय पर्याप्तयुत में से द्वीन्द्रिय निकालकर चतुरिन्द्रिय मिलाना।

४) **पंचेन्द्रियपर्याप्तयुत** → द्वीन्द्रिय पर्याप्तयुत में से द्वीन्द्रिय निकालकर पंचेन्द्रिय मिलाना।

५) **मनुष्यपर्याप्तयुत** → पंचेन्द्रिय पर्याप्तयुत में से तिर्यंचगतिद्विक निकालकर मनुष्यगतिद्विक मिलाना।

६) **देवगति तीर्थंकरयुत** → देवगतियुत २८ स्थान में एक तीर्थंकर प्रकृति मिलाना।

---

६) ३० प्रकृतिक बंधस्थान के ६ प्रकार हैं।

१)**द्वीन्द्रियपर्याप्त उद्योतयुत**→ २९ प्रकृतिक द्वीन्द्रिय पर्याप्तस्थान में १ उद्योतप्रकृति

मिलाना।

२) **त्रीन्द्रियपर्याप्त उद्योतयुत** → २९ प्रकृतिक त्रीन्द्रिय पर्याप्त स्थान में १ उद्योतप्रकृति मिलाना।

३) **चतुरिन्द्रियपर्याप्त उद्योतयुत**→ २९ प्रकृतिक चतुरिन्द्रिय पर्याप्त स्थान में १ उद्योत-प्रकृति मिलाना।

४) **पंचेन्द्रियपर्याप्त उद्योतयुत** → २९ प्रकृतिक पंचेन्द्रिय पर्याप्त स्थान में १ उद्योतप्रकृति मिलाना।

५)**मनुष्य तीर्थंकर युत**→ २९ प्रकृतिक मनुष्य पर्याप्त स्थान में १ तीर्थंकरप्रकृति मिलाना

६)**देवगति आहारक युत**→ २८ प्रकृतिक देवपर्याप्तस्थान में २ आहारकद्विक मिलाना।

---

७) **३१ प्रकृतिक बंधस्थान का १ ही प्रकार है -** देवगति आहारक तीर्थंकरयुत (देवगति आहारकयुत ३० प्रकृतिस्थान में १ तीर्थंकर प्रकृति मिलाना)।

---

८) **१ प्रकृतिक बंधस्थान १ ही प्रकार का है १** → यशस्कीर्ति

६,७) आयु और गोत्र के भेदों में से किसी एक प्रकृति का ही एक समय में बंध होता है।
८) अंतराय का ५ प्रकृतिक एक ही बंधस्थान है।

गुणस्थान	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय	एक जीव के एक काल में बन्धयोग्य कुल प्रकृतियाँ
मिथ्यात्व	५	९	१	२२	१	२३,२५,२६, २८,२९,३०	१	५	६७-६९-७०- ७२-७३-७४
सासादन	५	९	१	२१	१	२८-२९-३०	१	५	७१-७२-७३
मिश्र	५	६	१	१७	०	२८-२९	१	५	६३-६४
असंयत	५	६	१	१७	१	२८-२९-३०	१	५	६४-६५-६६
देशसंयत	५	६	१	१३	१	२८-२९	१	५	६०-६१
प्रमत्तवि.	५	६	१	९	१	२८-२९	१	५	५६-५७
अप्रमत्तवि.	५	६	१	९	१	२८-२९-३०-३१	१	५	५६-५७-५८-५९
अपूर्वक.	५	६-४	१	९	०	२८-२९-३० -३१-१	१	५	५५-५६-५७ -५८-२६
अनिवृत्ति.	५	४	१	५,४,३, २,१	०	१	१	५	२२-२१-२० -१९-१८
सू.सांपराय	५	४	१	०	०	१	१	५	१७
उपशांत	०	०	१	०	०	०	०	०	१
क्षीणमोह	०	०	१	०	०	०	०	०	१
सयोगी	०	०	१	०	०	०	०	०	१
अयोगी	०	०	०	०	०	०	०	०	०
कुलयोग	५	९-६ -४	१	२२-२१ -१७-१३ -९-५-४ -३-२ -१	१	२३-२५-२६- २८-२९ -३०-३१-१	१	५	७४-७३-७२-७१-७० -६९-६७-६६-६५-६४ ६३-६१-६०-५९-५८ -५७-५६-५५-२६-२२ -२१-२०-१९-१८-१७ और १

गुणस्थान	बंधस्थान	भंग	विवरण
१.मिथ्यात्व	२३	१	इस बंधस्थान में केवल अशुभप्रकृतियों का ही बंध है इसलिए भंग १ है।
	२५	९	एकेन्द्रियपर्याप्तयुत में ८ भंग होते हैं। स्थिर, अस्थिर, शुभ,अशुभ,यश,अयश इन तीन युगलों के ८ भंग = २×२×२। द्वीन्द्रिय अपर्याप्तयुत से मनुष्य अपर्याप्तयुत तक अशुभ प्रकृतियों का ही बंध होता है इसलिए १ भंग ८+१ = ९
	२६	८	पर्याप्त एकेन्द्रिय आतप वा उद्योतयुत में २५ प्रकृति के बंधस्थान के समान ८ भंग
	२८	९	देवगतियुतस्थान के ८ भंग=२ स्थिरअस्थिर×२शुभअशुभ ×२ यशअयश, नरकगतियुत स्थान का १ भंग = ९
	२९	९२१६	तिर्यंच पंचेन्द्रिय पर्याप्तयुत के ४६०८ भंग ६ संस्थान× ६ संहनन ×२ विहायोगति ×२ शुभाशुभ ×२ स्थिरास्थिर ×२ सुभग दुर्भग × २ आदेय अनादेय × २ सुस्वरदु:स्वर × २ यशअयश। मनुष्यपर्याप्तयुत के भी ४६०८ भंग होते हैं। ४६०८ + ४६०८ = ९२१६ द्वीन्द्रिय,त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय के ८-८ भंग होते हैं। वे तिर्यंच के ४६०८ भंगों में गर्भित होते हैं।
	३०	४६०८	पंचेन्द्रिय पर्याप्त उद्योतयुत के उपर्युक्त ४६०८ भंग होते हैं।
२.सासादन	२८	८	देवगतियुत के ८ भंग होते हैं।
	२९	६४००	पंचेन्द्रिय पर्याप्तयुत के ३२००+ मनुष्यपर्याप्त के ३२०० भंग। ५ संस्थान (हुंडक विना) × ५ संहनन (सृपाटिकाविना)× २ विहायो गति ×२ स्थिर अस्थिर × २ शुभाशुभ × २ सुभगदुर्भग × २ आदेय अनादेय × २ सुस्वरदु:स्वर × २ यशअयश =३२००
	३०	३२००	पंचेंद्रियपर्याप्त उद्योतयुत के उपर्युक्त ३२०० भंग

गुणस्थान	बंधस्थान	भंग	विवरण
३.मिश्र	२८	८	देवगतियुत के ८ भंग पूर्वोक्त
	२९	८	मनुष्यपर्याप्तयुत के ८ भंग पूर्वोक्त
४.असंयत	२८	८	देवगतियुत के ८ भंग
	२९	१६	मनुष्यपर्याप्त के ८+देवतीर्थंकरयुत के ८= १६ भंग
	३०	८	मनुष्यपर्याप्त तीर्थंकर युत के ८ भंग
५.देशसंयत	२८	८	देवगतियुत के ८ भंग पूर्वोक्त
	२९	८	देवतीर्थंकरयुत के ८ भंग
६.प्रमत्त-संयत	२८	८	देवगतियुत के ८ भंग
	२९	८	देवगतितीर्थंकरयुत के ८ भंग
७.अप्रमत्त-संयत			(यहाँ से केवल पुण्यप्रकृति का ही बंध होता है अत: १ ही भंग है)
	२८	१	देवगति युत का १ भंग
	२९	१	देवतीर्थंकरयुत का १ भंग
	३०	१	देव आहारकयुत का १ भंग
	३१	१	देवतीर्थंकर आहारक युत का १ भंग
८.अपूर्वकरण	२८	१	देवगतियुत का १ भंग
	२९	१	देवतीर्थंकर का १ भंग
	३०	१	देव आहारकयुत का १ भंग
	३१	१	देव तीर्थंकर आहारकयुत का १ भंग
	१	१	यशस्कीर्ति का १ भंग
९.अनिवृत्ति-करण	१	१	यशस्कीर्ति का १ भंग
१०.सूक्ष्म-सांपराय	१	१	यशस्कीर्ति का १ भंग

१) इन बंधस्थानों के भंगों को ध्यान में रखकर ही टीका में मिथ्यात्व गुणस्थान में ६७ स्थान में १ भंग, ६९ स्थान में ९ भंग, ७० स्थान में ८ भंग, ७२ स्थान में ९ भंग, ७३ स्थान में ९२१६ भंग, ७४ स्थान में ४६०८ भंग कहे हैं। इसीप्रकार आगे भी जानना।

२) सासादन -७१ स्थान में ८ भंग, ७२ स्थान में ६४००,७३ स्थान में ३२०० भंग कहे हैं।
३) मिश्र - ६३ स्थान में ८ भंग, ६४ स्थान में ८ भंग,
४) असंयत - ६४ स्थान में ८ भंग, ६५ स्थान में १६ भंग, ६६ स्थान में ८ भंग
५) देशसंयत - ६० स्थान में ८ भंग, ६१ स्थान में ८ भंग
६) प्रमत्तसंयत - ५६ स्थान में ८ भंग, ५७ स्थान में ८ भंग
७) अप्रमत्तसंयत - ५६, ५७, ५८, ५९ बंधस्थानों में १-१ भंग होता है।
८) अपूर्वकरण - ५५, ५६, ५७, ५८, २६ बंधस्थानों में १-१ भंग होता है।
९) अनिवृत्तिकरण - २२,२१,२०, १९, १८ बंधस्थानों में १-१ भंग होता है।
१०) सूक्ष्मसांपराय - १७ बंधस्थान में १ भंग होता है।

आगे प्रदेशबन्ध में कारणस्वरूप योगस्थान का स्वरूप, संख्या और स्वामी ४२ गाथाओं से कहते हैं—

जोगट्ठाणा तिविहा उववादेयंतवड्ढिपरिणामा ।
भेदा एक्केक्कंपि य चोद्दसभेदा पुणो तिविहा ।।२१८।।

अन्वयार्थ - (जोगट्ठाणा) योगस्थान **(तिविहा)** तीन प्रकार के हैं **(उववादेयंतवड्ढि-परिणामा)** उपपाद, एकांतवृद्धि और परिणाम योगस्थान उनमें से **(एक्केक्कं पि य)** एक एक भेद के **(चोद्दसभेदा)** चौदह जीव समासों की अपेक्षा चौदह-चौदह भेद हैं **(पुणो)** पुनः **(तिविहा भेदा)** उनमें भी प्रत्येक के जघन्य, उत्कृष्ट और अजघन्य अनुत्कृष्ट के भेद से तीन भेद हैं।

उववादजोगठाणा भवादिसमयट्ठियस्स अवरवरा ।
विग्गहउजुगइगमणे जीवसमासेसु णायव्वा ।।२१९।।

अन्वयार्थ -(उववादजोगठाणा) उपपाद योगस्थान **(भवादिसमयट्ठियस्स)** भव के प्रथम समय में स्थित जीव के होते हैं। **(विग्गहउजुगइगमण अवरवरा)** मोड़ेवाली विग्रहगति के प्रथम समय में जघन्य उपपाद योगस्थान और ऋजुगति के प्रथमसमय में उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान होता है। वे उपपाद योगस्थान **(जीवसमासेसु)** चौदह जीवसमासों में **(णायव्वा)** जानना चाहिए।

परिणामजोगठाणा सरीरपज्जत्तगादु चरिमोत्ति ।
लद्धियपज्जत्ताणं चरिमतिभागम्हि बोद्धव्वा ।।२२०।।

अन्वयार्थ - (सरीरपज्जत्तगादु) शरीर पर्याप्ति के पूर्ण होने के प्रथम समय से लेकर **(चरिमोत्ति)** आयु के अन्तसमय पर्यन्त **(परिणामजोगठाणा)** परिणाम योगस्थान होते हैं। **(लद्धियपज्जत्ताणं)** लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के **(चरिमतिभागम्हि)** अपनी आयु के अन्तिमत्रिभाग में परिणामयोगस्थान होते हैं।

सगपज्जत्तीपुण्णे उवरिं सव्वत्थ जोगमुक्कस्सं ।
सव्वत्थ होदि अवरं लद्धिअपुण्णस्स जेट्ठं वि ।।२२१।।

अन्वयार्थ - (सगपज्जत्तीपुण्णे) अपनी-अपनी शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने पर **(उवरिं सव्वत्थ)** उसके प्रथम समय से लेकर ऊपर आयु के सब समयों में परिणाम योगस्थान होता है **(सव्वत्थ)** सब समयों में **(उक्कस्सं)** उत्कृष्ट भी हो सकता है और **(अवरं होदि)** जघन्य भी हो सकता है । **(लद्धिअपुण्णस्स)** लब्ध्यपर्याप्तकों के आयु के अन्तिम त्रिभाग में सर्वत्र **(जेट्ठं वि)** उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान भी हो सकता है और जघन्य भी हो सकता है।

एयंतवड्ढिठाणा उभयट्ठाणाणमंतरे होंति ।
अवरवरट्ठाणाओ सगकालादिम्मि अंतम्हि ।।२२२।।

अन्वयार्थ - (उभयट्ठाणाणमंतरे) उपपाद योग और परिणामयोगस्थानों के बीच में **(एयंत-वड्ढिठाणा)** एकान्तवृद्धि योगस्थान **(होंति)** होते हैं। **(सगकालादिम्मि)** अपने काल के प्रथम समय में **(अवरट्ठाणाओ)** जघन्य स्थान होता है और **(अंतम्हि)** अंतसमय में **(वरट्ठाणाओ)** उत्कृष्टस्थान होता है। पर्याय धारण के द्वितीय समय से शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने के पूर्वसमयतक एकान्तानुवृद्धि योगस्थान होते हैं।

विशेषार्थ - योगस्थान तीन प्रकार के - १) उपपाद २) एकान्तानुवृद्धि ३) परिणाम योगस्थान

१)उपपाद योगस्थान ⟶ उपपद्यते अर्थात् जो जीव के द्वारा भव के प्रथम समय में प्राप्त किया जाता है वह उपपाद योगस्थान है। इसका काल एक समय ही है।

जघन्य उपपाद योगस्थान - विग्रहगति से जाकर नवीन भव धारण करता है उसके प्रथम समय में प्रथम मोडे में स्थित जीव के होता है।
उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान - बिना मोडेवाली ऋजुगति से नवीन भव धारण करता है उसके होता है।

२) **एकान्तानुवृद्धि योगस्थान** ⟶ एकान्त अर्थात् नियम से अपने काल के प्रथम समय से लेकर अन्तिम समयपर्यन्त प्रतिसमय असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे अपने योग्य अविभाग प्रतिच्छेदों की वृद्धि जिसमें हो उसे एकान्तानुवृद्धि योगस्थान कहते हैं।
जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान - अपने काल के प्रथम समय में होता है।
उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थान - अपने काल के अन्तिम समय में होता है।

जन्मके द्वितीय समय से लेकर शरीरपर्याप्ति से अपर्याप्त रहने के अन्तिम समयतक एकान्तानुवृद्धि योग होता है। लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के अपने जीवित के दो त्रिभाग में एकान्तानुवृद्धि योग होता है।

३) **परिणाम योगस्थान** ⟶शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने के प्रथम समय से लेकर अपनी आयु के अन्त समयपर्यन्त परिणामयोगस्थान होते हैं। लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के उच्छ्वास के अठारहवें भागप्रमाण अपनी स्थिति के अन्तिम त्रिभाग के प्रथम समय से लेकर अन्तिम समय पर्यन्त परिणामयोगस्थान होते हैं। अपने सब समयों में उत्कृष्ट भी होता है और जघन्य भी होता है। उत्कृष्ट और जघन्य का कोई निश्चित स्थान नहीं है।

पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों ही प्रकार के जीवों के वे सब परिणाम योगस्थान घोटमान योग ही होते हैं क्योंकि वे घटते भी हैं, बढ़ते भी हैं और जैसे के तैसे भी रहते हैं।

१४ जीवसमास की अपेक्षा प्रत्येक योगस्थान के १४-१४ भेद होते हैं। उनके भी सामान्य, जघन्य और उत्कृष्ट के भेद से तीन भेद हैं। १) एकेन्द्रिय सूक्ष्म पर्याप्त २) एकेन्द्रिय सूक्ष्म अपर्याप्त३) एकेन्द्रिय बादर पर्याप्त ४) एकेन्द्रिय बादर अपर्याप्त ५) द्वीन्द्रिय पर्याप्त ६) द्वीन्द्रिय अपर्याप्त ७) त्रीन्द्रिय पर्याप्त ८) त्रीन्द्रिय अपर्याप्त ९) चतुरिन्द्रिय पर्याप्त १०)चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त ११) असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त १२) असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त १३) संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त १४) संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त

एकेन्द्रिय सूक्ष्म पर्याप्त

काल	योगस्थान	जघन्य उत्कृष्ट भेद
भव का अन्तिम समय उच्छ्वास पर्याप्ति काल २१ इन्द्रिय पर्याप्ति काल २१ शरीर पर्याप्ति का अन्तिम समय	परिणाम योगस्थान समाप्त परिणाम योगस्थान परिणाम योगस्थान परिणाम योगस्थान प्रारंभ	उत्कृष्ट.........जघन्य उत्कृष्ट ....जघन्य उत्कृष्ट ....जघन्य उत्कृष्ट ....जघन्य
शरीरपर्याप्ति में एक समय कम o o o o o o भव का द्वितीय समय	एकान्तानुवृद्धि समाप्त o o o o o o एकान्तानुवृद्धि प्रारंभ	उत्कृष्ट o o o o o o जघन्य भेद
भव का प्रथम समय o o o o o o पूर्वभव शरीर	उपपाद योगस्थान	विग्रहगति से जानेवाले का } जघन्य ऋजुगति से जानेवाले का } उत्कृष्ट

एकेन्द्रिय सूक्ष्म अपर्याप्त

काल	योगस्थान	जघन्य उत्कृष्ट भेद
भव का अन्तिम समय $\frac{१}{१८} \times \frac{१}{३}$ श्वासोच्छ्वास के अठारहवें भाग का अन्तिम त्रिभाग	परिणाम योगस्थान समाप्त o o o o o o परिणाम योगस्थान प्रारंभ	उत्कृष्ट ....जघन्य उत्कृष्ट ....जघन्य
श्वासोच्छ्वासके अठारहवें भाग का प्रथम दो त्रिभाग काल $\frac{१}{१८} \times \frac{२}{३}$ भव का द्वितीय समय	एकान्तानुवृद्धि समाप्त o o o o o o एकान्तानुवृद्धि प्रारंभ	उत्कृष्ट o o o o o o जघन्य
भव का प्रथम समय o o o o o o पूर्वभव	उपपाद योगस्थान	विग्रहगति से जानेवाले का } जघन्य ऋजुगति से जानेवाले का } उत्कृष्ट

एकेन्द्रिय बादर पर्याप्त और एकेन्द्रिय बादर अपर्याप्त में भी इसी प्रकार समझना।

एकेन्द्रिय सूक्ष्म पर्याप्त के समान ही द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त, संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के योगस्थान जानना। विशेष इतना कि द्वीन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय के परिणाम योगस्थान में भाषा पर्याप्तिकाल बढाना। संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त में भाषा और मन:पर्याप्ति काल बढाना। एकेन्द्रिय सूक्ष्म अपर्याप्त के समान ही सभी अपर्याप्तकों में योगस्थान जानना।

अविभागपडिच्छेदो वग्गो पुण वग्गणा य फड्डयगं ।
गुणहाणीवि य जाणे ठाणं पडि होदि णियमेण ।।२२३।।

अन्वयार्थ - (ठाणं पडि) प्रत्येक योगस्थान में **(अविभागपडिच्छेदो)** अविभागप्रतिच्छेद, **(वग्गो)** वर्ग, **(पुण वग्गणा)** वर्गणा, **(फड्डयगं)** स्पर्धक **(य)** और **(गुणहाणीवि)** गुणहानि भी **(णियमेण)** नियम से **(जाणे)** जानना।

पल्लासंखेज्जदिमा गुणहाणिसला हवंति इगिठाणे ।
गुणहाणिफड्डयाओ असंखभागं तु सेढीए ।।२२४।।

अन्वयार्थ -(इगिठाणे) एक योगस्थान में **(गुणहाणिसला)** गुणहानिशलाकाएँ **(पल्ला-संखेज्जदिमा)** पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण **(हवंति)** हैं। **(गुणहाणिफड्डयाओ)** एक गुणहानि में स्पर्धक **(सेढीए असंखभागं तु)** जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।

फड्ढयगे एक्केक्के वग्गणसंखा हु तत्तियालावा ।
एक्केक्कवग्गणाए असंखपदरा हु वग्गाओ ।।२२५।।

अन्वयार्थ -(एक्केक्के फड्ढयगे) एक-एक स्पर्धक में **(वग्गणसंखा)** वर्गणाओं की संख्या **(हु तत्तियालावा)** उतनी ही अर्थात् जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं और **(एक्केक्कवग्गणाए)** एक-एक वर्गणा में **(असंखपदरा)** असंख्यात जगत्प्रतर प्रमाण **(वग्गाओ)** वर्ग हैं।

एक्केक्के पुण वग्गे असंखलोगा हवंति अविभागा ।
अविभागस्स पमाणं जहण्णउड्ढी पदेसाणं ।।२२६।।

अन्वयार्थ- **(एक्केक्के वग्गे)** एक-एक वर्ग में **(असंखलोगा)** असंख्यातलोक प्रमाण **(अविभागा)** अविभागप्रतिच्छेद **(हवंति)** होते हैं। **(अविभागस्स पमाणं)** अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण **(पदेसाणं)** प्रदेशों में **(जहण्णउड्ढी)** शक्ति की जघन्य वृद्धिरूप जानना।

इगिठाणफड्डयाओ वग्गणसंखा पदेसगुणहाणी ।
सेढि असंखेज्जदिमा असंखलोगा हु अविभागा ।।२२७।।

अन्वयार्थ - **(इगिठाणफड्डयाओ)** एक योग में सर्व स्पर्धक **(वग्गणसंखा)** सर्व वर्गणाओं की संख्या और **(पदेसगुणहाणी)** प्रदेश गुणहानि आयाम का प्रमाण **(सेढि असंखेज्जदिमा)** जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र हैं। **(अविभागा)** एक योगस्थान में अविभाग प्रतिच्छेद **(असंखलोगा हु)** असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं।

विशेषार्थ - योगस्थान को समझने के लिए योगस्थानों के अवयवों को कहते हैं -

१) अविभागप्रतिच्छेदों के समूह को वर्ग कहते हैं।

२) वर्गों के समूह को वर्गणा कहते हैं।

३) वर्गणाओं के समूह को स्पर्धक अथवा जिस में क्रमवृद्धि और क्रमहानि होती है वह स्पर्धक है।

४) स्पर्धकों के समूह को गुणहानि कहते हैं।

५) गुणहानियों के समूह को नानागुणहानि कहते हैं।

६) नाना गुणहानियाँ मिलकर ही एक योगस्थान होता है।

योगस्थान के अवयव	प्रमाण
सर्व योगस्थान	$\frac{\text{जगत्श्रेणि}}{\text{असंख्यात}}$ $\overline{\partial}$
एक योगस्थान में गुणहानिशलाका (नाना गुणहानि)	$\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}$ $\partial\partial^{\text{प}}$
एक गुणहानि में स्पर्धकसंख्या	$\frac{\text{जगत्श्रेणि}}{\text{असंख्यात}}$ $\overline{\partial\partial}$
एक स्पर्धक में वर्गणासंख्या	$\frac{\text{जगत्श्रेणि}}{\text{असंख्यात}}$ $\overline{\partial}$
एक वर्गणा में वर्गसंख्या(जीवप्रदेश)	जगत्प्रतर × असंख्यात $= \partial$
एक वर्ग में अविभाग प्रतिच्छेद	लोक × असंख्यात $\equiv \partial$
एक योगस्थान के सर्व स्पर्धक	एक गुणहानि स्पर्धक शलाका× नाना गुणहानि $\overline{\partial\partial} \times \partial\partial^{\text{प}} \rightarrow \boxed{\overline{\partial\partial}\ \partial\partial^{\text{प}}}$
एक योगस्थानगत सर्व वर्गणाएँ	एक स्पर्धकगत वर्गणा × सर्व स्पर्धक $\overline{\partial} \times \overline{\partial\partial}\ \partial\partial^{\text{प}} \rightarrow \boxed{\overline{\partial}\ \overline{\partial\partial}\ \partial\partial^{\text{प}}}$
एक गुणहानिगत सर्व वर्गणाएँ (गुणहानि आयाम)	एक स्पर्धकगत वर्गणा×एक गुण. स्पर्धक शलाका $\overline{\partial} \times \overline{\partial\partial} \rightarrow \boxed{\overline{\partial}\ \overline{\partial\partial}}$
एक जीवगत सर्व प्रदेश	लोक $\equiv$
अन्योन्याभ्यस्त राशि	$\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}$ $\partial^{\text{प}}$

	द्रव्य	स्थिति	गुणहानिआयाम	नानागुणहानि	दोगुणहानि	अन्योन्याभ्यस्त
अर्थसंदृष्टि	≡	$\overline{\partial}$	$\overline{\partial\partial}$	$\overset{\text{प}}{\partial\partial}$	$\overline{\partial\partial}^{२}$	$\overset{\text{प}}{\partial}$
अंकसंदृष्टि	३१००	४०	८	५	१६	३२

एक योगस्थान में समस्त अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यात लोकप्रमाण ही है, कर्म परमाणुओं अथवा सबसे जघन्यज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों के प्रमाण की तरह अनन्त नहीं हैं। कर्मपरमाणु की निषेकरचना के समान ही यहाँ योगस्थान में जीव प्रदेशरचना का गणित जानना। कर्मपरमाणु की जगह यहाँ जीव के प्रदेश समझना।

सव्वे जीवपदेसे दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा।
उवरिं उत्तरहीणं गुणहाणिं पडि तदद्धकमं ।।२२८।।

अन्वयार्थ -(सव्वे जीवपदेसे) एक जीव के सर्व प्रदेशों में **(दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे)** डेढ़ गुणहानि आयाम का भाग देने पर **(पढमा)** प्रथम वर्गणा का प्रमाण आता है **(उवरि)** उसके ऊपर **(उत्तरहीणं)** एक-एक चय घटाने से द्वितीयादि वर्गणाओं का प्रमाण होता है। **(गुणहाणिं पडि)** गुणहानि गुणहानि प्रति **(तदद्धकमं)** क्रम से आधा आधा प्रमाण जानना।

विशेषार्थ - एक जीव के प्रदेश लोकप्रमाण (≡) हैं। वही यहाँपर सर्वधन है

$$\frac{\text{एक जीवप्रदेश}}{\text{साधिक डेढ़ गुणहानि}} = \text{प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा}$$

$$\frac{\equiv}{\overline{\partial\partial}\,\frac{३}{२}} \quad \text{भागहार का भागहार गुणकार होता है} \quad \frac{\equiv \times \partial\partial \times २}{\overline{\quad}\ ३}$$

अत: अपवर्तन करनेपर $= \partial\partial\,\frac{२}{३}$

अंकसंदृष्टि से

$$\frac{\text{सर्वद्रव्य}}{\text{एक कम अन्योन्याभ्यस्त}} = \text{अन्तिमगुणहानि का द्रव्य}$$

$$\frac{३१००}{३१} = १००\ \text{अन्तिमगुणहानि का द्रव्य}$$

प्रथमगुणहानि पर्यन्त द्रव्य दूना दूना होता है

५ गु.	४ गु.	३ गु.	२ गु.	१ गु.
१००	२००	४००	८००	१६००

यदि २५६ की एक वर्गणा होती है तो ३१०० की कितनी वर्गणाएँ होगी ?

$$\frac{१\times३१००}{२५६} = १२ + \frac{७}{६४} = \frac{७७५}{६४}$$ साधिक डेढ़ गुणहानि

२५६) ३१०० (१२
− २५६
०५४०
− ५१२
०२८

$$१२\frac{\cancel{२८}\ ७}{\cancel{२५६}\ ६४} = १२|\frac{७}{६४} = \frac{१२\times६४}{६४} + \frac{७}{६४} = \frac{७६८+७}{६४} = \frac{७७५}{६४}$$

$$\frac{\text{सर्वद्रव्य}}{\text{साधिक डेढ़ गुणहानि}} = ३१०० \div \frac{७७५}{६४} = ३१०० \times \frac{६४}{७७५} = २५६$$ प्रथम वर्गणा

द्वितीयादि वर्गणाओं में एक एक चय हीन होकर अन्तिम वर्गणा में एक कम गच्छमात्र चय घटते हैं। २५६ - (१६ × ७) = २५६ - ११२ = १४४ अन्तिम वर्गणा

$$\frac{\text{प्रथम वर्गणा}}{\text{दो गुणहानि}} = \frac{२५६}{१६} = १६$$ चय

इसी प्रकार सब गुणहानियों का भी चय जानना। प्रत्येक गुणहानि का द्रव्य, वर्गणा और चय का प्रमाण आधा आधा होता है।

	प्रथमगुणहानि	**द्वितीयगुणहानि**	**तृतीयगुणहानि**	**चतुर्थगुणहानि**	**पंचमगुणहानि**
चय	१६	८	४	२	१

	प्रथम गुणहानि	**द्वितीय गुणहानि**	**तृतीय गुणहानि**	**चतुर्थ गुणहानि**	**पंचम गुणहानि**
८ अन्तिमवर्गणा	१४४	७२	३६	१८	९
७ द्विचरमवर्गणा	१६०	८०	४०	२०	१०
६ त्रिचरमवर्गणा	१७६	८८	४४	२२	११
५ पंचमवर्गणा	१९२	९६	४८	२४	१२
४ चतुर्थवर्गणा	२०८	१०४	५२	२६	१३
३ तृतीयवर्गणा	२२४	११२	५६	२८	१४
२ द्वितीयवर्गणा	२४०	१२०	६०	३०	१५
१ प्रथमवर्गणा	२५६	१२८	६४	३२	१६
कुलद्रव्य	१६००	८००	४००	२००	१००

फड्ढयसंखाहि गुणं जहण्णवग्गं तु तत्थ तत्थादी।
बिदियादिवग्गणाणं वग्गा अविभागअहियकमा।।२२९।।

अन्वयार्थ -(जहण्णवग्गं) जघन्यवर्ग को अर्थात् प्रथम वर्गणा के एक परमाणु के अविभाग प्रतिच्छेदों को **(फड्ढयसंखाहि)** स्पर्धक की संख्या से **(गुणं)** गुणा करने पर **(तत्थ तत्थादी)** उस उस स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के एक वर्ग का प्रमाण आता है। **(बिदियादिवग्गणाणं)** द्वितीयादि वर्गणा के **(वग्गा)** वर्गों में **(अविभागअहियकमा)** क्रमश: एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक होते हैं।

विशेषार्थ - जितनेवा स्पर्धक निकालना हो, उस संख्या से जघन्यवर्ग को गुणा करने पर उस स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के वर्गों का प्रमाण प्राप्त होता है। द्वितीयादिवर्गणा के वर्गों में क्रमश: एक एक अविभाग प्रतिच्छेद बढ़ता जाता है।

सबसे जघन्य योगस्थान के सब अविभाग प्रतिच्छेदों को जोड़ने का विधान -

जीव के प्रदेशों में कर्म को ग्रहण करने की शक्ति में जो जघन्य वृद्धि होती है उसे यहाँ अविभाग प्रतिच्छेद कहा है। यहाँ योग का अधिकार होने से योगरूप शक्ति के अविभागी अंश का ग्रहण किया है।

जघन्यवृद्धि का प्रमाण →

जीव के प्रदेश लोकप्रमाण हैं। उनको स्थापन करके ≡ इन सब प्रदेशों से जिस प्रदेश में योग की जघन्य शक्ति पायी जाये, उस प्रदेश को अलग रखकर उस प्रदेश में जितनी योगशक्ति हो उसको अपनी बुद्धि से फैलाइये। |————|

उस जघन्य शक्ति से अधिक और अन्य शक्ति से हीन शक्ति जिसमें पायी जाये ऐसे किसी अन्य प्रदेश को ग्रहण करके, उसमें जितनी योगशक्ति पायी जाये उसे पहले फैलायी गयी जघन्य शक्ति के ऊपर बुद्धि से ही फैलाइए। ════╛ एक अधिक जघन्य शक्ति। सो उस जघन्यशक्ति के ऊपर स्थापन की गयी शक्ति जितनी वृद्धि को लिये हुए हो उतनी वृद्धि का नाम योग का अविभाग प्रतिच्छेद है।

पहले फैलायी गयी प्रदेश की जघन्य शक्ति के उस अविभाग प्रतिच्छेद प्रमाण खण्ड करनेपर असंख्यात लोक प्रमाण खण्ड होते हैं। अत: असंख्यात लोकप्रमाण अविभाग प्रतिच्छेदों के समूह को वर्ग कहते हैं। अत: असंख्यात लोकप्रमाण अविभाग प्रतिच्छेद कहे हैं।

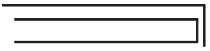 $\equiv \partial$ असंख्यात लोक प्रमाण अविभाग प्रतिच्छेद जघन्य वर्ग में उसकी संदृष्टि 'व' अक्षर है। उसके आगे जिन प्रदेशो में जघन्य शक्ति पायी जाती है वे सब लिखें।

इसप्रकार जघन्य शक्ति के धारक जीव के प्रदेश असंख्यात जगत्प्रतर प्रमाण$= \partial$ होते हैं क्योंकि लोकप्रमाण जीव के प्रदेशों में डेढ़ गुणहानि से भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतने जघन्यशक्ति प्रमाण शक्ति के धारक प्रदेश हैं। सो एक गुणहानि में जितना वर्गणा का प्रमाण कहा है उसका डेढ़गुणा करनेपर डेढगुणहानि का प्रमाण होता है। वह जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र ही है। उसका भाग जीवके प्रदेशो में देनेपर असंख्यात जगतप्रतर प्रमाण प्रदेशों का प्रमाण होता है। सो इतने प्रदेशों के समूह को प्रथम वर्गणा कहते हैं।

$$\frac{\text{लोकमात्र जीवप्रदेश}}{\text{डेढ गुणहानि}} \quad \frac{\equiv}{\partial\partial\,\frac{३}{२}} \rightarrow \frac{\not\equiv\partial\partial\,२}{\not-\;\;३} \rightarrow =\partial\partial\,\frac{२}{३}\ \text{प्रथम वर्गणा}$$

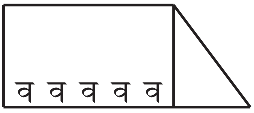

जघन्य वर्गणा (प्रथम वर्गणा) वर्ग २५६, अविभाग प्रति. ८ माने

आगे उस जघन्य शक्तिरूप वर्ग में जितने अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण कहा उससे एक अधिक अविभागप्रतिच्छेद जिनमें पाये जाये ऐसी शक्ति के धारक जितने प्रदेश हो उतने प्रदेश उसके ऊपर लिखे। ये प्रदेश प्रथमवर्गणा में जितने प्रदेश कहे थे उनसे एक चय हीन होते हैं। प्रथम वर्गणा में जो प्रदेशों का प्रमाण है उसे दो गुणहानि से भाग देनेपर जो प्रमाण हो वही चय का (विशेष) प्रमाण जानना। उसकी संदृष्टि 'वि' अक्षर जानना।

२५६ ÷ १६ = १६ चय

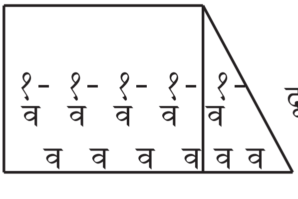

दूसरी वर्गणा २४० → शक्ति ८ + १ व वि १६ - १

प्रथम वर्गणा अंकसंदृष्टिसे २५६ → शक्ति ८ व वि १६

यहाँ पूर्वोक्त जघन्यशक्ति से एक अधिक अविभागप्रतिच्छेद का धारक जो प्रदेश है उसे वर्ग कहते हैं, उनका समूह दूसरी वर्गणा है।

द्वितीय वर्गणासम्बन्धी वर्ग में जितने अविभाग प्रतिच्छेद हैं उससे एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक जिसमें हो ऐसी शक्ति के धारक जितने प्रदेश हो उतने उनके ऊपर लिखे।

वे प्रदेश द्वितीय वर्गणासे एक चय हीन हैं जैसे २४० - १६ = २२४ यह तीसरी वर्गणा है। इसी क्रम से एक एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक शक्ति को लिये और एक एक चयहीन प्रमाण लिये हुए जो वर्ग हैं उनका समूह एक एक वर्गणा होती है। ऐसे जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भाग प्रमाण वर्गणा होनेपर एक स्पर्धक होता है। इसीसे एक स्पर्धक में जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भाग प्रमाण वर्गणा कही हैं। इसकी संदृष्टि चार ४ का अंक है। इस प्रथम स्पर्धक को जघन्य स्पर्धक कहते हैं।

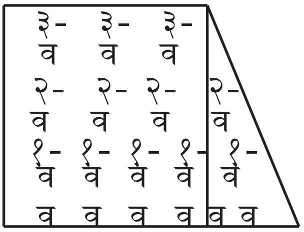

	वर्ग	अविभाग प्रतिच्छेद	
अन्तिम वर्गणा	२०८	११	प्रथम स्पर्धक
तृतीय वर्गणा	२२४	१०	
द्वितीय वर्गणा	२४०	९	
प्रथम वर्गणा	२५६	८	

इस प्रथम स्पर्धक की अन्तिम वर्गणा के ऊपर असंख्यात लोक प्रमाण अन्तर देकर प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा सम्बन्धी जघन्य वर्ग में जितने अविभाग प्रतिच्छेद हैं उनसे दूने अविभाग प्रतिच्छेद जिनके हो ऐसी शक्ति के धारक वर्ग पाये जाते हैं, उससे कम शक्ति के धारक कोई प्रदेश नहीं पाए जाते। जघन्यवर्ग से दूने अविभागप्रतिच्छेद रूप शक्ति को धारण करनेवाले जो जीवप्रदेश हैं उन्हें वर्ग जानना और इनका समूह द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा जाननी। प्रथम स्पर्धक की अन्तिम वर्गणा में जो वर्गो की संख्या है उसमें से एक चय घटानेपर द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में वर्गो की संख्या प्राप्त होती है। जैसे प्रथम स्पर्धक की अन्तिम वर्गणा २०८-१६ = १९२ द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा

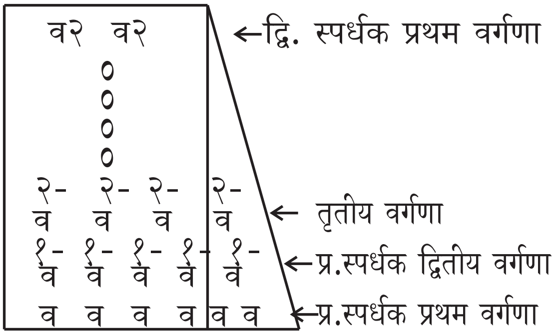

अंकसंदृष्टि		अर्थसंदृष्टि	
१९२	१६	व २	वि १६-४
२०८	११	३-व	वि १६-३
२२४	१०	२-व	वि १६-२
२४०	९	१-व	वि १६-१
२५६	८	व	वि १६
वर्गणा	अविभाग प्रतिच्छेद		वर्गणा

इस प्रथम वर्गणा के वर्ग से एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक शक्ति के धारक जो जीव प्रदेश हैं, उनका समूह द्वितीय स्पर्धक की द्वितीय वर्गणा है उनमें प्रथम वर्गणा से एक चयहीन वर्ग पाये जाते हैं। इसी क्रम से प्रत्येक वर्गणा में एक एक अविभाग प्रतिच्छेद रूप से अधिक शक्ति को लिये एक एक चय से घटते प्रमाण को लिए हुए वर्ग होते हैं। जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भाग प्रमाण वर्गणाओं के समूह को द्वितीय स्पर्धक जानना।

द्वितीय स्पर्धक की अन्तिम वर्गणा के ऊपर असंख्यात लोक प्रमाण अन्तर देकर प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणासंबंधी जघन्यवर्ग के अविभागप्रतिच्छेदों से तिगुणे व ३ (८× ३ = २४) अविभाग प्रतिच्छेद के धारक प्रदेश पाये जाते हैं, कमशक्ति के धारक प्रदेश नहीं पाये जाते हैं। अत: जघन्यवर्ग से तिगुणे अविभाग प्रतिच्छेदरूप शक्ति धारण करनेवाले तथा द्वितीय स्पर्धक की अन्तिम वर्गणा के प्रदेशों से एक चय हीन वर्गों का समूह तृतीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा है।

इससे ऊपर पूर्ववत् जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण वर्गणाएँ होती हैं। क्रमश: प्रत्येक वर्गणा एक एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक शक्ति के धारक तथा एक एक विशेष हीन प्रमाण को लिये हुए वर्गों के समूहरूप हैं और उन वर्गणाओं का समूह तृतीय स्पर्धक है। इसी क्रम से जघन्य वर्गों को अपने अपने स्पर्धकों की संख्या से गुणा करनेपर उस उस स्पर्धक की प्रथम वर्गणा होती है।

जैसे व ५ (८ × ५ = ४०) पंचम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद

व ६ (८ × ६ = ४८) छठे स्पर्धक की प्रथमवर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद

तथा प्रथम वर्गणा के वर्ग में एक एक अविभागप्रतिच्छेद बढानेपर द्वितीयादि वर्गणाओं के वर्गसंबंधी अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण होता है। जैसे व ५ + १ = (४० +१ = ४१) पंचम स्पर्धक की द्वितीय वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद।

प्रत्येक वर्गणा में एक-एक चय हीन वर्गों का प्रमाण क्रमसे जानना। इस प्रकार जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्पर्धक होनेपर एक गुणहानि होती है। उसकी संदृष्टि '९' का अङ्क है।

इसके ऊपर द्वितीय गुणहानि के प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में वर्गों की संख्या प्रथम गुणहानि के प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा से आधी समझनी। २५६ ÷ २= १२८ इस वर्गणा के वर्गों में अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण एक अधिक गुणहानि के स्पर्धकों की संख्याप्रमाण से जघन्य वर्ग के अविभागप्रतिच्छेदों को गुणा करनेपर जो प्रमाण प्राप्त हो

उतना जानना। जैसे व × ९ + १ = व $९^{१-}$ (अंकसंदृष्टि ८ × (२ + १) = ८ × ३ = २४)। द्वितीय गुणहानि में चय का प्रमाण प्रथम गुणहानि के चयप्रमाण से आधा जानना। इसीप्रकार एक एक चय घटानेपर द्वितीयादि वर्गणाओं का प्रमाण जानना। तथा द्वितीय गुणहानि की प्रथम वर्गणा से तृतीय गुणहानि की प्रथम वर्गणा में वर्गों की संख्या का प्रमाण और चय का प्रमाण आधा-आधा जानना। ऐसे ही गुणहानि गुणहानि प्रति आधा-आधा प्रमाण जानना। इस प्रकार पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण नाना गुणहानियाँ होती हैं तब एक योगस्थान होता है, इसलिए एक योगस्थान में पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण नाना गुणहानियाँ कहीं हैं। यह सर्व कथन जघन्य योगस्थान का जानना।

जघन्य योगस्थान के सब अविभाग प्रतिच्छेदों का जोड →

$$\frac{\text{प्रथम गुणहानि प्रथम स्पर्धक प्रथम वर्गणा}}{\text{दो गुणहानि}} = \text{चय}$$

उल्टा करके गुणा करने पर

$$= \frac{\partial\partial^{२}_{३}}{\overline{\partial\partial}^{२}} \rightarrow \frac{\overline{\not{-}}\,\partial\partial\not{२}_{३} \times \partial\partial}{\not{-}\not{२}} \rightarrow -\partial\partial\partial\partial_{३} \quad \text{चय का प्रमाण}$$

चय की लघुसंदृष्टि 'वि' । चय × दो गुणहानि → प्रथम स्पर्धक प्रथम वर्गणा

वि × १६   वि १६

प्रमाण	**फल**	**इच्छा**
एक वर्ग में	'व' इतने अविभागप्रतिच्छेद	वि १६ इतने वर्गों में कितने अविभाग प्रतिच्छेद ?

$$\frac{\text{व} \times \text{वि १६}}{१} = \text{व वि १६} \rightarrow$$ प्रथम स्पर्धक आदिवर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद

अंकसंदृष्टि से

८ × २५६ = २०४८ प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद

इसी प्रकार ऊपर ऊपर की वर्गणा में एक एक अविभाग प्रतिच्छेद बढ़ते जाते हैं अपने अपने अविभागप्रतिच्छेदों से उस उस वर्गणा की वर्गसंख्या को गुणा करनेसे उस उस वर्गणा के कुल अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण आता है।

गुणहानि गुणहानि प्रति आदिवर्गणा से आदिवर्गणा आधा आधा प्रमाण लिये हैं क्योंकि पूर्व गुणहानि की आदिवर्गणा में गुणहानिप्रमाण चय कम करनेपर उत्तर गुणहानि की आदिवर्गणा आती है।

प्रथम गुणहानि चरम वर्गणा → प्रथम वर्गणा - {(गुणहानिआयाम - १) × चय}

वि १६ - $\overset{\overline{३}}{४}$ × ८ × वि

अंकसंदृष्टि २५६ - (१६ × ७) = २५६ - ११२ = १४४

गुणहानिआयाम = वर्गणाशलाका × स्पर्धक शलाका

४ × ९ = ४।९

यहाँपर गुणहानि आयाम में से एक कम करना है अत: आठ स्पर्धक की सब वर्गणाएँ और नववे स्पर्धक की ३ वर्गणाएँ अधिक की अर्थात् नववे स्पर्धक की एक वर्गणा कम कहो अथवा आठ स्पर्धक + ३ वर्गणा कहो दोनों का अर्थ समान है अत: चरमवर्गणा

के वर्गों की संख्या वि १६ - $\overset{\overline{३}}{४}$ × ८। वि २५६ - ११२ = १४४

इनमें अविभाग प्रतिच्छेद, नववा स्पर्धक होने से व × ९ किया और इसकी अन्तिम वर्गणा होने से ३ अविभाग प्रतिच्छेद अधिक करना अत: अन्तिम वर्गणा → $\overset{\overline{३}}{व}$ ९ वि १६ - $\overset{\overline{३}}{४}$।८

द्वितीय गुणहानि प्रथम वर्गणा → $\overset{१-}{व}$ ९ वि १६ - ४।९

द्वितीय गुणहानि प्रथम स्पर्धक

दसवाँ स्पर्धक होने से अविभागप्रतिच्छेद → जघन्य वर्ग × गुणहानिस्पर्धक शलाका + १

व × ९ + १ = $\overset{१-}{व}$९

वर्गों की संख्या → प्रथम गुणहानि प्रथम वर्गणा - एक गुणहानि आयाम मात्र चय

वि १६ - ४।९

प्रथम गुणहानि रचना

तीसरा स्पर्धक व$^{३-}$ ३ वि १६-४$^{३-}$।२ व$^{२-}$ ३ वि १६-४$^{२-}$।२ व$^{१-}$ ३ वि १६-४$^{१-}$।२ व ३ वि १६-४।२	**छठा स्पर्धक** व$^{३-}$ ६ वि १६ - ४$^{३-}$। ५ व$^{२-}$ ६ वि १६ - ४$^{२-}$। ५ व$^{१-}$ ६ वि १६ - ४$^{१-}$। ५ व ६ वि १६ - ४। ५	**नौंवा स्पर्धक** व$^{३-}$ ९ वि १६ - ४$^{३-}$। ८ व$^{२-}$ ९ वि १६ - ४$^{२-}$।८ व$^{१-}$ ९ वि १६ - ४$^{१-}$। ८ व ९ वि १६ - ४। ८
दूसरा स्पर्धक व$^{३-}$ २ वि १६-४$^{३-}$ व$^{२-}$ २ वि १६-४$^{२-}$ व$^{१-}$ २ वि १६-४$^{१-}$ व २ वि १६-४	**पाँचवा स्पर्धक** व$^{३-}$ ५ वि १६ - ४$^{३-}$।४ व$^{२-}$ ५ वि १६ - ४$^{२-}$। ४ व$^{१-}$ ५ वि १६ - ४$^{१-}$। ४ व ५ वि १६ - ४। ४	**आठवा स्पर्धक** व$^{३-}$ ८ वि १६ - ४$^{३-}$। ७ व$^{२-}$ ८ वि १६ - ४$^{२-}$। ७ व$^{१-}$ ८ वि १६ - ४$^{१-}$।७ व ८ वि १६ - ४। ७
पहला स्पर्धक व$^{३-}$ १ वि १६-३ व$^{२-}$ १ वि १६-२ व$^{१-}$ १ वि १६-१ व १ वि १६	**चौथा स्पर्धक** व$^{३-}$ ४ वि १६ - ४$^{३-}$। ३ व$^{२-}$ ४ वि १६ - ४$^{२-}$। ३ व$^{१-}$ ४ वि १६ - ४$^{१-}$।३ व ४ वि १६ - ४।३	**सातवा स्पर्धक** व$^{३-}$ ७ वि १६ - ४$^{३-}$। ६ व$^{२-}$ ७ वि १६ - ४$^{२-}$।६ व$^{१-}$ ७ वि १६ - ४$^{१-}$।६ व ७ वि १६ - ४ ।६

यहाँ के ऋण को गुणहानि रूप से परिवर्तित करनेपर (वि ४।९) वर्गणा शलाका को गुणहानि स्पर्धक शलाका से गुणा करनेपर गुणहानि उत्पन्न होती है अतः वि ४ × ९ = वि ८ ऐसा होता है।

वि १६ - वि ८ = वि ८ × २ - वि ८ विशेष मात्र गुणहानि को विशेषमात्र गुणहानि समान निकालना वि ८ दो में ऋणराशि के एक गुणकार को कम करनेपर शेष वि ८।१ संदृष्टि के लिए ऊपर नीचे दो से गुणा करनेपर प्रथम गुणहानि के प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के प्रदेशों से द्वितीय गुणहानि प्रथम स्पर्धक प्रथम वर्गणा के प्रदेश दो गुणा हीन दिखायी देते हैं।

व ९ वि ८। १। २/२ → व ९ वि १६/२ द्वितीय गुण.प्र.स्प. प्रथम वर्गणा

जघन्य स्पर्धक की आदिवर्गणा में एक स्पर्धक वर्गणा शलाका से गुणनेपर स्थूलरूप से जघन्यस्पर्धक के अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण आता है व वि १६।४ जघन्य स्पर्धक

अंकसंदृष्टि से ८ × २५६ × ४ = २०४८ × ४ = ८१९२

इसी को आदि मानकर एक गुणहानि स्पर्धक शलाका गच्छ का संकलन करनेपर ऋणसहित प्रथम गुणहानि का द्रव्य ऐसा → व वि १६ ४ ९/२ ९/१

जघन्य स्पर्धक × स्पर्धक शलाका का एक बार संकलन

स्पर्धक शलाका ९ उसका एकबार संकलन ९/२ ९/१

जघन्य स्पर्धक → व वि १६ ४

व वि १६ ४ ९/२ ९/१ यह प्रथम गुणहानि का ऋणसहित धन है अतः यहाँ ऋण का प्रमाण निकालते हैं। अब प्रथम स्पर्धक का ऋण लाते हैं →

प्रथम स्पर्धक
३- व वि १६-३
२- व वि १६-२
१- व वि १६-१
व वि १६

इसमें एक एक अधिक अविभाग प्रतिच्छेद है उनका धन अलग स्थापन करना।

३	वि	१६-३
२	वि	१६-२
१	वि	१६-१

इसमें जो ऋण है उसे भी अलग रखना

ऋण
वि ३।३
वि २।२
वि १।१

संकलन करने के लिए ऋण की प्रथम पंक्ति के गुणकारों में से एक एक रूप को अलग स्थापित करना।

वि १।३
वि १।२
वि १।१

वि २।३
वि १।२

दो ऋण

ऋण निकालनेपर शेष बचा धन अधिक अविभाग प्रतिच्छेदों का

धन
वि १६।३
वि १६।२
वि १६।१

दो ऋणो में से जो एक रूप का अलग निकाला हुआ ऋण है उसका संकलन धन एक कम एक स्पर्धक वर्गणा शलाका गच्छ का एक बार संकलन मात्र चयप्रमाण आता है। वि $\frac{३}{२}\,\frac{४}{१}$ स्पर्धक वर्गणा शलाका ४, एक कम करनेपर ३, इस का एकबार संकलन $\frac{३}{२}\,\frac{४}{१}$

दूसरे ऋण का संकलन दो कम एक स्पर्धक वर्गणा शलाका गच्छ का दो गुणा द्विकबार संकलनमात्र चय (विशेष)

दो कम वर्गणा शलाका = २

द्विकवार संकलन $२\,\frac{३}{३}\,\frac{४}{२}\,\frac{}{१}$ दो गुणा विशेष वि $२\,\frac{२}{३}\,\frac{३}{२}\,\frac{४}{१}$ =

इस दूसरे ऋण में प्रथम ऋण साधिक करना वि $२\,\frac{२}{३}\,\frac{३}{२}\,\frac{४}{१}$

अधिक अविभाग प्रतिच्छेद के धन राशि का संकलन → एक कम एक स्पर्धक वर्गणा शलाका गच्छ का एकबार संकलनमात्र आदिवर्गणा के प्रदेश

वि १६ $\frac{३}{२}\,\frac{४}{१}$

इस धनराशि में पूर्वोक्त ऋण कम करना।

वि १६ $\frac{३}{२}\,\frac{४}{१}$ -

(घटाने की संदृष्टि - करना)

अधिक अविभाग प्रतिच्छेदों को अलग करनेपर शेष रहे जघन्य स्पर्धक की रचना→

व वि १६-३
व वि १६-२
व वि १६-१
व वि १६

यहाँपर द्वितीयादिवर्गणा के ऋण को अलग रखना

ऋण
व वि ३
व वि २
व वि १

ऋण का संकलन → एक कम एक स्पर्धक वर्गणाशलाका गच्छ का एकवार संकलन गुणित जघन्य वर्गमात्र विशेष

व वि $\frac{३}{२}\,\frac{४}{१}$

प्रथम स्पर्धक का ऋण।

इससे पूर्व में लाया हुआ अधिक अविभाग प्रतिच्छेद का धन→वि १६ $\frac{३}{२}$ $\frac{४}{१}$ यह बहुत कम है क्योंकि उसमें असंख्यात लोकमात्र जघन्य वर्ग रूप गुणकार का अभाव है। अत: यहाँ उसकी विवक्षा नहीं की। आगे द्वितीयादि स्पर्धकों की द्वितीयादि वर्गणाओं में भी एक आदि अधिक अविभागप्रतिच्छेद के धन की विवक्षा नहीं की है।

२) द्वितीयस्पर्धक का ऋण → अधिक अविभाग प्रतिच्छेद रहित द्वितीय स्पर्धक की संदृष्टि दूसरे स्पर्धक में प्रथम स्पर्धक के जघन्य वर्ग से दुगुने अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं अत: व २ लिखे इनमें वर्गों की संख्या एक एक चयहीन होती हैं।

द्वितीय स्पर्धक	
व २ वि १६ - $\overset{३-}{४}$	च.वर्गणा
व २ वि १६ - $\overset{२-}{४}$	तृ.वर्गणा
व २ वि १६ - $\overset{१-}{४}$	द्वि. वर्गणा
व २ वि १६ - ४	प्र. वर्गणा

द्वि. स्प. प्रथम वर्गणा = प्र. स्प. प्र. वर्गणा – एक स्पर्धक वर्गणा शलाका मात्र चय

एक स्पर्धक वर्गणा शलाका ४ है अत: प्र. स्प. प्रथमवर्गणा वि १६ में ४ चय कम किये। द्वितीयादि वर्गणाओं में एक एक चय और कम हुआ अत: ४+१,४+२,४+३ चय कम किये।

ऋण

व २ वि $\overset{३-}{४}$
व २ वि $\overset{२-}{४}$
व २ वि $\overset{१-}{४}$
व २ वि ४

इसमें जो अधिकरूप हैं उनकी अलग रचना

व २ वि ३
व २ वि २
व २ वि १

अधिकरूप का संकलन → जघन्य वर्ग × विशेष × एक कम वर्गणाशलाका × २ का एकबार संकलन | व वि $\frac{३}{२}$ $\frac{४}{१}$ २ |

इसको प्रथम स्पर्धक के ऋण के ऊपर स्थापित करना।

अधिक रूप को अलग निकालनेपर शेष रहा द्वितीय स्पर्धक का ऋण→

व २ वि ४
व २ वि ४
व २ वि ४
व २ वि ४

इसका संकलन = जघन्यवर्ग × विशेष × एक वर्गणा शलाका का वर्ग × २ × एक कम गच्छ का एकवार संकलन

= व वि ४ ४ २ १

यह दूसरा स्पर्धक होने से गच्छ का प्रमाण २ है एक कम करने पर एक रहा एक का एकबार संकलन $\frac{१}{१}$ $\frac{२}{१}$ (कटे हुए) =१ ही आता है।

इस द्वितीय ऋण को प्रथम ऋण के बाजू में स्थापन करना।

द्वितीय स्पर्धक के दो ऋण १) व वि $\frac{३}{२}\frac{४}{१}$ २   २) व वि ४।४।१।२

३) तृतीयस्पर्धक का ऋण

अधिक अविभागप्रतिच्छेद रहित तृतीय स्पर्धक

व ३ वि १६ -$\overset{३-}{४}$।२	चतुर्थ वर्गणा
व ३ वि १६ -$\overset{२-}{४}$।२	तृतीय वर्गणा
व ३ वि १६ -$\overset{१-}{४}$।२	द्वितीय वर्गणा
व ३ वि १६ -४।२	प्रथम वर्गणा

तृतीयस्पर्धक

तीसरा स्पर्धक होनेसे जघन्यवर्ग से तिगुने अविभाग प्रतिच्छेद हुये अत: व ३ लिखे। जघन्यवर्गणा में दो स्पर्धक वर्गणाशलाका प्रमाण चय कम करनेपर वर्गो की संख्या आती है अत: वि १६ - ४।२ लिखा है। उत्तरोत्तर एक एक चय कम होता गया अत: $\overset{१-}{४}$।२, $\overset{२-}{४}$।२ ऐसा लिखा है।

तृतीय स्पर्धक का ऋण

व ३ वि $\overset{३-}{४}$।२	चतुर्थ वर्गणा
व ३ वि $\overset{२-}{४}$।२	तृतीय वर्गणा
व ३ वि $\overset{१-}{४}$।२	द्वितीय वर्गणा
व ३ वि ४।२	प्रथम वर्गणा

इसके अधिक रूप को अलग स्थापित करना

व ३ वि ३
व ३ वि २
व ३ वि १

इसका संकलन = जघन्यवर्ग× विशेष× एक कम वर्गणा शलाका गच्छ का संकलन×३

व वि $\frac{३}{२}$।$\frac{४}{१}$ × ३   प्रथम ऋण

इसे द्वितीयस्पर्धक के प्रथम ऋण के ऊपर स्थापित करना।

अधिकरूप को अलग रखनेपर शेष बचा ऋण

व ३ वि ४।२
व ३ वि ४।२
व ३ वि ४।२
व ३ वि ४।२

इसका संकलन = जघन्यवर्ग×विशेष× वर्गणा शलाका वर्ग ×२× एक कम गच्छ का एकवार संकलन

व×वि×४×४×२×$\frac{\not{२}\ ३}{\not{२}\ १}$

= **व वि ४।४।२।३** द्वितीय ऋण

यह तृतीय स्पर्धक होने से गच्छ ३ उसमें एक कम करनेपर दो का एकवार संकलन $\frac{२×३}{२\ १}=३$ किया। इस द्वितीय ऋण को द्वितीय स्पर्धक के द्वितीय ऋण पंक्ति के ऊपर स्थापित करना। इसप्रकार प्रथम गुणहानि में प्रत्येक स्पर्धक की प्रथम पंक्ति में एक कम एक स्पर्धक वर्गणा शलाका के संकलन से गुणित जघन्य वर्ग मात्र विशेषों के गच्छ प्रमाण गुणकार करके प्रथम पंक्ति के ऋण होते हैं। द्वितीय पंक्ति मे द्वितीय ऋण = जघन्यवर्ग × विशेष वर्गणाशलाका का वर्ग ×२×एक कम गच्छ का एकवार संकलन मात्र यहाँ एक कम गच्छ का संकलन क्रम से दूसरे स्पर्धक में $\frac{१\ २}{२\ १}=१$ तीसरे स्पर्धक में $\frac{२\ ३}{२\ १}=३$ चौथे स्पर्धक में $\frac{३\ ४}{२\ १}=६$, पाँचवें स्पर्धक में $\frac{४\ ५}{२\ १}=१०$, छठे स्पर्धक में $\frac{५\ ६}{२\ १}=१५$ सातवें स्पर्धक में $\frac{६\ ७}{२\ १}=२१$, आठवें स्पर्धक में $\frac{७\ ८}{२\ १}=२८$, नववें स्पर्धक में $\frac{८\ ९}{२\ १}=३६$ जानना। प्रथम स्पर्धक में द्वितीय पंक्ति का ऋण नहीं है।

		प्रथमपंक्ति ऋण	**द्वितीयपंक्ति ऋण**
९	अन्तिम स्पर्धक	व वि $\frac{३}{२}$ ४ ९	व वि ४ ४ २ ३६
८	द्विचरम स्पर्धक	व वि $\frac{३}{२}$ ४ ८	व वि ४ ४ २ २८
७	त्रिचरम स्पर्धक	व वि $\frac{३}{२}$ ४ ७	व वि ४ ४ २ २१
	००००	०००००	००००
६	छठा स्पर्धक	व वि $\frac{३}{२}$ ४ ६	व वि ४ ४ २ १५
५	पाँचवा स्पर्धक	व वि $\frac{३}{२}$ ४ ५	व वि ४ ४ २ १०
४	चौथा स्पर्धक	व वि $\frac{३}{२}$ ४ ४	व वि ४ ४ २ ६
३	तीसरा स्पर्धक	व वि $\frac{३}{२}$ ४ ३	व वि ४ ४ २ ३
२	दूसरा स्पर्धक	व वि $\frac{३}{२}$ ४ २	व वि ४ ४ २ १
१	प्रथम स्पर्धक	व वि $\frac{३}{२}$ ४ १	०

द्वितीय पंक्ति के ऋण का संकलन = जघन्य वर्ग × विशेष × वर्गणा शलाकावर्ग × एक कम एक गुणहानि स्पर्धक शलाका का द्विकवार संकलन मात्र × २

$$= व\ \ वि\ ४\ ४\ \overset{१\frown}{९}\ \ \frac{९}{३}\ \frac{\overset{१-}{९}}{२}\ \frac{२}{१}\ = \boxed{व\ वि\ ४\ ४\ \overset{१\frown}{९}\ \overset{१-}{९}\ \frac{९}{३}}$$

एक गुणहानि स्पर्धक शलाका = ९, उसमें एक कम $\overset{१\frown}{९}$, इसका दो बार संकलन=

$$\frac{\overset{१\frown}{९}}{३}\ \frac{९}{२}\ \frac{\overset{१-}{९}}{१}$$

प्रथमपंक्ति के ऋण का संकलन = जघन्य वर्ग× विशेष×एक कम वर्गणा शलाका का एकबार संकलन × एक गु. स्पर्धकशलाका का एकवार संकलन

$$व \times वि \times \frac{३}{२} \times \frac{४}{१} \times \frac{९}{२} \times \frac{\overset{१-}{९}}{१}$$

प्रथम पंक्ति ऋण संकलन = $\boxed{व\ \ वि\ \frac{३}{२}\ ४\ \frac{९\overset{१-}{९}}{२}}$

प्रथम पंक्ति का ऋण + द्वितीयपंक्ति का ऋण = सर्व ऋण

$व\ वि\ \frac{३}{२}\ ४\ \frac{९\overset{१-}{९}}{२}\ +\ व\ वि\ ४\ ४\ \frac{\overset{१\frown}{९}}{३}\ \ ९\ \overset{१-}{९}$ इनको मिलाने के लिए द्वितीयपंक्ति के चरम गुणकार में १/४ भाग मिलाना

$व\ वि\ ४\ ४\ \frac{\overset{१\frown}{९}}{३}\ ९\ \overset{१-}{९}\ + \frac{१}{४}$ = क्यों कि प्रथम पंक्ति का ऋण द्वितीय पंक्ति के ऋण का चौथा भाग है

$व\ वि\ ४\ ४\ \frac{\overset{१\frown}{९}}{३}\ ९\ \frac{\overset{१-}{९}}{\not{४}} \times \not{४} + १ = व\ वि\ ४\ ४\ ९\ ९\ \overset{१-}{९}$ = एक मिलाने से ९ के ऊपर १ घाटि है वह निकल गया

$व\ वि\ ४\ ४\ ९\ \frac{\overset{१—}{९}}{३}\ ९$ = प्रथमगुणहानि का समस्त ऋण

प्रथमगुणहानि के ऋण को संदृष्टि के लिए ऊपर नीचे दो से गुणा करना।

$$व\ वि\ ४\ ४\ \frac{९\ \overset{१-}{९}}{३\times२}\ ९ \times २ =\ व\ \ वि\ \ ४\ ४\ ९\ \frac{\overset{१-}{९}}{६}\ ९\ २$$

प्रथमगुणहानि का ऋणसहित धन - ऋणराशि = प्रथम गुणहानि का धन

           १-   १-
व वि १६ ४ ९ ९ - व वि ४ ४ ९ ९ ९ २
          २ १-   ६   १-
व वि १६ ४ ९ ९ × ३ - व वि ४ ४ ९ ९ ९ २ तीन का समच्छेद करना
          २×३   ६

धनराशि में जो दो गुणहानि है उसका २ से संभेदन करके दो को आगे स्थापन करना

१६ = ८ × २

       १-
व वि ८ ४ ९ ९ ३ २ गुणहानि का भेदन करने पर
        ६

वर्गणाशलाका × स्पर्धक शलाका = एक गुणहानि होती है अत: ८ = ४ × ९

          १-   १-
व वि ४ ९ ४ ९ ९ ३ × २ = व वि ४ ४ ९ ९ ९ ६
          ६   ६

धनराशि - ऋणराशि

          १-   १-
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ६ - व वि ४ ४ ९ ९ ९ २ समान संख्या निकालकर धनराशि के ६ में से ऋणराशि का २ गुणकार कम करना
          ६   ६

व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ (१- ऊपर, ६ नीचे)

→ यह प्रथम गुणहानि का आदिधन है अर्थात् सर्व अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण है।

प्रथम गुणहानि का उत्तरधन नहीं है।

२) द्वितीय गुणहानि का द्रव्य लाते हैं →

उसमें प्रथमादि स्पर्धक की प्रथमादि वर्गणाओं के एक गुणहानि स्पर्धक शलाका के ऊपर स्थित अधिक रूपों को अलग करके संकलन करने पर प्रथम गुणहानि के द्रव्य का

                           १-
आधा द्रव्य होता है व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ यह द्वितीय गुणहानि का आदिधन
                         ६ २

आगे के पृष्ठपर द्वितीय गुणहानि की रचना दिखायी है उसमें जो व ९ (१- ऊपर) प्रथमस्पर्धक, द्वितीय स्पर्धक में व ९ (२- ऊपर), तृतीय स्पर्धक में व ९ (३- ऊपर) इत्यादि प्रमाण है इसमें ९ के ऊपर एक, दो आदि का जो प्रमाण है उसका केवल संकलन करते है तो प्रथम गुणहानि के समान ही प्रमाण है। किन्तु वर्गणाओं के वर्गों की संख्या प्रथम गुणहानि की वर्गसंख्या से आधी है अत: प्रथम गुणहानि के आदिधन से द्वितीय गुणहानि का आदिधन आधा प्रमाण है। इस द्वितीय गुणहानि के आदिधन को प्रथम गुणहानि के आदिधन के ऊपर स्थापित करना।

द्वितीय गुणहानि रचना

तीसरा स्पर्धक $व^{३-} \; ९^{३-} \; वि_{२} \; १६-४^{३-} \; २$ $व^{२-} \; ९^{३-} \; वि_{२} \; १६-४^{२-} \; २$ $व^{१-} \; ९^{३-} \; वि_{२} \; १६-४^{१-} \; २$ $व \; ९^{३-} \; वि_{२} \; १६-४ \; २$	**छठा स्पर्धक** $व^{३-} \; ९^{६-} \; वि_{२} \; १६ - ४^{३-} \; ५$ $व^{२-} \; ९^{६-} \; वि_{२} \; १६ - ४^{२-} \; ५$ $व^{१-} \; ९^{६-} \; वि_{२} \; १६ - ४^{१-} \; ५$ $व \; ९^{६-} \; वि_{२} \; १६ - ४ \; ५$	**नौंवा स्पर्धक** $व^{३-} \; ९^{९-} \; वि_{२} \; १६ - ४^{३-} \; ८$ $व^{२-} \; ९^{९-} \; वि_{२} \; १६ - ४^{२-} \; ८$ $व^{१-} \; ९^{९-} \; वि_{२} \; १६ - ४^{१-} \; ८$ $व \; ९^{९-} \; वि_{२} \; १६ - ४ \; ८$
दूसरा स्पर्धक $व^{३-} \; ९^{२-} \; वि_{२} \; १६-४^{३-}$ $व^{२-} \; ९^{२-} \; वि_{२} \; १६-४^{२-}$ $व^{१-} \; ९^{२-} \; वि_{२} \; १६-४^{१-}$ $व \; ९^{२-} \; वि_{२} \; १६-४$	**पाँचवा स्पर्धक** $व^{३-} \; ९^{५-} \; वि_{२} \; १६ - ४^{३-} \; ४$ $व^{२-} \; ९^{५-} \; वि_{२} \; १६ - ४^{२-} \; ४$ $व^{१-} \; ९^{५-} \; वि_{२} \; १६ - ४^{१-} \; ४$ $व \; ९^{५-} \; वि_{२} \; १६ - ४ \; ४$	**आठवा स्पर्धक** $व^{३-} \; ९^{८-} \; वि_{२} \; १६ - ४^{३-} \; ७$ $व^{२-} \; ९^{८-} \; वि_{२} \; १६ - ४^{२-} \; ७$ $व^{१-} \; ९^{८-} \; वि_{२} \; १६ - ४^{१-} \; ७$ $व \; ९^{८-} \; वि_{२} \; १६ - ४ \; ७$
पहला स्पर्धक $व^{३-} \; ९^{१-} \; वि_{२} \; १६-३$ $व^{२-} \; ९^{१-} \; वि_{२} \; १६-२$ $व^{१-} \; ९^{१-} \; वि_{२} \; १६-१$ $व \; ९^{१-} \; वि_{२} \; १६$	**चौथा स्पर्धक** $व^{३-} \; ९^{४-} \; वि_{२} \; १६ - ४^{३-} \; ३$ $व^{२-} \; ९^{४-} \; वि_{२} \; १६ - ४^{२-} \; ३$ $व^{१-} \; ९^{४-} \; वि_{२} \; १६ - ४^{१-} \; ३$ $व \; ९^{४-} \; वि_{२} \; १६ - ४ \; ३$	**सातवा स्पर्धक** $व^{३-} \; ९^{७-} \; वि_{२} \; १६ - ४^{३-} \; ६$ $व^{२-} \; ९^{७-} \; वि_{२} \; १६ - ४^{२-} \; ६$ $व^{१-} \; ९^{७-} \; वि_{२} \; १६ - ४^{१-} \; ६$ $व \; ९^{७-} \; वि_{२} \; १६ - ४ \; ६$

द्वितीय गुणहानि प्रथम स्पर्धक = प्रथम गुणहानि प्रथम वर्गणा का आधा × वर्गणाशलाका × एक गुणहानि स्पर्धकशलाका

व वि $\frac{१६}{२}$ × ४ × ९ = व $\underset{२}{\text{वि}}$ १६ ४ ९

इतनी राशि प्रत्येक स्पर्धक में अवस्थित रूप से रहती है अत: इसे गुणहानि स्पर्धक शलाका से गुणनेपर द्वितीय गुणहानि में ऋणसहित उत्तरधन आता है।

व $\underset{२}{\text{वि}}$ १६ ४ ९ ९	द्वितीयगुणहानि का ऋणसहित उत्तरधन

द्वितीय गुणहानि का ऋण→ आदिधन से रहित प्रथम स्पर्धकके उत्तरधन की रचना

व ९ $\underset{२}{\text{वि}}$ १६-३	चतुर्थ वर्गणा
व ९ $\underset{२}{\text{वि}}$ १६-२	तृतीय वर्गणा
व ९ $\underset{२}{\text{वि}}$ १६-१	द्वितीय वर्गणा
व ९ $\underset{२}{\text{वि}}$ १६	प्रथम वर्गणा
	प्रथम स्पर्धक

यहाँपर द्वितीयादि वर्गणा स्थित ऋण को अलग रखना

ऋण
व ९ $\underset{२}{\text{वि}}$ ३
व ९ $\underset{२}{\text{वि}}$ २
व ९ $\underset{२}{\text{वि}}$ १

ऋण का संकलन = जघन्यवर्ग × स्व विशेष × एक कम वर्गणा शलाका गच्छ का संकलन × एक गुणहानि स्पर्धक शलाका

उत्तरधन के प्रथम स्पर्धक का ऋण = व $\underset{२}{\text{वि}}$ $\frac{३}{२}$ ४ ९

उत्तरधन का द्वितीय स्पर्धक

व ९ $\underset{२}{\text{वि}}$ १६-$\overset{३-}{४}$	च.वर्गणा
व ९ $\underset{२}{\text{वि}}$ १६-$\overset{२-}{४}$	तृ.वर्गणा
व ९ $\underset{२}{\text{वि}}$ १६-$\overset{१-}{४}$	द्वि.वर्गणा
व ९ $\underset{२}{\text{वि}}$ १६-४	प्र.वर्गणा
	द्वितीय स्पर्धक

यहाँ के ऋण को अलग रखना और ऋण में जो ४ के ऊपर अधिक रूप है उसकी अलग स्थापना करना

ऋण	ऋण में अधिक रूप की रचना
व ९ $\underset{२}{\text{वि}}$ $\overset{३-}{४}$	व ९ $\underset{२}{\text{वि}}$ ३
व ९ $\underset{२}{\text{वि}}$ $\overset{२-}{४}$	व ९ $\underset{२}{\text{वि}}$ २
व ९ $\underset{२}{\text{वि}}$ $\overset{१-}{४}$	व ९ $\underset{२}{\text{वि}}$ १
व ९ $\underset{२}{\text{वि}}$ ४	

ऋण के अधिक रूप का संकलन = जघन्यवर्ग × स्वविशेष × एक कम वर्गणाशलाका
गच्छ का संकलन × एक गुणहानि स्पर्धक शलाका

= व वि$_{२}$ ३$_{२}$ ४ ९ इसे प्रथम स्पर्धक के ऋण के ऊपर स्थापन करना

शेष ऋण

व ९ वि$_{२}$ ४
व ९ वि$_{२}$ ४
व ९ वि$_{२}$ ४
व ९ वि$_{२}$ ४

इसका संकलन त्रैराशिक से →

प्रमाण	फल	इच्छा
एक वर्गणा में १	व ९$_{२}$ वि ४	४ में कितना?

$\frac{\text{व ९ वि}_{२} \text{ ४ ।४}}{१}$ = व वि$_{२}$ ४।४। ९ → द्वितीय स्पर्धक द्वितीय पंक्ति का ऋण

इस ऋण को अपने प्रथम ऋण के पास स्थापन करना।

उत्तरधन का	तीसरा स्पर्धक	इसका ऋण	ऋण के अधिक रूप की रचना	शेष ऋण
च.वर्गणा	व ९ वि$_{२}$ १६-४।२$^{३-}$	व ९ वि$_{२}$ ४।२$^{३-}$	व ९ वि$_{२}$ ३	व ९ वि$_{२}$ ४।२
तृ.वर्गणा	व ९ वि$_{२}$ १६-४।२$^{२-}$	व ९ वि$_{२}$ ४।२$^{२-}$	व ९ वि$_{२}$ २	व ९ वि$_{२}$ ४।२
द्वि.वर्गणा	व ९ वि$_{२}$ १६-४।२$^{१-}$	व ९ वि$_{२}$ ४।२$^{१-}$	व ९ वि$_{२}$ १	व ९ वि$_{२}$ ४।२
प्र.वर्गणा	व ९ वि$_{२}$ १६-४।२	व ९ वि$_{२}$ ४।२	०	व ९ वि$_{२}$ ४।२

ऋण के अधिक रूप =जघन्यवर्ग × स्वविशेष × एक कम वर्गणाशलाका × एक गुणहानि
का संकलन गच्छ का संकलन स्पर्धक शलाका

व वि$_{२}$ ३$_{२}$ ४ × ९ इसे द्वितीय स्पर्धक के प्रथमपंक्ति ऋणके ऊपर स्थापन करना

शेष ऋण का संकलन त्रैराशिक से -

प्रमाण	फल	इच्छा
१ वर्गणा में	व ९ वि$_{२}$ ४।२ इतना तो	४ वर्गणा में कितना?

व ९ वि$_{२}$ ४।२×४ = व वि$_{२}$ ४ ४ ९ २

इसे द्वितीय स्पर्धक के द्वितीय पंक्ति के ऋण के ऊपर स्थापन करना।

इसी प्रकार चतुर्थादि स्पर्धकों के दोनों ऋणों का प्रमाण लाना। सब स्पर्धकों में प्रथम ऋण समान ही है इसलिए सरल है।

द्वितीयपंक्ति के ऋण में केवल स्पर्धक की जो संख्या है उसमें एक कम करके उससे द्वितीय ऋण को गुणना जैसे तीसरे स्पर्धक में- व वि$_{२}$ ४ ४ ९ २

चौथे स्पर्धक में- व वि$_{२}$ ४ ४ ९ ३, नववे स्पर्धक में- व वि$_{२}$ ४ ४ ९ ८

शेष सब संख्या समान ही है।

द्वितीय गुणहानि का ऋण

स्पर्धक संख्या	प्रथमपंक्ति ऋण	द्वितीय पंक्ति ऋण
नववा स्पर्धक	व वि$_{२}$ ३$_{२}$ ४ ९	व वि$_{२}$ ४ ४ ९ ८
आठवा स्पर्धक	व वि$_{२}$ ३$_{२}$ ४ ९	व वि$_{२}$ ४ ४ ९ ७
सातवा स्पर्धक	व वि$_{२}$ ३$_{२}$ ४ ९	व वि$_{२}$ ४ ४ ९ ६
००००००००	००००००००	००००००००
तीसरा स्पर्धक	व वि$_{२}$ ३$_{२}$ ४ ९	व वि$_{२}$ ४ ४ ९ २
दूसरा स्पर्धक	व वि$_{२}$ ३$_{२}$ ४ ९	व वि$_{२}$ ४ ४ ९ १
प्रथम स्पर्धक	व वि$_{२}$ ३$_{२}$ ४ ९	०

द्वितीयपंक्ति के ऋण का संकलन = जघन्यवर्ग× स्वविशेष× एक स्पर्धक वर्गणा शलाका वर्ग × एक गुणहानि स्पर्धक शलाका× एक कम स्पर्धक शलाका गच्छ का एकवार संकलन।

द्वितीयपंक्ति के ऋण का संकलन = व वि$_{२}$ ४ ४ ९ $\frac{९^{१}}{२}$ ९

प्रथम पंक्ति के ऋण का संकलन त्रैराशिक से

प्रमाण	फल	इच्छा
१ स्पर्धक में	इतना द्रव्य व वि ३ ४ ९ २ २	तो ९ स्पर्धक में कितना द्रव्य ?

लब्ध = व वि ३ ४ ९ ९ → प्रथम पंक्ति का ऋण
२ २

प्रथम पंक्तिका ऋण + द्वितीय पंक्ति का ऋण = उभय पंक्ति ऋण

व वि ३ ४ ९ ९ + व वि ४ ४ ९ ९ ९
२ २ २ २

इन दोनों को मिलाने के लिए द्वितीय पंक्ति के ऋण में एक गुणकार मिलाना एक मिलाने पर ९ के ऊपर एक घाटि निकल गया।

व वि ३ ४ ९ ९ + व वि ४ ४ ९ ९ ९
२ २ २ २

प्रथम पंक्ति ऋण में स्पर्धक वर्गणाशलाका में एक कम है उसको न गिनकर पूर्ण वर्गणा ही ग्रहण की है।

व वि ४ ४ ९ ९ ९ २ २

इसे पुन: स्थूलरूप से लाये हुये उत्तरधन में से घटाना।

उत्तरधन - उभयपंक्ति ऋण = द्वितीय गुणहानि शुद्ध उत्तरधन

व वि १६ ४ ९ ९ - व वि ४ ४ ९ ९ ९
२ २ २

उत्तरधन में दो गुणहानि का दो से भेदन करके गुणहानि में स्पर्धक × वर्गणाशलाका उत्पन्न करना

व वि ८ × २ ४ ९ ९ वर्गणा को वर्गणा शलाका के पास स्पर्धक को स्पर्धक के पास रखना
२

व वि ४ ९ २ ४ ९ ९ = व वि ४ ४ ९ ९ ९ २ दो का समच्छेद करना
२ २

व वि ४ ४ ९ ९ ९ २ २ - व वि ४ ४ ९ ९ ९
२ २ २ २

व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ - व वि ४ ४ ९ ९ ९ समान संख्या निकालकर धन राशि के ४ गुणकार में ऋणराशि का एक गुणकार घटाना
२ २ २ २

व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ - १ ऊपर नीचे ३ से गुणा करना संकलन करने के लिए सरल हो इसलिए
२ २

व वि ४ ४ ९ ९ ९ ३ × ३
२ २ × ३

व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ २ ६

द्वितीय गुणहानि का शुद्ध उत्तरधन

तृतीय गुणहानि का द्रव्य निकालते हैं -

१—   २—
प्रथमादि स्पर्धकों में   व ९ × २ वि १६, व ९ × २ वि १६ - ४ इत्यादि में
२ २   २ २

दुगुने गुणहानि स्पर्धक शलाका के ऊपर एकादि अधिक रूप है उनको अलग करके उनका संकलन करने पर द्वितीय गुणहानि से आधा प्रमाण प्राप्त होता है।

तृतीय गुणहानि आदिधन व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ इस तृतीय गुणहानि के आदिधन को
६।२।२

द्वितीय गुणहानि के आदिधन के ऊपर स्थापन करना।

अब तृतीय गुणहानि का उत्तरधन लाते हैं-

तृतीय गुणहानि प्रथम स्पर्धक = (प्र.गु.प्रथम वर्गणा / ४) × वर्गणा शलाका × स्पर्धकशलाका× २

व (वि/४) १६ × ४ × ९ × २ = व (वि/४) १६ ४ ९ २

इतना धन प्रत्येक स्पर्धक में है अत: इसे स्पर्धक शलाका से गुणा करने पर ऋणसहित उत्तरधन का प्रमाण आता है।

| व (वि/४) १६ ४ ९ ९ २ | तृतीय गुणहानि का ऋणसहित उत्तरधन

तृतीय गुणहानि का उत्तरधन का ऋण लाते हैं -

प्रथम स्पर्धक का ऋण = जघन्यवर्ग × स्वविशेष × एक कम वर्गणा शलाका गच्छ का एकवार संकलन × स्पर्धक शलाका × २

प्रथम स्पर्धक का ऋण = व × (वि/४) × (३/२) × ४ × ९ × २ = व (वि/४) (३/२) ४ ९ २

इतना ऋण प्रत्येक स्पर्धक में है अत: उसे स्पर्धकशलाका से गुणित करनेपर प्रथम पंक्ति का सब ऋण आता है | व (वि/४) (३/२) ४ ९ २ ९ | प्रथम पंक्ति का ऋण

द्वितीय स्पर्धक के द्वितीय पंक्ति का ऋण → जघन्यवर्ग × स्वविशेष × वर्गणाशलाका वर्ग × स्पर्धक शलाका × २

व × (वि/४) × ४ × ४ × ९ × २ = व (वि/४) ४ ४ ९ २

तृतीयादि स्पर्धकों में इतना ऋण है आगे केवल एक कम गच्छ का गुणकार अधिक जानना,

जैसे तृतीयस्पर्धक का ऋण व $\text{वि}_{४}$ ४ ४ ९ २ २, चतुर्थस्पर्धक का ऋण व $\text{वि}_{४}$ ४ ४ ९ २ ३ इ.

द्वितीयपंक्ति का सर्व ऋण = द्वितीयस्पर्धक का ऋण × एक कम गुणहानि स्पर्धक शलाका का एकबार संकलन

व $\text{वि}_{४}$ ४ ४ ९ २ × $\frac{\overline{९}}{२}$ $\frac{९}{१}$

द्वितीयपंक्ति का सर्व ऋण = **व $\text{वि}_{४}$ ४ ४ ९ २ $\frac{\overline{९}}{२}$ ९**

प्रथम पंक्तिऋण + द्वितीय पंक्तिऋण

व $\text{वि}_{४}$ $\frac{३}{२}$ ४ ९ २ ९ + व $\text{वि}_{४}$ ४ ४ ९ २ $\frac{\overline{९}}{२}$ ९

व $\text{वि}_{४}$ ४ ४ ९ २ $\frac{९}{२}$ ९

प्रथम पंक्ति का ऋण मिलाने के लिए द्वितीय पंक्ति के ऋण में एक गुणकार मिलाना एक गुणकार मिलानेपर ९ के ऊपर का एक घाटि निकल जाता है।

ऋणसहित उत्तरधन - उभयऋण = तृतीय गुणहानि का शुद्ध उत्तरधन

व $\text{वि}_{४}$ १६ ४ ९ ९ २ – व $\text{वि}_{४}$ ४ ४ ९ २ ९ $\frac{९}{२}$ — उत्तरधन की दो गुणहानि का दो से भेदन करके गुणहानि का स्पर्धक × वर्गणा में परिवर्तन करना

व $\text{वि}_{४}$ ८ × २ ४ ९ ९ २

व $\text{वि}_{४}$ ४ × ९ × २ × ४ ९ ९ २

व $\text{वि}_{४}$ ४ ४ ९ ९ ९ २।२ - व $\text{वि}_{४}$ ४ ४ ९ ९ $\frac{९}{२}$ २ — दो का समच्छेद करना

व $\text{वि}_{४}$ ४ ४ ९ $\frac{९}{२}$ ९ २ २ × २ - व $\text{वि}_{४}$ ४ ४ ९ $\frac{९}{२}$ ९ २ — समान संख्या निकालकर

व $\text{वि}_{४}$ ४ ४ ९ ९ $\frac{९}{२}$ २ ४ - व $\text{वि}_{४}$ ४ ४ ९ ९ $\frac{९}{२}$ २ — धनराशि के ४ गुणकार में से ऋण राशिका १ गुणकार कम करना

व $\text{वि}_{४}$ ४ ४ ९ $\frac{९}{२}$ ९ २ ३ — संदृष्टि के लिए ऊपर नीचे ३ से गुणा करना

व $\text{वि}_{४}$ ४ ४ ९ ९ ९ $\frac{२\ ३ \times ३}{२ \times ३}$ = **व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ $\frac{२}{६।२।२}$** — तृतीय गुणहानि का शुद्ध उत्तरधन

इस प्रकार चतुर्थादि गुणहानियों में आदिधन और उत्तरधन आधे आधे होते हैं। उत्तरधन आधा होकर भी वह एक कम गच्छ से गुणित हो जाता है। जितने नंबर की

गुणहानि होगी उतना गच्छ का प्रमाण समझना।

सब गुणहानियों का आदिधन और उत्तरधन

	आदिधन	उत्तरधन
अंतिम गुणहानि ० ० ० ० ० ० ०	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ ० ६ प ० ∂२ ० ० ० ० ०	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ १⌒ प ० ६प ∂∂ ० ∂२ ० ० ० ० ०
चतुर्थ गुणहानि	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ ६ २ २ २	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ ३ ६ २ २ २
तृतीय गुणहानि	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ ६ २ २	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ २ ६ २ २
द्वितीय गुणहानि	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ ६ २	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ १ ६ २
प्रथम गुणहानि	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ ६	०

अंतिम गुणहानि के भागहार में $\frac{प}{∂२}$ लिखा है क्यों कि द्वितीय गुणहानि से भागहार में दो-दो का भाग बढ़ता गया है तो अंतिम गुणहानि में एक कम नाना गुणहानि प्रमाण दो के भागहार होंगे उनका परस्पर गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशि का आधा प्रमाण आता है। यहाँ अन्योन्याभ्यस्तराशि $\frac{प}{∂}$ है। नानागुणहानियाँ $\frac{प}{∂∂}$ है। अत: उत्तरधन के गुणकार में एक कम गच्छ का प्रमाण $\frac{१⌒प}{∂∂}$ लिखा है।

संकलनसूत्र

पदप्रमाण गुणकारों का परस्पर गुणा करके उसमें से एक कम करना जो लब्धराशि आवे उसे आदिधन और उत्तरधन के प्रथम अंशों का जोड़ करके गुणा करना। जो लब्ध आवे उसमें से पद × उत्तरधन का चय घटाना। जो लब्ध आवे उसे भाज्यराशि करना।

एक कम पदमात्र गुणकारों का परस्पर गुणा करके आदिधन के प्रथम (आद्य) छेद

से गुणा करना। जो लब्ध आवे उसे भागहार राशि बनाना। सूत्र $\longrightarrow$

$$\frac{\left\{\left(\begin{array}{c}\text{पदप्रमाण गुणकारों का}\\ \text{परस्पर गुणकार}\end{array} - १\right) \times \left(\begin{array}{cc}\text{आदिधन का} + & \text{उत्तरधन का}\\ \text{आद्य अंश} & \text{आद्य अंश}\end{array}\right)\right\} - \left(\begin{array}{c}\text{पद} \times \text{उत्तरधन का}\\ \text{चय}\end{array}\right)}{\begin{array}{l}(\text{पद} - १) \times \text{आदिधन का आद्य छेद}\\ \text{गुणकार}\end{array}} =$$

= आदिधन और उत्तरधन का जोड़

पद = पल्य का असंख्यातवाँ भाग $\left(\frac{प}{\partial\partial}\right)$ नाना गुणहानि

आदिधन का अंश = ४ उत्तरधन का चय = ९ (स्पर्धक शलाका)

उत्तरधन का अंश = ९ गुणकार = २

पद प्रमाण $\left(\frac{प}{\partial\partial}\right)$ गुणकार २ का परस्पर गुणकार करनेपर $\frac{प}{\partial}$ पल्य का असंख्यातवाँ भाग लब्ध आता है। एक कम पदप्रमाण गुणकारों का परस्पर गुणा करने पर उपर्युक्त लब्ध से आधा आयेगा क्योंकि एक गुणकार कम है $\frac{प}{\partial २}$

$$\left[\frac{\left\{\frac{प}{\partial} - १ \times (४+९)\right\} - \left(\frac{प}{\partial\partial} \times ९\right)}{\frac{प}{\partial २} \times ६}\right]$$

$$\frac{\left\{\left(\frac{\overset{१\frown}{प}}{\partial} \times १३\right) - \left(\frac{प}{\partial\partial} \times ९\right)\right\}}{\frac{प}{\partial} \times \frac{६}{२}}$$

$$\frac{१३\,\frac{\overset{१\frown}{प}}{\partial} - \frac{प\;९}{\partial\partial}}{\frac{प}{\partial}\,\frac{६}{२}} =$$

उत्तरधन व आदिधन के आगे की संख्याओं का जोड इसके पीछे की संख्या सर्वत्र समान है वह व वि ४ ४ ९ ९ ९ अवस्थित गुणकार

$$\text{व वि ४ } \frac{४}{\frac{प}{\partial}\,२}\,\frac{९}{६}\text{ ९ ९ १३ } \frac{\overset{१\frown}{प}}{\partial} - \text{व वि ४ } \frac{४}{\frac{प}{\partial}\,२}\,\frac{९}{६}\text{९९९ } \frac{प}{\partial\partial}$$

धनराशि के एक घाटि का प्रमाण अलग रखना।

$$\text{व वि ४ } \frac{४}{\frac{प}{\partial}\,२}\,\frac{९}{६}\text{ ९ ९ १३ ऋण}$$

इस अलग रखे हुए ऋण को उपर्युक्त ऋण में मिलाना क्योंकि धनराशि में से दोनों को घटाना है।

व वि ४ ४ ९ ९ ९ १३ + व वि ४ ४ ९ ९९९ प
प ६ ∂२ प ६ ∂२ ∂∂

व वि ४ ४ ९ ९ ९ (१३ + ९ प / ∂∂)
प ६ ∂२

समान संख्याओं को निकालकर शेष लब्ध इस संख्या का अपवर्तन करनेपर $\frac{१}{∂}$ भाग लब्ध आता है क्योंकि भाज्य राशि से भागहारराशि असंख्यात गुणी है।

शेष धनराशि के भाज्य और भागहारों का अपवर्तन करना।

व वि ४ ४ ९ ९ ९ १३ प / प ६ ∂ २ ∂ = व वि ४ ४ ९ ९ ९ $\frac{१३}{३}$ तेरह में से एक का प्रमाण अलग रखना

व वि ४ ४ ९ ९ ९ $\frac{१}{३}$

शेष संख्या - व वि ४ ४ ९ ९ ९ $\frac{१२ \to ४}{३}$ शेष संख्या का अपवर्तन कर अलग रखा हुआ एक का प्रमाण मिलाना।

व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ + व वि ४ ४ ९ ९ ९ $\frac{१}{३}$ समान संख्या रखकर

व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ + $\frac{१}{३}$ इस $\frac{१}{३}$ भाग में उपर्युक्त ऋणराशि $\frac{१}{∂}$ भाग कम करना। कम करने के लिए

व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ + $\frac{१-}{३}$ $\frac{१}{३}$ के आगे घाटिका ऐसा चिन्ह - लिखना

४ × ९ = एक गुणहानि होती है इसलिए गुणहानि को उत्पन्न करके आगे के ४ गुणकार में से दो गुणकार ग्रहण करना तो दो गुणहानि होगी।

व वि ४ × ९ ४ ९ ९ ४ = व वि ८ × २ ४ ९ ९ २

व वि १६ ४ ९ ९ २ + $\frac{१-}{३}$ ऊपर नीचे दो से गुणा करना

व वि १६ ४ ९ ९ २ + $\frac{१- \times २}{३ \times २}$ = व वि १६ ४ ९ ९ २ + $\frac{१-}{६}$ ×२

व वि १६ ४ ९ ९ २ + $\frac{२-}{६}$ दो में कुछ कम $\frac{२}{६}$ भाग साधिक करना।

साधिक करने के लिए दो के ऊपर । ऐसी संदृष्टि करना।

व वि १६ ४ ९ ९ २

प्रमाण राशि	फलराशि	इच्छाराशि
व वि १६ ४ इतने अविभाग प्रतिच्छेदों का	१ एक स्पर्धक	व वि १६ ४ ९ ९ २ तो इतने के कितने स्पर्धक ?

(१ × व वि १६ ४ ९ ९ २) / (व वि १६ ४) = लब्ध ९९२ जघन्य योगस्थान में इतने स्पर्धक होते हैं।

९ = गुणहानि स्पर्धक शलाका मानी हुई। वास्तव में गुणहानि स्पर्धक शलाका जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण है अत: ९ = $\overline{\partial}$

$\overline{\partial}\,\overline{\partial}$ २ साधिक दो गुणी गुणहानि स्पर्धक शलाका वर्गमात्र जघन्य योग में जघन्य स्पर्धक होते हैं।

जगत्श्रेणि का असंख्यातवाँ भाग गुणित जगत्श्रेणी का असंख्यातवाँ भाग जगत्प्रतर का असंख्यातवाँ भाग होता है ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए क्योंकि एक योगस्थान में जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र ही स्पर्धक होते हैं ऐसा सूत्र में कहा है।

जैसे अंकसंदृष्टि से जगत्श्रेणी ६४ मानी। असंख्यात १६ माना।

(६४ / १६ = ४) × (६४ / १६ = ४) = ४ × ४ = १६ लब्ध जगत् श्रेणी का असंख्यातवाँ भाग ही आया जगत्श्रेणी से बडी संख्या नहीं आयी।

अंगुलअसंखभागप्पमाणमेत्तावरफड्ढयाउड्ढी।
अंतरछक्कं मुच्चा अवरट्ठाणादु उक्कस्सं ।।२३०।।

अन्वयार्थ - (अंतरछक्कं) छह अन्तरस्थानों को **(मुच्चा)** छोड़कर **(अवरट्ठाणादु)** जघन्य योगस्थान से **(उक्कस्सं)** उत्कृष्ट योगस्थान तक प्रतिस्थान **(अंगुलअसंखभागप्पमाणमेत्तावरफड्ढयाउड्ढी)** अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य स्पर्धकों की वृद्धि होती है।

सरिसायामेणुवरिं सेढिअसंखेज्जभागठाणाणि ।
चडिदेक्केक्कमपुव्वं फड्ढयमिह जायदे चयदो ।।२३१।।

अन्वयार्थ - (सरिसायामेण) समान आयामवाले स्थानों के **(उवरिं)** ऊपर **(चयदो)** चय की अपेक्षा **(सेढिअसंखेज्जभागठाणाणि)** श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण स्थान **(चडिदे)** चढ़ने पर **(इह)** यहाँ पर **(एक्केक्कं)** एक-एक **(अपुव्वं फड्डयं)** अपूर्व स्पर्धक **(जायदे)** उत्पन्न होता है।

विशेषार्थ - सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीव के सब से जघन्य उपपाद योगस्थान होता है। उसके अनन्तरवर्ती स्थान से लेकर सर्वोत्कृष्ट योगस्थान की उत्पत्ति पर्यन्त छह अन्तरस्थानों को छोड़कर सब ही योगस्थानों में से प्रत्येक योगस्थान में निरन्तर सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक युगपत् बढ़ते हैं।

जघन्य स्थान में जितने स्पर्धक हैं उनसे सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग अधिक जघन्य स्पर्धक उससे ऊपर के दूसरे योगस्थान में होते हैं। जिसप्रकार जघन्य योगस्थान के समस्त अविभाग प्रतिच्छेदों का जोड करनेपर जो प्रमाण आया उसे जघन्य स्पर्धक के प्रमाण से करने पर जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य स्पर्धक हुये उसी प्रकार द्वितीय योगस्थान के समस्त अविभागप्रतिच्छेदों का जोड करने पर जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य स्पर्धक आते हैं लेकिन प्रथम योगस्थान से द्वितीय योगस्थान में सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य स्पर्धक अधिक होते हैं। प्रथम से दूसरे योगस्थान में स्पर्धकों की संख्या नहीं बढ़ती है। स्पर्धकों की संख्या उतनी ही रहती हैं केवल अविभागप्रतिच्छेदों की संख्या बढ़ती है। इसी प्रकार दूसरे से तीसरे में सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक अधिक होते हैं। तीसरे से चौथे में, चौथे से पाँचवे में, इसी प्रकार सर्वोत्कृष्ट योगस्थान पर्यन्त एक एक स्थान में सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक बढ़ते जाते हैं।

सब से जघन्य योगस्थान के समान आयाम के ऊपर जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भागप्रमाण वृद्धिरूप चय के होनेपर एक एक अपूर्व स्पर्धक उत्पन्न होता है। अर्थात् इस योगस्थान में पूर्व स्पर्धक संख्या से एक स्पर्धक संख्या बढ़ जाती है।कितने कितने स्थान जानेपर अपूर्व स्पर्धक उत्पन्न होता है? त्रैराशिक -

प्रमाण	फलराशि	इच्छाराशि
व वि १६ ४ २ ∂ इतनी वृद्धि होने पर	१ एक स्थान होता है	व वि १६ ४ $\overset{१-}{९}$ ना? इतने जघन्य अ स्पर्धक बढ़ने पर कितने स्थान?

$$\frac{\not{\text{व}}\ \not{\text{वि}}\ \not{\text{१६}}\ \not{\text{४}}\ \text{९}^{\text{१}-}\ \text{ना}}{\not{\text{व}}\ \not{\text{वि}}\ \not{\text{१६}}\ \not{\text{४}}\ \text{२}\ \text{अ}\ \partial} = \frac{\text{९}^{\text{१}-}\ \text{ना}}{\text{२}\ \text{अ}\ \partial} = \overline{\partial}$$ जगत्श्रेणि का असंख्यातवाँ भाग

जघन्य स्पर्धक सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण बढ़ने पर यदि एक स्थान होता है तो जघन्यस्थान के एक अधिक गुणहानि स्पर्धक शलाका को नाना गुणहानि से गुणित कर उनकी अन्योन्याभ्यस्त राशि का भाग देने पर जो प्रमाण हो उतने जघन्य स्पर्धक बढने पर कितने स्थान होंगे ऐसा त्रैराशिक करने पर लब्धराशि का प्रमाण जगत्श्रेणि का असंख्यातवाँ भाग $\overline{\partial}$ आता है। अर्थात् इतने योगस्थान जाने पर एक अपूर्व स्पर्धक उत्पन्न होता है।

इसी प्रकार उसके अनन्तर समान आयाम को लिये द्वितीय स्थान को आदि लेकर जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थान होनेपर दूसरा अपूर्व स्पर्धक होता है। इसी प्रकार एक गुणहानि में जितने स्पर्धकों का प्रमाण कहा था उतने अपूर्व स्पर्धक होने पर जघन्य योगस्थान दूना होता है। इस प्रकार दुगुने दुगुने क्रमसे जाकर संज्ञि पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव का सर्वोत्कृष्ट योगस्थान उत्पन्न होता है।

एक गुणहानि में स्पर्धकों का प्रमाण जगतश्रेणि में दो बार असंख्यात का भाग देने से जो प्रमाण आवे उतना $\overline{\partial\partial}$ है। इतने अपूर्व स्पर्धक होने पर जो योगस्थान होता है उसके अविभाग प्रतिच्छेद जघन्य योगस्थान के अविभाग प्रतिच्छेदों से दूने हैं। उससे ऊपर उतने ही अपूर्व स्पर्धक होनेपर जो योगस्थान होता है वह उससे भी दूना होता है। इसप्रकार क्रम से दूना दूना होते संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव का सर्वोत्कृष्ट परिणाम योगस्थान होता है। इसी को अंकसंदृष्टि से समझाते हैं :-

जघन्य योगस्थान के जघन्य स्पर्धक ८० माने, सूच्यंगुल का असंख्यातवाँ भाग २ माना। ८० जघन्य स्पर्धकों में २ जघन्य स्पर्धक बढ़े तो दूसरे योगस्थान में जघन्य स्पर्धक ८२ हुये, तीसरे में २ बढ़े तो ८४ जघन्य स्पर्धक हुये, इसप्रकार २० जघन्य स्पर्धक बढ़े तब एक अपूर्व स्पर्धक उत्पन्न होता है। त्रैराशिक -

प्रमाण	**फल**	**इच्छा**	**लब्ध**
२ जघन्य स्पर्धक बढ़नेपर	१ स्थान होता है तो	२० जघन्य स्पर्धक बढ़ने पर कितने स्थान?	$\frac{\text{१} \times \text{२०}}{\text{२}} = \text{१०}$

इस प्रकार इतने ही १० योगस्थान जाने पर अर्थात् २० जघन्य स्पर्धक बढ़ने पर दूसरा अपूर्व स्पर्धक उत्पन्न होता है उसके जघन्य स्पर्धक ८० + ४० = १२० हुये। इस प्रकार चार अपूर्व स्पर्धक उत्पन्न होने पर जघन्य योगस्थान के जघन्य स्पर्धक के अविभाग प्रतिच्छेद दूने होते हैं।

जघन्य स्पर्धक + जघन्य स्पर्धक

८० + (२०×४) = ८० + ८० = १६० जघन्य स्पर्धक होते हैं।

इसी प्रकार उसके ऊपर ८ आठ अपूर्व स्पर्धक होनेपर

१६० + (२०×८) = १६० + १६० = ३२० अविभाग प्रतिच्छेद अर्थात् उससे दूने होते हैं।

पुन: उसके ऊपर १६ अपूर्व स्पर्धक होनेपर उससे दूने ६४० जघन्य स्पर्धक होते हैं।

पुन: उसके ऊपर ३२ अपूर्व स्पर्धक जानेपर उससे दूने १२८० जघन्य स्पर्धक होते हैं।

पुन: उसके ऊपर ६४ अपूर्व स्पर्धक जानेपर उससे दूने २५६० जघन्य स्पर्धक होते हैं।

यहाँ स्थानभेद लाने के लिए त्रैराशिक करना चाहिए। उसमें सर्वत्र प्रमाणराशि सूंच्यगुल का असंख्यातवाँ भाग मात्र जघन्य स्पर्धक हैं, फलराशि एक स्थान, इच्छाराशि जगत्श्रेणि का असंख्यातवाँ भाग मात्र। जघन्य स्पर्धकों को क्रम से एक, दो, चार, आठ, सोलह और बत्तीस गुणा करने पर जो प्रमाण हो उतना जानना।

प्रमाण	फल	इच्छा	त्रैराशिक विधि लब्ध
१) व वि १६ ४ $\underset{\partial}{२}$	१	व वि १६ ४ $\frac{\quad}{\partial}$?	$\frac{\text{व वि १६ ४}\,\overline{\partial}}{\text{व वि १६ ४ }\underset{\partial}{२}} = \frac{\quad १}{\partial\,\underset{\partial}{२}}$
अंक संदृष्टि २	१	८० ?	$\frac{८०}{२} = ४०$
२) व वि १६ ४ $\underset{\partial}{२}$	१	व वि १६ ४ $\frac{\quad}{\partial}$ २?	$\frac{\text{व वि १६ ४}\,\overline{\partial} \times २}{\text{व वि १६ ४ }\underset{\partial}{२}} = \frac{\quad २}{\partial\,\underset{\partial}{२}}$
अंक संदृष्टि २	१	८०×२ ?	$\frac{८०\times२}{२} = ८०$

प्रमाण	फल	इच्छा	त्रैराशिक विधि	लब्ध
३) व वि १६ ४ $\frac{२}{\partial}$	१	व वि १६ ४ $\frac{—}{\partial}$ २×२?	$\frac{\text{व वि १६ ४}\bar{\partial}\text{२।२}}{\text{व वि १६ ४ } \frac{२}{\partial}}$ =	$\frac{—}{\partial}$ $\frac{२}{\partial}$ २।२
अंक संदृष्टि २	१	८०×२×२ ?	$\frac{३२०}{२}$ =	१६०
४) व वि १६ ४ $\frac{२}{\partial}$	१	व वि १६ ४ $\frac{—}{\partial}$ २×२×२?	$\frac{\text{व वि १६ ४}\bar{\partial}\text{२।२।२}}{\text{व वि १६ ४ } \frac{२}{\partial}}$ =	$\frac{—}{\partial}$ $\frac{२}{\partial}$ २।२।२
अंक संदृष्टि २	१	८०×२×२×२ ?	$\frac{६४०}{२}$ =	३२०
५) व वि १६ ४ $\frac{२}{\partial}$	१	व वि १६ ४ $\frac{—}{\partial}$ २×२×२×२?	$\frac{\text{व वि १६ ४}\bar{\partial}\text{२।२।२।२}}{\text{व वि १६ ४ } \frac{२}{\partial}}$ =	$\frac{—}{\partial}$ $\frac{२}{\partial}$ २।२।२।२
अंक संदृष्टि २	१	८०×२×२×२×२ ?	$\frac{१२८०}{२}$ =	६४०

इस प्रकार जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भाग को सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर जो प्रमाण हो उसको अनुक्रम से एक, दो, चार, आठ और सोलह से गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने स्थान भेद होते हैं।

इन सब स्थान भेदों को संकलन सूत्र के अनुसार जोडते हैं।

संकलन सूत्र → $\frac{(\text{अंतधन} \times \text{गुणकार}) - \text{आदि}}{\text{गुणकार} - १}$ = सर्वधन

यहाँ अंतधन $\boxed{\frac{—}{\partial}\,\frac{२}{\partial}\,\text{२२२२}}$ आदिधन $\boxed{\frac{—}{\partial}\,\frac{२}{\partial}\,१}$

सूत्र के अनुसार → $(\bar{\partial}\,{}_{\partial}^{\,२}\;२\;२\;२ \times २) - \bar{\partial}\,{}_{\partial}^{\,१\,२}$

$\bar{\partial}\,{}^{३२}_{२\,\partial} - \bar{\partial}\,{}^{१}_{२\,\partial} = \bar{\partial}|२|१\,{}^{|३१}_{\partial}$ → गुणकार २ - १ = १ से भाग देना सब योगस्थानोंका जोड

अंकसंदृष्टिसे अंतधन ६४० आदि ४० उपर्युक्त सूत्रानुसार संख्या रखने पर

$$\frac{(६४० \times २) - ४०}{१} = \frac{१२८० - ४०}{१} = १२४० \text{ सब योगस्थान}$$

अपूर्व स्पर्धक रचना

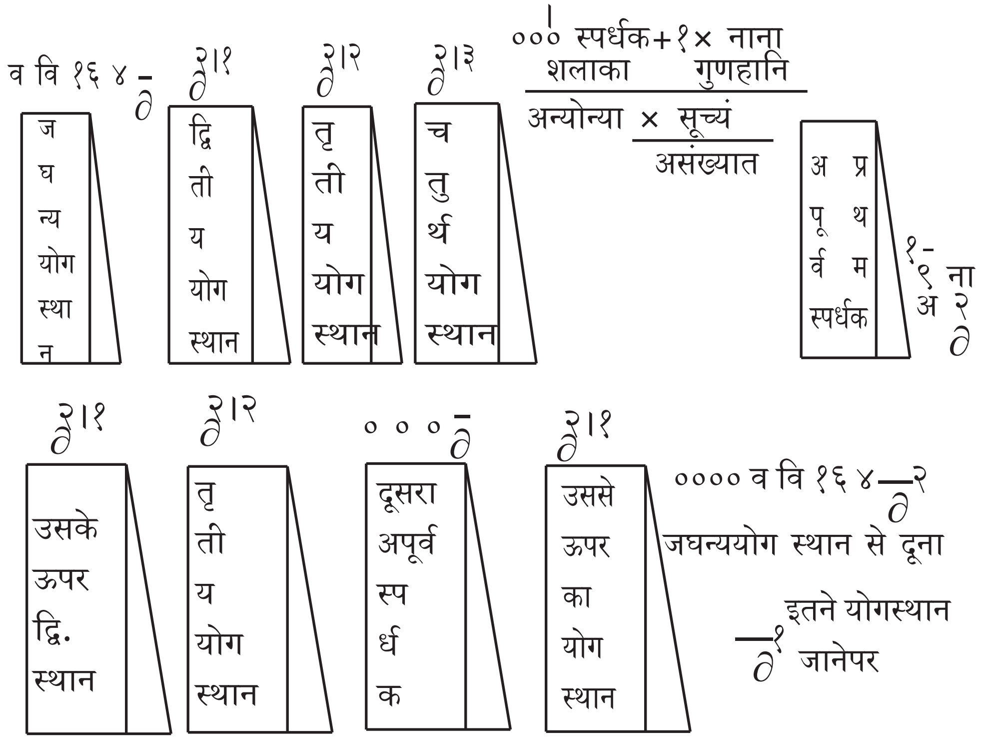

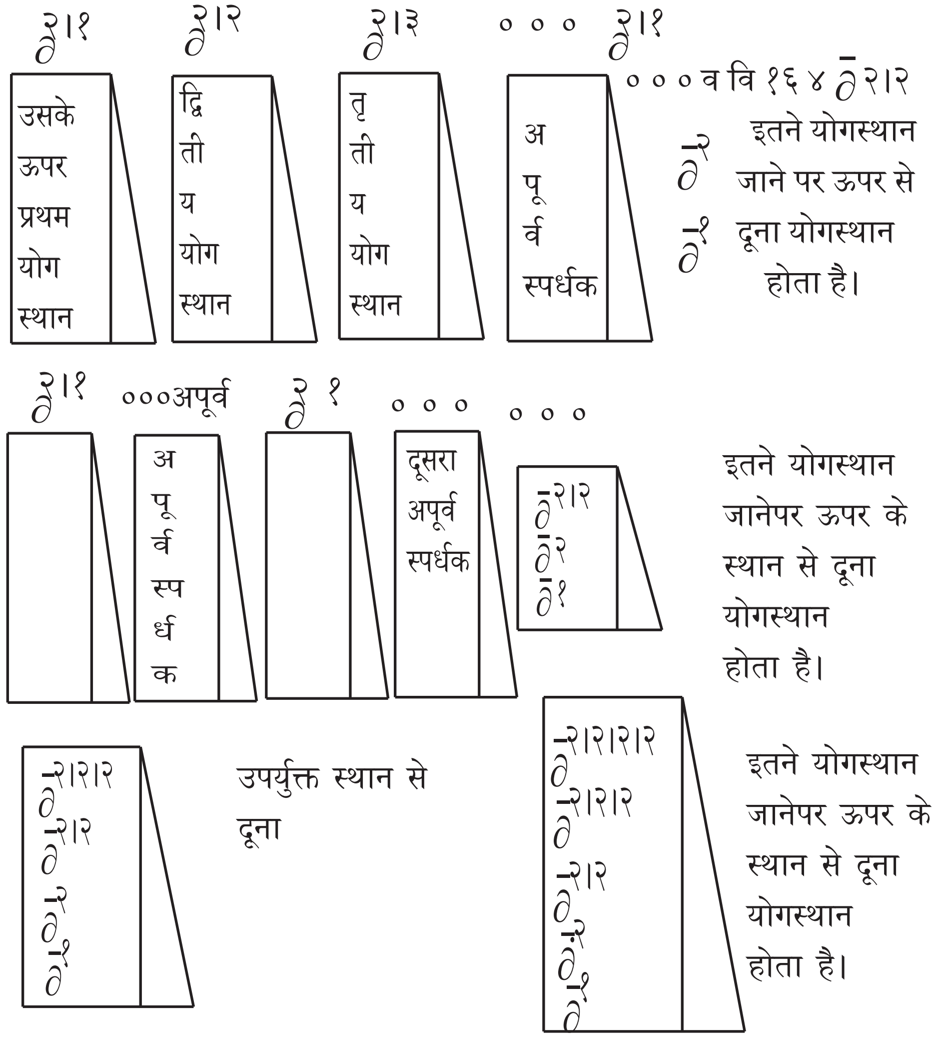

उपर्युक्त सब योगस्थान के जोड में एक कम गुणकार से गुणा करना पुन: उसे आदि से (प्रभव से) भाग देना और उसमें एक मिलाना। जो लब्ध आवे उसे गुणकार दो का भाग देते जाना। जितनी बार भाग देनेपर एक रहता है उतना गच्छ जानना।

$\bar{\partial}\,\overset{३१}{\underset{\partial}{२}}\,१ = \dfrac{\bar{\partial}\,\overset{३१}{\underset{\not\partial}{\not२}}}{\bar{\not\partial}\,\overset{१}{\underset{\not\partial}{\not२}}} = ३१ + १ = \overset{①}{\dfrac{३२}{२}} = १६ \Big| \overset{②}{\dfrac{१६}{२}} = ८ \Big| \overset{③}{\dfrac{८}{२}} = ४ \Big|$

$\overset{④}{\dfrac{४}{२}} = २ \Big| \overset{⑤}{\dfrac{२}{२}} = १$

गच्छ का प्रमाण ५ जानना क्योंकि ५ बार दो का भाग देनेपर १ लब्ध आया।

अन्योन्याभ्यस्त राशि की गुणकार शलाका पाँच है। पाँच जगह दो के अंक रखकर परस्पर में गुणा करने पर अन्योन्याभ्यस्त राशि का प्रमाण बत्तीस आता है। २×२×२×२×२ = ३२ सर्वोत्कृष्ट योगस्थान को इच्छाराशि करने पर स्थानभेद

प्रमाण	फल	इच्छा
व वि १६ ४ $\underset{\partial}{२}$ इतने बढ़ने पर	१ योगस्थान	व वि १६ ४ $\bar{\partial}\,\overset{छे}{\partial\,२}$ इतने बढ़नेपर कितने योगस्थान होते है ?

(पल्य के अर्धच्छेद के असंख्यातवें भाग का आधा गुणकार का प्रमाण है)

सब योगस्थानों का जोड $\dfrac{\text{व वि १६ ४ } \bar{\partial}\,\overset{छे}{\partial}\,२}{\text{व वि १६ ४ } \underset{\partial}{२}} = \boxed{\bar{\partial}\,\overset{छे}{\underset{\partial}{२}}\,\partial\,२}$

अंतधन → $\bar{\partial}\,\overset{छे}{\underset{\partial}{२}}\,\partial\,२$ आदि → $\bar{\partial}\,\overset{१}{\underset{\partial}{२}}$

(अंतधन × गुणकार) - आदि

$\left(\bar{\partial}\,\overset{छे}{\underset{\partial}{२}}\,\partial\,\overset{\times \not२}{\not२}\right) - \bar{\partial}\,\overset{१}{\underset{\partial}{२}} = \overset{१\,\frown}{\bar{\partial}\,\overset{छे}{\underset{\partial}{२}}\,\partial}$ → सर्व योगस्थानों के कुल भेद

$\left(\dfrac{\text{सर्वयोगस्थान} \times \text{गुणकार} - १}{\text{आदि}}\right) + १ = \dfrac{\overset{१\,\frown}{\bar{\not\partial}\,\overset{छे\;१}{\underset{\not\partial}{\not२}}\,\partial}}{\bar{\not\partial}\,\underset{\not\partial}{\not२}} = \overset{१\,\frown}{\underset{\partial}{छे}} + १ = \underset{\partial}{छे}$

इस संख्या को दो गुणकार से भाग देते जाना जबतक एक लब्ध आता है तब तक जितनी बार भाग दिया उतनी नाना गुणहानि शलाका जानना। वह नाना गुणहानि शलाका (पल्य की वर्गशलाका - असंख्यात) इतनी प्रमाण है। (व - ∂) क्योंकि पल्य की वर्गशलाका प्रमाण दो के अंक रखकर परस्पर में गुणा करनेपर पल्य के अर्धच्छेद का प्रमाण होता है और उसमें घटाये हुए असंख्यात बार दो के अंक रखकर परस्पर गुणा करनेपर असंख्यात भागहार का प्रमाण होता है।

असंख्यात हीन पल्य की वर्गशलाका प्रमाण बार जघन्य योगस्थान दूना होनेपर उत्कृष्ट योगस्थान होता है। अत: इसको नाना गुणहानि शलाका कहा है। इतनी बार दो के अंक रखकर परस्पर में गुणा करनेपर पल्य के अर्द्धच्छेदों के असंख्यातवे भागमात्र अन्योन्याभ्यस्त राशि होती है। उससे जघन्य योगस्थान को गुणा करनेपर उत्कृष्ट योगस्थान के अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण होता है।

$$\text{जघन्य योगस्थान} \times \frac{\text{पल्य के अर्धच्छेद}}{\text{असंख्यात}} = \text{उत्कृष्ट योगस्थान}$$

$$\text{व वि १६ ४} \, \bar{\partial} \times \frac{\text{छे}}{\partial} = \text{व वि १६ ४} \, \bar{\partial} \, \frac{\text{छे}}{\partial}$$

चौदह जीवसमासों में जघन्योत्कृष्ट चौरासी योगस्थानों का अल्पबहुत्व नौ गाथाओं के द्वारा कहते हैं -

एदेसिं ठाणाणं जीवसमासाण अवरवरविषयं ।
चउरासीदिपदेहिं अप्पाबहुगं परूवेमो ।।२३२।।

अन्वयार्थ - (एदेसिं ठाणाणं) ऊपर कहे इन योगस्थानों में **(जीवसमासाण)** चौदह जीवसमासों के **(अवरवरविषयं)** जघन्य उत्कृष्ट की अपेक्षा **(चउरासीदिपदेहिं)** चौरासी पदों के द्वारा (**अप्पाबहुगं**) अल्पबहुत्व (**परूवेमो**) हम कहते हैं।

सुहुमगलद्धिजहण्णं तण्णिव्वत्तीजहण्णयं तत्तो ।
लद्धियपुण्णुक्कस्सं बादरलद्धिस्स अवरमदो ।।२३३।।

अन्वयार्थ - (सुहुमगलद्धिजहण्णं) १) सूक्ष्म एकेन्द्रिय निगोद लब्ध्यपर्याप्तक का

जघन्य उपपाद योगस्थान (**तण्णिव्वत्तीजहण्णयं**) २) सूक्ष्म निगोद निर्वृत्त्यपर्याप्तक का जघन्य उपपाद योगस्थान **(तत्तो)** उसके बाद **(लद्धिय पुण्णुक्कस्सं)** ३) सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान **(अदो)** उसके पश्चात् **(बादरलद्धिस्स अवरं)** ४) बादर लब्ध्यपर्याप्तक का जघन्य उपपाद योगस्थान।

णिव्वत्तिसुहुमजेट्ठं बादरणिव्वत्तियस्स अवरं तु ।
बादरलद्धिस्स वरं बीइंदियलद्धिगजहण्णं ।।२३४।।

अन्वयार्थ - (णिव्वत्तिसुहुमजेट्ठं) ५) सूक्ष्म निर्वृत्त्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान **(बादरणिव्वत्तियस्स अवरं तु)** ६) बादर निर्वृत्त्यपर्याप्तक का जघन्य उपपाद योगस्थान (**बादरलद्धिस्स वरं**) ७) बादर लब्ध्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान **(बीइंदिय-लद्धिगजहण्णं)** ८) द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक का जघन्य उपपाद योगस्थान

बादरणिव्वत्तिवरं णिव्वत्तिबिइंदियस्स अवरमदो ।
एवं बितिबितितिचतिचचउविमणो होदि चउविमणो।२३५।

अन्वयार्थ - (बादरणिव्वत्तिवरं) ९) बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान **(णिव्वत्तिबिइंदियस्स अवरं)** १०) द्वीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक का जघन्य उपपाद योगस्थान **(अदो)** इसके पश्चात् **(एवं)** इसी प्रकार **(बितिबितितिचतिचचउविमणो)** ११) द्वीन्द्रिय लब्ध्य-पर्याप्तक का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान १२) त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक का जघन्य उपपाद योगस्थान १३) द्वीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान १४) त्रीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक का जघन्य उपपाद योगस्थान १५) त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान १६) चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक का जघन्य उपपाद योगस्थान १७) त्रीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान १८) चतुरिन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक का जघन्य उपपाद योगस्थान १९) चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान २०) असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जघन्य उपपाद योगस्थान **(चउविमणो)** २१)चतुरिन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान २२) असंज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक जघन्य उपपाद योगस्थान **(होदि)** है।

तह य असण्णी सण्णी असण्णिसण्णिस्स सण्णिउववादं।
सुहुमेइंदियलद्धिग अवरं एयंतवड्ढिस्स ।।२३६।।

अन्वयार्थ - (तह य) उसी प्रकार **(असण्णी सण्णी)** २३) असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट उपपाद योग स्थान २४) संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक का जघन्य उपपाद योगस्थान **(असण्णि-सण्णिस्स)** २५) असंज्ञी निर्वृत्त्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान २६) संज्ञी निर्वृत्त्यपर्याप्तक का जघन्य उपपाद योगस्थान **(सण्णिउववादं)** २७) संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान है। उसके बाद **(सुहुमेइंदियलद्धिग अवरं एयंतवड्ढिस्स)** २८) सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक का एकांतानुवृद्धि का जघन्य योगस्थान होता है।

सण्णिस्सुववादवरं णिव्वत्तिगदस्स सुहुमजीवस्स ।
एयंतवड्ढिअवरं लद्धिदरे थूलथूले य ।।२३७।।

अन्वयार्थ -उसके पश्चात् **(सण्णिस्सुववादवरं)** २९) संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान है। उसके पश्चात् (**णिव्वत्तिगदस्स सुहुमजीवस्स एयंतवड्ढि अवरं**) ३०) सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक का जघन्य एकांतानुवृद्धि योगस्थान है (**लद्धिदरे थूलथूले य**) ३१) बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक का एकांतानुवृद्धि ३२) बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक का जघन्य एकांतानुवृद्धि योगस्थान है।

तह सुहुम-सुहुम-जेट्ठं तो बादरबादरे वरं होदि ।
अंतरमवरं लद्धिगसुहुमिदरवरंपि परिणामे ।।२३८।।

अन्वयार्थ - उसी प्रकार **(तह)** उसके पश्चात् **(सुहुम-सुहुम-जेट्ठं)** ३३) सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक का और ३४) सूक्ष्म निर्वृत्त्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट एकांतानुवृद्धि योगस्थान है **(तो)** उसके बाद **(बादरबादरे वरं)** ३५) बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक का और ३६) बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट एकांतानुवृद्धि योगस्थान **(होदि)** है। **(अंतरं)** उसके पश्चात् अंतर है। उसके बाद **(अवरं लद्धिगसुहुमिदर)** ३७) सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक का जघन्य ३८) बादर लब्ध्यपर्याप्तक का जघन्य **(वरं पि)** ३९) सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट ४०) बादर लब्ध्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट **(परिणामे)** परिणाम योगस्थान जानने।

अंतरमुवरीवि पुणो तप्पुण्णाणं च उवरि अंतरियं ।
एयंत वड्ढिठाणा तसपणलद्धिस्स अवरवरा ।।२३९।।

अन्वयार्थ - उसके पश्चात् **(अंतरं)** अंतर है **(पुणो उवरीवि तप्पुण्णाणं)** पुनः ऊपर भी पूर्वोक्त चार परिणाम योगस्थान पर्याप्तक के जानने **(उवरि अंतरि)** उसके ऊपर तीसरा अंतर है। उसके पश्चात् (**तसपणलद्धिस्स अवरवरा एयंतवड्ढिठाणा**) पाँच त्रस लब्ध्यपर्याप्तक के जघन्य उत्कृष्ट एकांतानुवृद्धिस्थान हैं।

लद्धीणिव्वत्तीणं परिणामेयंतवड्ढिठाणाओ ।
परिणामट्ठाणाओ अंतरियंतरिय उवरुवरिं ।।२४०।।

अन्वयार्थ - (अंतरियंतरिय) बीच-बीच में अंतर देकर **(उवरुवरिं)** ऊपर ऊपर **(लद्धीणि-व्वत्तीणं परिणामेयंतवड्ढिठाणाओ)** त्रस पाँच लब्ध्यपर्याप्तक के जघन्य उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान, फिर निर्वृत्त्यपर्याप्तक त्रस पाँच के जघन्य उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धिस्थान, फिर उसके पश्चात् पाँच त्रस पर्याप्तक के (**परिणामट्ठाणाओ**) जघन्य उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान हैं।

विशेषार्थ - उपपादादि तीन प्रकारके योगों की अपेक्षा १४ जीवसमासों के जघन्य उत्कृष्ट की अपेक्षा ८४ स्थानों में अल्पबहुत्व ३ × १४ = ४२, ४२ × २ =८४ स्थान

↓ ↓ ↓

उपपादादि जीवसमास जघन्य और उत्कृष्ट

क्र.	जीवसमास का नाम	योगस्थान का प्रकार	जघन्य उत्कृष्ट	अविभाग प्रतिच्छेद
१	सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	सबसे कम अवि. प्रति
२	सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	पूर्व से पल्य के असंख्यातवें भाग गुणित
३	सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
४	बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
५	सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
६	बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
७	बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
८	द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
९	बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
१०	द्वीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
११	द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
१२	त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
१३	द्वीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
१४	त्रीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
१५	त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित

क्र.	जीवसमास का नाम	योगस्थान का प्रकार	जघन्य उत्कृष्ट	अविभाग प्रतिच्छेद
१६	चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
१७	त्रीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
१८	चतुरिन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
१९	चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
२०	असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
२१	चतुरिन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
२२	असंज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
२३	असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
२४	संज्ञी लब्ध्यपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
२५	असंज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
२६	संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
२७	संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
२८	सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	जघन्य	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
२९	संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
३०	सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	जघन्य	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित

क्र.	जीवसमास का नाम	योगस्थान का प्रकार	जघन्य उत्कृष्ट	अविभाग प्रतिच्छेद
३१	बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	जघन्य	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
३२	बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	जघन्य	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
३३	सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	उत्कृष्ट	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
३४	सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	उत्कृष्ट	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
३५	बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	उत्कृष्ट	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
३६	बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	उत्कृष्ट	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
प्रथम अंतर	क्रमांक ३६ से क्रमांक ३७ के बीच में जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थान हैं ($\overline{\partial}$) उनका कोई स्वामी नहीं है अर्थात् इतने अविभागप्रतिच्छेद युक्त योगस्थान किसी जीव को नहीं होता।ऐसा अर्थ सब अंतरों का जानना।			
३७	सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
३८	बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
३९	सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
४०	बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	पूर्वसे $\frac{\text{प}}{\partial}$ गुणित
दूसरा अंतर	क्रमांक ४० और क्रमांक ४१ के बीचमें $\overline{\partial}$ भागप्रमाण			

क्र.	जीवसमास का नाम	योगस्थान का प्रकार	जघन्य उत्कृष्ट	अविभाग प्रतिच्छेद प्रमाण
४१	सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त	परिणाम	जघन्य	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
४२	बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त	परिणाम	जघन्य	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
४३	सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त	परिणाम	उत्कृष्ट	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
४४	बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त	परिणाम	उत्कृष्ट	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
	तीसरा अंतर	क्रमांक ४४ और क्रमांक ४५ के बीच में $\overline{\partial}$ भागप्रमाण		
४५	द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	जघन्य	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
४६	त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	जघन्य	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
४७	चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	जघन्य	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
४८	पंचेन्द्रिय असंज्ञी लब्ध्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	जघन्य	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
४९	पंचेन्द्रिय संज्ञी लब्ध्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	जघन्य	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
५०	द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	उत्कृष्ट	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
५१	त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	उत्कृष्ट	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
५२	चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	उत्कृष्ट	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
५३	पंचेन्द्रिय असंज्ञी लब्ध्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	उत्कृष्ट	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
५४	पंचेन्द्रिय संज्ञी लब्ध्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	उत्कृष्ट	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
	चौथा अंतर	क्रमांक ५४ और क्रमांक ५५ के बीचमें $\overline{\partial}$ भागप्रमाण		
५५	द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
५६	त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित

क्र.	जीवसमास का नाम	योगस्थान का प्रकार	जघन्य उत्कृष्ट	अविभाग प्रतिच्छेद प्रमाण
५७	चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
५८	पंचेन्द्रिय असंज्ञी लब्ध्यपर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
५९	पंचेन्द्रिय संज्ञी लब्ध्यपर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
६०	द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
६१	त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
६२	चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
६३	पंचेन्द्रिय असंज्ञी लब्ध्यपर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
६४	पंचेन्द्रिय संज्ञी लब्ध्यपर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
पाँचवा अंतर क्रमांक ६४ और क्रमांक ६५ के बीच में $\overline{\partial}$ भागप्रमाण				
६५	द्वीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	जघन्य	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
६६	त्रीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	जघन्य	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
६७	चतुरिन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	जघन्य	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
६८	पंचेन्द्रिय असंज्ञी निर्वृत्त्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	जघन्य	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
६९	पंचेन्द्रिय संज्ञी निर्वृत्त्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	जघन्य	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
७०	द्वीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	उत्कृष्ट	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
७१	त्रीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	उत्कृष्ट	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित

क्र.	जीवसमास का नाम	योगस्थान का प्रकार	जघन्य उत्कृष्ट	अविभाग प्रतिच्छेद प्रमाण
७२	चतुरिन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	उत्कृष्ट	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
७३	पंचेन्द्रिय असंज्ञी निर्वृत्त्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	उत्कृष्ट	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
७४	पंचेन्द्रिय संज्ञी निर्वृत्त्यपर्याप्तक	एकांतानुवृद्धि	उत्कृष्ट	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
छठा अंतर क्रमांक ७४ और क्रमांक ७५ के बीच में $\overline{\partial}$ भागप्रमाण				
७५	द्वीन्द्रिय पर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
७६	त्रीन्द्रिय पर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
७७	चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
७८	पंचेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
७९	पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
८०	द्वीन्द्रिय पर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
८१	त्रीन्द्रिय पर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
८२	चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
८३	पंचेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित
८४	पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	पूर्वसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित

८४ योगस्थानों में १४ जीवसमास की अपेक्षा से स्थान क्रमांक

क्र.	जीवसमास का नाम	उपपाद जघन्य	उपपाद उत्कृष्ट	एकांतानुवृद्धि जघन्य	एकांतानुवृद्धि उत्कृष्ट	परिणाम जघन्य	परिणाम उत्कृष्ट
१	एकेन्द्रिय सूक्ष्म अपर्याप्त	१	३	२८	३३	३७	३९
२	एकेन्द्रिय सूक्ष्म पर्याप्त	२	५	३०	३४	४१	४३
३	एकेन्द्रिय बादर अपर्याप्त	४	७	३१	३५	३८	४०
४	एकेन्द्रिय बादर पर्याप्त	६	९	३२	३६	४२	४४
५	द्वीन्द्रिय अपर्याप्त	८	११	४५	५०	५५	६०
६	द्वीन्द्रिय पर्याप्त	१०	१३	६५	७०	७५	८०
७	त्रीन्द्रिय अपर्याप्त	१२	१५	४६	५१	५६	६१
८	त्रीन्द्रिय पर्याप्त	१४	१७	६६	७१	७६	८१
९	चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त	१६	१९	४७	५२	५७	६२
१०	चतुरिन्द्रिय पर्याप्त	१८	२१	६७	७२	७७	८२
११	पंचेन्द्रियअसंज्ञीअपर्याप्त	२०	२३	४८	५३	५८	६३
१२	पंचेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्त	२२	२५	६८	७३	७८	८३
१३	पंचेन्द्रिय संज्ञी अपर्याप्त	२४	२७	४९	५४	५९	६४
१४	पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्त	२६	२९	६९	७४	७९	८४

एदेसिं ठाणाओ पल्लासंखेज्जभागगुणिदकमा ।
हेट्ठिमगुणहाणिसला अण्णोण्णब्भत्थमेत्तं तु ।।२४१।।

अन्वयार्थ - (एदेसिं ठाणाओ) उपर्युक्त ८४ योगस्थान पूर्वस्थान से अनन्तरस्थान क्रम से (**पल्लासंखेज्जभागगुणिदकमा**) पल्य के असंख्यातवें भाग गुणे होकर भी (**हेट्ठिमगुणहाणिसला अण्णोण्णब्भत्थमेत्तं तु**) अपनी अधस्तन गुणहानिशलाका से उत्पन्न जो अन्योन्याभ्यस्तराशि है उस प्रमाण है।

विशेषार्थ - चौदह जीवसमासों के उपपाद आदि तीन योगों के जघन्य और उत्कृष्ट भेदरूप ये चौरासी स्थान यद्यपि क्रम से पल्य के असंख्यातवें भाग गुणे हैं। तथापि जघन्य योगस्थान से सर्वोत्कृष्ट योगस्थान भी पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग गुणा हैं।

आगे उपपाद आदि योगस्थानों का जघन्य और उत्कृष्टरूप से निरन्तर प्रवर्तन का काल कहते हैं -

अवरुक्कस्सेण हवे उववादेयंतवड्ढिठाणाणं ।
एक्कसमयं हवे पुण इदरेसिं जाव अट्ठोत्ति ।।२४२।।

अन्वयार्थ - (उववादेयंतवड्ढिठाणाणं) उपपाद और एकान्तानुवृद्धिस्थानों का काल **(अवरुक्कस्सेण)** जघन्य और उत्कृष्ट से **(एक्कसमयं)** एक समय **(हवे)** है **(पुण)** पुनः **(इदरेसिं)** इतर अर्थात् परिणाम योगस्थानों का काल **(जाव अट्ठोत्ति)** एक समय से लेकर आठ समय पर्यन्त है।

विशेषार्थ - उपपाद आदि के जघन्य और उत्कृष्ट से निरन्तर प्रवृत्तिकाल -

उपपाद और एकान्तानुवृद्धियोगस्थानों के प्रवर्तन का जघन्यकाल = १ समय उत्कृष्टकाल = १ समय, परिणाम योगस्थानों के प्रवर्तन का जघन्यकाल = १ समय उत्कृष्टकाल = ८ समय। उपपाद योगस्थान जन्म के प्रथम समय में ही होता है और एकान्तानुवृद्धि योगस्थान प्रत्येक समय में वृद्धिरूप होने से अन्य अन्य होता रहता है। इसलिये इन दोनों के प्रवर्तने का जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा है। परिणाम योगस्थान उत्कृष्ट से आठ समय के बाद बदलकर कम अथवा ज्यादा होता है।

द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीव के जघन्य परिणाम योगस्थान से संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव के उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान पर्यन्त निरन्तर योगस्थानों का प्रमाण -

$$\frac{(\text{अन्तस्थान - आदिस्थान})}{\text{वृद्धि}} + १ = \text{कुल स्थान}$$

$$\left(\frac{\bar{\partial}\ \overset{\text{छे}}{\partial} - \bar{\partial}}{\frac{२}{\partial}}\right) + १ = \overset{१\,\overline{\qquad}}{\left(\bar{\partial}\ \overset{\overset{१⌒}{\text{छे}}}{\partial}\ \frac{२}{\partial}\right)}$$

समान संख्या को निकालकर शेष गुणकार में ऋणराशि का एक गुणकार कम किया और सब में एक अधिक किया।

$$\frac{\text{सर्वस्थान}}{\text{पल्य का असंख्यातवाँ भाग}} = \overset{१\,\overline{\qquad}}{\underset{\text{एकभाग}}{\left(\bar{\partial}\ \overset{\overset{१⌒}{\text{छे}}}{\partial}\ \frac{२\text{प}}{\partial\partial}\right)}}\ \text{बहुभाग}\overset{१\,\overline{\qquad}}{\left(\bar{\partial}\ \overset{\overset{१⌒}{\text{छे}}}{\partial}\ \frac{२\text{प}\overset{\overset{१⌒}{\text{प}}}{\partial}}{\partial\partial}\right)}$$

दो समयतक निरन्तर प्रवृत्ति करने वाले योगस्थान इतने हैं।

$$\frac{\text{शेष एकभाग}}{\text{पल्य का असंख्यातवाँ भाग}} = \overset{१\,\overline{\qquad}}{\underset{\text{एकभाग}}{\left(\bar{\partial}\ \overset{\overset{१⌒}{\text{छे}}}{\partial}\ \frac{२\ \text{प}\ \text{प}}{\partial\ \partial\ \partial}\right)}}\ \text{बहुभाग}\overset{१\,\overline{\qquad}}{\left(\bar{\partial}\ \overset{\overset{१⌒}{\text{छे}}}{\partial}\ \overset{\overset{१⌒}{\text{प}}}{\partial}\ \frac{२\ \text{प}\ \text{प}}{\partial\partial\partial}\right)}$$

तीन समयतक निरन्तर प्रवृत्ति करनेवाले योगस्थानों का प्रमाण

$$\frac{\text{शेष एकभाग}}{\text{पल्य का असंख्यातवाँ भाग}} = \overset{१\,\overline{\qquad}}{\underset{\text{एकभाग}}{\left(\bar{\partial}\ \frac{२}{\partial}\ \overset{\overset{१⌒}{\text{छे}}}{\partial}\ \frac{\text{प}\ \text{प}\ \text{प}}{\partial\ \partial\ \partial}\right)}}\ \text{बहुभाग}\overset{१\,\overline{\qquad}}{\left(\bar{\partial}\ \frac{२}{\partial}\ \overset{\overset{१⌒}{\text{छे}}}{\partial}\ \overset{\overset{१⌒}{\text{प}}}{\partial}\ \frac{\text{प}\ \text{प}\ \text{प}}{\partial\partial\partial}\right)}$$

इसमें से आधे स्थान नीचे और आधे स्थान ऊपर चार समय तक प्रवृत्ति करनेवाले पाये जाते हैं अत: दो का भाग दिया।

$$\overset{१\,\overline{\qquad}}{\left(\bar{\partial}\ \frac{२}{\partial}\ \overset{\overset{१⌒}{\text{छे}}}{\partial}\ \overset{\overset{१⌒}{\text{प}}}{\partial}\ \frac{\text{प}\ \text{प}\ \text{प}}{\partial\partial\partial}\ २\right)}\ \text{नीचे के चार समय प्रवृत्ति स्थान विकल्प}$$

$$\overset{१\,\overline{\qquad}}{\left(\bar{\partial}\ \frac{२}{\partial}\ \overset{\overset{१⌒}{\text{छे}}}{\partial}\ \overset{\overset{१⌒}{\text{प}}}{\partial}\ \frac{\text{प}\ \text{प}\ \text{प}}{\partial\partial\partial}\ २\right)}\ \text{ऊपर के ४ समय प्रवृत्ति स्थान विकल्प}$$

शेष एकभाग का बहुभाग $\dfrac{१}{\left(\dfrac{\bar{\partial}\,२}{\partial}\,\overset{\overset{१\frown}{\text{छे}}}{\partial}\,\overset{\overset{१\frown}{\text{प}}}{\partial}\,\dfrac{\text{प प प प}}{\partial\partial\partial\partial}\right)}$ इसमें से आधे नीचे के और आधे ऊपर के पाँच समय निरन्तर प्रवृत्तिस्थान विकल्प

नीचे के ५ समय प्रवृत्तिस्थान विकल्प, ऊपर के ५ समय प्रवृत्तिस्थान विकल्प

$$\frac{१}{\left(\dfrac{\bar{\partial}\,२}{\partial}\,\overset{\overset{१\frown}{\text{छे}}}{\partial}\,\overset{\overset{१\frown}{\text{प}}}{\partial}\,\dfrac{\text{प प प प}}{\partial\partial\partial\partial}\,२\right)} \qquad \frac{१}{\left(\dfrac{\bar{\partial}\,२}{\partial}\,\overset{\overset{१\frown}{\text{छे}}}{\partial}\,\overset{\overset{१\frown}{\text{प}}}{\partial}\,\dfrac{\text{प प प प}}{\partial\partial\partial\partial}\,२\right)}$$

शेष एक भाग के बहुभाग के आधे नीचे के ६ समय निरन्तर प्रवृत्ति स्थानविकल्प

आधे ऊपर के ६ समय निरन्तर प्रवृत्तिस्थान विकल्प

$$\frac{१}{\left(\dfrac{\bar{\partial}\,२}{\partial}\,\overset{\overset{१\frown}{\text{छे}}}{\partial}\,\dfrac{\text{प प प प प}}{\partial\partial\partial\partial\partial}\,\overset{\overset{१\frown}{\text{प}}}{\partial}\,२\right)} \qquad \frac{१}{\left(\dfrac{\bar{\partial}\,२}{\partial}\,\overset{\overset{१\frown}{\text{छे}}}{\partial}\,\dfrac{\text{प प प प प}}{\partial\partial\partial\partial\partial}\,\overset{\overset{१\frown}{\text{प}}}{\partial}\,२\right)}$$

शेष एक भाग के बहुभाग के आधे नीचे के ७ समय निरन्तर प्रवृत्ति स्थानविकल्प

आधे ऊपर के ७ समय निरन्तर प्रवृत्तिस्थान विकल्प

$$\frac{१}{\left(\dfrac{\bar{\partial}\,२}{\partial}\,\overset{\overset{१\frown}{\text{छे}}}{\partial}\,\dfrac{\text{प प प प प प}}{\partial\partial\partial\partial\partial\partial}\,\overset{\overset{१\frown}{\text{प}}}{\partial}\,२\right)} \qquad \frac{१}{\left(\dfrac{\bar{\partial}\,२}{\partial}\,\overset{\overset{१\frown}{\text{छे}}}{\partial}\,\dfrac{\text{प प प प प प}}{\partial\partial\partial\partial\partial\partial}\,\overset{\overset{१\frown}{\text{प}}}{\partial}\,२\right)}$$

शेष एक भाग प्रमाण ८ समय निरन्तर प्रवृत्ति स्थानविकल्प बीच में पाये जाते हैं। $\dfrac{१}{\left(\dfrac{\bar{\partial}\,२}{\partial}\,\overset{\overset{१\frown}{\text{छे}}}{\partial}\,\dfrac{\text{प प प प प प}}{\partial\partial\partial\partial\partial\partial}\right)}$

अंकसंदृष्टि से - ६५५३६ कुल योगस्थान मान लिये, पल्य का असंख्यातवाँ भाग ४ मान लिया

$\dfrac{६५५३६}{४} = \underset{\text{एकभाग}}{१६३८४}$ $\quad १६३८४ \times ३ = \underset{\text{बहुभाग}}{\boxed{४९,१५२}}$ दो समय निरन्तर प्रवृत्ति स्थानविकल्प

१६३८४ / ४ = ४०९६ एकभाग   ४०९६ × ३ = १२,२८८ बहुभाग   तीन समय निरन्तर प्रवृत्ति स्थानविकल्प

४०९६ / ४ = १०२४ एकभाग   १०२४ × ३ = ३०७२ बहुभाग   ३०७२ / २ = १५३६ नीचे के   १५३६ ऊपर के
चार समय निरन्तर प्रवृत्ति स्थानविकल्प

१०२४ / ४ = २५६ एकभाग   २५६ × ३ = ७६८ बहुभाग   ७६८ / २ = ३८४ नीचे के   ३८४ ऊपर के
पाँच समय निरन्तर प्रवृत्ति स्थानविकल्प

२५६ / ४ = ६४ एकभाग   ६४ × ३ = १९२ बहुभाग   १९२ / २ = ९६ नीचे के   ९६ ऊपर के
छह समय निरन्तर प्रवृत्ति स्थानविकल्प

६४ / ४ = १६ एकभाग   १६ × ३ = ४८ बहुभाग   ४८ / २ = २४ नीचे के   २४ ऊपर के
सात समय निरन्तर प्रवृत्ति स्थानविकल्प

शेष एकभाग १६ = आठ (८) समय निरन्तर प्रवृत्ति स्थानविकल्प बीच में हैं।

अट्ठसमयस्स थोवा उभयदिसासु वि असंखसंगुणिदा ।
चउसमयोत्ति तहेव य उवरिं तिदु समयजोग्गाओ ।।२४३।।

अन्वयार्थ -(अट्ठसमयस्स थोवा) आठ समय निरन्तर प्रवर्तने वाले योगस्थान सबसे कम हैं **(चउसमयोत्ति)** सात से चार समय तक प्रवर्तने वाले **(उभयदिसासु वि)** ऊपर नीचे दोनों ही प्रकार के स्थान **(असंखसंगुणिदा)** असंख्यातगुणे हैं **(तहेव य)** उसीप्रकार **(तिदु समयजोग्गाओ)** तीन और दो समय के योग्य योगस्थान **(उवरिं)** ऊपर

ही हैं और क्रमसे असंख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ - आठ समय के स्थान सबसे कम हैं। शेष सात, छह, पाँच, चार समय के ऊपर और नीचे असंख्यातगुणे-असंख्यातगुणे स्थान हैं। उससे ऊपर के तीन समयवाले और दो समयवाले योगस्थान क्रम से असंख्यातगुणे हैं।

योगस्थानों की काल की अपेक्षा यवाकार रचना

जैसे यव (जौ) मध्य में मोटा और ऊपर नीचे की ओर पतला होता है, उसीप्रकार मध्य में आठ समयवाले हैं और ऊपर-नीचे एक-एक कम समयवाले हैं। उसका स्पष्टीकरण-

जो योगस्थान निरन्तर आठ समयतक होते हैं वे मध्य में हैं। जो योगस्थान निरन्तर सात समयतक होते हैं उनमें से आधे तो आठ समयवालों के ऊपर हैं और आधे नीचे हैं। जो योगस्थान निरन्तर छह समय तक होते हैं वे आधे तो उनके ऊपर हैं और आधे नीचे हैं। जो योगस्थान निरन्तर पाँच समयतक होते हैं उनमें से आधे ऊपर हैं और आधे नीचे हैं। जो योगस्थान निरन्तर चार समयतक होते हैं उनमें से आधे ऊपर हैं और आधे नीचे हैं। जो योगस्थान तीन समयतक होते हैं वे सब चार समयवालों के ऊपर ही हैं। जो योगस्थान निरन्तर दो समयतक होते हैं वे सब तीन समयवालों के ऊपर ही हैं। यवाकार की रचना अगले पृष्ठ पर देखे।

पर्याप्त त्रस जीवों के, परिणाम योगस्थानों में जीवों का प्रमाण और उसकी यवाकार रचना-

द्वीन्द्रिय पर्याप्त के जघन्य परिणाम योगस्थान से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के उत्कृष्ट योगस्थान तक के योगस्थानों में उन योगस्थानों को प्राप्त होनेवाले जीवों को रखने पर उसकी यवाकार रचना होती है क्याकि जघन्य योगस्थान में जीवों की संख्या कम है, उसके ऊपर चय अधिक क्रम से बढ़ती जाती है। यवमध्यतक बढ़कर ऊपर के योगस्थानों में पुन: चयहीन क्रमसे जीवों की संख्या घटती जाती है। पर्याप्त त्रस सम्बन्धी परिणाम योगस्थानों में यवाकार में जो मध्य का स्थान है उन योगस्थानों के धारी जीव बहुत हैं। उस बीच के स्थान से ऊपर के और नीचे के स्थानों में जीवों का प्रमाण क्रम से घटते हुए हैं। नीचे की गुणहानि शलाका से ऊपर की गुणहानि शलाका का प्रमाण कुछ अधिक है।

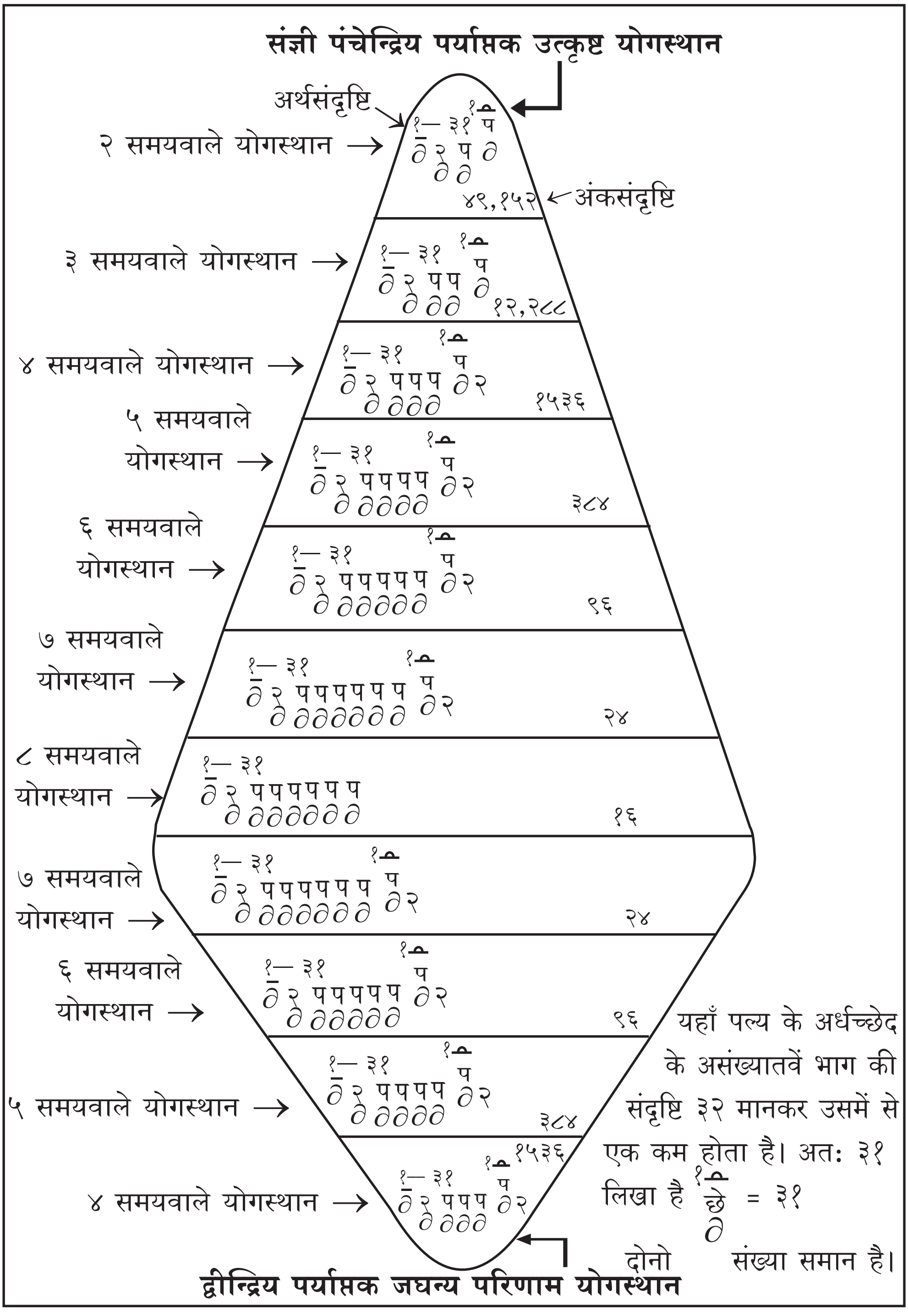
संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक उत्कृष्ट योगस्थान
अर्थसंदृष्टि
२ समयवाले योगस्थान
४९,१५२
अंकसंदृष्टि
३ समयवाले योगस्थान
१२,२८८
४ समयवाले योगस्थान
१५३६
५ समयवाले योगस्थान
३८४
६ समयवाले योगस्थान
९६
७ समयवाले योगस्थान
२४
८ समयवाले योगस्थान
१६
७ समयवाले योगस्थान
२४
६ समयवाले योगस्थान
९६
५ समयवाले योगस्थान
३८४
४ समयवाले योगस्थान
१५३६
यहाँ पल्य के अर्धच्छेद के असंख्यातवें भाग की संदृष्टि ३२ मानकर उसमें से एक कम होता है। अतः ३१ लिखा है
= ३१
दोनो संख्या समान है।
द्वीन्द्रिय पर्याप्तक जघन्य परिणाम योगस्थान

योगस्थान में जीवद्रव्य की यवाकार रचना

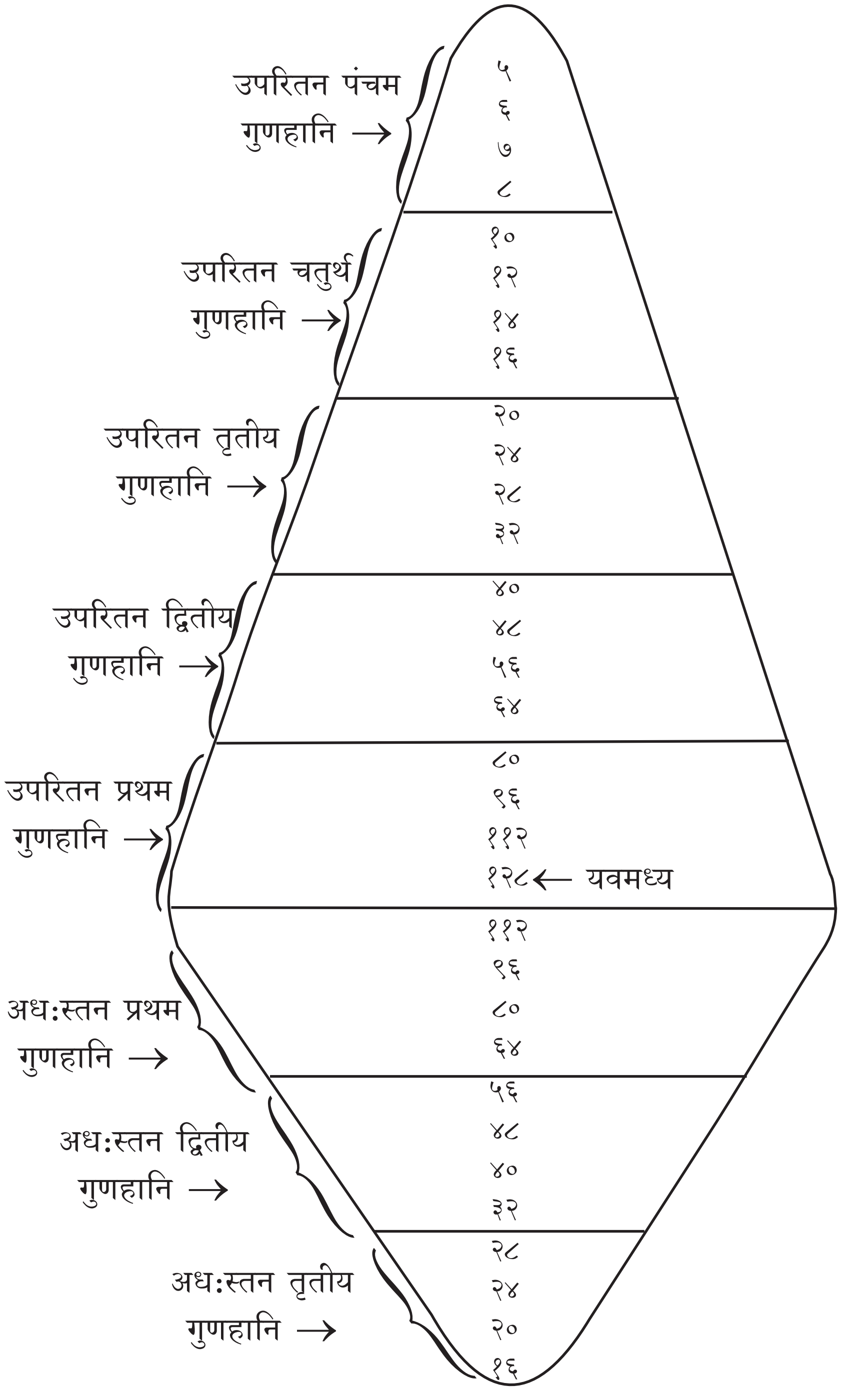

आगे पर्याप्तत्रसजीवों के परिणाम योगस्थानों में जीवों का प्रमाण कहते हैं-

मज्झे जीवा बहुगा उभयत्थ विसेसहीणकमजुत्ता ।
हेट्ठिमगुणहाणिसलागादुवरि सलागा विसेसहिया ।।२४४।।

अन्वयार्थ -(मज्झे) यवरचना के बीच में **(जीवा)** जीव **(बहुगा)** बहुत हैं **(उभयत्थ)** ऊपर तथा नीचे **(विसेसहीणकमजुत्ता)** क्रम से विशेष हीन हैं **(हेट्ठिमगुणहाणिसलागाद्)** अधस्तन गुणहानिशलाका से **(उवरि सलागा)** उपरितन गुणहानि शलाका **(विसेसहिया)** विशेष अधिक है।

द्रव्यादिक का प्रमाण अंकसंदृष्टि से कहते हैं -

दव्वतियं हेट्ठुवरिमदलवारा दुगुणमुभयमण्णोण्णं।
जीवजवे चोद्दससयबावीसं होदि बत्तीसं ।।२४५।।
चत्तारि तिण्णि कमसो पण अड अट्ठं तदो य बत्तीसं।
किंचूणतिगुणहाणिविभजिदे दव्वे दु जवमज्झं ।। २४६।।

अन्वयार्थ -(दव्वतियं) तीन प्रकार का द्रव्य - १)जीवों का प्रमाण २) योगस्थान संख्या ३) गुणहानि आयाम **(हेट्ठुवरिमदलवारा)** नीचे की गुणहानियाँ, ऊपर की गुणहानियाँ **(दुगुणं)** उभय गुणहानियाँ **(उभयमण्णोण्णं)** नीचे और ऊपर की अन्योन्याभ्यस्तराशि **(जीवजवे)** जीवयवमध्य **(कमसो)** इन सब का आगे क्रम से प्रमाण कहा हैं **(चोद्दससयबावीस)** सर्व जीवों का प्रमाण १४२२ **(बत्तीसं)** योगस्थान ३२ **(चत्तारि)** गुणहानि आयाम ४ हैं **(तिण्णि)** अधस्तन गुणहानियाँ ३ **(पण)** ऊपर की गुणहानियाँ पाँच **(अड)** सर्व नानागुणहानि ८ **(अट्ठं)** नीचे की अन्योन्याभ्यस्तराशि ८ **(तदोय बत्तीसं)** उसके पश्चात् ऊपर की अन्योन्याभ्यस्तराशि बत्तीस **(दव्वे)** सर्व द्रव्य में **(किंचूणतिगुणहाणिविभजिदे)** कुछ कम तीन गुणहानि का भाग देनेपर **(जवमज्झं)** जीवयवमध्य का प्रमाण १२८ प्राप्त होता है।

विशेषार्थ - जीवों की संख्या की यवाकार रचना में अंकसंदृष्टि -

द्रव्य (त्रसजीवों का प्रमाण) - १४२२ चौदहसौ बाईस

स्थिति (योगस्थानों का प्रमाण) - ३२ बत्तीस

गुणहानि आयाम (एक गुणहानि स्थान) - ४ चार

नाना गुणहानि (सब गुणहानियाँ) - ८ (३+५=८) आठ

नीचे की नाना गुणहानि का प्रमाण - ३ तीन

ऊपर की नाना गुणहानि का प्रमाण - ५ पाँच

नीचे की अन्योन्याभ्यस्त राशि - २×२×२ = ८ आठ

ऊपर की अन्योन्याभ्यस्त राशि - २×२×२×२×२ = ३२ बत्तीस

सब मिलकर अन्योन्याभ्यस्त राशि - ८ + ३२ = ४० चालीस

$$\frac{\text{द्रव्य प्रमाण}}{\text{कुछ कम तिगुणी गुणहानि}} = \text{यवाकार मध्य जीवप्रमाण}$$

एक गुणहानि आयाम ४ × ३ = १२ कुछ कम का प्रमाण $\frac{५७}{६४}$ कम करना

$$१२ - \frac{५७}{६४} \text{ समच्छेद} \qquad \frac{१२×६४}{६४} - \frac{५७}{६४} = \frac{७६८}{६४} - \frac{५७}{६४} = \frac{७११}{६४}$$

इतना लब्ध आता है। इससे द्रव्य प्रमाण में भाग देनेपर यवमध्य का जीवप्रमाण आता है।

$$१४२२ \div \frac{७११}{६४} \text{ उलटा गुणाकार } \frac{१४२२×६४}{७११} = २×६४ = \boxed{१२८} \text{ यवमध्यप्रमाण}$$

मध्य से ऊपर और नीचे के गुणहानि निषेकों में अपनी अपनी गुणहानि के चयप्रमाण क्रम से घटता जानना।

$$\text{चय} = \frac{\text{प्रथम निषेक}}{\text{दो गुणहानि}} \text{ अथवा } \frac{\text{चरम निषेक}}{\text{गुणहानि आयाम + १}}$$

नीचे की और ऊपर की गुणहानि का द्रव्य और चय क्रम से आधा-आधा होता है। ऊपर की गुणहानि पाँच ५, प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक १२८

$$\frac{१२८}{८} = १६ \text{ चय}$$

१२८-१६ = ११२ → द्वितीय निषेक

११२-१६ = ९६ → तृतीय निषेक

९६-१६ = ८० → अंतिम निषेक (१+गुणहानि)×चय

(१+४)×१६ = ८०

$$\left(\frac{\text{मुख + भूमि}}{२}\right) × \text{पद} = \text{सर्वधन}$$

$$\left(\frac{८० + १२८}{२}\right) × ४ = \frac{२०८}{२} × ४ = १०४×४ = ४१६ \rightarrow \text{प्रथमगुणहानि का धन}$$

$\frac{\text{४१६}\times\text{४}}{\text{४}}$ इसको संदृष्टि के लिए चार से भाग देना और चार से गुणा करना।

$\frac{\text{३२}\times\text{१३}\times\text{४}}{\text{४}}$ चारसों सोलह का ३२ से भेद करना ४१६ = ३२×१३

३२ × ४ = १२८ किया

$\frac{\text{१२८}\times\text{१३}}{\text{४}}$ गुणकारभूत १३ को एक अधिक तीन गुणहानिरूप किया

$\boxed{\frac{\overset{\text{१—}}{\text{१२८}\times\text{४}\times\text{३}}}{\text{४}}}$ → प्रथम गुणहानि का द्रव्य १३ = (४×३)+१

यह द्रव्य ऊपर प्रत्येक गुणहानि में क्रम से आधा आधा होता है।

$\frac{\overset{\text{१—}}{\text{१२८}\times\text{४}\times\text{३}}}{\text{४}\times\text{२}}$ → द्वितीय गुणहानि द्रव्य $\boxed{\text{२०८}}$

$\frac{\overset{\text{१—}}{\text{१२८}\times\text{४}\times\text{३}}}{\text{४}\times\text{२}\times\text{२}}$ → तृतीय गुणहानि द्रव्य $\boxed{\text{१०४}}$

$\frac{\overset{\text{१—}}{\text{१२८}\times\text{४}\times\text{३}}}{\text{४}\times\text{२}\times\text{२}\times\text{२}}$ → चतुर्थ गुणहानि द्रव्य $\boxed{\text{५२}}$

$\frac{\overset{\text{१—}}{\text{१२८}\times\text{४}\times\text{३}}}{\text{४}\times\text{२}\times\text{२}\times\text{२}\times\text{२}}$ → चरम गुणहानि द्रव्य $\boxed{\text{२६}}$

$$= \frac{\text{प्रथम गुणहानि द्रव्य}}{\text{एक कम नाना गुणहानिप्रमाण दो का परस्पर गुणकार}} = \text{अंतिम गुणहानि द्रव्य}$$

$$\frac{\text{४१६}}{\text{२}\times\text{२}\times\text{२}\times\text{२}} = \frac{\text{४१६}}{\text{१६}} = \boxed{\text{२६}} \text{ अंतिम गुणहानि द्रव्य}$$

यवमध्य - एक चय = नीचे की गुणहानि का प्रथम निषेक

१२८ - १६ = ११२ नीचे की गुणहानि का प्रथम निषेक एक एक चय घटाने पर ९६, ८०, ६४ एक एक निषेक का प्रमाण आता है।

आदिनिषेक - (गुणहानि - १ × चय) = अन्तिम निषेक

११२ - (४ -१ × १६) = ११२ - (३×१६) = ११२- ४८ = $\boxed{\text{६४}}$ अन्तिम निषेक

$$\left(\frac{\text{मुख + भूमि}}{\text{२}}\right) \times \text{ पद = सर्वधन} = \left(\frac{\text{६४ + ११२}}{\text{२}}\right) \times \text{४}$$

$= \frac{१७६}{२} \times ४ = ८८ \times ४ = ३५२$ → नीचे की प्रथम गुणहानि का धन

$\frac{८८ \times ४ \times ४}{४}$ → संदृष्टि निमित्त ऊपर नीचे ४ से गुणा किया। अठासी को चार से गुणा किया ८८×४ = ३५२ इसका पुनः सोलह से भेदन किया ३५२ = १६ × २२

$\frac{१६ \times २२ \times ४}{४}$ → २२ को २ से भेदन करके १६×११×२×४ पुनः सोलह को दो और चार से गुणा करना १६×२×४ = १२८

$\frac{१२८ \times ११}{४}$ → ऊपर की प्रथम गुणहानि के समान बनाने के लिये।

इसमें $\frac{१२८ \times २}{४}$ इतना ऋण मिलाना

$\frac{१२८ \times ११}{४} + \frac{१२८ \times २}{४} = \frac{१२८ \times १३}{४} = \boxed{\frac{१२८ \times ४ \times \overset{१—}{३}}{४}}$ → ऋणसहित नीचे की प्रथम गुणहानि का द्रव्य

इसका आधा द्वितीय गुणहानि का ऋणसहित द्रव्य → $\frac{१२८ । ४ । \overset{१—}{३}}{४ । २}$ $\boxed{२०८}$

इसका आधा तृतीय गुणहानि का ऋणसहित द्रव्य → $\frac{१२८ । ४ । \overset{१—}{३}}{४ । २ । २}$

यही अंतिम $\boxed{१०४}$ गुणहानि का द्रव्य है।

अंतिम गुणहानि का द्रव्य $= \frac{\text{प्रथम गुणहानि द्रव्य}}{\text{एक कम नीचे की नाना गुणहानिप्रमाण दो का परस्पर गुणाकार}}$

अंतिम गुणहानि का द्रव्य $= \frac{१२८ । ४ । \overset{१—}{३}}{४ । २ । २}$

इनका ऋण भी प्रथम गुणहानि से आधा आधा जानना।

प्रथम गुणहानि का ऋण	द्वितीय गुणहानि का ऋण	तृतीय(अंतिम) गुणहानि का ऋण
$\frac{१२८।२}{४}$ → अंतधन (६४)	$\frac{१२८।२}{४।२}$ → (३२)	$\frac{१२८।२}{४।२।२}$ → आदिधन(१६)

इनका संकलन → (अंतधन × गुणकार) - आदि

$\frac{१२८।२}{४} \times २ - \frac{१२८।२}{४।२।२}$ समच्छेद करनेपर $\frac{६४\times२ - १६}{१} = ११२$

$\frac{१२८।२।२।२।२}{४।२।२} - \frac{१२८।२}{४।२।२}$ समान संख्या निकालकर गुणकार १६ में २ गुणकार घटाना

$\frac{१२८।१६}{१६} - \frac{१२८।२}{१६} = \frac{१२८।१६-२}{१६}$ → सर्व ऋणों का जोड $\boxed{११२}$

समस्त ऋण=यवमध्यप्रमाण- (गुणहानि आयाम×नीचे की अन्तिम गुणहानि का चय)

१२८ - (४ × ४) = १२८ - १६ समस्त ऋण = $\boxed{११२}$

नीचे की और ऊपर की गुणहानियों के द्रव्य का पृथक संकलन करके दोनों को मिलाकर उसमें से ऋण कम करने पर शुद्ध द्रव्य आता है।

(अंतधन × गुणकार) - आदि = सर्वधन

अंतधन×गुणकार - आदिधन

नीचे की गुणहानियों का संकलन = $\left(\frac{१२८।१३\times२}{४}\right) - \frac{१२८।१३}{४।२।२}$ समच्छेद

$\frac{१२८।१३\times२\times२\times२}{४\times२\times२} - \frac{१२८।१३}{४\times२\times२}$

$\frac{१२८\times१३\times८}{१६} - \frac{१२८।१३}{१६} = \frac{१२८\times१३\times७}{१६}$ (१२८ को १६ से काटकर ८, १६ को १)

१०४ × ७ = ७२८ → नीचे की गुणहानियों का सर्व द्रव्य

ऊपर की गुणहानियों का संकलन = $\frac{\text{(अंतधन × गुणकार) - आदिधन}}{\text{गुणकार - १}}$

$$\frac{\text{१२८।१३×२}}{\text{४}} - \frac{\text{१२८।१३}}{\text{४।२।२।२।२}}$$

$$\frac{\text{१२८।१३।२।१६}}{\text{४।१६}} - \frac{\text{१२८।१३}}{\text{४।१६}}$$

$$\frac{\text{१२८।१३।३२-१}}{\text{४।१६}} = \frac{\overset{\text{२}}{\cancel{\text{१२८}}}\text{।१३।३१}}{\underset{\text{१}}{\cancel{\text{४}}}\text{।}\underset{\text{१}}{\cancel{\text{१६}}}} = \text{२×१३×३१} = \text{२×४०३} = \text{८०६}$$

नीचे की गुणहानियों का द्रव्य+ऊपर की गुणहानियों का द्रव्य= समस्त गुणहानियों का धन

७२८ + ८०६ = १५३४ समस्त गुणहानियों का धन

समस्त गुणहानियों का धन - नीचे की गुणहानियों का सर्व ऋण = शुद्धधन

१५३४ — ११२ = **[१४२२]** शुद्धधन

नाम	**चय**	**निषेकों में जीवों का प्रमाण**			**गुणहानियों में सर्वद्रव्यका प्रमाण**		
		मूलधन	**ऋण**	**सर्वधन**	**मूलधन**	**ऋण**	**सर्वधन**
नीचे की प्रथम गुणहानि	१६	प्र.११२ द्वि. ९६ तृ. ८० च. ६४	१६ १६ १६ १६	१२८ ११२ ९६ ८०	३५२	६४	४१६
नीचे की द्वितीय गुणहानि	८	प्र. ५६ द्वि. ४८ तृ. ४० च. ३२	८ ८ ८ ८	६४ ५६ ४८ ४०	१७६	३२	२०८
नीचे की तृतीय गुणहानि	४	प्र. २८ द्वि. २४ तृ. २० च. १६	४ ४ ४ ४	३२ २८ २४ २०	८८	१६	१०४

अब द्रव्यादिक का यथार्थ प्रमाण कहते हैं-

पुण्णतसजोगठाणं छेदासंखस्ससंखबहुभागे ।
दलमिगिभागं च दलं दव्वदुगं उभयदलवारा ।।२४७।।

अन्वयार्थ -(दव्वदुगं) द्रव्यद्विक अर्थात् द्रव्य का प्रमाण और स्थिति का प्रमाण क्रमसे **(पुण्णतसजोगठाणं)** पर्याप्त त्रसजीवराशि का प्रमाण और पर्याप्तत्रस संबंधी परिणामयोगस्थानों का प्रमाण जानना **(उभयदलवारा)** उभयदलवारा अर्थात् नीचे की नाना गुणहानियाँ और ऊपर की नाना गुणहानियाँ **(छेदासंखस्स)** पल्य के अर्धच्छेद के असंख्यातवें भाग के **(असंखबहुभागे दलं)** असंख्यात बहुभाग का आधा, नीचे की नाना गुणहानियों का प्रमाण और **(इगिभागं च दलं)** शेष आधा और शेष असंख्यातवाँ एकभाग दोनों मिलाकर ऊपर की नाना गुणहानियों का प्रमाण है।

णाणागुणहाणिसला छेदासंखेज्जभागमेत्ताओ।
गुणहाणीणद्धाणं सव्वत्थ वि होदि सरिसं तु ।।२४८।।

अन्वयार्थ - (णाणागुणहाणिसला) नीचे और ऊपर की नानागुणहानियाँ मिलाने पर **(छेदा-संखेज्जभागमेत्ताओ)** पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भागमात्र हैं। **(गुणहाणीणद्धाणं तु)** गुणहानि आयाम **(सव्वत्थ वि)** सर्वत्र अर्थात् ऊपर नीचे **(सरिसं होदि)** समान है।

अण्णोण्णगुणिदरासी पल्लासंखेज्जभागमेत्तं तु।
हेट्ठिमरासीदो पुण उवरिल्लमसंखगुणिदं ।।२४९।।

अन्वयार्थ - (अण्णोण्णगुणिदरासी) अन्योन्याभ्यस्त राशि **(पल्लासंखेज्ज-भागमेत्तं तु)** पल्य के असंख्यातवें भागमात्र है **(पुण)** पुनः **(हेट्ठिमरासीदो)** नीचे की अन्योन्याभ्यस्त राशि से **(उवरिल्लं)** ऊपर की अन्योन्याभ्यस्त राशि **(असंखगुणिदं)** असंख्यात गुणी है।

विशेषार्थ - पूर्वोक्त योगस्थानों में जीवोंका प्रमाण अर्थसंदृष्टि से दिखाते हैं।

त्रस जीवों का प्रमाण	स्थिति	वृद्धि का प्रमाण
$\dfrac{\dfrac{\text{जगत्प्रतर}}{\text{प्रतरांगुल}}}{\text{संख्यात}}$ $\overset{=}{\text{४}}$ ५	$\overset{१}{\overline{\partial}}$ ३१ २ ∂ (योगस्थानों की संख्या)	$\dfrac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}}$ $\overset{२}{\partial}$

द्वीन्द्रिय पर्याप्त परिणाम जघन्य योगस्थान से (७५ से) संज्ञिपर्याप्त परिणाम उत्कृष्टयोग पर्यन्त (८४ तक) स्थानों का कुल प्रमाण

जघन्यस्थान प्रमाण $\overline{\partial}$ $\underset{\partial}{\text{प}}$ ७५ (७५ वाँ स्थान होने से ७५ बार पल्य का असंख्यातवाँ भाग गुणित हुआ अतः जघन्य स्थान को ७५ बार पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणा किया। गुणित करने पर $\overline{\partial}$ इतना ही रह गया।(उस योगस्थान में जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग ही जघन्य स्पर्धक रहते हैं।)

संज्ञि पर्याप्त परिणाम उत्कृष्ट योगस्थानप्रमाण व वि १६ ४ $\overline{\partial}$ $\underset{\partial}{\text{छे}}$ इसकी संदृष्टि $\overline{\partial}$ ३२

$$\left\{\frac{(\text{अंत - आदि})}{\text{वृद्धि}}\right\} + १ = \text{कुल स्थान}$$

$$\frac{\left(\overline{\partial}^{३२} - \overline{\partial}^{१}\right)}{\overset{२}{\partial}} + १ = \boxed{\overset{१}{\overline{\partial}}\ ३१\ \overset{२}{\partial}}$$

७५ से ८४ तक कुल योगस्थानों का प्रमाण
यही स्थिति का प्रमाण

नाना गुणहानिशलाका → $\dfrac{\text{पल्य के अर्धच्छेद}}{\text{असंख्यात}}$ $\dfrac{\text{छे}}{\partial}$

नीचे की और ऊपर की गुणहानि शलाका निकालने के लिए असंख्यात का भाग देकर एकभाग अलग रखना $\underset{\partial\partial}{\text{छे १}}$। बहुभाग के $\underset{\partial\ \partial}{\text{छे}\ \overset{१}{\hat{\partial}}}$ समान दो भाग करना $\underset{\partial\ \partial\ २}{\text{छे}\ \overset{१}{\hat{\partial}}}$

समान दो भाग में से एकभाग प्रमाण अधस्तनगुणहानिशलाका $\boxed{\underset{\partial\ \partial\ २}{\text{छे}\ \overset{१}{\hat{\partial}}}}$

उपरितन गुणहानिशलाका = बहुभाग का आधा + अलग रखा हुआ एकभाग
(ऊपर की) समान एकभाग

$\underset{\partial\ \partial\ २}{\text{छे}\ \overset{१}{\hat{\partial}}}$ + $\underset{\partial\ \partial}{\text{छे १}}$ समच्छेद करनेपर

$\frac{\text{छे}\ ^{१}\overline{\partial}}{\partial\ \partial\ २} + \frac{\text{छे}\ २}{\partial\partial २} = \boxed{\frac{\text{छे}\ ^{१—}\partial}{\partial\ \partial\ २}}$ एक घाटि में दो अधिक जोडने से एक अधिक रह गया

उपरितनगुणहानि शलाका (-१ + २) = +१

अंकसंदृष्टि से समस्त नाना गुणहानियाँ ८ मान ली, असंख्यात ४ माना

$\frac{८}{४} = २$ एकभाग, ६ बहुभाग $\frac{\text{बहुभाग}}{२} = \frac{६}{२} = \boxed{३}$ अधस्तन गुणहानि शलाका

बहुभाग का आधा + शेष एकभाग = उपरितन नानागुणहानि शलाका ३+ २ = $\boxed{५}$

उपरितन गुणहानि शलाका + अधस्तन गुणहानिशलाका = समस्त नानागुणहानि शलाका

$\frac{\text{छे}\ ^{१—}\partial}{\partial\ \partial\ २} + \frac{\text{छे}\ ^{१}\overline{\partial}}{\partial\ \partial\ २} = \frac{\text{छे}\ \cancel{\partial}\cancel{२}}{\partial\ \cancel{\partial}\cancel{२}} = \frac{\text{छे}}{\partial}$

५ + ३ = ८

$\frac{\text{स्थिति}}{\text{नाना गुणहानि}}$ = गुणहानि आयाम $\frac{^{१—}\overline{\ }३१\ }{\partial\ २\ \text{छे} \atop \partial\ \partial}$ $\frac{३२}{८} = ४$

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध
छे इतनी ∂ गुणहानियों में	$\frac{^{१—}\overline{\ }३१}{\partial\ २ \atop \partial}$ इतनी स्थिति तो	१ गुणहानि में कितनी स्थिति ?	$\boxed{\frac{^{१—}\overline{\ }३१}{\partial\ २\ \text{छे} \atop \partial\ \partial}}$ → गुणहानि आयाम
८	३२	१ ?	$\frac{३२}{८} = ४$

अन्योन्याभ्यस्त राशि सामान्यरूप से $\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}$ $\frac{\text{प}}{\partial}$ विशेषरूप से नीचे की

अन्योन्याभ्यस्त राशि $\frac{\text{प}}{\partial\partial\partial}$ ऊपर की अन्योन्याभ्यस्त राशि $\frac{\text{प}}{\partial\partial}$

$\frac{\text{द्रव्य}}{\text{कुछ कम तीन गुणहानि}} = \frac{\text{यवमध्य}}{\text{जीवप्रमाण}}$ $\boxed{\frac{\overline{\overline{४}}\ \text{गु}\ ३-}{५}}$ यवमध्य (ऊपर की गुणहानि का प्रथम निषेक)

$\frac{\text{प्रथम निषेक}}{\text{दो गुणहानि}}$ = चय $\boxed{\frac{\overline{\overline{४}}\ \text{गु}\ ३-।\ \text{गु}\ २}{५}}$ प्रथम गुणहानि का चय

= गु २
४ गु ३- ।गु २
५

चय × दो गुणहानि = प्रथम निषेक →

उसके ऊपर द्वितीयादि निषेक एक एक चयहीन जानना

चय × एक अधिक एक गुणहानि = अन्तिम निषेक

= १— गु
४ गु ३- ।गु २
५

↑

अथवा प्रथम निषेक - (एक कम गुणहानि × चय) = अन्तिम निषेक

प्रथम गुणहानि का अन्तिम निषेक - १ चय = द्वितीय गुणहानि का प्रथम निषेक =
= गु
४ गु ३- ।गु २
५

(ऊपर एक अधिक गुणहानिप्रमाण चय थे यहाँ गुणहानिप्रमाण चय रहे)

इसी को संदृष्टि के लिये ऊपर नीचे दो से गुणने पर यवमध्य का आधाप्रमाण होता है
= गु×२
४ गु ३- ।गु २×२
५

इसके ऊपर द्वितीय गुणहानि के चरमनिषेक पर्यंत अपने चय हीन क्रम से जाना।

द्वितीय गुणहानि का चय = प्रथम गुणहानि के चय से आधा
=
४ गु ३- ।गु २।२
५

द्वितीय गुणहानि का अंतिम निषेक } = स्वचय × एक अधिक गुणहानि
= १— गु
४ गु ३- ।गु २।२
५

इसमें पुनः एक चय कम करने पर उपरितन तृतीय गुणहानि का प्रथम निषेक आता है
= गु
४ गु ३- ।गु २।२
५

इसको संदृष्टि के लिये ऊपर नीचे दो से गुणा करने पर द्वितीय गुणहानि के प्रथम निषेक से आधाप्रमाण दिखता है
= गु×२
४ गु ३- ।गु २।२।२
५

तृतीय गुणहानि का अंतिम निषेक } = स्वचय × एक अधिक गुणहानि
= १— गु
४ गु ३- ।गु २।२।२
५

तृतीय गुणहानि का अंतिम निषेक } — एकचय = चतुर्थ गुणहानि प्रथम निषेक $\frac{\overline{\overline{४}}\ गु\ ३ - गु\ ^{गु}\ २।२।२}{५}$

इसको संदृष्टि निमित्त ऊपर नीचे दो से गुणा करने पर तृतीय गुणहानि के प्रथम निषेक का आधाप्रमाण दिखता है $\frac{\overline{\overline{४}}\ गु\ ३ - गु^{गु \times २}\ २।२।२ \times २}{५}$

चतुर्थ गुणहानि का अंतिम निषेक = स्वचय × एक अधिक गुणहानि $\frac{\overline{\overline{४}}\ गु\ ३ - गु^{\overline{गु}\,१}\ २।२।२।२}{५}$

इस प्रकार पंचमादि गुणहानियों में उस उस गुणहानि के प्रथम निषेक (जीवद्रव्यों का) प्रमाण क्रम से आधा आधा होता है। चरम गुणहानि में चरम निषेकगत जीवद्रव्य में एक कम नानागुणहानिप्रमाण द्विकों के भागहार होते हैं, उनका परस्पर गुणा करने पर अन्योन्याभ्यस्त राशि का आधा प्रमाण होता है $\frac{प}{\partial\partial २}$ अंतिम निषेक में गुणकार एक अधिक गुणहानिप्रमाण है।

उपरितन अंतिम गुणहानि का अंतिम निषेक $\frac{\overline{\overline{४}}\ गु\ ३ - गु^{\overline{गु}\,१}\ २\ \frac{प}{\partial\partial २}}{५}$

नीचे की गुणहानियों में यवमध्य से नीचे प्रथम गुणहानि के प्रथम निषेक से लगाकर अन्त की गुणहानि के अन्तिम निषेकपर्यन्त प्रत्येक गुणहानि के सर्व निषेको में एक एक अपनी अपनी गुणहानि का चय प्रमाण ऋण मिलानेपर नीचे की गुणहानियों का प्रमाण है उतने प्रमाण निषेकों का उपरितन नाना गुणहानि के स्थितिद्रव्य के समान द्रव्य होता है। इसलिए नीचे की प्रथम गुणहानि के प्रथम निषेक का द्रव्य ऊपर की प्रथम गुणहानि के प्रथम निषेक के समान है → $\frac{\overline{\overline{४}}\ गु\ ३ - गु^{गु\ २}\ २}{५}$

इससे नीचे एक एक चयहीनक्रम से जाकर प्रथम गुणहानि चरम निषेक में एक कम गुणहानि प्रमाण चय कम होते हैं। अर्थात् एक अधिक गुणहानिप्रमाण चय रहते हैं।

प्रथम गुणहानि चरम निषेक (स्थितिद्रव्य) → $\underset{५}{\overset{=}{\text{४}}}\ \text{गु}\ \text{३}^{\frac{\text{१}}{\text{गु}}} - \text{गु}\ \text{२}$

इसमें एक चय कम करने पर नीचे की
द्वितीय गुणहानि का प्रथम निषेक → $\underset{५}{\overset{=}{\text{४}}}\ \text{गु}\ \text{३}^{\text{गु}} - \text{गु}\ \text{२}$ यह स्थितिद्रव्य ऊपर की द्वितीय गुणहानि प्रथम स्थितिद्रव्य के समान है।

इसे ऊपरनीचे दो से गुणा करने पर
जीव यवमध्य के प्रमाण का आधा होता है → $\underset{५}{\overset{=}{\text{४}}}\ \text{गु}\ \text{३}^{\text{गु।२}} - \text{गु}\ \text{२।२}$

इससे नीचे एक एक चयहीन क्रम से जाकर अन्तिम में एक कम गुणहानिमात्र चय कम होते हैं।

द्वितीय गुणहानि अंतिम स्थितिद्रव्य= स्वचय × एक अधिक गुणहानि→ $\underset{५}{\overset{=}{\text{४}}}\ \text{गु}\ \text{३}^{\frac{\text{१}}{\text{गु}}} - \text{गु}\ \text{२।२}$

इसमें एक चय कम होनेपर तृतीय गुणहानि प्रथम स्थितिद्रव्य→ $\underset{५}{\overset{=}{\text{४}}}\ \text{गु}\ \text{३}^{\text{गु}} - \text{गु}\ \text{२।२}$

इसे ऊपरनीचे दो से गुणा करने पर द्वितीय गुणहानि के प्रथम स्थितिद्रव्य का आधामात्र दिखाई देता है। $\underset{५}{\overset{=}{\text{४}}}\ \text{गु}\ \text{३}^{\text{गु।२}} - \text{गु}\ \text{२।२।२}$

तृतीय गुणहानि का अन्तिम निषेक = स्वचय × एक अधिक गुण.→ $\underset{५}{\overset{=}{\text{४}}}\ \text{गु}\ \text{३}^{\frac{\text{१}}{\text{गु}}} - \text{गु}\ \text{२।२।२}$

चतुर्थ गुणहानि प्रथम निषेक = तृतीय गुणहानि अन्तिम निषेक - एक चय

→ $\underset{५}{\overset{=}{\text{४}}}\ \text{गु}\ \text{३}^{\text{गु}} - \text{गु}\ \text{२।२।२}$

इसे ऊपरनीचे दो से गुणा करने पर तृतीय गुणहानि प्रथम निषेक का आधाप्रमाण दिखाई देता है→ $\underset{५}{\overset{=}{\text{४}}}\ \text{गु}\ \text{३}^{\text{गु।२}} - \text{गु}\ \text{२।२।२।२}$ इसमें एक एक चयहीन क्रम से अन्तिम स्थितिद्रव्य में

एक कम गुणहानिप्रमाण चय कम होते हैं। चतुर्थ गुणहानि अंतिम निषेक → $\overset{=}{\underset{५}{४}}$ गु $\overset{\overset{१—}{गु}}{३}$-गु २।२।२।२

इस प्रकार पंचमादि अधस्तन गुणहानियों में उन उन गुणहानियों का प्रथम स्थितिद्रव्य क्रम से आधा आधा हो जाता है। अधस्तन (नीचे की) चरम गुणहानि के चरम स्थितिद्रव्य में एक कम नीचे की नाना गुणहानिमात्र द्विकों का भागहार होते हैं। उन द्विकों का परस्पर गुणा करने पर नीचे की अन्योन्याभ्यस्त राशि का आधा प्रमाण होता है $\frac{प}{\partial\partial\partial २}$

एक अधिक गुणहानिप्रमाण गुणकार है। चरम गुणहानि चरमनिषेक → $\overset{=}{\underset{५}{४}}$ गु $\overset{\overset{१—}{गु}}{३}$- गु २ $\frac{प}{\partial\partial\partial २}$

इन उपर्युक्त गुणहानि के द्रव्यों का संकलन करते हैं →

संकलनसूत्र → ''मुहभूमिजोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि।''

$$\frac{\text{मुख (आदि)+ भूमि (अंत)}}{२} \times \text{पद} = \text{सर्वधन}$$

$$\frac{\left(\underset{\text{स्थितिद्रव्य}}{\text{अधस्तन प्र.गु.प्रथम}} + \underset{\text{स्थितिद्रव्य}}{\text{अधस्तन प्र. गु.अन्तिम}}\right)}{२} \times \text{पद} = \text{अधस्तन प्रथम गुणहानिद्रव्य}$$

$$\frac{\left(\overset{\text{भूमि}}{\overset{=}{\underset{५}{४}}\ गु\ ३\text{-}\overset{गु\ २}{गु}\ २} + \overset{\text{मुख}}{\overset{=}{\underset{५}{४}}\ गु\ ३\text{-}\overset{\overset{१—}{गु}}{गु}\ २}\right)}{२} \times गु \rightarrow \boxed{\overset{=}{\underset{५}{४}}\ गु\ ३\text{-}\overset{\overset{१—}{गु\ ३।\ गु}}{गु}\ २।२}$$

$\overset{१—}{गु\ २} + \overset{१—}{गु} = \overset{१—}{गु\ ३}$ शेष सर्व संख्या समान है। अत: सब संख्याओं को रखकर उसके आगे $\overset{१—}{गु\ ३}$ का गुणकार किया।

$$\text{अधस्तन चरम गुणहानिद्रव्य} \rightarrow \frac{\left(\overset{\text{प्र.स्थितिद्रव्य}}{\overset{=}{\underset{५}{४}}\ गु\ ३\text{-}\overset{गु\ २}{गु}\ २।\frac{प}{\partial\partial\partial २}} + \overset{\text{अन्तिम स्थितिद्रव्य}}{\overset{=}{\underset{५}{४}}\ गु\ \overset{\overset{१—}{गु}}{३}\text{-}गु\ २।\frac{प}{\partial\partial\partial २}}\right) \times गु}{२}$$

यहाँ प्रथम स्थितिद्रव्य अन्त (भूमि) समझना और अन्तिम स्थितिद्रव्य आदि (मुख) समझना। क्योंकि अन्तिम स्थितिद्रव्य का प्रमाण कम है और प्रथम स्थिति द्रव्य ज्यादा है।

```
                              १—
                          =  गु ३ गु
अधस्तन चरमगुणहानिद्रव्य →  ४ गु ३- गु २।प। २
                          ५          ∂∂∂२
```

अधस्तन गुणहानियों का सर्वद्रव्य → (अंतधन × गुणकार) - आदि

```
     प्रथम गुणहानि द्रव्य                 अंतिम गुणहानि द्रव्य
      १—                                  १—
 ( =  गु ३ गु      × २ )  -  ( =  गु ३ गु
   ४ गु ३- गु २।२               ४ गु ३- गु २ प २ )
   ५                            ५          ∂∂∂२
```

यहाँ अंतधन में प्रथम गुणहानि का द्रव्य लेना और आदि में अंतिम गुणहानि का द्रव्य समझना।

```
                  १—              १—
                = गु ३          = गु ३
अपवर्तन करनेपर    ४ गु ३-।२   -   ४ गु ३ -।२ प
                  ५               ५        ∂∂∂
```

समच्छेद करने के लिए ऊपर नीचे $\frac{\text{प}}{\partial\partial\partial}$ से गुणा करना

```
                 प
 १—                              १—
 = गु ३     ×  ∂∂∂         =   गु ३
 ४ गु ३ - २। × प       -   ४ गु ३ - २।प
 ५            ∂∂∂           ५        ∂∂∂
```

समान संख्याओं को निकालकर ऋणराशि का एक गुणकार धनराशि के इस $\frac{\text{प}}{\partial\partial\partial}$ गुणकार में कम करना

```
                                   १—         १—
                                 = गु ३        प
अधस्तन गुणहानियों का सर्वधन →   ४ गु ३ - २।प ∂∂∂
                                 ५          ∂∂∂
```

```
अधस्तन प्रथम गुणहानि का  = प्रथमगुणहानिचय × गच्छ  = गु                (अंतधन)
      समस्त ऋण                                    ४ गु ३-  गु २
                                                  ५
```

```
अधस्तन चरम गुणहानि का  = चरमगुणहानिचय × गच्छ  = गु                (आदि)
   सर्व ऋण                                    ४ गु ३-गु २ प
                                              ५          ∂∂∂२
```

प्रत्येक उत्तरोत्तर गुणहानि का चय आधा आधा है। अन्तिम गुणहानि का चय निकालने के लिये → $\dfrac{\text{प्रथम गुणहानि चय}}{\text{नीचे की अन्योन्याभ्यस्त राशि का आधा}}$ = ४ गु ३ - गु २। प / ५ ∂∂∂२

चय का प्रमाण आधा आधा करने के लिए प्रथमगुणहानि चय में २ का भाग देते जाते है द्वितीय गुणहानि में २ का भाग एकबार, तृतीय गुणहानि में २ का भाग दो बार। इसप्रकार अंतिम गुणहानि में २ का भाग एक कम नाना गुणहानि प्रमाण हो जाते हैं। उन २ के भागहारों का परस्पर गुणाकार करने पर अन्योन्याभ्यस्त राशि का आधा प्रमाण आता है। यह खुलासा सर्वत्र जानना।

अधस्तन सर्व गुणहानि के ऋणों का संकलन = (अंतधन × गुणकार) - आदि

= ४ गु ३ - गु २ (गु × २) / ५ - = ४ गु ३ - गु २ प (गु) / ५ ∂∂∂२

अपवर्तन कर समच्छेद करनेपर = ४ गु ३ - प ∂∂∂ (प) / ५ ∂∂∂ - = ४ गु ३ - प / ५ ∂∂∂

समान संख्याओं को निकालकर शेष गुणकार के ऊपर ऋणराशि का एक गुणकार कम करना

= ४ गु ३ - प ∂∂∂ (प १—) / ५ ∂∂∂

अधस्तन गुणहानियों का सर्वऋण

उपरितनप्रथम गुणहानि का धन → $\dfrac{(\text{प्र.गु.प्रथम स्थितिद्रव्य (भूमि)} + \text{प्र. गु.अन्तिम स्थितिद्रव्य (मुख)})}{२}$ ×पद

→ $\dfrac{= ४\ गु\ ३ - गु\ २ \ (गु\ २) / ५ + = ४\ गु\ ३ - गु\ २ \ (गु\ १—) / ५}{२}$ × गु →

= ४ गु ३ - गु २।२ (गु ३। गु, गु १—) / ५

उपरितन प्रथम गुणहानि सर्वधन (अंतधन) →

= ४ गु ३ - गु २।२ (गु ३। गु, गु १—) / ५

उपरितन चरम गुणहानिद्रव्य=

$$\frac{\overset{=}{\underset{५}{४}}\ \text{गु}\ \overset{\text{गु}\ २}{३}\text{-}\ \text{गु}\ २\ \frac{\text{प}}{\partial\partial २} + \overset{=}{\underset{५}{४}}\ \text{गु}\ \overset{\overline{१}\,\text{गु}}{३}\text{-}\ \text{गु}\ २\ \frac{\text{प}}{\partial\partial २} \times \text{गु}}{२}$$

शेष गुणकारों को मिलाना समच्छेद है। $\text{गु}\ २ + \overset{\overline{१}}{\text{गु}} = \overset{\overline{१}}{\text{गु}}३$

$$\boxed{\overset{=}{\underset{५}{४}}\ \text{गु}\ \overset{\overset{\overline{१}}{\text{गु}}\ ३\ \ \text{गु}}{३}\text{-}\ \text{गु}\ २\ \frac{\text{प}\ २}{\partial\partial २}}$$

उपरितन चरम गुणहानि का सर्वधन (आदि)

उपरितन सर्व गुणहानिद्रव्यों का संकलन = (अंतधन × गुणकार) - आदि

$$\left(\overset{=}{\underset{५}{४}}\ \text{गु}\ \overset{\overset{\overline{१}}{\text{गु}}\ ३\ \ \text{गु} \times २}{३}\text{-}\ \text{गु}\ २\ ।\ २\right) - \overset{=}{\underset{५}{४}}\ \text{गु}\ \overset{\overset{\overline{१}}{\text{गु}}\ ३\ \text{गु}}{३}\text{-}\ \text{गु}\ २\ \frac{\text{प}\ २}{\partial\partial २}$$

अपवर्तन करके समच्छेद करनेपर

$$\overset{=}{\underset{५}{४}}\ \overset{\overline{१}}{\text{गु}}\ \overset{\text{गु}\ ३}{३}\ -\ २।\frac{\text{प}\partial\partial}{\partial\partial}\ -\ \overset{=}{\underset{५}{४}}\ \text{गु}\ \overset{\overset{\overline{१}}{\text{गु}}\ ३}{३}\ -\ २।\frac{\text{प}}{\partial\partial}$$

समान संख्या निकालकर शेष गुणकार के ऊपर एक घाटि करना

$$\boxed{\overset{=}{\underset{५}{४}}\ \text{गु}\ \overset{\overset{\overline{१}}{\text{गु}}\ ३}{३}\ -\ २।\frac{\overset{\overline{१}}{\text{प}}\ \partial\partial}{\partial\partial}}$$

उपरितन गुणहानियों का सर्वधन

उपरितन सर्वधन	**अधस्तन सर्वधन**	**अधस्तन सर्वऋण**
$\overset{=}{\underset{५}{४}}\ \text{गु}\ \overset{\overset{\overline{१}}{\text{गु}}\ ३}{३}\ -\ २।\frac{\overset{\overline{१}}{\text{प}}\ \partial\partial}{\partial\partial}$	$\overset{=}{\underset{५}{४}}\ \text{गु}\ \overset{\overset{\overline{१}}{\text{गु}}\ ३}{३}\ -\ २\ \frac{\overset{\overline{१}}{\text{प}}\ \partial\partial\partial}{\partial\partial\partial}$	$\overset{=}{\underset{५}{४}}\ \text{गु}\ ३\ -\ \frac{\overset{\overline{१}}{\text{प}}\ \partial\partial\partial}{\partial\partial\partial}$

अपने अपने ऋण को अर्थात् $\frac{\text{प}}{\partial\partial}$ गुणकार के ऊपर एक घाटि का प्रमाण है उसको अलग स्थापित करना।

	उपरितन सर्वधन	अधस्तन सर्वधन	अधस्तन सर्वऋण
शेष प्रमाण धनराशि	१— गु ३ = ४ गु ३ - २ प ∂∂∂ (प कटा हुआ) ∂∂ (कटा हुआ) ५	१— गु ३ = ४ गु ३ - २ प ∂∂∂ (प कटा हुआ) ∂∂∂ (कटा हुआ) ५	= ४ गु ३ - प ∂∂∂ (प कटा हुआ) ∂∂∂ ५
एक घाटिका ऋण प्रमाण	१— गु ३ १ = ४ गु ३ - २ प ∂∂ ५	१— गु ३ १ = ४ गु ३ - २ प ∂∂∂ ५	१ = ४ गु ३ - प ∂∂∂ ५

धनराशि में गुणकार व भागहार में $\frac{प}{∂∂}$, $\frac{प}{∂∂∂}$ समान है उनका अपवर्तन करने पर ऐसा शेष रहता है। नीचे की ऋणराशि में कुछ अपवर्तन करने योग्य नहीं है।

शेषउपरितनधन	**अधस्तनधन**	**अधस्तन ऋण**
१— = गु ३। १ ४ गु ३ - २ ५	१— = गु ३। १ ४ गु ३ -२ ५	= ४ गु ३- ५

उपरितन धन + अधस्तन धन = उभयधन

१—   १—
= गु ३।१   +   = गु ३।१
४ गु ३-२   ४ गु ३-२
५   ५

सब संख्या समान है अत: सब संख्याओं को रखकर दोनो धनराशि के एक एक गुणकारों को मिलाने पर २ गुणकार हुआ।

१—   १—
= गु ३।२ (२ कटा हुआ)   = गु ३
४ गु ३-२ (२ कटा हुआ) → ४ गु ३-
५   ५

इसमें जो एक अधिक है उसके प्रमाण को अलग रखना = १ / ४ गु ३- / ५

शेष = गु ३ / ४ गु ३- / ५

अधिक रूप का प्रमाण अधस्तन ऋण का जो ऊपर प्रमाण है उसके समान है अत: इस धन में से ऋण दे देना अर्थात् प्रथम ऋण समाप्त हो गया।

ऋण का ऋण राशि का धन होता है अत: अधस्तन ऋण के ऋण में से अधस्तन गुणहानि के धन का ऋण (द्वितीय) है वह घटाना।

अधस्तनऋण का ऋण - अधस्तनधन का ऋण

```
                    १—
=                =  गु ३
४ गु ३- प     -  ४ गु ३ - २ प        दो का समच्छेद करना
५     ∂∂∂        ५          ∂∂∂
```

समान संख्याओं को निकालकर शेष रहे २ गुणकार को एक अधिक ३ गुणहानि में कम करने पर शेष एक कम तीन गुणहानि का प्रमाण रहता है।

```
      २             १—
=                =  गु ३
४ गु ३- प २   -  ४ गु ३ - २ प
५     ∂∂∂        ५          ∂∂∂
```

```
 |    १
=   गु ३
४ गु ३-२ प
५      ∂∂∂
```

शेष रहे इस ऋण को उपरितनधन का जो प्रथम ऋण है उससे अधिक करना क्यों कि वह उपर्युक्त ऋणराशि का असंख्यातवाँ भाग है। इस ऋणराशि को उभयधन के गुणकारभूत तीन गुणहानि में कम करना। कुछ कम की संदृष्टि करना

```
=  गु३-         =
४  गु३-   →     ४
५               ५
```

सर्वद्रव्य पर्याप्त त्रसराशि प्रमाण

यहाँ पर ग्रंथकार ने अधस्तन गुणहानियों में संकलन के लिए अधस्तन प्रथम गुणहानि के प्रथम स्थिति का द्रव्यभूत जो यवमध्य का प्रमाण १२८ है उतने प्रमाण ऋण को एकसाथ निक्षेपण किया और चरम अधस्तन गुणहानि के चरम स्थितिद्रव्य को धन करके संकलन किया (१२८ - १६ = ११२ ही शुद्ध ऋण हुआ)। इसलिए अधस्तन प्रथमादि गुणहानियों के धन और ऋण में हीनाधिकता न होने से वृत्तिकार के कहे हुए संकलन में कोई विरोध नहीं है।

योगस्थान में अर्थसंदृष्टि से जीवों की यवाकार रचना

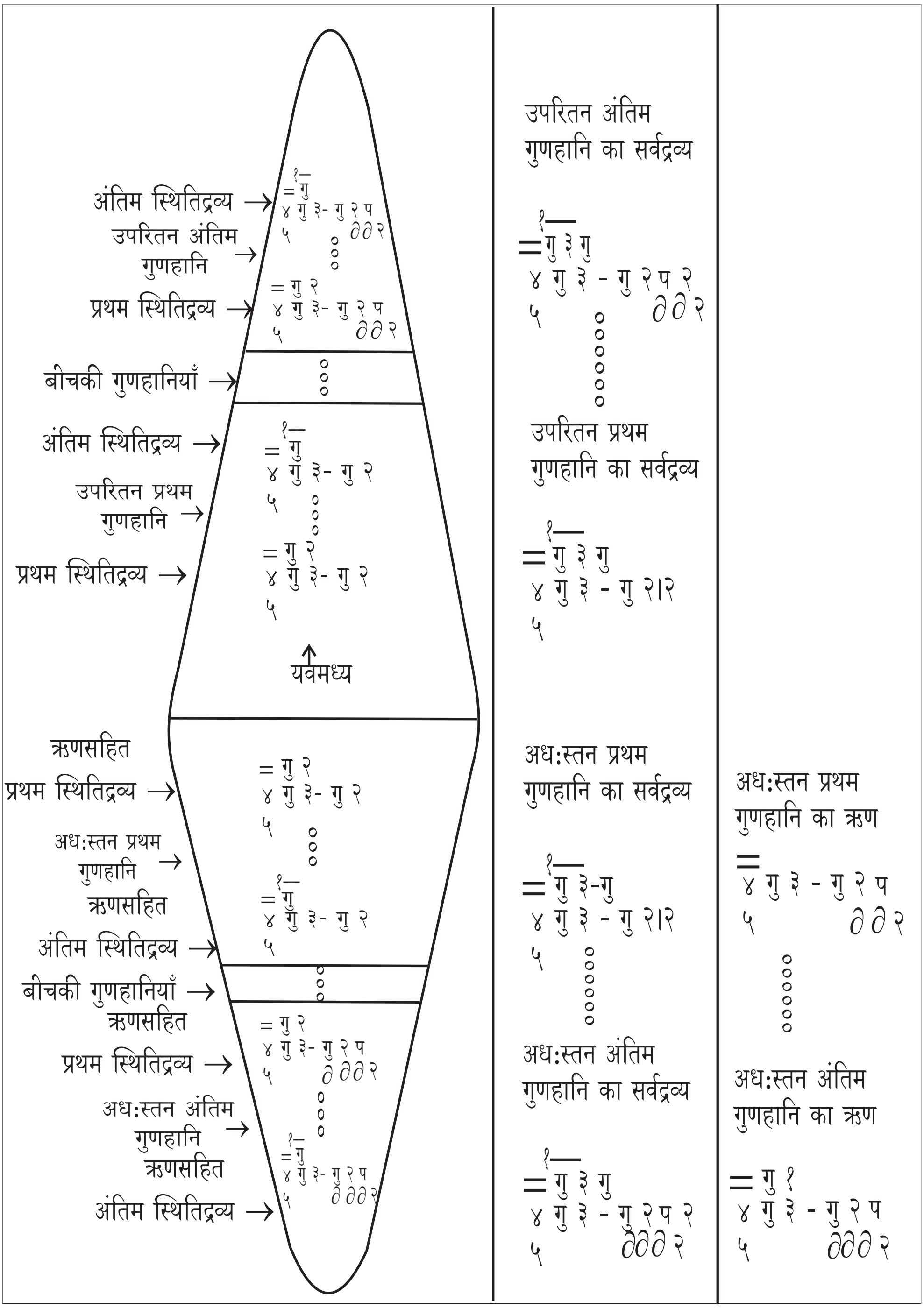

ऋणरहित अध:स्तन गुणहानि का द्रव्य

	प्रथम गुणहानि	द्वितीय गुणहानि		अंतिम गुणहानि
प्रथम स्थितिद्रव्य	१⌒ गु २ = ४ गु ३-गु २ ५ ० ० ० ० ०	१⌒ गु २ = ४ गु ३-गु २।२ ५ ० ० ० ० ०	०००००	१⌒ गु २ = ४ गु ३-गु २ प ५ ∂∂∂२ ० ० ० ० ०
अंतिमस्थितिद्रव्य	गु = ४ गु ३-गु २ ५	गु = ४ गु ३-गु २।२ ५		गु = ४ गु ३-गु २ प ५ ∂∂∂२

उपर्युक्त ऋणरहित अधस्तन गुणहानि के प्रथम स्थिति का द्रव्य यवमध्य के प्रमाण में एक चय कम करनेपर आता है। अत: यहाँ दो गुणहानिप्रमाण चय में एक कम किया। उसमें एक एक चय कम होते होते अन्तिम स्थितिद्रव्य में गुणहानिप्रमाण चय रह जाते हैं। इसी प्रकार आगे की गुणहानियों में भी प्रथम स्थितिद्रव्य और अन्तिम स्थितिद्रव्य समझना।

ऊपर कहे हुए द्वीन्द्रियपर्याप्त जघन्य परिणाम योगस्थान से लेकर संज्ञिपंचेन्द्रिय पर्याप्त उत्कृष्ट परिणाम योगस्थानपर्यंत निरंतर सूच्यंगुल के असंख्यातवे भागप्रमाण जघन्य स्पर्धक वृद्धि से बढ़नेवाले समस्त योगस्थानों में जघन्यस्थान से एक एक स्थान के स्वामी जीव यवाकार रचनारूप से स्थित हैं। प्रारम्भ के योगस्थान के स्वामी कम हैं फिर ऊपर स्वस्थान में (अपनी गुणहानि में) एक एक चय अधिक होते गये हैं परस्थान में (द्वितीय गुणहानि में) दुगुणा चयाधिक बढ़ते हैं। यवमध्य में जो योगस्थान है उसके स्वामी सबसे ज्यादा हैं। फिर उसके ऊपर अपनी अपनी गुणहानि में एक एक चयहीन होते हैं। परस्थान में दुगुणा हीन होते हैं। इसप्रकार हीन होते होते सर्वोत्कृष्ट योगस्थान में सबसे कम जीव पाये जाते हैं। इसका खुलासा जीवों की अपेक्षा यवाकार रचना की है उसकी अंकसंदृष्टि से हो जाता है।

इगिठाणफड्ढयाओ समयपबद्धं च जोगवड्ढी च।
समयपबद्धचयट्ठं एदे हु पमाणफलइच्छा।।२५०।।

अन्वयार्थ - (इगिठाणफड्ढयाओ) एकस्थान के स्पर्धक अर्थात् द्वीन्द्रिय पर्याप्तक के जघन्य परिणाम योगस्थान संबंधी स्पर्धक, **(समयपबद्धं)** समयप्रबद्ध **(च)** और **(जोगवड्ढी च)** योगों की वृद्धि **(एदे)** ये तीनों **(समयपबद्धचयट्ठं)** समयप्रबद्ध की वृद्धि का प्रमाण लाने के लिए **(हु पमाणफलइच्छा)** क्रम से प्रमाणराशि, फलराशि और इच्छाराशि हैं।

विशेषार्थ - इन योगस्थान के धारी जीवों के प्रदेशबन्ध का प्रमाण अर्थात् समयप्रबद्ध की वृद्धि का प्रमाण कहते हैं - समयप्रबद्ध की वृद्धि का प्रमाण निकालने के लिए त्रैराशिक करते हैं उसमें द्वीन्द्रियपर्याप्तक के जघन्य परिणाम योगस्थान के स्पर्धक प्रमाणराशि है, जघन्य समयप्रबद्ध फलराशि है और योग की वृद्धि इच्छाराशि है।

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	
व वि १६ ४ $\frac{-}{\partial}$ जघन्य योगस्थान	स जघन्य समयप्रबद्ध	व वि १६ ४।२ ? ∂ जघन्य योगवृद्धि	(स×~~व~~ ~~वि~~ ~~१~~६।४।२ ∂) / (~~व~~ ~~वि~~ ~~१~~६।४। $\frac{-}{\partial}$ ∂) = $\frac{\text{स}}{\partial}$ २ ∂ समयप्रबद्धवृद्धि

जघन्य योगस्थान से जघन्य समयप्रबद्ध बंधता है उसके अनन्तरवर्ती योगस्थान से इतने अधिक प्रदेशों को लिए प्रदेशबंध बढ़ता है। इस तरह निरन्तर बढ़ते बढ़ते जहाँ योगस्थान दूना होता है वहाँ समयप्रबद्ध भी दूना बंधता है। जहाँ वह चौगुणा होता है वहाँ समयप्रबद्ध भी चौगुणा बँधता है। इस प्रकार संज्ञी पर्याप्तक का उत्कृष्ट योगस्थान जघन्य योगस्थान से पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवाँ भाग गुणा होता है इसलिए उससे जो समयप्रबद्ध बँधता है वह जघन्य समयप्रबद्ध से पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवे भाग गुणा होता है उसकी संदृष्टि ३२ (छे) है अत: उत्कृष्ट समयप्रबद्ध स ३२ ऐसा लिखते हैं अथवा स∂ ऐसा भी लिखते हैं।

बीइंदियपज्जत्तजहण्णट्ठाणा दु सण्णिपुण्णस्स ।
उक्कस्सट्ठाणोत्ति य जोगट्ठाणा कमे उड्ढा ।।२५१।।

अन्वयार्थ- (बीइंदियपज्जत्तजहण्णट्ठाणा दु) द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीव के जघन्यपरिणाम योगस्थान से **(सण्णिपुण्णस्स)** संज्ञी पर्याप्त जीव के **(उक्कस्सट्ठाणोत्ति य)** उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान पर्यन्त **(जोगट्ठाणा)** परिणाम योगस्थान **(कमे)** क्रम से **(उड्ढा)** समानवृद्धि रूप प्रमाण बढ़ते हुए जानने।

सेढियसंखेज्जदिमा तस्स जहण्णस्स फड्ढया होंति ।
अंगुलअसंखभागा ठाणं पडि फड्ढया उड्ढा ।।२५२।।

अन्वयार्थ -(तस्स) उनमें **(जहण्णस्स)** द्वीन्द्रिय पर्याप्तक के जघन्य परिणाम योगस्थान के **(फड्ढया)** स्पर्धक (**सेढियसंखेज्जदिमा**) जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भागमात्र **(होंति)** होते हैं। **(ठाणं पडि)** प्रत्येक स्थान में **(अंगुलअसंखभागा)** सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण **(फड्ढ्या)** जघन्य स्पर्धक **(उड्ढा)** बढ़ते हैं।

धुववड्ढीवड्ढंतो दुगुणं दुगुणं कमेण जायंते ।
चरिमे पल्लच्छेदाऽसंखेज्जदिमो गुणो होदि ।।२५३।।

अन्वयार्थ - इस प्रकार **(धुववड्ढीवड्ढंतो)** ध्रुववृद्धिरूप से बढ़ता हुआ जघन्य योगस्थान **(कमेण)** क्रम से **(दुगुणं दुगुणं)** दूना-दूना **(जायंते)** हो जाता है और **(चरिमे)** अन्त में संज्ञी पंचेन्द्रियपर्याप्तक के उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान में **(पल्लच्छेदाऽसंखेज्जदिमो)** पल्य के अर्धच्छेद के असंख्यातवें भागप्रमाण **(गुणो)** गुणा **(होदि)** होता है।

विशेषार्थ - द्वीन्द्रिय पर्याप्तक के जघन्य परिणाम योगस्थान के स्पर्धक ⟶ $\frac{\text{जगत्श्रेणि}}{\text{असंख्यात}}$ व वि १६ ४ $\bar{\partial}$ है उसके अनन्तरवर्ती स्थान से लेकर प्रत्येक स्थान में सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक बढ़ते हैं। इसप्रकार एक समान वृद्धि से बढ़ते बढ़ते जघन्य योगस्थान दूना होता है। फिर आगे बढ़ते बढ़ते उससे भी दूना होता है। इसतरह क्रम से दूना दूना होते अन्त के संज्ञी पर्याप्तक के उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान का गुणकार पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भागप्रमाण होता है।

	जघन्य	द्वितीय	तृतीय	दूना	दूना+१	दूना+२	दूना से दूना	
योगस्थान	व वि १६ ४ $\bar{\partial}$	$\frac{\partial^{२\ १}}{\bar{\partial}}$	$\frac{\partial^{२।२}}{\bar{\partial}}$ ०००	$\bar{\partial}^{२}$	$\frac{\partial^{२।\ १}}{\bar{\partial}^{२}}$	$\frac{\partial^{२।२}}{\bar{\partial}^{२}}$ ०००००	$\bar{\partial}^{२।२}$	→
समय-प्रबद्ध	स	$\frac{स\ \partial^{२}}{\bar{\partial}}$ स	$\frac{स\ \partial^{२।२}}{\bar{\partial}}$ स ०००	स २	$\frac{स\ \partial^{२।१}}{\bar{\partial}}$ स २	$\frac{स\ \partial^{२।२}}{\bar{\partial}}$ स २ ०००००	स २ २	→

	अनंतर द्वितीय	तृतीय	उससे दूना	बीच के योग	द्विचरम दूना	चरम
योगस्थान	$\frac{\partial^{२।\ १}}{\bar{\partial}^{२\ २}}$	$\frac{\partial^{२।\ २}}{\bar{\partial}^{२\ २}}$ ०००	$\bar{\partial}^{२२२}$	०००००	$\bar{\partial}\ \partial^{छे}\ २$	$\bar{\partial}\quad \partial^{छे}$
समय-प्रबद्ध	$\frac{स\ \partial^{२।१}}{\bar{\partial}}$ स २।२	$\frac{स\ \partial^{२।२}}{\bar{\partial}}$ स २।२ ०००	स २२२	०००००	स $\partial^{छे}$ २ अंत से आधा	स $\partial^{छे}$

अधिक का प्रमाण संख्या के ऊपर लिखते हैं अत: $\frac{जगत्श्रेणि}{असंख्यात}$ के ऊपर $\frac{सूच्यंगुल}{असंख्यात}$ लिखा $\frac{\partial^{२।१}}{\bar{\partial}}$ ऐसे ही आगे भी जानना।

अब सर्व योगस्थानों का प्रमाण कहते हैं-

आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा ।
सेढिअसंखेज्जदिमा जोगट्ठाणा णिरंतरगा।।२५४।।

अन्वयार्थ - (अंते) अन्त उत्कृष्टस्थान में से **(आदी)** जघन्यस्थान को **(सुद्धे)** घटाने पर और **(वड्ढिहिदे)** वृद्धि का भाग देने पर जो प्रमाण आवे उसमें **(रूवसंजुदे)** एक मिलानेपर **(ठाणा)** स्थानों का प्रमाण आता है। **(णिरंतरगा)** सर्व निरन्तर **(जोगट्ठाणा)** योगस्थान (**सेढिअसंखेज्जदिमा**) जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

अंतरगा तदसंखेज्जदिमा सेढियसंखभागा हु।
सांतरणिरंतराणि वि सव्वाणि वि जोगठाणाणि।। २५५।।

अन्वयार्थ -(अंतरगा) अंतर्गत योगस्थान **(तदसंखेज्जदिमा)** उन निरन्तर योगस्थानों के असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं। **(सेढियसंखभागा हु)** ये भी जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण ही हैं। इसी प्रकार **(सांतरणिरंतराणि वि)** सान्तर निरन्तररूप मिश्र योगस्थान अन्तर्गत योगस्थानों के असंख्यातवें भाग हैं फिर भी वे जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भाग हैं। **(सव्वाणि वि जोगठाणाणि)** ये तीनों योगस्थान मिलकर भी जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।

विशेषार्थ - समस्त निरन्तर योगस्थानों का प्रमाण ⟶

$$\left(\frac{\text{उत्कृष्टस्थान} - \text{जघन्यस्थान}}{\text{वृद्धि}}\right) + १ = \text{सर्व योगस्थान}$$

$$\frac{\left(\text{व वि १६ ४}\underset{\partial}{-}\ \underset{\partial}{\text{छे}} - \text{व वि १६ ४}\ \underset{\partial}{-}\right)}{\overset{२}{\partial}} + १$$

व वि १६ ४ में से
व वि१६ ४ घटाना
समान संख्या रखकर शेष
गुणकार में ऋणराशि का
एक गुणकार कम करना,
वृद्धि का भाग देना और
सब में एक मिलाना

निरन्तर योगस्थान (१— १⌂ —छे ∂∂२ ∂) ये सब योगस्थान जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भाग प्रमाण ही हैं $\boxed{\frac{-}{\partial}}$

अन्तर्गत योगस्थान निरन्तर योगस्थानों के असंख्यातवे भागप्रमाण हैं (१— १⌂ —छे ∂∂२∂ ∂) फिर भी जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भागमात्र ही हैं।

सांतरनिरंतर योगस्थान ⟶ $\frac{\text{अंतरगतयोगस्थान}}{\text{असंख्यात}}$ (१— १⌂ —छे ∂∂२∂∂ ∂) ये भी जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भागप्रमाण ही हैं।

निरंतर योगस्थान + सांतरयोगस्थान + सांतरनिरंतरयोगस्थान

(१— १⌂ —छे ∂∂२ ∂) + (१— १⌂ —छे ∂∂२∂ ∂) + (१— १⌂ —छे ∂∂२∂∂ ∂)   समच्छेद करनेपर

(१— १⌂ —छे ×∂∂ / ∂∂२×∂∂ ∂) + (१— १⌂ —छे ×∂ / ∂∂२∂×∂ ∂) + (१— १⌂ —छे / ∂∂२∂∂ ∂)   समान संख्याओं को निकालकर शेष गुणकार के ऊपर एक अधिक करना

(१— १⌂ —छे ∂̸ १—∂ / ∂∂२∂̸∂∂ ∂) → $\boxed{\text{१— १⌂ —छे / ∂∂२ ∂ \quad १— ∂ / ∂}}$ ये भी योगस्थान जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भागप्रमाण ही हैं।

सुहुमणिगोद अपज्जत्तयस्स पढमे जहण्णओ जोगो।
पज्जत्तसण्णि पंचिंदियस्स उक्कस्सओ होदि ।। २५६।।

अन्वयार्थ -(सुहुमणिगोद अपज्जत्तयस्स) सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक के **(पढमे)** प्रथम समय में **(जहण्णओ जोगो)** जघन्य उपपाद योगस्थान होता है वहीं जघन्य योगस्थान है और (**पज्जत्तसण्णि पंचिंदियस्स**) संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक का **(उक्कस्सओ)** उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान ही उत्कृष्ट योगस्थान **(होदि)** है।

योग का आद्यस्थान - सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक के अन्तिम क्षुद्रभव के प्रथम समय का जघन्य उपपाद योगस्थान

योग का अन्तस्थान - संज्ञी पंचेन्द्रियपर्याप्तक का उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान

जोगा पयडिपदेसा ठिदियणुभागा कसायदो होंति।
अपरिणदुच्छिण्णेसु य बंधट्ठिदिकारणं णत्थि ।।२५७।।

अन्वयार्थ - (पयडिपदेसा) प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध **(जोगा)** योग से होते हैं और **(ठिदियणुभागा)** स्थितिबन्ध और अनुभाग बन्ध **(कसायदो)** कषाय से **(होंति)** होते हैं। (**अपरिणदुच्छिण्णेसु य**)जो कषायरूप से परिणत नहीं है अर्थात् उपशान्तकषाय और जिनकी कषाय क्षीण हो गयी हैं ऐसे क्षीणकषाय और सयोग केवली के **(बंधट्ठिदिकारणं)** स्थितिबंध का कारण कषाय **(णत्थि)** नहीं है।

विशेषार्थ - प्रकृति प्रदेश बंध का कारण - योग, स्थितिअनुभागबंध का कारण → कषाय। उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय, सयोगकेवली के जो प्रतिसमय बंध होता है उसके स्थिति और अनुभाग बंध का कारण कषाय नहीं है। अयोगकेवली में चारो प्रकार के बंध के कारण योग और कषाय नहीं है अतः उनको बन्ध नहीं होता।

सेढिअसंखेज्जदिमा जोगट्ठाणाणि होंति सव्वाणि ।
तेहिं असंखेज्जगुणो पयडीणं संगहो सव्वो ।।२५८।।

अन्वयार्थ - (सव्वाणि जोगट्ठाणाणि) सर्व योगस्थान **(सेढिअसंखेज्जदिमा)** जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं **(तेहिं)** उनसे **(असंखेज्जगुणो)**असंख्यातगुणे **(पयडीणं सव्वो संगहो)** प्रकृतियों का सर्वसंग्रह है।

विशेषार्थ - यहाँपर १) योगस्थान २) प्रकृतिसंग्रह ३) स्थितिभेद ४) स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान ५)अनुभागबन्धाध्यवसाय स्थान ६) कर्मों के प्रदेश ; इन छहों का अल्पबहुत्व कहा है।

१) योगस्थान जगतश्रेणी के असंख्यातवें भाग हैं, २) उनसे असंख्यातलोक गुणा सब प्रकृतियों का समूह है, ३) उनसे असंख्यात गुणे प्रकृतियों की स्थिति के भेद हैं। ४) उनसे असंख्यातगुणे स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान हैं, ५) उनसे अनुभागाध्यवसाय स्थान

असंख्यातलोक गुणे हैं, ६) उनसे कर्म के प्रदेश अनन्तगुणे हैं।

१) योगस्थान- सब योगस्थान जगत्‌श्रेणि के असंख्यातवे भागप्रमाण हैं। पीछे के पृष्ठपर सब सान्तर, निरन्तर, सान्तरनिरन्तर योगस्थानों का जोड किया है वह [१— / — १८ १— / छे ∂ / ∂ ∂ २ ∂ / ∂] इतना है इसमें एक घाटि पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग की संदृष्टि ३१ का अंक है अत: सब योगस्थानों की संदृष्टि [१— / — ३१ १— / ∂ २ ∂ / ∂]

२) प्रकृतिसंग्रह - ≡∂ ≡∂ २ सब प्रकृतियों के उत्तरोत्तर भेद मिलानेपर इतने होते हैं। इसका खुलासा →

ज्ञानावरण के भेद	**उत्तरोत्तर प्रकृति भेदों की संख्या**	**अर्थसंदृष्टि**
मतिज्ञानावरण	असंख्यात लोक × असंख्यात लोक	≡∂ ≡∂
श्रुतज्ञानावरण	असंख्यात लोक × असंख्यात लोक	≡∂ ≡∂
देशावधिज्ञानावरण	$\left(\text{लोक} - \frac{\text{घनांगुल}}{\text{असंख्यात}}\right) \times \frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}} + १$	१—— / ≡ - ६ २ / ∂ ∂
परमावधिज्ञानावरण	अग्निकायजीवराशि × अग्निकाय अवगाहन विकल्प $\left\{\text{असंख्यात लोक} \times \frac{\text{घनांगुल}-१}{\text{असंख्यात}} \times \text{असंख्यात}\right\} + १$	१—— / १८ / ≡∂ ६ ∂ / ∂
सर्वावधिज्ञानावरण	एक	१
मन:पर्ययज्ञानावरण	असंख्यात कल्पकालमात्र	क ∂
केवलज्ञानावरण	एक	१

ज्ञानावरणीय कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ पाँच हैं। उनमें से श्रुतज्ञानावरण के असंख्यात लोकमात्रबार षट्‌स्थान वृद्धि से बढ़े हुए पर्याय समास आदि भेदों के आवरण की अपेक्षा असंख्यात लोक गुणित असंख्यात लोक प्रमाण भेद होते हैं ≡∂ ≡∂

उतने ही मतिज्ञानावरण के भेद है ≡∂ ≡∂ क्योंकि श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है।

मतिज्ञानावरण + श्रुतज्ञानावरण

≡∂ ≡∂ + ≡∂ ≡∂ → ≡∂ ≡∂ २ इतने मतिश्रुतज्ञानावरण के कुल भेद हैं।

देशावधि , परमावधि, सर्वावधि, मन:पर्यय ज्ञान के जितने भेद ज्ञानमार्गणा में कहे थे उतने ही उन ज्ञानोंपर आवरण करनेवाले देशावधिज्ञानावरणादिक के भेद होते हैं अत: उपर्युक्त भेद कहे हैं।

मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरण के भेदों का जोड $\equiv \partial \equiv \partial\ \text{२}$ इतना हुआ था उसमें अन्य देशावधिज्ञानावरणादिक के भेद मिलाना अर्थात उपर्युक्त संदृष्टि में कुछ अधिक की संदृष्टि करना $\equiv \partial \equiv \partial\ \overset{|}{\text{२}}$ ज्ञानावरण के प्रकृतिभेद

सब प्रकृतियाँ नामकर्म के निमित्त से होती हैं। अत: नामकर्म की प्रकृतियों में आनुपूर्वी प्रकृति के उत्तरोत्तर भेद कहते हैं। आनुपूर्वी क्षेत्रविपाकी है। अत: क्षेत्र की अपेक्षा उसके भेद होते हैं।

नारकानुपूर्वी के भेद →नारकानुपूर्वी नरकक्षेत्रविपाकी है। नरकक्षेत्र एकराजुप्रतर प्रमाण है। वहाँ उष्ट्रादि मुखाकारों के सिवाय अन्यत्र उत्पत्ति नहीं होती। उष्ट्रादि मुखाकार सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण आयामवाले हैं अत: एक राजु प्रतर से उसे गुणा करना। $\frac{=\ \ \text{२}}{\text{४९}\ \ \partial}$ पर्याप्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य नरक में जाते है। उनकी जघन्य अवगाहना तो घनांगुल के संख्यातवें भाग है। उससे पूर्वोक्त क्षेत्र को गुणा करनेपर जो क्षेत्र का प्रमाण हो सो नरकानुपूर्वी का पहला भेद है।

इसका खुलासा

उत्सेध घनाङ्गुल के संख्यातवें भागमात्र सब से जघन्य अवगाहना के साथ नरकगति को जाने वाले और विशिष्ट मुखाकार रूप से स्थित सिक्थमत्स्य के नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी का एक विकल्प पाया जाता है। पुन: उसी जघन्य अवगाहना के साथ नरक गति को जानेवाले दूसरे सिक्थमत्स्य के नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी का दूसरा विकल्प पाया जाता है क्यों कि पहले के जीवप्रदेशों का अनुपरिपाटी से जो अवस्थान पाया जाता है उससे यहाँ पर पहले के आकाशप्रदेशों से भिन्न आकाशप्रदेशों के संबंध से अवस्थान देखा जाता है। उसी सबसे जघन्य अवगाहना के साथ नरकगति को प्राप्त होनेवाले अन्य सिक्थमत्स्य के नरकगत्यानुपूर्वी का तृतीय विकल्प प्राप्त होता है कारण पूर्वोक्त ही कहना चाहिये। इसप्रकार सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग से तिर्यक्प्रतर (राजुप्रतर) को गुणित करनेपर जितने आकाशप्रदेश उपलब्ध होते हैं उतने ही सिक्थमत्स्य की सबसे जघन्य अवगाहना की अपेक्षा नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी के विकल्प प्राप्त होते हैं यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

एकप्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना के साथ नरकों में उत्पन्न होनेवाले सिक्थमत्स्यों के नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी के उतने ही विकल्प प्राप्त होते हैं। इसप्रकार पृथक् पृथक् सर्व अवगाहना विकल्पों में नरकगत्यानुपूर्वी के सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग से गुणित राजुप्रतरप्रमाण विकल्प होते हैं। ऐसा समझकर सिक्थमत्स्य की अवगाहना को महामत्स्य की अवगाहना में से घटाकर जो शेष रहे उसमें जघन्य अवगाहना के विकल्प की अपेक्षा एक मिलानेपर सर्व अवगाहनाविकल्प प्राप्त होते हैं। **'आदि अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा'** इस सूत्र के अनुसार

$$\left(\frac{\text{उत्कृष्ट अवगाहना - जघन्य अवगाहना}}{\text{वृद्धि (चय)}}\right) + १ = \text{सर्व अवगाहनाविकल्प}$$

$$\frac{६१ - \frac{६}{१}}{१} + १ = \text{समच्छेद करनेपर } \frac{६११}{१} - \frac{६}{१} + १ = \boxed{\begin{matrix} १\text{—} \\ १\text{⌒} \\ ६११ \\ १ \end{matrix}} \text{ अवगाहनाविकल्प}$$

पुन: यदि एक अवगाहना के विकल्प की अपेक्षा नरकगत्यानुपूर्वी के ≡ × २ / ४९ ∂ इतने विकल्प होते हैं तो संख्यातघनाङ्गुल (१— / १⌒ / ६११ / १) मात्र अवगाहनाविकल्पों के कितने भेद प्राप्त होंगे ?

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध
१	≡ २ / ४९ ∂	१— / १⌒ / ६११ / १	१— / १⌒ / ≡ २ ६११ / ४९ ∂ १
एक के	इतने भेद तो	सर्व अवगाहना के कितने ?	

इतने आकाशप्रदेशप्रमाण नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी की उत्तरोत्तर प्रकृतियाँ होती हैं।

२) तिर्यंचानुपूर्वी के भेद → नारकी, त्रस, स्थावर तिर्यंच, कर्मभूमियाँ मनुष्य, सहस्रार स्वर्गतक के देव तिर्यंचगति में उत्पन्न होते हैं। सो वे आनुपूर्वी के उदय से पूर्व शरीर के आकार को नहीं छोडते। अत: सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के उत्सेध घनाङ्गुल के असंख्यातवे भागप्रमाण सबसे जघन्य अवगाहना के द्वारा तिर्यञ्चों में उत्पन्न होनेपर तिर्यंचानुपूर्वी का एक विकल्प प्राप्त होता है। पुन: दूसरे सूक्ष्म निगोदलब्ध्यपर्याप्त जीव के उसी जघन्य अवगाहना के साथ तिर्यञ्चों में उत्पन्न होनेपर अपूर्व मुखाकार प्राप्त होता है वह

तिर्यंचानुपूर्वी का दूसरा विकल्प होता है। इसप्रकार जघन्य अवगाहना का आलम्बन लेकर घनलोकप्रमाण तिर्यंचानुपूर्वी के विकल्प प्राप्त होते हैं। क्योंकि नूतन नूतन मुखाकार उत्कृष्ट रूप से घनलोकप्रमाण ही होते हैं। पुन: एक प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना के आश्रय से भी घनलोकप्रमाण ही विकल्प होते हैं। इसीप्रकार दो प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना से लेकर महामत्स्य की उत्कृष्ट अवगाहना पर्यन्त इन सर्व अवगाहनाओं सम्बन्धी पृथक् पृथक् घनलोकप्रमाण तिर्यंचानुपूर्वी के विकल्प प्राप्त होते हैं।

(उत्कृष्ट अवगाहना - जघन्य अवगाहना) + १ = सर्व अवगाहनाविकल्प

$$\left(\text{६१} - \frac{\text{६}}{\partial}\right) + \text{१} = \left(\frac{\text{६१}\partial}{\partial} - \frac{\text{६}}{\partial}\right) + \text{१} = \overset{\text{१}\overline{\quad}\ \text{१}\underline{\frown}}{\frac{\text{६१}\partial}{\partial}}$$ तिर्यंचगति में जानेवाले जीवों के सर्व अवगाहनाविकल्प

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध
१	$\equiv$	$\overset{\text{१}\overline{\quad}\ \text{१}\underline{\frown}}{\frac{\text{६१}\partial}{\partial}}$	$\rightarrow \equiv \overset{\text{१}\overline{\quad}\ \text{१}\underline{\frown}}{\frac{\text{६१}\partial}{\partial}}$
एक अवगाहना	के इतने भेद	तो सर्व अवगाहना के कितने भेद?	तिर्यंचानुपूर्वी के भेद

३) मनुष्यानुपूर्वी के भेद → प्रथम छह पृथ्वियों के नारकी, त्रस, स्थावर, कर्मभूमियाँ तिर्यंच, मनुष्य और देव मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं। उत्सेधघनाङ्गुल के असंख्यातवें भागप्रमाण सबसे जघन्य अवगाहना के द्वारा सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तक जीव विग्रहगति से मनुष्यों में उत्पन्न हुआ यहाँ मनुष्यानुपूर्वी का एक विकल्प प्राप्त होता है। पुन: दूसरे सूक्ष्मनिगोद लब्ध्यपर्याप्त जीव के जघन्य अवगाहना के साथ विग्रहगति से मनुष्यों में उत्पन्न होनेपर दूसरा विकल्प उत्पन्न होता है। पुन: तीसरे सूक्ष्मनिगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीव के जघन्य अवगाहना के साथ अलब्धपूर्व मुखाकार के द्वारा मनुष्यों में उत्पन्न होनेपर तीसरा विकल्प होता है। इसप्रकार जघन्य अवगाहना का आलम्बन लेकर अलब्धपूर्व नाना मुखाकारों के साथ मनुष्यों मे उत्पन्न होनेवाले सूक्ष्मनिगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के ४५ लाख योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरों के जितने आकाशप्रदेश होते हैं उतने मनुष्यानुपूर्वी के विकल्प उत्पन्न होते है। इसीप्रकार एक प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना से महामत्स्य की उत्कृष्ट अवगाहना पर्यन्त प्रत्येक अवगाहना के साथ $\frac{=}{\text{४९}} \times$ ४५ ल इतने भेद करना चाहिये।

(उत्कृष्ट अवगाहना - जघन्य अवगाहना) + १ = मनुष्य गतिमें जानेवाले जीवों के सर्व अवगाहनाविकल्प

$\left(६१ - \frac{६}{\partial}\right) + १ = \left(६१\partial - \frac{६}{\partial}\right) + १ = \boxed{\overline{१\ \ }\ १ॣ\ ६१\partial\ \partial}$ मनुष्य गतिमें जानेवाले जीवों के सर्व अवगाहनाविकल्प

प्रमाण	**फल**	**इच्छा**	**लब्ध**
१	$\frac{=}{४९}$ ४५ ल	$\overline{१\ \ }$ १ॣ ६१ ∂ ∂	$\boxed{\frac{=}{४९}\ ४५\ ल\ \overline{१\ \ }\ १ॣ\ ६१\partial\ \partial}$
एक अवगाहनाके	इतने भेद तो	इतने अवगाहनाके कितने भेद?	मनुष्यानुपूर्वी के भेद

४) देवानुपूर्वी के भेद → पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच और मनुष्य ही देवों में जन्म लेते हैं। उत्सेधघनाङ्गुल के संख्यातवे भाग मात्र सर्व जघन्य अवगाहना के द्वारा देवगति को जानेवाले सिक्थमत्स्य के देवानुपूर्वी का एक विकल्प उत्पन्न होता है। शेष कथन नरकानुपूर्वी के समान जानना। एक अवगाहना का आलम्बन लेकर नोसौ योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरों के जितने आकाशप्रदेश होते हैं उतने विकल्प जानना चाहिए।

पूर्वोक्त सूत्रानुसार

$\left(६१ - \frac{६}{१}\right) + १ = \left(\frac{६११}{१} - \frac{६}{१}\right) + १ = \boxed{\overline{१\ \ }\ १ॣ\ \frac{६११}{१}}$ देवगति में जानेवाले जीवों के सर्व अवगाहनाविकल्प

प्रमाण	**फल**	**इच्छा**	**लब्ध**
१	$\frac{=}{४९}$ ९००	$\overline{१\ \ }$ १ॣ ६११ १	$\frac{=}{४९}$ ९०० $\overline{१\ \ }$ १ॣ ६११ १
एक अवगाहना के	इतने भेद तो	इतने अवगाहना के कितने भेद	देवानुपूर्वी के सब भेद

आनुपूर्वी के इन उत्तरोत्तर भेदों को पूर्वोक्त ज्ञानावरण के उत्तरोत्तर भेदो में मिलाने से प्रकृतिसंग्रह होता है $\equiv\partial \ \ \equiv\partial^{||}$ २। शेष प्रकृतियों के उत्तरोत्तर भेदों का उपदेश प्राप्त नहीं है।

तेहिं असंखेज्जगुणा ठिदि अवसेसा हवंति पयडीणं ।
ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणा तत्तो असंखगुणा ।।२५९।।

अन्वयार्थ - (तेहिं) उन प्रकृतिविकल्पों से **(पयडीणं अवसेसा ठिदि)** प्रकृतियों के सर्व स्थितिबन्ध के भेद **(असंखेज्जगुणा)** असंख्यात गुणे हैं **(तत्तो)** उनसे **(ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणा)** स्थितिबंधाध्यवसायस्थान **(असंखगुणा)** असंख्यात गुणे हैं।

३)स्थिति के भेद → एक एक प्रकृति के स्थितिभेद जघन्यस्थिति को उत्कृष्ट स्थिति में से घटाकर उसमें एक समय का भाग देकर और उसमें एक मिलानेपर जघन्यस्थिति से उत्कृष्ट स्थितिपर्यन्त एक एक समय से बढ़ते हुए संख्यात पल्यप्रमाण भेद होते हैं।

$$\frac{\text{उत्कृष्टस्थिति - जघन्यस्थिति}}{१} + १ = \text{स्थितिविकल्प}$$

(प११ - प१) + १ = प११ + १ = प११ एक प्रकृति के स्थितिभेद

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध
१	प ११	≡∂ ≡ ∂ २	≡∂ ≡∂ २ प१ १
एक प्रकृति के	इतने स्थितिभेद तो	सब प्रकृतिसंग्रह के कितने स्थितिभेद	स्थितिभेद

इस प्रकार प्रकृतिविकल्प के प्रमाण से संख्यात पल्यगुणे स्थिति के भेद होते हैं।

४) स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान → जिन परिणामों से स्थितिबन्ध होता है उनके स्थानों को स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान कहते हैं।

एक प्रकृति के स्थितिबन्ध के कारणभूत परिणाम → असंख्यात लोक ≡∂

अंकसंदृष्टि → ३१०० माना

एक प्रकृति के स्थितिभेद → प ११ संख्यात पल्य अंकसंदृष्टि से → ४०

नानागुणहानिशलाका → $\frac{\text{पल्य के अर्धच्छेद}}{\text{असंख्यात}}$ $\frac{\text{छे}}{\partial}$ अंकसंदृष्टि → ५

अन्योन्याभ्यस्तराशि → $\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}$ $\frac{\text{प}}{\partial}$ अंकसंदृष्टि २×२×२×२×२ = ३२

गुणहानि आयाम → $\frac{\text{स्थितिभेद}}{\text{नानागुणहानि}}$ $\frac{\text{प}\ ११^{\,१\overline{\quad}\,१\overline{\frown}}}{\text{छे}\ \partial}$ अंकसंदृष्टि → $\frac{४०}{५}$ = ८

दो गुणहानि आयाम → $\text{प}\ ११^{\,१\overline{\quad}\,१\overline{\frown}}\ २ \ \text{छे}\ \partial$ अंकसंदृष्टि → ८×२ = १६

उन स्थिति के भेदों में से सबसे जघन्य स्थिति के बन्ध के कारण स्थितिबन्धाध्यवसाय सबसे थोडे हैं। तो भी असंख्यात लोक मात्र हैं $\equiv\partial$ अंकसंदृष्टि से ९ माने। 'पदहतमुखमादिधनं' इससूत्र के अनुसार -

पद × मुख = आदिधन   पद = गुणहानि आयाम

८×९ = ७२ आदिधन   मुख = जघन्य स्थितिबन्ध के कारण परिणाम

अर्थसंदृष्टि से → गुणहानि आयाम की संक्षेप संदृष्टि गु अतः $\equiv\partial$ गु → आदिधन

चय = $\frac{\text{मुख(आदि)}}{\text{गुणहानि आयाम} + १} = \frac{९}{८+१} = \frac{९}{९}$ = १ चय अर्थसं. $\frac{\equiv\partial}{१\overline{\text{गु}}}$ = चय

$\frac{\text{पद} - १}{२}$ × चय × गच्छ = चयधन $\frac{८ - १}{\cancel{२}} \times १ \times \overset{४}{\cancel{८}}$ = ७ × ४ = २८ चयधन

अर्थसंदृष्टि से $\frac{१\overline{\frown}\ \text{गु}}{२} \times \frac{\equiv\partial}{१\overline{\text{गु}}} \times \text{गु}$ → चयधन $\frac{१\overline{\frown}\ \text{गु}}{२}\frac{\equiv\partial}{१\overline{\text{गु}}}$ गु

आदिधन + चयधन = प्रथम गुणहानिद्रव्य   अंक ७२+२८ = १०० प्रथम गुणहानिद्रव्य

अर्थसंदृष्टि → $\equiv\partial$ गु + $\frac{१\overline{\frown}\ \text{गु}}{२}\frac{\equiv\partial}{१\overline{\text{गु}}} \times$ गु

$\equiv \partial\ \text{गु}\ \text{२}\ {}^{\text{१}}\overline{\text{गु}} + \equiv \partial\ {}^{\text{१}}\overset{\frown}{\text{गु}}\ \text{गु}$
$\text{२}\ {}^{\text{१}}\overline{\text{गु}} \qquad {}^{\text{१}}\overline{\text{गु}}\ \text{२}$

समच्छेद करके समान संख्या निकालकर

$\equiv \partial\ \text{गु}(\text{२}\ {}^{\text{१}}\overline{\text{गु}} + {}^{\text{१}}\overset{\frown}{\text{गु}})$
${}^{\text{१}}\overline{\text{गु}}\ \text{२}$

एक अधिक गुणहानि का दुगुणा किया तो २ गु + २ आता है उसमें एक कम गुणहानि मिलानेपर ३ गुणहानि + १ लब्ध आता है।

$\boxed{\equiv \partial\ \text{गु}\ {}^{\text{१}}\overline{\text{गु}}\ \text{३} \quad {}^{\text{१}}\overline{\text{गु}}\ \text{२}}$ → प्रथम गुणहानि का सर्वधन

यह द्रव्य प्रत्येक गुणहानि में दूना दूना होता है। जैसे १००, २००, ४००, ८००, १६००

$\dfrac{\text{प्रथम गुणहानि द्रव्य}}{\text{१}} \times \dfrac{\text{अन्योन्याभ्यस्तराशि}}{\text{२}} = \text{१००} \times \dfrac{\overset{\text{१६}}{\cancel{\text{३२}}}}{\cancel{\text{२}}} = \text{१६००}$ अंतिम गुणहानि द्रव्य

$\equiv \partial\ \text{गु}\ {}^{\text{१}}\overline{\text{गु}}\ \text{३} \times \dfrac{\text{प}}{\partial\ \text{२}} \rightarrow \equiv \partial\ \text{गु}\ {}^{\text{१}}\overline{\text{गु}}\ \text{३}\ \dfrac{\text{प}}{\partial\ \text{२}}$ (हर: ${}^{\text{१}}\overline{\text{गु}}\ \text{२}$) अंतिमगुणहानि द्रव्य

(अंतधन × गुणकार) - आदिधन = सर्व गुणहानियों का धन

अंकसंदृष्टि (१६००×२)-१०० = ३२०० - १०० = $\boxed{\text{३१००}}$ सर्व गुणहानियों का धन

अर्थसंदृष्टि

$\equiv \partial\ \text{गु}\ {}^{\text{१}}\overline{\text{गु}}\ \text{३}\ \dfrac{\text{प}}{\partial\ \cancel{\text{२}}} \times \cancel{\text{२}} - \equiv \partial\ \text{गु}\ {}^{\text{१}}\overline{\text{गु}}\ \text{३}$ (हर: ${}^{\text{१}}\overline{\text{गु}}\ \text{२}$)

अपवर्तन करके समान संख्याओं को निकालकर शेष रहे $\dfrac{\text{प}}{\partial}$ गुणकार के ऊपर ऋणराशि का शेष गुणकार घाटि करना

$\boxed{\equiv \partial\ \text{गु}\ {}^{\text{१}}\overline{\text{गु}}\ \text{३}\ \dfrac{{}^{\text{१}}\overset{\frown}{\text{प}}}{\partial} \quad {}^{\text{१}}\overline{\text{गु}}\ \text{२}}$

सर्वधन → एक प्रकृति के स्थितिबन्ध के कारणभूत परिणाम

प्रमाण	फल	इच्छा
$\overline{प\ ११}$ (१) एक प्रकृति स्थिति विकल्प के	$\frac{\equiv\partial\ गु।गु\ ३\ प}{गु\ २\quad\partial}$ इतने स्थितिबंधाध्यवसाय तो	$\equiv\partial \equiv\partial^{२}\ \overline{प\ ११}$ सबप्रकृति के स्थितिविकल्पों के कितने स्थितिबंधाध्यवसाय होंगे?

लब्ध

$$\frac{\equiv\partial \equiv\partial^{२}\ \overline{प\ ११}}{\overline{प\ ११}} \times \frac{\equiv\partial\ गु\ गु\ ३\ प}{गु\ २\quad\partial} = \frac{\equiv\partial \equiv\partial^{२} \equiv\partial\ गु\ गु\ ३\ प}{गु\ २\quad\partial}$$

सर्वस्थितिबंधाध्यवसायस्थान

इसप्रकार स्थिति के भेदों से स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक गुणे होते हैं। इन स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानों में अध:प्रवृत्तकरण की तरह अनुकृष्टि रचना विधान होता है। इसका वर्णन आगे गाथा ९४४ में कहेंगे।

अणुभागाणं बंधज्झवसाणमसंखलोगगुणिदमदो।
एत्तो अणंतगुणिदा कम्मपदेसा मुणेदव्वा ।।२६०।।

अन्वयार्थ -(अदो) इन स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों से **(अणुभागाणं बंधज्झवसाणं)** अनुभाग बंधाध्यवसायस्थान **(असंखलोगगुणिदं)** असंख्यातलोकगुणे हैं **(एत्तो)** इनसे **(कम्मपदेसा)** कर्मों के परमाणु **(अणंतगुणिदा)** अनंतगुणे **(मुणेदव्वा)** जानना चाहिये।

विशेषार्थ - अनुभागाध्यवसायस्थान जघन्य स्थितिबन्ध के कारण जो कषायाध्यवसाय स्थान हैं उन सम्बन्धी अनुभागोध्यवसाय स्थान असंख्यातलोक से असंख्यातलोक को गुणा करने पर जो प्रमाण हो उतने हैं। $\equiv\partial \equiv\partial$ यही यहाँ **द्रव्य** जानना।

जघन्यस्थितिबन्ध के कारण जो स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोकवार षट्स्थान वृद्धि को लिये हुए हैं तथापि असंख्यात लोकमात्र ही हैं। $\equiv\partial$ उन्हें यहाँ स्थितिस्थान जानना।

नानागुणहानिशलाका = $\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}\times\text{असंख्यात}} \rightarrow \overset{\text{२}}{\partial\partial}$

गुणहानिआयाम = $\frac{\text{स्थिति}}{\text{नानागुणहानि}} \rightarrow \frac{\equiv\partial}{\overset{\text{२}}{\partial\partial}}$ दो गुणहानि = $\frac{\equiv\partial\text{२}}{\overset{\text{२}}{\partial\partial}}$

अन्योन्याभ्यस्त राशि = $\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}} \rightarrow \overset{\text{२}}{\partial}$

यहाँ जघन्य स्थितिबन्ध के कारण स्थितिअध्यवसाय स्थान से अनुभागाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं वे सबसे थोडे $\equiv\partial\equiv\partial$ हैं। उनको **मुख** कहते हैं।

पद × मुख = आदिधन $\text{गु}\equiv\partial\equiv\partial$ गुणहानि आयाम को ही पद कहते हैं।

$\frac{\text{मुख}}{\text{गुणहानिआयाम} + \text{१}}$ = चय $\frac{\equiv\partial\equiv\partial}{{}^{\text{१}}\overline{\text{गु}}}$ संदृष्टि - गु
चय

$\frac{\text{पद} - \text{१}}{\text{२}} \times \text{चय} \times \text{गच्छ} = \text{चयधन}$

$\frac{\text{गु} - \text{१}}{\text{२}} \times \frac{\equiv\partial\equiv\partial}{{}^{\text{१}}\overline{\text{गु}}} \times \text{गु} \rightarrow \frac{{}^{\text{१}}\overset{\frown}{\text{गु}}\equiv\partial\equiv\partial\,\text{गु}}{\text{२}\,{}^{\text{१}}\overline{\text{गु}}}$

आदिधन + चयधन = प्रथम गुणहानिद्रव्य

$\equiv\partial\equiv\partial\,\text{गु} + \frac{{}^{\text{१}}\overset{\frown}{\text{गु}}\equiv\partial\equiv\partial\,\text{गु}}{\text{२}\,{}^{\text{१}}\overline{\text{गु}}}$ समच्छेद करने पर

$\frac{\equiv\partial\equiv\partial\,\text{गु}\,\text{२}\,{}^{\text{१}}\overline{\text{गु}}}{\text{२}\,{}^{\text{१}}\overline{\text{गु}}} + \frac{{}^{\text{१}}\overset{\frown}{\text{गु}}\equiv\partial\equiv\partial\,\text{गु}}{\text{२}\,{}^{\text{१}}\overline{\text{गु}}}$ दोनों संख्याओ में से समान संख्या निकालकर

$\frac{\equiv\partial\equiv\partial\,\text{गु}\,(\text{२}\,{}^{\text{१}}\overline{\text{गु}} + {}^{\text{१}}\overset{\frown}{\text{गु}})}{\text{२}\,{}^{\text{१}}\overline{\text{गु}}} - \boxed{\frac{\equiv\partial\equiv\partial\,\text{गु}\,{}^{\text{१}}\overline{\text{गु ३}}}{\text{२}\,{}^{\text{१}}\overline{\text{गु}}}}$ एक अधिक गुणहानि का दुगुणा, २ अधिक २ गुणहानि होता है उसमें १ कम गुणहानि मिलानेपर ३ गुणहानि और एक अधिक होता है।

आगे क्रम से प्रत्येक गुणहानि में दूना दूना होता जाता है।

प्रथमगुणहानि× $\frac{\text{अन्योन्याभ्यस्तराशि}}{२}$ =अंतिमगुणहानि का धन $\frac{\equiv\partial\equiv\partial \text{ गु } \overset{१}{\overline{\text{गु}}}\ ३}{२\,\overset{१}{\overline{\text{गु}}}}\ \overset{२}{\partial}\ २$

'अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रुऊणुत्तरभजियं' इस सूत्र के अनुसार

$\left(\frac{\text{अंतिम गुणहानि का धन × गुणकार}}{\text{गुणकार - १}}\right)$ − (प्रथम गुणहानि का धन) = सर्वगुणहानियों का धन

$\frac{\equiv\partial\equiv\partial \text{ गु } \overset{१}{\overline{\text{गु}}}३}{२\,\overset{१}{\overline{\text{गु}}}}\ \overset{२}{\partial}\ \cancel{२} \times \cancel{२} - \frac{\equiv\partial\equiv\partial \text{ गु } \overset{१}{\overline{\text{गु}}}\ ३}{२\,\overset{१}{\overline{\text{गु}}}} \rightarrow \boxed{\frac{\equiv\partial\equiv\partial \text{ गु } \overset{१}{\overline{\text{गु}}}\ ३}{२\,\overset{१}{\overline{\text{गु}}}}\ \overset{१}{\overset{२}{\partial}}}$

सर्वगुणहानियों का धन

जघन्य स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानसम्बन्धी अनुभागाध्यवसाय स्थानों का इतना प्रमाण होता है। जो एक स्थितिभेद के अनुभागाध्यवसाय स्थान के भेद इतने हुए तो पूर्वोक्त सब स्थितिभेदों के अनुभागाध्यवसाय स्थान के कितने भेद हुए इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर

प्रमाण	फल	इच्छा $\frac{\text{फल × इच्छा}}{\text{प्रमाण}}$ = लब्ध
१	$\frac{\equiv\partial\equiv\partial \text{ गु } \overset{१}{\overline{\text{गु}}}\ ३}{२\,\overset{१}{\overline{\text{गु}}}}\ \overset{१}{\overset{२}{\partial}}$	$\equiv\partial\equiv\ \partial\ \overset{\shortmid\shortmid}{२}\ \overset{१}{\overline{\text{प}११}}$
लब्ध $\equiv\partial\equiv\ \partial\ \overset{\shortmid\shortmid}{२}\ \overset{१}{\overline{\text{प}११}}\ \frac{\equiv\partial\equiv\partial \text{ गु } \overset{१}{\overline{\text{गु}}}\ ३}{२\,\overset{१}{\overline{\text{गु}}}}\ \overset{१}{\overset{२}{\partial}}$ अनुभागाध्यवसायस्थान		

इस प्रकार स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानों से अनुभागाध्यवसायस्थान असंख्यात लोक गुणे हैं।

कर्मप्रदेश - सत्ता में स्थित कर्मपरमाणु किंचित् ऊन डेढ़गुणहानि गुणित समयप्रबद्धप्रमाण होते हैं। त्रिकोणयन्त्र सम्बन्धी जोड करने का विधान जीवकाण्ड गाथा २५८ में तीन प्रकार से कहा है। उसमें से अधिक-अधिक संकलन विधान से यहाँ सर्व कर्मों का जोड किया है। कर्मपरमाणुओं की संख्या अनन्त है अत: अनुभागाध्यवसायस्थानों से कर्मप्रदेश अनन्तगुणे हैं।

सत्त्वरूप कर्मपरमाणुओं का जोड करने का विधान -

अधिक अधिक संकलन -

बढ़ते बढ़ते प्रमाणसहित निषेकों को क्रम से जोडना उसे अधिक अधिक संकलन कहते हैं।

त्रिकोण यंत्र में ऊपर से लेकर आठपंक्तिपर्यंत अंतिम गुणहानि है।

अंतिम गुणहानि		आदिधन	चय का प्रमाण
अंत निषेक	९	९ × १	०
सप्तम	९ १०	९ × २	१ × १
षष्ठ	९ १० ११	९ × ३	१ × ३
पंचम	९ १० ११ १२	९ × ४	१ × ६
चतुर्थ	९ १० ११ १२ १३	९ × ५	१ × १०
तृतीय	९ १० ११ १२ १३ १४	९ × ६	१ × १५
द्वितीय	९ १० ११ १२ १३ १४ १५	९ × ७	१ × २१
प्रथम निषेक	९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६	९ × ८	१ × २८

सब निषेकों में अंत निषेक समान द्रव्य को अलग किया और उन निषेकों में से अंतनिषेक से जितने चय अधिक पाये जाते हैं उनको अलग किया यहाँ ऊपर की पंक्ति में एक नौ का ही निषेक हैं उसे लिखा उसमें चय का अभाव है। पुनश्च उसके नीचे की पंक्ति में दो निषेक है इसलिए दो अंतिम निषेक लिखे और आगे द्विचरम निषेक में एक चय अधिक है इसलिए चय एक लिखा। उसके नीचे की पंक्ति में तीन निषेक है इसलिए अंतनिषेक तीन ९×३ लिखे और आगे द्विचरम निषेक में एक चय और त्रिचरमनिषेक में दो चय ऐसे तीन चय अधिक है इसलिए तीन चय लिखे ऐसे ही सर्व जानने। दोनो पंक्तियों का जोड़ करना। उसमें प्रथमपंक्ति का जोड़ गच्छ का एकबार संकलनमात्र चरमनिषेक प्रमाण होता है। गच्छ = ८

$$\text{चरमनिषेक} \times \frac{\text{गच्छ}}{२} \times \frac{\text{गच्छ} + १}{१} = \text{आदिधन का प्रथमपंक्ति का संकलन}$$

$$९ \times \frac{\overset{४}{\cancel{८}}}{\underset{१}{\cancel{२}}} \times \frac{८+१}{१} = ९ \times ३६ = ३२४,$$ संदृष्टि $९\ \frac{८}{२}\ \ \frac{८+१}{१}$

दूसरी चयपंक्ति का संकलन =

एक कम गच्छ का दो बार संकलनमात्र चयप्रमाण है

चय $\times \frac{\text{गच्छ} - १}{३} \times \frac{\text{गच्छ}}{२} \times \frac{\text{गच्छ} + १}{१}$ = चयपंक्ति का जोड़

$$१ \times \frac{८ - १}{३} \times \frac{८}{२} \times \frac{८ + १}{१} = १ \times \frac{७}{\cancel{३}} \times \frac{\overset{४}{\cancel{८}}}{\cancel{२}} \times \frac{\overset{३}{\cancel{९}}}{१} = ८४$$

संदृष्टि→ $१ \,|\, \frac{\overset{१\frown}{८}}{३} \,|\, \frac{८}{२} \,|\, \frac{\overset{१-}{८}}{१}$

प्रथम पंक्ति का जोड़ + द्वितीय पंक्ति का जोड़ = अंतिम गुणहानि का सर्वधन

$९ \times \frac{८}{२}\ \frac{\overset{१-}{८}}{१} + १ \,|\, \frac{\overset{१\frown}{८}}{३} \,|\, \frac{८}{२} \,|\, \frac{\overset{१-}{८}}{१}$ अंक से ३२४+८४ = ४०८ अंतिम गुणहानि का सर्वधन

समच्छेद

$$\frac{९ \times ८ \times \overset{१-}{८} \times ३}{३\quad २\quad १} + \frac{१ \times \overset{१\frown}{८} \times ८ \times \overset{१-}{८}}{३\quad २\quad १}$$

$$\frac{८ | ८ | \overset{१-}{८} | \overset{२-}{८} \times ४ \times १}{६}$$

अन्य समान देखकर $\overset{१-}{८} \times ३$ गुणकार में $\overset{१\frown}{८}$ मिलाया तब ९×३=२७+७= ३४ अर्थात् चार गुणहानि $\overset{८\times४}{३२} + २$= हुए।

इसीको इस रूपमें लिखा

अंतिम गुणहानि का संकलन धन → $\frac{१ | \overset{२-}{८} | ४ | ८ | \overset{१-}{८}}{६}$ | $\frac{१ \times ३४ \times \overset{४}{\cancel{\overset{२-}{८\times४}}} \times \overset{३}{\cancel{९}}}{\underset{\cancel{२}}{\cancel{६}}} = ३४ \times १२ = ४०८$

द्विचरम गुणहानि का संकलन

अंतिम गुणहानि के नीचे की आठ पंक्तिरूप द्विचरम गुणहानि है। उसमें अंतिम गुणहानि के प्रथम निषेक में जो नौ से लेकर १६ तक निषेक है वे सर्व पंक्तियों में पाये जाते है और अंतिम गुणहानि की अंन्तिम पंक्ति से लेकर सब पंक्तियों में जो निषेक कहे उनसे दोगुणा प्रमाणवाले निषेक भी अंतिम पंक्ति से लेकर सब पंक्तियों में अधिक पाये जाते है।

द्विचरम गुणहानि	
८	१८ १६-९
७	२० १८ १६-९
६	२२ २० १८ १६-९
५	२४ २२ २० १८ १६-९
४	२६ २४ २२ २० १८ १६-९
३	२८ २६ २४ २२ २० १८ १६-९
२	३० २८ २६ २४ २२ २० १८ १६-९
१	३२ ३० २८ २६ २४ २२ २० १८ १६-९

उपर्युक्त अधिक निषेकों में द्विचरम गुणहानि के अंतिम निषेक समान निषेक जुदे रखना और उनके द्विचरम गुणहानि के बढ़ते हुये चय जुदे स्थापन करने पर अंतिम गुणहानि से दो गुणा प्रमाणवाली दोनो पंक्ति इसप्रकार

	अंतिम समान निषेक	चयों का प्रमाण
८	९ × २ × १	०
७	९ × २ × २	२ × १
६	९ × २ × ३	२ × ३
५	९ × २ × ४	२ × ६
४	९ × २ × ५	२ × १०
३	९ × २ × ६	२ × १५
२	९ × २ × ७	२ × २१
प्रथम १	९ × २ × ८	२ × २८

सब प्रमाण अंतिम गुणहानि से दुगुणा होने से इनका जोड़ अंतिम गुणहानि की दोनों पंक्तियों के जोड़ से दूना होता है।

प्रथम पंक्ति का जोड़ द्वितीयपंक्ति का जोड़

$९ \times २ \times \frac{८}{२} \times \frac{\overset{१-}{८}}{१}$ $२ \times \frac{\overset{१\frown}{८}}{३} \times \frac{८}{२} \times \frac{\overset{१-}{८}}{१}$

इन दोनों को पूर्वोक्त प्रकार जोड़नेपर अंतिम गुणहानि के धन से दो गुणा इस द्विचरम-गुणहानि का आदिधन आता है $२ । \frac{\overset{२-}{८} \times ४}{६} । ८ । \overset{१-}{८} = २ \times ३४ \times \frac{\cancel{८}^{४}}{\cancel{६}} \times \frac{\cancel{७}^{३}}{\cancel{२}}$

$= ४०८ \times २ = ८१६$

प्रथमपंक्ति $९ \times २ \times \frac{\cancel{८}^{४}}{} \times \frac{९}{\cancel{२}^{१}} = ३६ \times १८ = ६४८$

द्वितीयपंक्ति $२ \times ७ \times \frac{\cancel{८}^{४}}{\cancel{३}} \times \frac{\cancel{९}^{३}}{\cancel{२}} = १४ \times १२ = १६८$ $६४८ + १६८ = ८१६$

द्विचरम गुणहानि का आदिधन ८१६ + उत्तरधन १००×८ = द्विचरमगुणहानि सर्वधन

८१६ + ८०० = १६१६ द्विचरमगुणहानि सर्वधन

अंतिम गुणहानि की प्रथम पंक्ति का सर्वधन १०० द्विचरम गुणहानि की सर्व पंक्तियों में पाया जाता है इसलिए उसे आठ से गुणित करने पर द्विचरम गुणहानि में उत्तरधन १००×८ होता है।

त्रिचरम गुणहानि का सर्वधन

द्विचरम गुणहानि के प्रथम पंक्ति के ९ से ३२ तक सब निषेक त्रिचरम गुणहानि के सर्व पंक्तियों में पाये जाते है और द्विचरम गुणहानि के निषेकों से दो गुणा प्रमाणवाले एक, दो आदि अधिक निषेक भी पाये जाते हैं इसलिए वहाँ आदिधन द्विचरम गुणहानि के प्रथमपंक्ति का जोड़ ९ से ३२ तक निषेकों का ३०० × ८ है।

उत्तरधन = पूर्वगुणहानि का उत्तरधन × २ + अंतिमगुणहानि का धन

त्रिचरम गुणहानिका उत्तरधन =१०० × २ +१०० × ८ = २०० + १०० × ८ = ३०० × ८

चतुश्चरम गुणहानि का उत्तरधन =३०० × २ +१०० = ६०० + १०० = ७०० × ८

पंचमचरम गुणहानि का उत्तरधन =७०० × २ +१०० = १४०० + १०० = १५०० × ८

षष्ठचरम (प्रथम)गुणहानिका उत्तरधन =१५००× २ +१००= ३०००+१००=३१०० × ८

आदिधन	उत्तरधन	आदिधन	उत्तरधन
$\frac{१ \times \overset{२-}{८}\vert४\vert८\vert\overset{१-}{८}}{६}$	०	४०८	०
$\frac{२ \times \overset{२-}{८}\vert४\vert८\vert\overset{१-}{८}}{६}$	१०० × ८	८१६	८००
$\frac{४ \times \overset{२-}{८}\vert४\vert८\vert\overset{१-}{८}}{६}$	३०० × ८	१६३२	२४००
$\frac{८ \times \overset{२-}{८}\vert४\vert८\vert\overset{१-}{८}}{६}$	७०० × ८	३२६४	५६००
$\frac{१६ \times \overset{२-}{८}\vert४\vert८\vert\overset{१-}{८}}{६}$	१५०० × ८	६५२८	१२०००
$\frac{३२ \times \overset{२-}{८}\vert४\vert८\vert\overset{१-}{८}}{६}$	३१०० × ८	१३०५६	२४८००
		२५७०४	४५६००
२५७०४ + ४५६०० = ७१३०४ त्रिकोण रचना का सर्वधन			

यहाँ सर्व गुणहानियों के आदिधन का जोड़

संकलन सूत्र → अंतधन ×गुणकार - आदि = सर्वधन

१३०५६ × २ - ४०८

२६११२ - ४०८ = २५७०४

$$\frac{३२ \times \overset{२-}{८}|४|८|\overset{१-}{८}}{६} \times २ - \frac{१ \times \overset{२-}{८}|४|८|\overset{१-}{८}}{६}$$

$$\frac{६४ \times \overset{२-}{८}|४|८|\overset{१-}{८}}{६} - \frac{१ \times \overset{२-}{८}|४|८|\overset{१-}{८}}{६}$$

अन्य सब संख्या समान है ६४ में ऋण का १ गुणकार घटाना।

$$\frac{६३ \times \overset{२-}{८}|४|८|\overset{१-}{८}}{६}$$

उत्तरधन में सर्वत्र १०० × ८ ऐसा ऋण मिलानेपर

०		१०० × ८	=	१०० × ८
१०० × ८	+	१०० × ८	=	२०० × ८
३०० × ८	+	१०० × ८	=	४०० × ८
७०० × ८	+	१०० × ८	=	८०० × ८
१५०० × ८	+	१०० × ८	=	१६०० × ८
३१०० × ८	+	१०० × ८	=	३२०० × ८
			जोड	६३००×८

अंतधन × गुणकार- आदि = सर्वधन
३२००×८×२ - १०० × ८
६४०० × ८ - १०० × ८
६३०० × ८ ऋणसहित उत्तरधन

मिलाया हुआ ऋण = १०० × ८ × ६

तीनों राशियाँ

आदिधन	उत्तरधन	ऋण
(६३।८(२—)। ४। ८। ८(१—)) / ६	६३००।८	१००।८।६

आदिधन	उत्तरधन	ऋण
२५७०४	५०४००	४८००

२५७०४ + ५०४००

(आदिधन + उत्तरधन) - ऋण = त्रिकोण रचना का जोड = ७६१०४ - ४८००

त्रिकोण रचना का जोड = ७१३०४

संदृष्टि से जोड करते है -

यहाँ समयप्रबद्ध शलाका लाने के लिए ६३०० का भाग देकर अपवर्तन करनेपर तीनों राशियाँ -

आदिधन	उत्तरधन	ऋण
(६३।८(२—)। ४। ८। ८(१—)) / ६३००×६	६३००×८ / ६३००	१००×८।६ / ६३००
स ∂ (८(२—)। ४। ८। ८(१—)) / १००। ६	स ∂८×१	स ∂ ८ । ६ / ६३

अपवर्तन करनेपर लब्ध इतना हुआ सब राशियाँ समयप्रबद्ध प्रमाण में लायी गयी अत: स∂ ऐसी संदृष्टि की है।

यहाँ आदिधन के भागहार में सौ का भागहार है उसका गुणहानिप्रमाण में भेदन करना। पहले १०० का भेदन ४ से किया तो १०० = २५×४ आया फिर २५ का गुणहानि से भेदन करनेपर २५=(८×३)+१ अर्थात् ८(१—)।३

१०० = $\overset{\text{१—}}{\text{८}}$।३।४ सौ के आगे छह का गुणकार था उसको ४ से गुणा करनेपर ४×६=२४ हुये इसको गुणहानि में रूपान्तर करनेपर ८×३ हुये अतः आदिधन =

$$\text{स } \partial \; \frac{\overset{\text{२—}}{\text{८}}\text{। ४। ८। }\overset{\text{१—}}{\text{८}}}{\overset{\text{१—}}{\text{८}}\text{। ३। ८। ३}}$$

ऊपर नीचे गुणहानि है उसका अपवर्तन करनेपर

$$\text{स } \partial \; \frac{\overset{\text{२—}}{\text{८}}\text{। ४। }\overset{\text{१—}}{\text{८}}}{\overset{\text{१—}}{\text{८}}\text{। ३।३।}}$$

यहाँ ८ गुणकार के ऊपर एक अधिक है उसके प्रमाण को अलग रखना।

आदिधन	आदिधन का धन
$\text{स } \partial \; \frac{\overset{\text{२—}}{\text{८}}\text{। ४। ८}}{\overset{\text{१—}}{\text{८}}\text{। ३।३}}$	$\text{स } \partial \; \frac{\overset{\text{२—}}{\text{८}}\text{। ४}}{\overset{\text{१—}}{\text{८}}\text{। ३।३}}$
आदिधन $\frac{\text{८। ४। ८}}{\overset{\text{१—}}{\text{८}}\text{। ३।३}}$	आदिधन का धन $\frac{\text{८। ४}}{\overset{\text{१—}}{\text{८}}\text{। ३।३}}$

इन दोनो राशियों के ऊपर ८।४ गुणकार के ऊपर दो अधिक है उसके प्रमाण को नीचे अलग रखकर शेष राशि ऊपर लिखना

आगे सर्वत्र सब संख्याओं के पीछे समयप्रबद्ध की संदृष्टि है ऐसा गृहीत धरना

आदिधन के द्विक का प्रमाण	आदिधन के धन के द्विक का प्रमाण
$\frac{\text{२। ८}}{\overset{\text{१—}}{\text{८}}\text{। ३।३}}$	$\frac{\text{२। १}}{\overset{\text{१—}}{\text{८}}\text{। ३।३}}$

यहाँ लब्ध लाने के लिए पहले द्विक के प्रमाण को ऊपर नीचे तीन से गुणा करनेपर

$$\frac{\text{२×३× ८}}{\overset{\text{१—}}{\text{८}}\text{। ३।३।३}} = \frac{\text{६। ८}}{\overset{\text{१—}}{\text{८}}\text{। ३।३।३}}$$

इसके छह रूपोंमें से चार रूप लेकर ऊपर के आदिधन में मिलाना शेष दो रूप अलग रखना शेष दो का प्रमाण $\frac{\text{२। ८}}{\overset{\text{१—}}{\text{८}}\text{। ३।३।३}}$

आदिधन + चार रूप का प्रमाण

$$\frac{\text{८। ४। ८}}{\overset{\text{१—}}{\text{८}}\text{। ३।३}} + \frac{\text{४ ।८}}{\overset{\text{१—}}{\text{८}}\text{। ३।३।३}}$$

आदिधन में ३ का समच्छेद करना

$\frac{\text{८।४। ८।३}}{\text{१— ८।३।३।३}} + \frac{\text{४। ८}}{\text{१— ८।३।३।३}}$ दोनो संख्याओं में समान संख्याओं को रखकर आदिधनराशि में ८।३ गुणकार शेष रहता है उसके धनराशि का एक प्रमाण अधिक करना

$\frac{\text{८।४। १— ८।३}}{\text{१— ८।३।३।३}} \longrightarrow$ यहाँ गुणकार भागहार में १— ८।३ समान है उनका अपवर्तन करनेपर

$\frac{\text{८। ४}}{\text{३।३}} = \frac{\text{८} \times \text{४}}{\text{९}}$ = आदिधन का प्रमाण

दूसरे द्विक के धन को ऊपर नीचे तीन से गुणा करनेपर $\frac{\text{२। ३}}{\text{१— ८।३।३।३}} = \frac{\text{२। ३}}{\text{१— ८।३।३।३}}$

इन छह रूपोमें से चार रूप लेकर आदिधन के धन में जोडना शेष दो रूप अलग रखना। आदिधन का धन + दूसरे द्विक का चार का रूप

$\frac{\text{८। ४}}{\text{१— ८।३।३}} + \frac{\text{४}}{\text{१— ८।३।३।३}}$ समच्छेद करने के लिए आदिधन के धन में ऊपर नीचे तीन से गुणा करना ।

$\frac{\text{८।४।३}}{\text{१— ८।३।३।३}} + \frac{\text{४}}{\text{१— ८।३।३।३}}$ शेष सब समान देखकर ८ ।३ के ऊपर धनराशिका एक प्रमाण को अधिक करना।

$\frac{\text{४। १— ८।३}}{\text{१— ८।३।३।३}}$ ऊपर नीचे १— ८।३ को समान देखकर अपवर्तन करनेपर शेष

$\frac{\text{४}}{\text{३।३}} = \frac{\text{४}}{\text{९}}$

पहले द्विक के अलग रखे दो रूप में दूसरे द्विक के दो रूप को जोडने के लिए कुछ अधिक की संदृष्टि करना।

पहले द्विक का दो रूप $\frac{\text{२। ८}}{\text{१— ८। ३।३।३}}$ इसमें दूसरे द्विकका दो रूप जोडनेपर $\frac{\text{२।}^{\text{।}}\text{८}}{\text{१— ८। ३।३।३}}$

इसको उपर्युक्त $\frac{\text{४}}{\text{९}}$ आदिधनके धन में अधिक करना। अधिक करने के लिए कुछ अधिक की संदृष्टि करना। $\frac{\overset{\text{।}}{\text{४}}}{\text{९}}$ अपवर्तन करनेपर कुछ कम आधा समयप्रबद्धप्रमाण लब्ध आता है $\frac{\text{१}}{\text{२}}$ —

इस उपर्युक्त लब्ध को उत्तरधन में मिलायी हुई जो ऋणराशि है $\frac{८।६}{६३}$ उसमें से घटाना क्योंकि ऋणराशि में से धनराशि घटानेपर उतनेप्रमाण से ऋणराशि कम हो गयी हो यहाँ ऋणराशि बड़ी है धनराशि छोटी है। अतः ऋण में से धन घटाया। ऋणराशि का प्रमाण संख्यात वर्गशलाकामात्र समयप्रबद्धप्रमाण है व इसमें१ घटाने की संदृष्टि व १— ऋण राशि का प्रमाण

शेष आदिधन + उत्तरधन

$\frac{८।४}{९} + ८$ उत्तरधन का समच्छेद करनेपर

$\frac{८।४}{९} + \frac{८\times९}{९}$ समान संख्या को निकालकर

$\frac{८\times४+९}{९} = \frac{८।१३}{९}$ यहाँ संदृष्टि के लिए गुणहानि का अठरावाँ भाग मिलाना

$\frac{८।१३}{९} + \frac{८}{१८}$

$\frac{८।१३\times२}{९\times२} + \frac{८}{१८}$ समच्छेद करनेपर

$\frac{८\times२६}{९\times२} + \frac{८}{१८}$ सब समानता देखकर छब्बीस में धनराशि का एक प्रमाण जोडना $\frac{८।२७}{१८}$ नौ से अपवर्तन करनेपर $\frac{८\times३}{२}$ यह राशि समयप्रबद्ध के प्रमाण में है अतः स $\partial \frac{८।३}{२}$ डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्धप्रमाण लब्ध आया इसमें दो ऋण घटाना है - १) प्रथम ऋण कुछ कम संख्यात वर्गशलाका गुणित समयप्रबद्ध और २) दूसरा ऋण गुणहानि का अठारहवाँ भाग मिलाया था वह । इन दोनों ऋणराशि को घटाने के लिए डेढ़ गुणहानि के गुणकार में कुछ कम की संदृष्टि करनेपर डेढ़ गुणहानि की संदृष्टि १२ समझना। स ∂ १२— अतः कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्धप्रमाण सत्त्व होता है यह सिद्ध हुआ।

उदयप्रकरण

अब गुणस्थानों में उदय का नियम कहते हैं -

आहारं तु पमत्ते तित्थं केवलिणि मिस्सयं मिस्से ।
सम्मं वेदगसम्मे मिच्छदुगयदेव आणुदओ ।।२६१।।

अन्वयार्थ -(आहारं तु) आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग का उदय **(पमत्ते)** प्रमत्तसंयत गुणस्थान में ही होता है **(तित्थं)** तीर्थंकर प्रकृति का उदय **(केवलिणि)** केवलियों में ही हैं **(मिस्सयं)** मिश्र प्रकृति का उदय **(मिस्से)** तीसरे मिश्रगुणस्थान में ही होता है **(सम्मं)** सम्यक्त्वप्रकृति का उदय **(वेदगसम्मे)** वेदकसम्यग्दृष्टि के ही है **(आणुदओ)** आनुपूर्वी का उदय **(मिच्छदुगयदेव)** मिथ्यादृष्टि, सासादन और असंयत गुणस्थान में ही है।

णिरयं सासणसम्मो ण गच्छदित्ति य ण तस्स णिरयाणू ।
मिच्छादिसु सेसुदओ सगसग चरिमोत्ति णायव्वो ।।२६२।।

अन्वयार्थ -(सासणसम्मो) सासादन सम्यग्दृष्टि **(णिरयं)** नरकगति में **(ण गच्छदित्ति)**नहीं जाता है इसी कारण **(तस्स)** सासादन सम्यग्दृष्टि के **(णिरयाणू ण)** नरकगत्यानुपूर्वी का उदय नहीं है **(सेसुदओ)** शेष प्रकृतियों का उदय **(मिच्छादिसु)** मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में **(सगसग चरिमोत्ति)** अपने-अपने उदयस्थान के अन्तसमय पर्यन्त **(णायव्वो)** जानना चाहिए।

	प्रकृति	**उदय का नियम**
१.	आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग का	प्रमत्त गुणस्थान
२.	तीर्थंकर प्रकृति	सयोग केवली, अयोगकेवली
३.	मिश्रमोहनीय	सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान
४.	सम्यक्त्वमोहनीय	४ से ७ गुणस्थान
५.	आनुपूर्वी (नरकानुपूर्वी छोडकर ३ आनुपूर्वी)	मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत
६.	नरकगत्यानुपूर्वी	मिथ्यादृष्टि, असंयत

विशेषार्थ - उपर्युक्त प्रकृतियों का उदय ऊपर बताये हुए गुणस्थान में ही होता है। अन्य गुणस्थानों में इनका उदय नहीं होता।

स्वभावाभिव्यक्तिः उदयः, स्वकार्यं कृत्वा कर्मरूपपरित्यागो वा।

अपने अनुभागरूप स्वभाव की अभिव्यक्ति को उदय कहते हैं। अपना कार्य करके कर्मरूपता को छोड़ने का नाम उदय है। उदय के अन्त को उदय व्युच्छित्ति कहते हैं। जिस गुणस्थान में जिस प्रकृति की उदय व्युच्छित्ति कहीं है उस गुणस्थान तक उसका उदय होता है। उसके ऊपर के गुणस्थानों में उसका उदय नहीं होता।

उदय - जितनी प्रकृतियों का मूल में उदय कहा हो उनमें से विवक्षित गुणस्थान की अनुदय प्रकृतियाँ कम करने से विवक्षित गुणस्थान की उदय प्रकृतियाँ आती हैं।

अनुदय -जितनी प्रकृतियों का मूल में उदय कहा हो उनमें से विवक्षित गुणस्थान में जितनी प्रकृतियों का उदय कहा हो उनको घटाने से शेष जो प्रकृतियाँ रहे उनका विवक्षित गुणस्थान में अनुदय जानना।

यदि कोई प्रकृति ऊपर के गुणस्थान में उदय में आनेवाली है और विवक्षित गुणस्थान में उसका उदय नहीं है तो उसे उदय में से घटा देना चाहिए और अनुदय में मिलाना चाहिए।

यदि पहले गुणस्थानों में जिसका उदय न था और विवक्षित गुणस्थान में उसका उदय हो तो उस प्रकृति को अनुदय में से घटाना और उदय में मिलाना चाहिए। अनन्तर पूर्व गुणस्थान का अनुदय और उदयव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियों को मिलाने से विवक्षित गुणस्थान की अनुदय प्रकृतियों का प्रमाण निकलता है।

भेदविवक्षा से उदययोग्य प्रकृतियाँ १४८ हैं, अभेदविवक्षासे उदययोग्य १२२ हैं (१४८ में से वर्णादि १६, ५ बंधन, ५ संघात कम करना।)

भूतबली आचार्य के मतानुसार गुणस्थानों में उदय व्युच्छित्ति को क्रम से कहते हैं-

दसचउरिगि सत्तरसं अट्ठ य तह पंच चेव चउरो य।
छच्छक्कएक्कदुगदुग चोद्दस उगुतीस तेरसुदयविही।।२६३।।

अन्वयार्थ - मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में क्रमसे **(दस)** दस **(चउरिगि)** चार,एक **(सत्तरसं)** सतरह**(अट्ठ)** आठ **(तह य)** उसी प्रकार **(पंच चेव)** पाँच, **(चउरो)** चार **(छच्छक्कएक्कदुगदुग)** छह, छह, एक, दो, दो,**(चोद्दस)** चौदह **(उगुतीस)** उनतीस

(य) और **(तेरसुदयविही)** तेरह प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती हैं। (१०-४-१-१७-८-५-४-६-६-१-२-२-१४-२९-१३)

भूतबलीआचार्य के मतानुसार उदयादिक का कोष्टक **उदययोग्य १२२**

क्र.	गुणस्थान	अनुदयविवरण	अनुदय	उदय	उदयव्यु.	उदय व्यु.विवरण
१.	मिथ्यात्व	५ = तीर्थंकर, आहारकद्विक, मिश्र, सम्यक्त्व	५	११७	१०	मिथ्यात्व,आतप, सूक्ष्म,साधारण,अपर्याप्त,. स्थावर,एकेंद्रियादि ४ जाति
२.	सासादन	५+१० +१ = नरकगत्यानुपूर्वी	१६	१०६	४	अनंतानुबंधीकषाय
३.	मिश्र	(१६+४+३)-१ = (३आनुपूर्वी-१मिश्र)	२२	१००	१	मिश्र
४.	असंयत	(२२+१)-५ = ५=आनुपूर्वी ४ + १ सम्यक्त्व	१८	१०४	१७	४ अप्रत्याख्यानकषाय, ६ वैक्रियिकषट्क, २ नरकायु, देवायु,२ मनुष्य-तिर्यंचगत्यानुपूर्वी,१दुर्भग, १अनादेय,१अयशस्कीर्ति
५.	देशसंयत	१८ + १७ =	३५	८७	८	४ प्रत्याख्यानकषाय, शतारचतुष्क (तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, नीचगोत्र, उद्योत)
६	प्रमत्त-संयत	(३५ + ८)- २ = आहारकद्विक	४१	८१	५	आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धि त्रिक
७	अप्रमत्त-संयत	४१ +५ =	४६	७६	४	सम्यक्प्रकृति, अर्धनाराच, कीलित, सृपाटिका संहनन
८	अपूर्व-करण	४६ + ४ =	५०	७२	६	हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा

क्र.	गुणस्थान	अनुदयविवरण	अनुदय	उदय	उदयव्यु.	उदय व्युच्छित्ति विवरण
९.	अनिवृत्ति-करण	५०+६	५६	६६	६	३ वेद, संज्वलन, क्रोध, मान, माया
१०.	सूक्ष्म सांपराय	५६+६	६२	६०	१	संज्वलन सूक्ष्म लोभ
११.	उपशांत-मोह	६२+१	६३	५९	२	नाराच, वज्रनाराचसंहनन
१२.	क्षीणमोह	६३+२	६५	५७	१६	निद्रा प्रचला, ५ ज्ञानावरण,४ दर्शनावरण, ५ अंतराय
१३.	सयोग-केवली	(६५+१६)-१ तीर्थंकर	८०	४२	२९	१ वज्रवृषभ,१ निर्माण, २ स्थिरद्विक,२ शुभद्विक २ स्वरद्विक,२ विहायोगति, २औदारिकद्विक,तैजसद्विक, ६ संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात,परघात, उच्छ्वास, प्रत्येक शरीर
१४.	अयोग-केवली	८०+२९ =	१०९	१३	१३	२ वेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पंचेन्द्रिय, त्रस, बादर,पर्याप्त, सुभग,आदेय, यश, तीर्थंकर, उच्चगोत्र

अब यतिवृषभ आचार्य के मतानुसार उदयव्युच्छित्ति को कहते हैं-

पण णवइगि सत्तरसं अड पंच य चउर छक्क छच्चेव ।
इगि दुग सोलस तीसं वारस उदये अजोगंता ।।२६४।।

अन्वयार्थ-मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में **(पण णवइगि सत्तरसं)** पाँच, नौ, एक, सतरह **(अड पंच य चउर छक्क छच्चेव)** आठ, पाँच, चार, छह, छह ही **(इगि दुग**

सोलस) एक, दो, सोलह **(तीसं बारस)** तीस और बारह **(उदये अजोगंता)** अयोगकेवली पर्यन्त उदयव्युच्छिन्न प्रकृतियाँ हैं।

अब गुणस्थानों में उदयव्युच्छित्ति रूप प्रकृतियों के नाम आठ गाथाओं से कहते हैं-

मिच्छे मिच्छादावं सुहुमतियं सासणे अणेइंदी।
थावरवियलं मिस्से मिस्सं च य उदयवोच्छिण्णा ।।२६५।।

अन्वयार्थ -(मिच्छे) मिथ्यात्व गुणस्थान में **(मिच्छादावं सुहुमतियं)** मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण **(सासणे)** सासादन गुणस्थान में **(अणेइंदी थावर वियलं)** अनन्तानुबन्धी ४ कषाय, एकेन्द्रिय, स्थावर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय **(मिस्से)** मिश्र गुणस्थान में **(मिस्सं च)** मिश्र प्रकृति **(उदयवोच्छिण्णा)** उदय से व्युच्छिन्न होती हैं।

अयदे बिदियकसाया वेगुव्वियछक्क णिरयदेवाऊ ।
मणुवतिरियाणुपुव्वी दुब्भगणादेज्ज अज्जसयं ।।२६६।।

अन्वयार्थ - (अयदे) असंयत गुणस्थान में **(बिदियकसाया)** द्वितीय अप्रत्याख्यानावरण कषाय,**(वेगुव्वियछक्क)** वैक्रियिक षट्क अर्थात् वैक्रियिक शरीर-अंगोपांग, देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी **(णिरयदेवाऊ)** नरकायु, देवायु **(मणुवतिरियाणुपुव्वी)** मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी **(दुब्भगणादेज्ज अज्जसयं)** दुर्भग, अनादेय, अयशकीर्ति इन १७ प्रकृतियों की उदयव्युच्छित्ति होती है।

देसे तदियकसाया तिरियाउज्जोवणीच तिरियगदी ।
छट्ठे आहारदुगं थीणतियं उदयवोच्छिण्णा ।।२६७।।

अन्वयार्थ - (देसे) देशसंयत गुणस्थान में **(तदियकसाया)** तृतीय प्रत्याख्यानावरण कषाय, **(तिरियाउज्जोवणीच तिरियगदी)** तिर्यंचायु, उद्योत, नीच गोत्र और तिर्यंचगति इन ८ की उदयव्युच्छित्ति होती है। **(छट्ठे)** छठे प्रमत्तसंयतगुणस्थान में **(आहारदुगं थीणतियं)** आहारकद्विक और स्त्यानगृद्धित्रिक ये पाँच प्रकृतियाँ **(उदयवोच्छिण्णा)** उदय से व्युच्छिन्न होती हैं।

अपमत्ते सम्मत्तं अंतिमतियसंहदी अपुव्वम्मि ।
छच्चेव णोकसाया अणियट्टीभागभागेसु ।।२६८।।
वेदतियकोहमाणं मायासंजलणमेव सुहुमंते।
सुहुमो लोहो संते वज्जं णारायणारायं ।।२६९।।

अन्वयार्थ -(अपमत्ते) सातवें अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में **(सम्मत्तं य अंतिमतिय संहदी)** सम्यक्त्व प्रकृति और अंतिम तीन संहनन की और **(अपुव्वम्मि)** अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थान में **(छच्चेव णोकसाया)** छह नोकषाय हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इन छह की उदय व्युच्छित्ति होती है **(अणियट्टीभागभागेसु)** अनिवृत्तिकरण के सवेद भाग में क्रम से **(वेदतिय)** तीनों वेद की और अवेद भाग में क्रम से (**कोहमाणं मायासंजलणमेव)** संज्वलन क्रोध, मान, माया की उदयव्युच्छित्ति होती है **(सुहुमंते)** सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान के अंत में **(सुहुमो लोहो)** सूक्ष्म लोभ की और **(संते)** उपशांतकषाय गुणस्थान में **(वज्जं णारायणारायं)** वज्रनाराच और नाराचसंहनन की उदयव्युच्छित्ति होती है।

खीणकसायदुचरिमे णिद्दापयला य उदयवोच्छिण्णा।
णाणंतरायदसयं दंसणचत्तारि चरिमम्मि।।२७०।।

अन्वयार्थ - (खीणकसायदुचरिमे) क्षीणकषाय गुणस्थान के द्विचरम समय में **(णिद्दापयला य)** निद्रा और प्रचला तथा **(चरिमम्मि)** अन्तिम समय में **(णाणंतरायदसयं)** ५ ज्ञानावरण, ५ अन्तराय ये दस और **(दंसणचत्तारि)** चार दर्शनावरण ये १४ प्रकृतियाँ **(उदयवोच्छिण्णा)** उदय से व्युच्छिन्न होती हैं।

तदियेक्कवज्जणिमिणं थिरसुहसरगदिउरालतेजदुगं।
संठाणं वण्णागुरुचउक्कपत्तेय जोगम्हि ।।२७१।।

अन्वयार्थ - (जोगम्हि) सयोगकेवली गुणस्थान में **(तदियेक्कवज्जणिमिणं)** तीसरा कर्म वेदनीय उसके दो भेद हैं उसमें से कोई एक वेदनीय, वज्रर्षभनाराचसंहनन, निर्माण **(थिरसुहसरगदिउरालतेजदुगं)** स्थिरद्विक, शुभद्विक, स्वरद्विक, विहायोगतिद्विक औदारिकद्विक, तैजसद्विक, **(संठाणं)** ६ संस्थान, **(वण्णागुरुचउक्क)** वर्णचतुष्क,

अगुरुलघुचतुष्क और **(पत्तेय)** प्रत्येक शरीर इन ३० प्रकृतियों की उदयव्युच्छित्ति होती है।

तदिएक्कं मणुवगदी पंचिंदियसुभगतसतिगादेज्जं
जसतित्थं मणुवाऊ उच्चं च अजोगिचरिमम्मि ।।२७२।।

अन्वयार्थ - (अजोगिचरिमम्मि) अयोगि गुणस्थान के अन्तिम समय में **(तदिएक्कं)** साता- असाता वेदनीय में से कोई एक **(मणुवगदी)** मनुष्यगति **(पंचिंदियसुभगतसतिगादेज्जं)** पंचेन्द्रिय, सुभग, त्रसत्रिक अर्थात् त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, **(जसतित्थं)** यशस्कीर्ति, तीर्थंकर, **(मणुवाऊ)** मनुष्यायु **(च)** और **(उच्चं)** उच्चगोत्र इन १२ प्रकृतियों की उदय-व्युच्छित्ति होती है।

अब गुणस्थानों में उदयप्रकृतियों को कहते हैं-

सत्तरसेक्कारखचदुसहियसयं सगिगिसीदि छदुसदरी ।
छावट्ठि सट्ठि णवसगवण्णास दुदालबारुदया ।।२७६।।

अन्वयार्थ- (सत्तरसेक्कारखचदुसहियसयं) मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में क्रमसे सतरह सहित सौ (११७), ग्यारह सहित सौ (१११), शून्यसहित सौ (१००), चार सहित सौ (१०४), **(सगिगिसीदि)** सत्त्यासी (८७), इक्यासी (८१), **(छदुसदरी)** छिहत्तर (७६), बहत्तर (७२) **(छावट्ठि)** छियासठ (६६) **(सट्ठि)** साठ (६०) **(णवसगवण्णास)** उनसठ (५९) सत्तावन (५७)**(दुदाल)** बियालीस (४२) और **(बारुदया)** बारह प्रकृतियाँ उदयरूप हैं।

अब अनुदय प्रकृतियों को कहते हैं -

पंचेक्कारसबावीसट्ठारसपंचतीस इगिछादालं।
पण्णं छप्पण्णं बितिपणसट्ठी असीदि दुगुणपणवण्णं।२७७।

अन्वयार्थ -मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में क्रम से **(पंचेक्कारसबावीस-ट्ठारसपंचतीस)** पाँच, ग्यारह, बाईस, अठारह, पैतीस **(इगिछादालं)** इकतालीस, छियालीस, **(पण्णं)** पचास **(छप्पण्णं)** छप्पन **(बितिपणसट्ठी)** बासठ, त्रेसठ, पैसठ **(असीदि)** अस्सी **(दुगुण-पणवण्णं)** पचपन का दुगुणा अर्थात् एकसौ दस प्रकृतियाँ अनुदयरूप हैं।

यतिवृषभ आचार्य के मतानुसार उदयादिक का कोष्टक

क्र.	गुणस्थान	अनुदयविवरण	अनुदय	उदय	उदयव्यु.	उदय व्युच्छित्ति विवरण
१.	मिथ्यात्व	तीर्थंकर, आहारकद्विक, सम्यक्प्रकृति,मिश्र	५	११७	५	मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्मत्रय
२	सासादन	(५+५)+१ = नरकगत्यानुपूर्वी	११	१११	९	४ अनंतानुबंधी कषाय, स्थावर,एकेन्द्रियादि ४ जाति
३	मिश्र	(११+९+३)= आनुपूर्वी-१ मिश्र	२२	१००	१	मिश्र
४	असंयत	(२२+१-५) =	१८	१०४	१७	पूर्व कोष्टक के समान विवरण जानना
५	देशसंयत	(१८+१७) =	३५	८७	८	पूर्व कोष्टक के समान विवरण जानना
६	प्रमत्तसंयत	(३५+८)-२ =	४१	८१	५	पूर्व कोष्टक के समान विवरण जानना
७.	अप्रमत्त-संयत	(४१+५) =	४६	७६	४	पूर्व कोष्टक के समान विवरण जानना
८.	अपूर्वकरण	(४६+४) =	५०	७२	६	पूर्व कोष्टक के समान विवरण जानना
९.	अनिवृत्ति-करण	(५०+६) =	५६	६६	६	पूर्व कोष्टक के समान विवरण जानना
१०.	सूक्ष्म-सांपराय	(५६+६) =	६२	६०	१	पूर्व कोष्टक के समान विवरण जानना
११.	उपशांत-मोह	(६२+१) =	६३	५९	२	पूर्व कोष्टक के समान विवरण जानना
१२.	क्षीणमोह	(६३+२) =	६५	५७	१६	पूर्व कोष्टक के समान विवरण जानना
१३.	सयोग-केवली	(६५+१६)-१= तीर्थंकर	८०	४२	३०	पूर्व कोष्टककी २९+१ साता असातामेंसे कोई एक
१४.	अयोग-केवली	८०+३० =	११०	१२	१२	पूर्व कोष्टक की १३-१ साता असातामेंसे कोई एक

यतिवृषभ आचार्य की अपेक्षा सासादन गुणस्थान में मरा हुआ जीव एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक उत्पन्न हो सकता है। अत: उस अपेक्षा से एकेन्द्रियादि ४ जातियाँ और स्थावर प्रकृति की उदयव्युच्छित्ति दूसरे गुणस्थान में होती है।

भूतबली आचार्य की अपेक्षा सासादन गुणस्थानवर्ती जीव मरकर एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक उत्पन्न नहीं होता अत: उनकी अपेक्षा प्रथम गुणस्थान में ही एकेन्द्रियादिक ४ जाति और स्थावर की उदयव्युच्छित्ति की है।

पहले कोष्टक में १३ वें गुणस्थान में २९ और १४ वें गुणस्थान में १३ ये उदयव्युच्छित्ति नाना जीवों की अपेक्षा कही हैं और दूसरे कोष्टक में ३० और १२ प्रकृति की उदयव्युच्छित्ति एक जीव की अपेक्षा कही हैं।

णट्ठा य रायदोसा इंदियणाणं च केवलिम्मि जदो ।
तेण दु सादासादजसुहदुक्खं णत्थि इंदियजं ।।२७३।।

अन्वयार्थ - (जदो) जिस कारण से **(केवलिम्मि)** केवली में **(रायदोसा णट्ठा)** रागद्वेष नष्ट हो गये हैं **(च)** और **(इंदियणाणं)** इंद्रियज्ञान नष्ट हो गया है **(तेण)** उस कारण से उनमें **(इंदियजं)** इन्द्रिय से उत्पन्न (**सादासादजसुहदुक्खं**) साता असाता के उदय से उत्पन्न सुखदु:ख **(णत्थि)** नहीं हैं।

समयट्ठिदिगो बंधो सादस्सुदयाप्पिगो जदो तस्स ।
तेण असादस्सुदओ सादसरूवेण परिणमदि ।।२७४।।

अन्वयार्थ - (जदो) जिस कारण से **(तस्स)** उस केवली के **(सादस्स)** सातावेदनीय का **(समयट्ठिदिगो)** एक समय स्थितिवाला **(बंधो)** बंध है अत: **(उदयप्पिगो)** उदयरूप ही है **(तेण)** उस कारण से **(असादस्सुदओ)** असाता का उदय **(सादसरूवेण)** सातारूप से **(परिणमदि)** परिणत होता है।

एदेण कारणेण दु सादस्सेव दु णिरंतरो उदओ ।
तेणासादणिमित्ता परीसहा जिणवरे णत्थि ।।२७५।

अन्वयार्थ - (एदेण कारणेण दु) जिस कारण से केवली के **(सादस्सेव दु)**

सातावेदनीय का ही **(णिरंतरो उदओ)** निरंतर उदय है **(तेण)** उस कारण से **(जिणवरे)** जिनेन्द्र भगवान में **(असादणिमित्ता)** असाता के उदय के निमित्त से होनेवाले **(परीसहा)** परीषह **(णत्थि)** नहीं होते हैं।

विशेषार्थ - केवली के साता और असाता के उदय से उत्पन्न होनेवाला सुखदु:ख नहीं होता क्योंकि केवली के घातिकर्मों का नाश हो जाने से राग द्वेष नष्ट हो चुके हैं और इन्द्रियजनितज्ञान नष्ट हो गया है। सुखदु:ख इंद्रियजनित हैं। वेदनीय का सहकारी कारण मोहनीय कर्म है। मोहनीय के अभाव में वेदनीय का उदय होते हुए भी वह अपना कार्य करने में समर्थ नहीं होता।

वेदनीयकर्म केवली के इन्द्रियजन्य सुखदु:ख का कारण नहीं हैं क्योंकि केवली भगवान के सातावेदनीय का बन्ध एक समय की स्थितिवाला है अत: उदयरूप ही है तथा केवली के असातावेदनीय का उदय सातारूप से परिणत होता है। केवली के निरन्तर साता का ही उदय है अत: असाता के उदय से होनेवाले परीषह नहीं होते हैं।

केवलीभगवान के अनन्तगुणहीन अनुभागशक्तिवाली असाता का उदय है, क्योंकि पूर्व में अनेक अनुभागकाण्डकोंके द्वारा असातावेदनीय की अनुभागशक्ति क्षीण की जा चुकी है और मोहनीय की सहायता का भी अभाव हो गया है अत: असातावेदनीय का अप्रकट सूक्ष्म उदय है तथा जो सातावेदनीय का सत्त्व होता है उसका अनुभाग अनन्तगुणा है। सातावेदनीय की स्थिति की अधिकता संक्लेश से एवं अनुभाग की अधिकता विशुद्धता से होती है अत: श्रेणि में विशुद्धता विशेष होने से उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है। फिर उसी अघातित (घात न किये हुए) अनुभाग का सत्त्व केवली के भी पाया जाता है। इसप्रकार केवली के सातावेदनीय का अनुभाग सत्त्व व उदय अनन्तगुणा होता है अत: जो असाता का उदय है, वह भी उदयागत अनुभागयुक्त सातावेदनीय के द्वारा प्रतिहत हो जाता है।

धवल पु. १३ पृ. ५३

शंका - यह तो ठीक है कि साता व असाता में से अन्यतर का उदय ही सम्भव है। परन्तु उपशान्त कषायादि गुणस्थानवर्ती महात्माओं के उदयस्वरूप साता के साथ जब असातावेदनीय उदित होता है तब उनके दोनों साथ में उदित मानने पडेंगे। इसका भी कारण यह कि सयोगकेवली तक के सब जीवों के असाता का उदय सम्भव है। तथा ईर्यापथ आस्रवत्व को परिप्राप्त नवकबद्ध साता तो उदयस्वरूप ही होने से नित्य उदित है ही।

समाधान - ठीक है। चौदहवें गुणस्थान में साता व असाता में से एक का ही उदय रहता है। ग्यारहवें, बारहवें तथा तेरहवें गुणस्थानों में जब प्राचीनकाल की बद्ध असाता का उदय रहता है उस समय एक समय स्थितिवाली नवकबद्ध साता भी उदित होती है अतः इन तीन गुणस्थानों में नवीन बंधनेवाली साता तथा प्राचीन असाता इन दोनों का युगपत् उदय सम्भव है। यद्यपि असातावेदनीय का उदय केवली के पाया जाता है अतः उसके कार्यरूप परीषहों का होना मात्र उपचार से कहा है मुख्यरूपेण तो केवली के परीषह का अभाव ही है।

उदयस्सुदीरणस्स य सामित्तादो ण विज्जदि विसेसो ।
मोत्तूण तिण्णि ठाणं पमत्त जोगी अजोगी य ।।२७८।।

अन्वयार्थ- **(पमत्त)** प्रमत्तसंयत **(जोगी)** सयोगी **(य)** और **(अजोगी)** अयोगी **(तिण्णि ठाणं)** इन तीन गुणस्थानों को **(मोत्तूण)** छोड़कर शेष गुणस्थानों में **(उदयस्स)** उदय **(य)** और **(उदीरणस्स)** उदीरणारूप प्रकृतियों में **(सामित्तादो)** स्वामीपने की अपेक्षा **(विसेसो)** कुछ विशेष **(ण विज्जदि)** नहीं है।

तीसं बारस उदयच्छेदं केवलिणमेगदं किच्चा ।
सादमसादं च तहिं मणुवाउगमवणिदं किच्चा ।।२७९।।

अन्वयार्थ - **(केवलिणं)** सयोग और अयोग केवली के **(तीसं बारस उदयच्छेदं)** तीस और बारह उदयव्युच्छित्ति को **(एगदं किच्चा)** एकत्र करके **(तहिं)** उनमें से **(सादमसादं मणुवाउं च)** साता, असातावेदनीय और मनुष्यायु को **(अवणिदं किच्चा)** घटाना चाहिए।

अवणिदतिप्पयडीणं पमत्तविरदे उदीरणा होदि ।
णत्थित्ति अजोगिजिणे उदीरणा उदयपयडीणं ।।२८०।।

अन्वयार्थ - **(अवणिदतिप्पयडीणं)** घटायी हुई तीन प्रकृतियों की **(पमत्तविरदे)** प्रमत्तसंयत में **(उदीरणा)** उदीरणा व्युच्छित्ति **(होदि)** होती है। **(अजोगिजिणे)** अयोगी जिन में **(उदयपयडीणं)** उदयप्रकृतियों की **(उदीरणा)** उदीरणा **(णत्थित्ति)** नहीं होती।

आगे उदीरणा व्युच्छित्ति कहते हैं-

पण णव इगि सत्तरसं अट्ठट्ठ य चदुर छक्क छच्चेव ।
इगिदुग सोलुगुदालं उदीरणा होंति जोगंता ।।२८१।।

अन्वयार्थ -(जोगंता) मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगी पर्यन्त तेरह गुणस्थानों में क्रम से **(उदीरणा)** उदीरणा व्युच्छित्ति **(पण णव इगि सत्तरसं अट्ठट्ठ य)** पाँच, नौ, एक, सतरह, आठ, आठ **(चदुर छक्क छच्चेव)** चार, छह, छह **(इगिदुग सोलुगुदालं)** एक, दो, सोलह और उनतालीस प्रकृतियों की होती हैं।

आगे उदीरणा प्रकृतियों की संख्या कहते हैं -

सत्तरसेक्कारखचदुसहियसयं सगिगिसीदितियसदरी।
णवतिण्णिसट्ठि सगछक्कवण्ण चउवण्णमुगुदालं ।।२८२।।

अन्वयार्थ -मिथ्यादृष्टि आदि तेरह गुणस्थानों में क्रम से **(सत्तरसेक्कारखचदुसहियसयं)** एकसौ सतरह, एकसौ ग्यारह, सौ, एकसौ चार **(सगिगिसीदि)** सत्यासी, एक्यासी **(तियसदरी)** तिहत्तर **(णवतिण्णिसट्ठि)** उनहत्तर, त्रेसठ **(सगछक्कवण्ण)** सत्तावन, छप्पन **(चउवण्णमुगुदालं)** चौवन और उनतालीस की उदीरणा होती हैं।

आगे अनुदीरणा प्रकृतियों को कहते हैं -

पंचेक्कारसबावीसट्ठारस पंचतीस इगिणवदालं ।
तेवण्णेक्कुणसट्ठी पणछक्कड सट्ठि तेसीदी ।।२८३।।

अन्वयार्थ - मिथ्यादृष्टि आदि तेरह गुणस्थानों में **(पंचेक्कारसबावीसट्ठारस)** पाँच, ग्यारह, बाईस, अठारह **(पंचतीस इगिणवदालं)** पैतीस, इकतालीस, उनचास **(तेवण्णे-क्कुणसट्ठी)** तरेपन, उनसठ **(पणछक्कड सट्ठि)** पैसठ, छियासठ, अड़सठ और **(तेसीदी)** तेरासी प्रकृतियों की अनुदीरणा होती हैं।

विशेषार्थ - उदीरणा - उदीरणा का अर्थ है अपक्वपाचन अर्थात् दीर्घकाल में उदय में आनेवाले कर्मपरमाणुओं में से ऊपर के निषेकों का अपकर्षण करके अल्पस्थितिवाले नीचे के निषेकों में देकर उदयावली में लाकर उदयरूप से भोगकर निर्जरित

होना।

जिस गुणस्थान में जितनी प्रकृतियों का उदय है उस गुणस्थान में उतनी प्रकृतियों की उदीरणा होती है। अयोगकेवली में उदय प्रकृतियों की उदीरणा नहीं होती। १३-१४ वें गुणस्थान की ४२ प्रकृतियों में से साता, असाता, मनुष्यायु इन तीन प्रकृतियों को कम करके शेष ३९ प्रकृतियों की उदीरणा १३ वें गुणस्थान तक ही होती है। इसलिये १३ वें गुणस्थान में ही ३९ प्रकृतियों की उदीरणा व्युच्छित्ति होती हैं।

गुणस्थानों में उदीरणाव्युच्छित्ति, उदीरणा और अनुदीरणा का कोष्टक

उदीरणा योग्य प्रकृतियाँ १२२

क्र.	गुणस्थान	अनुदीरणा	उदीरणा	उदीरणा व्युच्छित्ति	विवरण
१.	मिथ्यात्व	५	११७	५	सामान्य उदयकोष्टक के समान
२.	सासादन	११	१११	९	सामान्य उदयकोष्टक के समान
३.	मिश्र	२२	१००	१	सामान्य उदयकोष्टक के समान
४.	असंयत	१८	१०४	१७	सामान्य उदयकोष्टक के समान
५.	देशसंयत	३५	८७	८	सामान्य उदयकोष्टक के समान
६.	प्रमत्तसंयत	४१ (३५+८-२)	८१	८	आहारकद्विक,स्त्यानगृद्धि त्रिक साता-असातावेदनीय, मनुष्यायु
७.	अप्रमत्तसंयत	४९	७३	४	सामान्य उदयकोष्टक के समान
८.	अपूर्वकरण	५३	६९	६	सामान्य उदयकोष्टक के समान
९.	अनिवृत्तिकरण	५९	६३	६	सामान्य उदयकोष्टक के समान
१०.	सूक्ष्मसांपराय	६५	५७	१	सामान्य उदयकोष्टक के समान
११.	उपशांतमोह	६६	५६	२	सामान्य उदयकोष्टक के समान
१२.	क्षीणमोह	६८	५४	१६	सामान्य उदयकोष्टक के समान
१३.	सयोगकेवलि	८३ (६८+१६-१)	३९	३९	सयोग और अयोगकेवली की ३०+१२=४२, ४२ में से सात-असातवेदनीय मनुष्यायु इन तीन प्रकृतियों को कम करना
१४.	अयोगकेवलि	१२२	०	०	

अब गति आदि चौदह मार्गणाओं में उदयत्रिभङ्गी का कथन करते हैं-

गदियादिसु जोग्गाणं पयडिप्पहुदीणमोघसिद्धाणं।
सामित्तं णेदव्वं कमसो उदयं समासेज्ज ।।२८४।।

अन्वयार्थ - (ओघसिद्धाणं) गुणस्थानों में सिद्ध किए जा चुके **(पयडिप्पहुदीणं)** प्रकृति आदिक का **(सामित्तं)** स्वामीपना **(गदियादिसु जोग्गाणं)** गति आदि मार्गणाओं में योग्य प्रकृतियों का **(उदयं समासेज्ज)** उदय का आश्रय करके **(कमसो)** क्रम से **(णेदव्वं)** घटित करना चाहिये।

गदिआणु आउउदओ सपदे भूपुण्णबादरे ताओ ।
उच्चुदओ णरदेवे थीणतिगुदओ णरे तिरिये ।।२८५।।

अन्वयार्थ - (सपदे) विवक्षित भव के प्रथम समय में ही एकसाथ **(गदिआणु आउउदओ)** उस भव सम्बन्धी गति, आनुपूर्वी और आयु का उदय होता है **(भूपुण्णबादरे)** बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीव के ही **(ताओ)** आतप नामकर्म का उदय होता है। **(उच्चुदओ)** उच्चगोत्र का उदय **(णरदेवे)** मनुष्य और देवों में ही होता है। **(थीणतिगुदओ)** स्त्यानगृद्धित्रिक का उदय **(णरे तिरिये)** मनुष्य और तिर्यंचों में ही होता है।

संखाउगणरतिरिये इंदियपज्जत्तगादु थीणतियं ।
जोग्गमुदेदुं वज्जिय आहारविगुव्वणुट्ठवगे ।।२८६।।

अन्वयार्थ - (आहारविगुव्वणुट्ठवगे वज्जिय) आहारक ऋद्धि और वैक्रियिक ऋद्धि की उत्थापना को छोड़कर **(संखाउगणरतिरिये)** संख्यात वर्ष की आयुवाले कर्मभूमि मनुष्य और तिर्यंचों में **(इंदियपज्जत्तगादु)** इन्द्रियपर्याप्ति पूर्ण होने के पश्चात् **(थीणतियं)** स्त्यानगृद्धित्रिक **(उदेदुं जोग्गं)** उदय होने के योग्य हैं।

अयदापुण्णे ण हि थी संढो वि य घम्मणारयं मुच्चा।
थीसंढयदे कमसो णाणुचऊ चरिमतिण्णाणू ।।२८७।।

इगिविगलथावरचऊ तिरिये अपुण्णो णरेवि संघडणं।
ओरालदु णरतिरिए वेगुव्वदु देवणेरइये ।।२८८।।

अन्वयार्थ - (इगिविगलथावरचऊ) एकेन्द्रिय,द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति नामकर्म, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण इनका **(तिरिये)** तिर्यंचों में ही उदय है **(अपुण्णो)** अपर्याप्त का उदय **(णरेवि)** मनुष्यों में भी है।**(संघडणंओरालदु)** छह संहनन, औदारिक शरीर और औदारिक अंगोपांग **(णरतिरिए)** मनुष्य और तिर्यंचों में ही उदययोग्य हैं तथा **(वेगुव्वदु)** वैक्रियिक शरीर और वैक्रियिक अंगोपांग **(देवणेरइये)** देवों और नारकों में ही उदय योग्य हैं।

तेउतिगूणतिरिक्खेसुज्जोवो बादरेसु पुण्णेसु ।
सेसाणं पयडीणं ओघं वा होदि उदओ दु ।।२८९।।

अन्वयार्थ - (तेउतिगूणतिरिक्खेसु बादरेसु पुण्णेसु) तेजस्काय, वायुकाय, साधारण वनस्पतिकाय के सिवाय शेष बादर पर्याप्त तिर्यंचों में **(उज्जोवो)** उद्योत प्रकृति का उदय होता है **(सेसाणं पयडीणं)** शेष प्रकृतियों का **(उदओ)** उदय **(ओघं वा)** गुणस्थान के समान **(होदि)** है।

विशेषार्थ - गति आदि १४ मार्गणाओं में अनुदय, उदय और उदयव्युच्छित्ति का कथन। इस विषय में कुछ विशेष नियम-

१. गति, आनुपूर्वी और आयु का उदय भव के प्रथम समय में एक साथ ही होता है। जिस गति का उदय होगा उसी गतिसम्बन्धी आयु और आनुपूर्वी का भी उदय होगा।

२. आतप नामकर्म का उदय बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीव के ही होता है।

३. उच्चगोत्र का उदय मनुष्य और देवों में होता है।

४. स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्राओं का उदय कर्मभूमियाँ मनुष्य और तिर्यंचो में इन्द्रियपर्याप्ति पूर्ण होने के पश्चात् होने योग्य हैं। किन्तु आहारकऋद्धि और वैक्रियिक ऋद्धि के उत्पत्ति के काल में स्त्यानगृद्धित्रिक का उदय नहीं होता।

५. निर्वृत्त्यपर्याप्तक असंयत में स्त्रीवेद का उदय नहीं होता क्योंकि असंयत सम्यग्दृष्टि मरकर स्त्री पर्याय में जन्म नहीं लेता। अत: असंयत स्त्रीवेदी के चारों आनुपूर्वी का उदय नहीं होता।

६. निर्वृत्त्यपर्याप्तक असंयत में नपुंसक वेद का भी उदय नहीं होता किन्तु जिस मनुष्य ने पहले नरकायु का बन्ध किया है वह यदि कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्व सहित या क्षायिक सम्यक्त्वसहित मरण करता है तो उसकी उत्पत्ति घर्मा नामक प्रथम नरक में होती है। उस अपेक्षा नारकी के निर्वृत्त्यपर्याप्तक असंयत में नपुंसकवेद का उदय पाया जाता है। अत: असंयत नपुंसकवेदी के नरकानुपूर्वी के बिना तीन आनुपूर्वी का उदय नहीं होता।

७. एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति नामकर्म, स्थावर, सूक्ष्म, तिर्यंचद्विक, साधारण, आतप और उद्योत इन तिर्यगेकादश ११ प्रकृतियों का उदय तिर्यचों के ही होता है।

८. अपर्याप्त प्रकृति का उदय मनुष्य और तिर्यंचों के होता है।

९. छह संहनन, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग का उदय मनुष्य और तिर्यंचों के ही होता है।

१०. वैक्रियिक शरीर और वैक्रियिक अंगोपांग का उदय देवों और नारकियों के ही होता है।

११. उद्योत प्रकृति का उदय तेजस्काय, वायुकाय और साधारण वनस्पतिकाय के सिवाय शेष बादर पर्याप्त तिर्यंचों में होता है।

१२. एकेन्द्रिय, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण और आतप का उदय एकेन्द्रिय में ही पाया जाता है।

१३. स्त्यानगृद्धित्रिक, मिश्र, परघात, उच्छ्वास, स्वरद्विक, विहायोगतिद्विक आतप, उद्योत इन प्रकृतियों का उदय अपर्याप्त अवस्था में नहीं होता। पर्याप्त होने पर ही इनका उदय प्रारंभ होता है।

१४. मनुष्यद्विक, आहारकद्विक, तीर्थंकर इन ५ प्रकृतियों का उदय मनुष्यगति में ही होता है।

१५. अंगोपांग, स्वर और संहनन का उदय त्रसजीवों में ही होता है, एकेन्द्रियों में नहीं।

१६. आनुपूर्वी का उदय कार्मणकाययोग में ही होता है।

प्रकृति	उदय का स्वामी
आतप	बादरपर्याप्त पृथ्वीकायिक
उच्चगोत्र	मनुष्य और देव
स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला	कर्मभूमिज मनुष्य तिर्यंच
एकेन्द्रियादि ४ जाति, स्थावर, सूक्ष्म साधारण, आतप, उद्योत	तिर्यंच
अपर्याप्त	मनुष्य और तिर्यंच
छह संहनन, औदारिकद्विक	मनुष्य और तिर्यंच
वैक्रियिकद्विक	देव और नारकी
उद्योत	तेजस्कायिक, वायुकायिक, साधारण वनस्पति को छोड़कर शेष बादरपर्याप्त तिर्यंच
एकेन्द्रिय, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप	एकेन्द्रिय तिर्यंच

अब नरकगति में उदययोग्य प्रकृतियों को कहते हैं -

थीणतिथीपुरिसूणा घादी णिरयाउणीचवेयणियं ।
णामे सगवचिठाणं णिरयाणू णारयेसुदया।।२९०।।

अन्वयार्थ - (थीणतिथीपुरिसूणा) स्त्यानगृद्धि आदि तीन, स्त्रीवेद और पुरुषवेद से रहित **(घादी)** घातिकर्म **(णिरयाउणीचवेयणियं)** नरकायु, नीचगोत्र, साता और असातावेदनीय **(णामे सगवचिठाणं)** नामकर्म की अपनी भाषा पर्याप्ति काल में होनेवाली उनतीस प्रकृतियाँ और (**णिरयाणू)** नरकगत्यानुपूर्वी ये छिहत्तर प्रकृतियाँ **(णारयेसुदया)** नरकगति में उदययोग्य हैं।

उन उनतीस प्रकृतियों को कहते हैं -

वेगुव्वतेजथिरसुहदुग दुग्गदिहुंडणिमिणपंचिंदी ।
णिरयगदि दुब्भगागुरुतसवण्णचऊ य वचिठाणं ।।२९१।।

अन्वयार्थ - (वेगुव्वतेजथिरसुहदुग) वैक्रियिकद्विक, तैजसद्विक, स्थिरद्विक, शुभद्विक **(दुग्गदिहुंडणिमिणपंचिदी)** अप्रशस्तविहायोगति, हुंडकसंस्थान, निर्माण, पंचेन्द्रिय, **(णिरयगदि)** नरकगति **(दुब्भगागुरुतसवण्णचऊ)** दुर्भगचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, वर्णचतुष्क ये उनतीस प्रकृतियाँ **(वचिठाणं)** भाषापर्याप्ति काल में उदय में आती हैं।

अब घर्मानामक प्रथम नरक में उदयव्युच्छित्ति कहते हैं-

मिच्छमणंतं मिस्सं मिच्छादितिए कमा छिदी अयदे।
बिदियकसाया दुब्भगणादेज्जदुगाउणिरयचऊ ।।२९२।।

अन्वयार्थ - (मिच्छादिदिए) मिथ्यात्वादि तीन गुणस्थानों में **(कमा)** क्रम से **(मिच्छमणंतं मिस्सं)** मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४ कषाय और मिश्र प्रकृति की **(छिदी)** उदयव्युच्छित्ति होती है **(अयदे)** असंयत में **(बिदियकसाया दुब्भगणादेज्जदुगा-उणिरयचऊ)** द्वितीय कषाय अर्थात् अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, दुर्भग, अनादेय अयशस्कीर्ति, नरकायु, नारकचतुष्क अर्थात् नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग इन बारह की उदयव्युच्छित्ति होती है।

नरकगति में उदययोग्य प्रकृतियाँ (७६)

घातिकर्मों की	४२	(४७-५ स्त्यानगृद्धि त्रिक, स्त्रीवेद, पुरुषवेद)
आयु, गोत्र, वेदनीय	४	नरकायु, नीचगोत्र, साता-असाता वेदनीय
नामकर्म की	३०	(वैक्रियिकद्विक,तैजसद्विक,स्थिरद्विक,शुभद्विक,अप्रशस्तविहा-योगति, हुण्डक, निर्माण, पंचेन्द्रिय, नरकगति, दुर्भगचतुष्क, अगुरुचतुष्क, त्रसचतुष्क, वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी)
उदययोग्य	७६	
अनुदय		१२२-७६ = ४६

घर्मा प्रथम नरकपृथ्वी में अनुदय, उदय, उदयव्युच्छित्ति **उदययोग्य ७६**

गुणस्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	उदय व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
मिथ्यात्व	मिश्र, सम्यक्प्रकृति	२	७४	१	मिथ्यात्व
सासादन	(२+१)+१ नरकगत्यानुपूर्वी	४	७२	४	अनन्तानुबन्धी चतुष्क
मिश्र	(४+४)-१ मिश्र का उदय प्रारम्भ	७	६९	१	मिश्र
असंयत	(७+१)-२ (सम्यक्प्रकृति, नरकगत्यानुपूर्वी)	६	७०	१२	अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, दुर्भग, अनादेय, अयशकीर्ति, नरकद्विक, नरकायु, वैक्रियिकद्विक

बिदियादिसु छसु पुढविसु एवं णवरि य असंजदट्ठाणे।
णत्थि णिरयाणुपुव्वी तिस्से मिच्छेव वोच्छेदो ।।२९३।।

अन्वयार्थ - (बिदियादिसु छसु पुढविसु) वंशादि छह पृथ्वियों में **(एवं)** इसी प्रकार हैं **(णवरि)** विशेषता यह है कि **(असंजदट्ठाणे)** असंयत गुणस्थान में **(णिरयाणुपुव्वी)** नरकगत्यानुपूर्वी का **(णत्थि)** उदय नहीं है इसलिये **(तिस्से)** उसकी **(मिच्छेव)** मिथ्यात्व गुणस्थान में ही **(वोच्छेदो)** व्युच्छित्ति होती है।

विशेषार्थ - दूसरी पृथ्वी से लेकर असंयतगुणस्थान में नरकगत्यानुपूर्वी का उदय नहीं है क्योंकि जिसके नरकायुका बन्ध हो गया है ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव प्रथम पृथ्वी में ही जन्म लेता है, दूसरी आदि पृथ्वियों में जन्म नहीं लेता है। इसलिए नरकगत्यानुपूर्वी की व्युच्छित्ति प्रथम गुणस्थान में की है।

द्वितीयादि छह पृथ्वियों में उदय, अनुदय, उदयव्युच्छित्ति **उदययोग्य ७६**

गुणस्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	उदय व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
मिथ्यात्व	मिश्र, सम्यक्प्रकृति	२	७४	२	मिथ्यात्व, नरकगत्यानुपूर्वी
सासादन	२ + २	४	७२	४	अनन्तानुबन्धी चतुष्क
मिश्र	(४ + ४) -१ मिश्र	७	६९	१	मिश्र
असंयत	(७ + १) - १ सम्यक्प्रकृति	७	६९	११	प्रथमपृथ्वीवत्, १२ -१ नरकगत्यानुपूर्वी

अब तिर्यंचगति में उदयादि का कथन करते हैं-

तिरिए ओघो सुरणरणिरयाऊ उच्चमणुदुहारदुगं।
वेगुव्वछक्कतित्थं णत्थि हु एमेव सामण्णे ।।२९४।।

अन्वयार्थ -(तिरिए) तिर्यंचगति में सर्व रचना **(ओघो)** गुणस्थानवत् जानना। विशेष यह है **(सुरणरणिरयाऊ)** देवायु, मनुष्यायु, नरकायु **(उच्च मणुदुहारदुगं)** उच्च गोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आहारकद्विक **(वेगुव्वछक्क तित्थं)** वैक्रियिकषट्क, तीर्थंकर ये १५ प्रकृतियाँ **(णत्थि हु)** उदययोग्य नहीं हैं। अत: १०७ प्रकृतियों का उदय है। **(एमेव)** इसी प्रकार **(सामण्णे)** सामान्य तिर्यंच में भी जानना।

थावरदुगसाहारणताविगिविगलूण ताणि पंचक्खे।
इत्थि अपज्जत्तूणा ते पुण्णे उदयपयडीओ।।२९५।।

अन्वयार्थ -(ताणि) पूर्वोक्त १०७ प्रकृतियों में से **(थावरदुगसाहारणता-विगिविगलूण)** स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप, एकेन्द्रिय और विकलत्रय ये ८ प्रकृतियाँ कम करनेपर ९९ प्रकृतियाँ **(पंचक्खे)** पंचेन्द्रिय तिर्यंच में उदययोग्य हैं। **(इत्थिअपज्जत्तूणा)** स्त्रीवेद और अपर्याप्त से रहित **(ते)** वे ही **(पुण्णे)** पर्याप्त पंचेन्द्रिय

तिर्यंच में **(उदयपयडीओ)** उदययोग्य ९७ प्रकृतियाँ हैं।

पुंसंढूणित्थिजुदा जोणिणिए अविरदे ण तिरियाणू।
पुण्णिदरे थी थीणति परघाददु पुण्णउज्जोवं।।२९६।।
सरगदिदु जसादेज्जं आदीसंठाणसंहदी पणगं।
सुभगं सम्मं मिस्सं हीणा तेअपुण्णसंढजुदा।।२९७।।

अन्वयार्थ - पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच के उदययोग्य ९७ प्रकृतियों में से **(पुंसंढूणित्थिजुदा)** पुरुषवेद, नपुंसकवेद कम करके स्त्रीवेद मिलाने से **(जोणिणिए)** तिर्यंचयोनिनी के उदययोग्य प्रकृतियाँ ९६ हैं। **(अविरदे)** उसके असंयत गुणस्थान में **(तिरियाणू)** तिर्यंचगत्यानुपूर्वी का **(ण)** उदय नहीं हैं। तिर्यंचयोनिनी सम्बन्धी उदययोग्य ९६ प्रकृतियों में से **(थी थीणति)** स्त्रीवेद, स्त्यानगृद्धि त्रिक **(परघाददु)** परघात, उच्छ्वास **(पुण्णउज्जोवं)** पर्याप्त, उद्योत **(सरगदिदु)** स्वरद्विक, विहायोगतिद्विक **(जसादेज्जं)** यशस्कीर्ति, आदेय, **(आदीसंठाणसंहदी पणगं)** आदि के पाँच संस्थान, आदि के पाँच संहनन **(सुभगं)** सुभग **(सम्मं)** सम्यक्त्व **(मिस्सं)** सम्यग्मिथ्यात्व **(हीणा)** इन २७ प्रकृतियों को घटाकार **(अपुण्णसंढजुदा)** अपर्याप्त व नपुंसकवेद मिलाने पर **(ते)** वे ७१ प्रकृतियाँ **(पुण्णिदरे)** पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंच के उदययोग्य हैं।

विशेषार्थ -

सामान्यतिर्यंच में → एकेन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय तक सभी तिर्यंच शामिल हैं।

पञ्चेन्द्रियतिर्यंच में → सभी प्रकार के पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच समाविष्ट हैं। एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक तिर्यंच कम हुए।

पर्याप्ततिर्यंच में → केवल पञ्चेन्द्रियों में से पर्याप्त जीव पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी ही ग्रहण करना।

योनिमत् तिर्यंच में → केवल स्त्रीवेदी पर्याप्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच जीव ही ग्रहण करना।

अपर्याप्त तिर्यंच में → केवल लब्ध्यपर्याप्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच जीव ही ग्रहण करना।

तिर्यञ्चगति में उदयादिका कथन

	उदययोग्य	अनुदय	अनुदय का विवरण
सामान्यतिर्यंच	१०७	१५	देवमनुष्यनरकायु, उच्चगोत्र, मनुष्यद्विक, आहारकद्विक, वैक्रियिकषट्क, तीर्थंकर
पंचेन्द्रियतिर्यंच	९९	२३	१५ पूर्वोक्त + ८ (स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप,एकेन्द्रियादि ४ जाति)
पर्याप्ततिर्यंच	९७	२५	२३ पूर्वोक्त + २ (स्त्रीवेद, अपर्याप्त)
योनिमत्तिर्यंच	९६	२६	२५+२(पुरुषवेद, नपुंसकवेद) २७-१(स्त्रीवेद का उदय है अत:अनुदय में से एक कम किया)
अपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच	७१ (९६-२७+२)	५१	(२६+२७-२) स्त्रीवेद १,स्त्यानगृद्धित्रिक ३, प्रथम पाँच संस्थान ५, पाँच संहनन ५, परघात १,उच्छवास १,उद्योत १,स्वरद्विक २, विहायोगतिद्विक२,पर्याप्त १,सुभग १,आदेय१, यश:कीर्ति१, सम्यक्त्व१, मिश्र१, ये २७ अनुदयरूप हैं। ५३-२ अपर्याप्त और नपुंसक वेद का उदय है अत: अनुदय में से कम करना

सामान्यतिर्यंच में उदयादि त्रिभंगी उदययोग्य १०७, गुणस्थान ५

गुणस्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	उदय व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
मिथ्यात्व	मिश्र, सम्यक्प्रकृति	२	१०५	५	सामान्यवत्
सासादन	२+५ =	७	१००	९	सामान्य गुणस्थानवत्
मिश्र	७+९+१(तिर्यंचगत्यानुपूर्वी) -१ (मिश्र)	१६	९१	१	मिश्र
असंयत	१६+१-२ (सम्यक्प्रकृति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी)	१५	९२	८	अप्रत्याख्यानावरण ४, तिर्यंचानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयश
देशसंयत	१५ + ८ =	२३	८४	८	सामान्यगुणस्थानवत्

पंचेन्द्रियतिर्यंच में उदयादि त्रिभंगी **उदययोग्य ९९, गुणस्थान ५**

गुणस्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	उदय व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
मिथ्यात्व	मिश्र, सम्यक्प्रकृति	२	९७	२	मिथ्यात्व, अपर्याप्त
सासादन	२ + २ =	४	९५	४	अनन्तानुबन्धीकषाय
मिश्र	४+४+१(तिर्यंचगत्यानुपूर्वी) -१ (मिश्र)	८	९१	१	मिश्र
असंयत	८+१-२ (सम्यक्प्रकृति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी)	७	९२	८	सामान्यतिर्यंचवत्
देशसंयत	७ + ८ =	१५	८४	८	सामान्यतिर्यंचवत्

पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच में उदयादि त्रिभंगी **उदययोग्य ९७, गुणस्थान ५**

गुणस्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	उदय व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति का विवरण
मिथ्यात्व	मिश्र, सम्यक्प्रकृति	२	९५	१	मिथ्यात्व,
सासादन	२ + १ =	३	९४	४	अनन्तानुबन्धीकषाय ४
मिश्र	३+४+१(तिर्यंचानुपूर्वी) -१ (मिश्र)	७	९०	१	मिश्र
असंयत	७+१-२ (सम्यक्प्रकृति, तिर्यंचानुपूर्वी)	६	९१	८	सामान्यतिर्यंचवत्
देशसंयत	६ + ८ =	१४	८३	८	सामान्यतिर्यंचवत्

योनिमत् तिर्यंच में उदयादि त्रिभंगी **उदययोग्य ९६, गुणस्थान ५**

गुणस्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	उदय व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति का विवरण
मिथ्यात्व	२ = सम्यक्प्रकृति,मिश्र	२	९४	१	मिथ्यात्व,
सासादन	२ + १ =	३	९३	५	अनन्तानुबन्धीकषाय ४, तिर्यंचानुपूर्वी
मिश्र	(३+५)-१ (मिश्र)	७	८९	१	मिश्र
असंयत	(७+१)-१(सम्यक्प्रकृति)	७	८९	७	अप्रत्याख्यानावरण ४ दुर्भग,अनादेय, अयश
देशसंयत	७ + ७	१४	८२	८	प्रत्याख्यान ४, तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र

✻ अविरत सम्यग्दृष्टि मरकर स्त्रीवेदी तिर्यंच नहीं होता अत: तिर्यंचानुपूर्वी की व्युच्छित्ति दूसरे गुणस्थान में हो गयी।

मणुवे ओघो थावर-तिरियादावदुग-एयवियलिंदी।
साहरणिदराउतियं वेगुव्वियछक्क परिहीणो।।२९८।।

अन्वयार्थ - (मणुवे) सामान्य मनुष्य में **(ओघो)** गुणस्थान के समान है। विशेष यह है कि उन १२२ प्रकृतियों में से **(थावर-तिरियादावदुग-एयवियलिंदी)** स्थावरद्विक, तिर्यंचद्विक, आतपद्विक, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) **(साहरणिदराउतियं)** साधारण, इतर तीन आयु **(वेगुव्वियछक्क)** वैक्रियिकषट्क इन २० प्रकृतियों को **(परिहीणो)** घटाने से उदययोग्य १०२ प्रकृतियाँ हैं।

मिच्छमपुण्णं छेदो अणमिस्सं मिच्छगादितिसु अयदे।
विदियकसायणराणू दुब्भगअणादेज्ज अज्जसयं ।।२९९।।
देसे तदियकसाया णीचं एमेव मणुससामण्णे।
पज्जत्तेवि य इत्थीवेदापज्जत्तपरिहीणो ।।३००।।

अन्वयार्थ - मनुष्यगति में **(मिच्छगादितिसु)** मिथ्यात्वादि तीन गुणस्थानों में क्रमसे **(मिच्छमपुण्ण)** मिथ्यात्व, अपर्याप्त **(अणमिस्सं)** अनन्तानुबन्धी ४ कषाय, मिश्रप्रकृति की **(छेदो)** उदयव्युच्छित्ति होती है। **(अयदे)** असंयतगुणस्थान में **(विदियकसायणराणू)** द्वितीय ४ अप्रत्याख्यान कषाय, मनुष्यगत्यानुपूर्वी **(दुब्भगअणादेज्ज अज्जसयं)** दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति इन आठ प्रकृति की **(देसे)** देशसंयत गुणस्थान में **(तदियकसाया)** तृतीय प्रत्याख्यानावरण कषाय ४, **(णीचं)** नीच गोत्र इन पाँच प्रकृतियों की उदयव्युच्छित्ति होती है। **(एमेव)** इसी प्रकार **(मणुससामण्णे)** सामान्य मनुष्य में जानना। **(पज्जत्तेवि य)** पर्याप्त मनुष्य में भी इसी प्रकार जानना केवल **(इत्थीवेदापज्जत्तपरिहीणो)** स्त्रीवेद और अपर्याप्त प्रकृति कम करना। १०२-२=१०० प्रकृति पर्याप्त मनुष्य में उदययोग्य हैं।

मणुसिणि एत्थीसहिदा तित्थयराहारपुरिससंढूणा।
पुण्णिदरेव अपुण्णे सगाणुगदिआउगं णेयं।।३०१।।

अन्वयार्थ - मनुष्य सम्बन्धी (उदययोग्य १०० प्रकृतियों में से) **(तित्थयराहारपुरिससंढूणा)** तीर्थंकर, आहारकद्विक, पुरुषवेद और नपुंसकवेद ये पाँच प्रकृतियाँ कम करके, **(एत्थीसहिदा)** स्त्रीवेदसहित (१००-५)+१=९६ **(मणुसिणि)** मनुष्यिनी के ९६ प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं। **(अपुण्णे)** लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य के **(पुण्णिदरेव)** लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंच की तरह ७१ प्रकृतियाँ उदय योग्य हैं। (**सगाणुगदिआउगं णेयं**) उनमें तिर्यंच के स्थान पर अपनी मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्य गति और मनुष्यायु जानना।

मणुसोघं वा भोगे दुब्भगचउणीच-संढ-थीणतियं।
दुग्गदितित्थमपुण्णं संहदि-संठाणचरिमपणं ।।३०२।।
हारदुहीणा एवं तिरिये मणुदुच्चगोदमणुवाउं ।
अवणिय पक्खिव णीचं तिरियदु-तिरियाउ-उज्जोवं।।३०३।।

अन्वयार्थ - (भोगे) भोग भूमिज मनुष्यों में, **(मणुसोघं वा)** सामान्य मनुष्य के समान उदय योग्य १०२ प्रकृतियों में से, **(दुब्भग चऊ)** दुर्भग चतुष्क-दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति, **(णीच)** नीच गोत्र, **(संढ)** नपुंसक वेद **(थीणतियं)** स्त्यानगृद्धिआदि तीन निद्रा, **(दुग्गदि)** अप्रशस्त विहायोगति, **(तित्थमपुण्णं)** तीर्थंकर,

(चरिमपणं संहदि-संठाण) अन्तिम पाँच संहनन और अन्तिम पाँच संस्थान, **(हारदुहीणा)** आहारद्विक से रहित [१०२-(४+१+१+३+१+२+५+५+२=२४) = ७८] अठहत्तर प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं।

(एवं) इसी प्रकार **(तिरिये)** भोगभूमि तिर्यंचों में, **(मणुदुच्चगोदमणुवाउं)** मनुष्य गति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उच्च गोत्र, मनुष्यायु **(अवणिय)** कम करके **(तिरियदु-तिरियाउ)** तिर्यंच गति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचायु **(उज्जोवं)** उद्योत **(णीचं)** नीच गोत्र को **(पक्खिव)** जोड़ना चाहिए। इस प्रकार भोगभूमि तिर्यंचों में उद्योत सहित ७९ प्रकृतियाँ उदय योग्य जानना चाहिए।

मनुष्यगति में उदययोग्य प्रकृतियाँ

मनुष्यों के भेद	उदययोग्य	अनुदय	विवरण
सामान्यमनुष्य	१०२	२०	तिर्यग्गतिद्विक २, एकेन्द्रियादि जाति ४, स्थावर१,सूक्ष्म१,साधारण १,वैक्रियिकषट्क ६, आतप १, उद्योत १, नरक-तिर्यंच-देवायु ३
पर्याप्तमनुष्य	१००	२२	२०+२ स्त्रीवेद और अपर्याप्त
मनुष्यनी	९६	२६	(२२+५)-१=२६ ५-तीर्थंकर, आहारकद्विक,पुरुषवेद, नपुंसकवेद का अनुदय है, १-स्त्रीवेदका उदय
अपर्याप्तमनुष्य	७१	५१	५१- लब्ध्यपर्याप्ततिर्यंचवत् समझना। विशेषता इतनी है यहाँ मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी और मनुष्यायु का उदय होता है।
भोगभूमिमनुष्य	७८	४४	सामान्यमनुष्यवत् २०+२४-स्त्यानगृद्धित्रिक, नपुंसकवेद, आहारकद्विक, अन्तिम ५ संस्थान, ५संहनन, अप्रशस्तविहायोगति,अपर्याप्त, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयश,तीर्थंकरत्व, नीचगोत्र
भोगभूमिजतिर्यंचों में	७९	४३	भोगभूमिजमनुष्य में उदययोग्य ७८ प्रकृतियों में से मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, मनुष्यायु और उच्चगोत्र ४ प्रकृतियाँ कम करके तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंचायु, नीचगोत्र और उद्योत मिलाना। (७८-४)+५=७९

सामान्यमनुष्य में उदय-अनुदय- व्युच्छित्ति उदययोग्य १०२, गुणस्थान १४

गुणस्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	उदय व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति का विवरण
मिथ्यात्व	मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, तीर्थंकर	५	९७	२	मिथ्यात्व, अपर्याप्त
सासादन	५ + २ =	७	९५	४	अनन्तानुबन्धीकषाय ४
मिश्र	७+४+१(मनुष्यानुपूर्वी) -१ (मिश्र)	११	९१	१	मिश्र
असंयत	(११ +१)-२ (सम्यक्त्व,मनुष्यानुपूर्वी)	१०	९२	८	अप्रत्याख्यानावरण ४ दुर्भग,अनादेय, अयश, मनुष्यानुपूर्वी
देशसंयत	१० + ८ =	१८	८४	५	प्रत्याख्यानावरण ४, नीचगोत्र
प्रमत्तसंयत	(१८+५)-२ आहारकद्विक	२१	८१	५	आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धि त्रिक
अप्रमत्तसंयत	२१ + ५ =	२६	७६	४	सम्यक्त्व, अर्धनाराच, कीलित,सृपाटिका संहनन
अपूर्वकरण	२६ + ४ =	३०	७२	६	हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा
अनिवृत्ति-करण	३० + ६ =	३६	६६	६	३ वेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया
सूक्ष्मसांपराय	३६ + ६ =	४२	६०	१	संज्वलनलोभ
उपशांतमोह	४२ +१ =	४३	५९	२	वज्रनाराच, नाराचसंहनन
क्षीणमोह	४३ +२ =	४५	५७	१६	निद्रा,प्रचला,ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अंतराय ५
सयोगकेवलि	(४५+१६)-१(तीर्थंकर)	६०	४२	३०	३० - सामान्यगुणस्थानवत्
अयोगकेवलि	६० +३० =	९०	१२	१२	१२ - सामान्यगुणस्थानवत्

पर्याप्तमनुष्य उदय-अनुदय व्युच्छित्ति **उदययोग्य १००, गुणस्थान १४**

क्र.	गुणस्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	उदय व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति का विवरण
१	मिथ्यात्व	५= मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, तीर्थंकर	५	९५	१	मिथ्यात्व
२	सासादन	५ + १ =	६	९४	४	अनन्तानुबन्धीकषाय ४
३	मिश्र	६+४+१(मनुष्यानुपूर्वी) -१ (मिश्र)	१०	९०	१	मिश्र
४	असंयत	(१० +१)-२(सम्यक्त्व, मनुष्यानुपूर्वी)	९	९१	८	अप्रत्याख्यानावरण ४ दुर्भग,अनादेय, अयश, मनुष्यानुपूर्वी
५	देशसंयत	९ + ८ =	१७	८३	५	प्रत्याख्यानावरण ४, नीचगोत्र
६	प्रमत्तसंयत	(१७+५)-२ आहारकद्विक	२०	८०	५	आहारकद्विक,स्त्यानगृद्धि त्रिक
७	अप्रमत्तसंयत	२० + ५ =	२५	७५	४	सम्यक्त्व, अंतिम तीन संहनन
८	अपूर्वकरण	२५ + ४ =	२९	७१	६	हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा
९	अनिवृत्ति-करण	२९ + ६ =	३५	६५	५	पुंवेद, नपुंसकवेद, संज्वलनक्रोध,मान,माया
१०	सूक्ष्मसांपराय	३५ + ५ =	४०	६०	१	संज्वलनलोभ
११	उपशांतमोह	४० +१ =	४१	५९	२	वज्रनाराच, नाराचसंहनन
१२	क्षीणमोह	४१ +२ =	४३	५७	१६	निद्रा,प्रचला,ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अंतराय ५
१३	सयोगकेवलि	(४३+१६)-१(तीर्थंकर)	५८	४२	३०	३०- सामान्यगुणस्थानवत्
१४	अयोगकेवलि	५८ +३० =	८८	१२	१२	१२- सामान्यगुणस्थानवत्

मनुष्यनी में उदयादि त्रिभंगी उदययोग्य ९६, गुणस्थान १४

गुण स्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१	मिश्र, सम्यक्त्व	२	९४	१	मिथ्यात्व
२	२+१	३	९३	५	अनन्तानुबन्धीचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी
३	(३+५)-१ मिश्र	७	८९	१	मिश्र
४	(७+१)-१सम्यक्त्व	७	८९	७	अप्रत्याख्यान ४, दुर्भग, अनादेय, अयश
५	७+७	१४	८२	५	प्रत्याख्यान ४, नीचगोत्र
६	१४+५	१९	७७	३	स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला
७	१९+३	२२	७४	४	सम्यक्त्व, अन्तिम तीन संहनन
८	२२+४	२६	७०	६	हास्यादि ६ नोकषाय
९	२६+६	३२	६४	४	स्त्रीवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया
१०	३२+४	३६	६०	१	संज्वलन लोभ
११	३६+१	३७	५९	२	वज्रनाराच, नाराच
१२	३७+२	३९	५७	१६	निद्रा, प्रचला, ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अंतराय ५
१३	३९+१६	५५	४१	३०	सामान्यवत्
१४	५५+३०	८५	११	११	सामान्यवत् १२-१ तीर्थंकर

विशेषार्थ - १. सम्यग्दृष्टि मरकर स्त्रीवेद में उत्पन्न नहीं होता। अत: स्त्रीवेदी असंयत के मनुष्यगत्यानुपूर्वी का उदय नहीं होगा। इसलिए मनुष्यनी के दूसरे गुणस्थान में ही मनुष्यानुपूर्वी की उदयव्युच्छित्ति हो जाती है। स्त्रीवेदी के अपर्याप्त अवस्था में प्रथम दो ही गुणस्थान संभव हैं।

२. भूतपूर्वनैगम नय की विवक्षा से मनुष्यनी में चौदह गुणस्थान घटित किये हैं।स्त्रीवेद के उदय से चढ़े हुए जीव की विशेषता बताने के लिए आगे के गुणस्थान बताये हैं। अर्थात् स्त्रीवेदी को तीर्थंकर प्रकृति का उदय नहीं होगा।

३. लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य का गुणस्थान पहिला ही होता है अत: उसका कोष्टक नहीं है।

भोगभूमिजमनुष्य में उदयादि त्रिभंगी उदययोग्य ७८, गुणस्थान ४

गुणस्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
मिथ्यात्व	मिश्र, सम्यक्त्व	२	७६	१	मिथ्यात्व
सासादन	२ + १	३	७५	४	अनन्तानुबन्धी कषाय ४
मिश्र	(४+३+१ मनुष्यानुपूर्वी)-१ मिश्र	७	७१	१	सम्यग्मिथ्यात्व
असंयत	(७+१)-२ सम्यक्त्व, मनुष्यानुपूर्वी	६	७२	५	अप्रत्याख्यान ४, मनुष्यगत्यानुपूर्वी

भोगभूमितिर्यंच में उदयादि त्रिभंगी उदयोग्य ७९, गुणस्थान ४

गुणस्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
मिथ्यात्व	मिश्र, सम्यक्त्व	२	७७	१	मिथ्यात्व
सासादन	२ + १	३	७६	४	अनन्तानुबन्धीकषाय ४
मिश्र	(३+४+१तिर्यंचानुपूर्वी) -१ मिश्र	७	७२	१	सम्यग्मिथ्यात्व
असंयत	(७ +१)-२ सम्यक्त्व, तिर्यंचानुपूर्वी	६	७३	५	अप्रत्याख्यान ४, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी

भोगं व सुरे णरचउणराउवज्जूण सुरचउसुराउं।
खिव देवे णेवित्थी इत्थिम्मि ण पुरिसवेदो य।।३०४।।

अन्वयार्थ - (भोगं व सुरे) भोगभूमि मनुष्य के समान देवों में (उदययोग्य ७८ प्रकृतियाँ हैं) किंतु उनमें से **(णरचउ)** मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग **(णराउ)** मनुष्यायु, **(वज्जूण)** वज्रर्षभनाराच संहनन इन छह प्रकृतियों को कम करके देवों में **(सुरचउसुराउं)** देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर,

वैक्रियिक अंगोपांग और देवायु, **(खिव)** मिला देने पर ७७ प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं। **(देवे)** देवों में **(णेवित्थी)** स्त्रीवेद का उदय नहीं होता, **(य)** और **(इत्थिम्मि)** देवांगनाओं में **(पुरिस-वेदो)** पुरुषवेद **(ण)** का उदय नहीं होता है। अत: देव-देवांगनाओं में उदययोग्य ७६ प्रकृतियाँ हैं।

देवगति में उदययोग्य प्रकृतियों का विवरण

देवों के भेद	उदययोग्य	अनुदय	
सौधर्मादि नव-ग्रैवेयकपर्यंत	७७	४५	स्त्यानगृद्धित्रिक ३, नपुंसकवेद १,तिर्यगेकादश११, नरकगतिद्विक२, मनुष्यद्विक २,औदारिकद्विक २, आहारकद्विक२, संस्थान५(समचतुरस्रको छोड़कर) संहनन६, अप्रशस्त विहायोगति, अपर्याप्त, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, अयश, तीर्थंकर, देवायुबिना शेष आयु ३, नीचगोत्र
भवनत्रिक देव	७७	४५	उपर्युक्त, केवल देवों में उदययोग्य ७७-१ (स्त्रीवेद)=७६, देवियों में ७७-१ पुंवेद =७६
नौ अनुदिश, अनुत्तर	७०	५२	उपर्युक्त ४५+७ मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४ मिश्र, स्त्रीवेद

सौधर्मादि नव ग्रैवेयकपर्यंत उदयादि त्रिभंगी   उदययोग्य ७७   गुणस्थान ४

गुणस्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
मिथ्यात्व	मिश्र, सम्यक्त्व	२	७५	१	मिथ्यात्व
सासादन	(२ + १)	३	७४	४	अनन्तानुबन्धीकषाय ४
मिश्र	(३+४)+१ देवानुपूर्वी -१ मिश्र	७	७०	१	मिश्र
असंयत	(७ +१)-२ सम्यक्त्व, देवानुपूर्वी	६	७१	९	अप्रत्याख्यान ४, देवद्विक, वैक्रियिकद्विक, देवायु

अविरदठाणं एक्कं अणुद्दिसादिसु सुरोघमेव हवे।
भवणतिकप्पित्थीणं असंजदे णत्थि देवाणू ।।३०५।।

अन्वयार्थ - (अणुद्दिसादिसु) नव अनुदिश, पाँच अनुत्तर इन चौदह विमानों में, **(एक्कं)** एक, **(अविरदठाणं)** असंयत गुणस्थान ही **(हवे)** होता है। **(सुरोघमेव)** ओघ अर्थात् सामान्य से देवों में असंयत गुणस्थान में उदयरूप जो ७० प्रकृतियाँ कही हैं, वे ही यहाँ उदयरूप जानना। **(भवणति)** भवनत्रिक देव-देवियों में (और) **(कप्पित्थीणं)** कल्पवासिनी देवांगनाओं में **(असंजदे)** असंयत गुणस्थान में **(देवाणु)** देवगत्यानुपूर्वी का उदय **(णत्थि)** नहीं होता हैं। (क्योंकि भवनत्रिक और कल्पवासी देवांगनाओं में, सम्यग्दृष्टि जीव मरकर उत्पन्न नहीं होता।)

भवनत्रिकदेव और कल्पवासी देवियों में उदयादि त्रिभंगी उदययोग्य ७६, गुणस्थान ४

गुणस्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१.मिथ्यात्व	मिश्र, सम्यक्त्व	२	७४	१	मिथ्यात्व
२.सासादन	२ + १	३	७३	५	अनन्तानुबन्धीकषाय ४, देवगत्यानुपूर्वी
३.मिश्र	(३ + ५) - १ मिश्र	७	६९	१	मिश्र
४.असंयत	(७ +१)-१ सम्यक्त्व,	७	६९	८	अप्रत्याख्यान ४,देवगति, देवायु, वैक्रियिकद्विक,

१. भवनत्रिक देव व देवियों के पहले, दूसरे गुणस्थान में ही देवगत्यानुपूर्वी का उदय होता है क्योंकि सम्यग्दृष्टि मरकर भवनत्रिक देव व देवियों में जन्म नहीं लेते।

२. अनुदिश व अनुत्तरों में नियम से देव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं इसलिए वहाँपर एक चौथा ही गुणस्थान होता है। उदययोग्य ७० पूर्वोक्त।

तिरिय अपुण्णं वेगे परघादचउक्क-पुण्ण-साहरणं।
एइंदियजसथीणतिथावरजुगलं च मिलिदव्वं।।३०६

रिणमंगोवंगतसं संहदिपंचक्खमेवमिह वियले।
अवणिय थावरजुगलं साहरणेयक्खमादावं।।३०७।।
खिव तसदुग्गदिदुस्सरमंगोवंगं सजादिसेवट्टं।
ओघं सयले साहारणिगिविगलादावथावरदुगूणं।।३०८।।

अन्वयार्थ -

(तिरिय अपुण्णं वेगे) पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंच के समान एकेन्द्रिय में ७१ प्रकृतियाँ हैं, उनमें **(परघादचउक्क)** परघातचतुष्क अर्थात् परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास **(पुण्ण)** पर्याप्त, (साहरणं) साधारण, **(एइंदिय)** एकेन्द्रिय जाति, **(जस)** यशस्कीर्ति, **(थीणति)** स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला **(थावर जुगलं)** स्थावर युगल अर्थात् स्थावर और सूक्ष्म को **(मिलिदव्वं)** मिलाना चाहिये (इन १३ प्रकृतियों को मिलाकर ७१+१३=८४) **(य)** और, **(अंगोवंग)** अंगोपांग, **(तसं)** त्रस, **(संहदि)** सृपाटिका संहनन, **(पंचक्खं)** पंचेन्द्रिय जाति-इन चार प्रकृतियों को **(रिणम्)** कम करने पर (८४-४=८०) एकेन्द्रिय के ८० प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं।

(एवमिह वियले) विकलत्रय में इसी प्रकार अर्थात् एकेन्द्रिय सम्बन्धी उपर्युक्त ८० प्रकृति में से, **(थावर युगलं)** स्थावर युगल अर्थात् स्थावर, सूक्ष्म, **(साहरण)** साधारण, **(एयक्खमादावं)** एकेन्द्रिय जाति और आतप ये ५ प्रकृति **(अवणिय)** कम करके (८०-५=७५), **(तस)** त्रस, **(दुग्गदि)** अप्रशस्त विहायोगति, **(दुस्सरं)** दु:स्वर, **(अंगोवंगं)** अंगोपांग, **(सजादिसेवट्टं)** द्वीन्द्रियादि अपनी अपनी जाति, सृपाटिका संहनन **(खिव)** मिलाने पर, उदय योग्य (७५+६=८१) प्रकृतियाँ हैं। **(सयले)** सकलेन्द्रिय में, **(ओघं)** गुणस्थानोक्त १२२ प्रकृतियों में से **(साहरण)** साधारण, **(इगि)** एकेन्द्रिय, **(विगलादाव)** विकलत्रय (तीन), आतप **(थावरदुग)** स्थावर द्विक अर्थात् स्थावर और सूक्ष्म, **(ऊणं)** कम करके अर्थात् १२२ में से ये ८ प्रकृतियाँ कम करके शेष ११४ प्रकृतियाँ उदय योग्य जानना चाहिए।

इन्द्रियमार्गणा में उदययोग्य प्रकृतियों का विवरण **इन्द्रियमार्गणा के भेद ५**

इन्द्रिय मार्गणा		उदययोग्य प्रकृतियाँ	अनुदययोग्य प्रकृतियाँ
१.एकेन्द्रिय	८०	स्त्रीपुरुषवेद, मिश्र, सम्यक्त्व छोड़कर शेष घाति ४३, वेदनीय २,तिर्यंचायु,तिर्यंचद्विक, एके. जाति, औदारिक शरीर तैजसद्विक, हुंडक, वर्णचतुष्क ४, अगुरुलघु ६, बादर, पर्याप्त प्रत्येक, स्थिर, शुभ, यश, दुस्वर विना स्थावर दशक, निर्माण, नीचगोत्र	४२= स्त्री, पुंवेद, मिश्र,सम्यक्त्व, ३ आयु , वैक्रियिक ६, मनुष्यद्विक२, प्रथम ५ संस्थान, औदा. अङ्गोपाङ्ग,आहारकद्विक २ संहनन ६, विहायोगति २, द्वीन्द्रियादि ४ जाति, १ त्रस, स्वरद्विक २, सुभग, आदेय, तीर्थंकर, उच्चगोत्र
२.द्वीन्द्रिय	८१	८१ = ८० - ५ + ६ त्रस, अप्रशस्तविहायोगति, दुस्वर, अङ्गोपाङ्ग, सृंपाटिका संहनन,द्वीन्द्रियजाति का उदय होने लगा अत: ६ प्रकृतियाँ मिलायी।	४१ = (४२ + ५)- ६ उपर्युक्त ४२ में स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, एकेन्द्रिय आतपप्रकृति का अनुदय होने से अनुदय में बढ़ गयी। उदय की ६ प्रकृतियाँ घटायी।
३.त्रीन्द्रिय	८१	द्वीन्द्रिय जाति निकालकर त्रीन्द्रिय मिलाना	४१ उपर्युक्त
४.चतु-रिन्द्रिय	८१	त्रीन्द्रिय निकालकर चतुरिन्द्रिय मिलाना	४१ उपर्युक्त
५.पंचेन्द्रिय	११४	११४ = १२२ - ८ अनुदयरूप	८= एकेन्द्रियादि ४ जाति, स्थावर,सूक्ष्म, साधारण, आतप

एकेन्द्रियमार्गणा में उदयादि त्रिभंगी उदययोग्य ८० गुणस्थान २

गुणस्थान	अनुदय	उदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति का विवरण
१.मिथ्यात्व	०	८०	११	मिथ्यात्व १, सूक्ष्मत्रय ३, स्त्यानगृद्धित्रिक परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास
२.सासादन	११	६९	६	अनन्तानुबन्धी चतुष्क, एकेन्द्रिय, स्थावर

विशेषार्थ - एकेन्द्रिय व विकलत्रय में दूसरा गुणस्थान निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्था में ही होता है और निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्था में स्त्यानगृद्धित्रिक, परघातचतुष्क का उदय नहीं होता अत: इन ७ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति पहले गुणस्थान में की है।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय में उदयादि त्रिभंगी उदययोग्य ८१, गुणस्थान २

गुणस्थान	अनुदय	उदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति का विवरण
१.मिथ्यात्व	०	८१	१०	मिथ्यात्व,अपर्याप्त,स्त्यानगृद्धित्रिक,परघात, उद्योत, उच्छ्वास, दु:स्वर,अप्रशस्तविहायोगति
२.सासादन	१०	७१	५	अनन्तानुबन्धीकषाय ४, अपनी अपनी जाति

निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्था में स्वर और विहायोगति नामकर्म का उदय नहीं होता अत: उसकी व्युच्छित्ति प्रथम गुणस्थान में होती है।

पंचेन्द्रिय में उदयादि त्रिभंगी उदययोग्य ११४ गुणस्थान १४

गुण स्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति का विवरण
१ मि.	मिश्र, सम्यक्त्व, आहारक२,तीर्थंकर	५	१०९	२	मिथ्यात्व, अपर्याप्त
२ सा.	५+२+१ नरकानुपूर्वी	८	१०६	४	अनन्तानुबन्धी कषाय ४
३ मिश्र.	(८+४+३ आनुपूर्वी)-१मिश्र	१४	१००	१	मिश्र

गुण स्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
४ असं.	(१४+१)-५ आनुपूर्वी ४, सम्यक्त्व	१०	१०४	१७	अप्रत्याख्यान४,वैक्रियिक६, तिर्यंच मनुष्यानुपूर्वी, नरकदेवायु, दुर्भग, अनादेय, अयश
५ दे.	१०+१७	२७	८७	८	प्रत्याख्यान ४,तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, नीच गोत्र, उद्योत
६ प्र.	(२७+८)-२ आहारकद्विक	३३	८१	५	आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धित्रिक
७ अप्र.	३३+५	३८	७६	४	सम्यक्त्व, अर्धनाराच, कीलित, सृपाटिका संहनन
८ अपू.	(३८+४)	४२	७२	६	हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा
९ अनि.	४२+६	४८	६६	६	३ वेद, संज्वलन क्रोध, मान,माया
१० सू.	४८+६	५४	६०	१	संज्वलनलोभ
११ उप.	५४+१	५५	५९	२	वज्रनाराच, नाराचसंहनन
१२ क्षी.	५५+२	५७	५७	१६	निद्रा, प्रचला, ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अंतराय
१३ स.	(५७+१६)-१ तीर्थंकर	७२	४२	३०	सामान्यगुणस्थानवत्
१४ अ.	७२+३०	१०२	१२	१२	सामान्यगुणस्थानवत्

एयं वा पणकाए ण हि साहारणमिणं च आदावं।
दसु तद्दुगमुज्जोवं कमेण चरिमम्मि आदावं।।३०९।।

अन्वयार्थ - (एयं वा) इसी प्रकार एकेन्द्रिय के समान **(पणकाए)** पाँच कायों में अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति कायों में हैं किंतु **(कमेण)** क्रमसे, पृथ्वीकाय में **(साहारणं)** साधारण (८०-१=७९) **(ण हि)** नहीं हैं जलकाय में **(इणं च आदावं)** साधारण और आतप नहीं हैं अत: कम करने पर (८०-२=७८) **(दसु)** दो में -

अग्निकाय और वायुकाय में **(तद्दुगमुज्जोवं)** उपरोक्त दो और उद्योत कम करने पर (८०-३=७७) **(चरिमम्मि)** अंतिम में अर्थात् वनस्पति काय में **(आदावं)** आतप कम करने पर (८०-१=७९) प्रकृतियाँ उदय योग्य जानना।

कायमार्गणा में उदययोग्यप्रकृतियों का विवरण **कायमार्गणा के भेद ६**

काय का भेद	उदययोग्य प्रकृतियाँ		अनुदय प्रकृतियाँ	
पृथ्वीका.	७९	एकेन्द्रिय में उदययोग्य ८०-१ साधारण	४३	एकेन्द्रिय की ४२+१
जलका.	७८	एकेन्द्रिय में उदययोग्य ८०-२ साधारण,आतप	४४	एकेन्द्रिय की ४२+२
तेजस्का.	७७	एकेन्द्रिय में उदययोग्य ८०-३ साधारण, आतप, उद्योत	४५	एकेन्द्रिय की ४२+३
वायुका.	७७	एकेन्द्रिय में उदययोग्य ८०-३ साधारण, आतप, उद्योत	४५	एकेन्द्रिय की ४२+३
वनका.	७९	एकेन्द्रिय में उदययोग्य ८०-१ आतप	४३	एकेन्द्रिय की ४२+१
त्रसका.	११७	सामान्य उदययोग्य १२२-५ स्थावर, सूक्ष्म, साधारण एकेन्द्रिय, आतप	५	स्थावर, सूक्ष्म,साधारण एकेन्द्रिय, आतप

विशेषार्थ - साधारण नामकर्म का उदय वनस्पतिकायिक में ही होता है, आतप नामकर्म का उदय बादर पृथ्वीकायिक में ही होता है। तेजस्कायिक और वायुकायिक में उद्योत नाम-कर्म का उदय नहीं होता।

पृथ्वीकायिक में उदयादि त्रिभंगी **उदययोग्य ७९** **गुणस्थान २**

गुणस्थान	अनुदय	उदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति का विवरण
१.मिथ्यात्व	०	७९	१०	मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, स्त्यानगृद्धित्रिक, परघात, उद्योत, उच्छ्वास
२.सासादन	१०	६९	६	अनन्तानुबन्धी चतुष्क, एकेन्द्रिय, स्थावर

अप्कायिक(जलकायिक) में उदयादि त्रिभंगी उदययोग्य ७८ गुणस्थान २

गुणस्थान	अनुदय	उदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति का विवरण
१.मिथ्यात्व	०	७८	९	मिथ्यात्व, सूक्ष्म, अपर्याप्त, परघात, स्त्यानगृद्धित्रिक, उद्योत, उच्छ्वास
२.सासादन	९	६९	६	अनन्तानुबन्धी चतुष्क, एकेन्द्रिय, स्थावर

वनस्पतिकायिक में उदयादि त्रिभंगी उदययोग्य ७९ गुणस्थान २

गुणस्थान	अनुदय	उदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति का विवरण
१.मिथ्यात्व	०	७९	१०	मिथ्यात्व, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्त्यानगृद्धित्रिक, परघात, उद्योत, उच्छ्वास
२.सासादन	१०	६९	६	अनन्तानुबन्धी चतुष्क, एकेन्द्रिय, स्थावर

विशेषार्थ - सासादन सम्यग्दृष्टि मरण करके अपर्याप्त, साधारणकाय, सूक्ष्मकाय, तेजस्काय और वायुकाय में उत्पन्न नहीं होता। अत: वह एकेन्द्रियों में उत्पन्न हुआ तो पर्याप्त पृथ्वीकाय, अप्काय और प्रत्येक वनस्पति में ही उत्पन्न होता है। एकेन्द्रिय में सासादन गुणस्थान निर्वृत्त्यपर्याप्त दशा में ही रहता है। परघात का उदय शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेपर होता है। स्त्यानगृद्धि आदि तीन का उदय इन्द्रियपर्याप्ति पूर्ण होनेपर ही होता है। उच्छ्वास का उदय भी उच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होनेपर ही होता है। आतप और उद्योत का उदय हो तो शरीर पर्याप्ति पूर्ण होनेपर ही होता है अत: इनका उदय सासादन में नहीं होता। प्रथम गुणस्थान में ही इनकी व्युच्छित्ति होती है।

त्रसकाय में उदयादि त्रिभंगी उदययोग्य ११७ गुणस्थान १४

गुणस्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति का विवरण
१ मिथ्या.	मिश्र, सम्यक्त्व, आहारक२,तीर्थंकर	५	११२	२	मिथ्यात्व, अपर्याप्त
२ सासादन	५+२+१ नरकानुपूर्वी	८	१०९	७	अनन्तानुबन्धी कषाय ४, विकलत्रय ३

गुण स्थान	अनुदयका विवरण	अनु-दय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
३ मिश्र.	(८+७+३आनुपू.) -१ मिश्र	१७	१००	१	मिश्र
४ अ.	(१७+१)-५ आनुपूर्वी ४, सम्यक्त्व	१३	१०४	१७	अप्रत्याख्यान ४,वैक्रियिक ६, तिर्यंचमनुष्यानुपूर्वी, नरकदेवायु, दुर्भग, अनादेय, अयश
५ दे.	१३+१७	३०	८७	८	प्रत्याख्यान ४,तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, नीच गोत्र, उद्योत
६ प्र.	(३०+८)-२ आहारकद्विक	३६	८१	५	आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धित्रिक
७ अप्र.	३६+५	४१	७६	४	सम्यक्त्व, अर्धनाराच, कीलित, सृपाटिका संहनन
८ अ.	४१+४	४५	७२	६	हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा
९ अनि.	४५+६	५१	६६	६	३ वेद, संज्वलन क्रोध, मान,माया
१० सू.	५१+६	५७	६०	१	संज्वलनलोभ
११ उप.	५७+१	५८	५९	२	वज्रनाराच, नाराचसंहनन
१२ क्षी.	५८+२	६०	५७	१६	निद्रा प्रचला, ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अंतराय
१३ स.	(६०+१६)-१ तीर्थंकर	७५	४२	३०	सामान्यगुणस्थानवत्
१४ अ.	७५ + ३०	१०५	१२	१२	सामान्यगुणस्थानवत्

ओघं तसे ण थावरदुग-साहारणेयतावमथ ओघं।
मणवयणसत्तगे ण हि ताविगिविगलं च थावराणुचऊ।३१०।।

अन्वयार्थ -(तसे) त्रस काय में, **(ओघं)** ओघ के समान, परन्तु **(ओघं)** ओघ

की १२२ प्रकृतियों में से **(थावर दुग)** स्थावर द्विक-स्थावर, सूक्ष्म, **(साहारण)** साधारण, **(एय)** एकेन्द्रिय जाति, **(तावम्)** आतप, **(ण)** नहीं है, अर्थात् १२२-५=११७ प्रकृतियाँ त्रस काय में उदय योग्य हैं। **(मणवयणसत्तगे)** सत्य आदि चार मनोयोग, सत्य, असत्य व उभय वचन योग-इस प्रकार इन ७ में सामान्य से उदय योग्य १२२ प्रकृतियों में से, **(ताविगि विगलं)** आतप, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, **(च)** और **(थावराणुचओ)** स्थावर-चतुष्क, आनुपूर्वी चतुष्क, **(ण हि)** नहीं है अत: घटाने पर अर्थात् १२२-१३=१०९ प्रकृतियाँ उदययोग्य होती हैं।

अणुभयवचि वियलजुदा ओघमुराले ण हारदेवाऊ।
वेगुव्वछक्कणरतिरियाणु अपज्जत्तणिरयाऊ ।।३११।।

अन्वयार्थ - (अणुभयवचि) अनुभयवचन योग में, (पूर्वोक्त १०९ प्रकृतियों में), **(वियलजुदा)** विकलत्रय युक्त अर्थात् तीन मिलाने पर (१०९+३=११२) प्रकृति उदययोग्य हैं। **(उराले ओघं)** औदारिक काययोग में गुणस्थानोक्त १२२ में से **(हारदेवाऊ)** आहारक द्विक, देवायु, **(वेगुव्वछक्क)** वैक्रियिकषट्क अर्थात् वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, देवगति, नरकगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगत्यानुपूर्वी, **(णरतिरियाणु)** मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यंच-गत्यानुपूर्वी, **(अपज्जत)** अपर्याप्त, **(णिरयाऊ)** नरकायु **(ण)** नहीं है अत: कम करने पर १२२-१३=१०९ प्रकृति उदययोग्य हैं।

तम्मिस्सेऽ पुण्णजुदा ण मिस्सथीणतियसरविहायदुगं।
परघादचऊ अयदे णादेज्जदुदुब्भगं ण संढित्थी ।।३१२।।
साणे तेसिं छेदो वामे चत्तारि चोद्दसा साणे।
चउदालं वोच्छेदो अयदे जोगिम्मि छत्तीसं ।।३१३।।

अन्वयार्थ - (तम्मिस्से) औदारिक मिश्र काययोग में, **(अपुण्णजुदा)** अपर्याप्त मिलाने पर (१०९+१=११०) **(मिस्स)** सम्यग्मिथ्यात्व, **(थीणतिय)** स्त्यानगृद्धि त्रिक, **(सरदुगं)** स्वरद्विक, **(विहायदुगं)** प्रशस्त व अप्रशस्त विहायोगति, **(परघादचउ)** परघात चतुष्क अर्थात् परघात, आतप, उद्योत, श्वासोच्छ्वास, **(ण)** नहीं अर्थात् ये १२ प्रकृतियाँ कम करने पर (११०-१२)=९८ प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं। **(अयदे)** असंयत गुणस्थान में, **(णादेज्जदु)** अनादेय द्विक अर्थात् अनादेय और अयशस्कीर्ति, **(दुब्भगं)**

दुर्भग, **(संढित्थि)** नपुंसक और स्त्रीवेद **(ण)** का उदय नहीं हैं। अतः इन प्रकतियों की **(साणे तेसिं छेदो)** सासादन गुणस्थान में ही व्युच्छित्ति हो जाती है। **(वामे चत्तारि)** मिथ्यात्व गुणस्थान में चार प्रकृतियों (सूक्ष्मत्रिक और मिथ्यात्व) की, **(साणे)** दूसरे-सासादन में, **(चोद्दसा)** चौदह प्रकृतियों की, **(अयदे)** असंयत गुणस्थान में, **(चउदालं)** चवालीस, **(जोगिम्हि)** सयोगकेवली में **(छत्तीसं)** छत्तीस प्रकृतियों की **(वोच्छेदो)** व्युच्छित्ति होती है।

देवोघं वेगुव्वे ण सुराणू पक्खिवेज्ज णिरयाऊ।
णिरयगदिहुंडसंढं दुग्गदि दुब्भगचउण्णीचं ।।३१४।।

अन्वयार्थ - (देवोघं) देवगति में उदययोग्य सामान्य ७७ प्रकृतियों में से, **(वेगुव्वे)** वैक्रियिक काययोग में, **(सुराणू)** देवगत्यानुपूर्वी, **(ण)** नहीं है अतः कम करके (७७-१=७६) **(णिरयाऊ)** नरक आयु, **(णिरयगदि)** नरकगति, **(हुंड)** हुण्डक संस्थान, **(संढं)** नपुंसक वेद, **(दुग्गदि)** अप्रशस्त विहायोगति, **(दुब्भग चउ)** दुर्भग चतुष्क अर्थात् (दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति) **(णीचं)** नीच गोत्र, **(पक्खिवेज्ज)** मिलाने पर (७६+१० =८६) प्रकृतियाँ उदय योग्य होती हैं।

वेगुव्वं वा मिस्से ण मिस्स-परघाद-सरविहायदुगं ।
साणे ण हुंडसंढं दुब्भगणादेज्ज अज्जसयं ।।३१५।।
णिरयगदि आउणीचं ते खित्तयदेऽवणिज्ज थीवेदं।
छट्ठगुणं वाहारे ण थीणतिय-संढथीवेदं ।।३१६।।
दुग्गदिदुस्सरसंहदि ओरालदु चरिमपंचसंठाणं ।
ते तम्मिस्से सुस्सर परघाददुसत्थगदिहीणा ।।३१७।।

अन्वयार्थ - (वेगुव्वं वा) वैक्रियिक काययोग के समान **(मिस्से)** वैक्रियिक मिश्रकाययोग में उदययोग्य ८६ प्रकृतियाँ हैं किंतु **(मिस्स)** सम्यग्मिथ्यात्व, **(परघाद-सरविहायदुगं)** परघात द्विक-परघात, उच्छ्वास, स्वरद्विक-सुस्वर, दुःस्वर, विहायद्विक-प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति = ७ **(ण)** नहीं हैं अतः कम करने पर (८६-७=७९) वैक्रियिक मिश्र काय योग में उदय योग्य हैं। **(साणे)** सासादन गुणस्थान में **(हुंड)** हुण्डक संस्थान, **(संढं)** नपुंसकवेद **(दुब्भग)** दुर्भग, **(णादेज्ज)** अनादेय,

(अज्ञसयं) अयशस्कीर्ति, **(णिरयगदि आउणीच)** नरकगति, नरकायु, नीचगोत्र **(ण)** का उदय नहीं है। **(ते)** उनको **(खित्तयदे)** असंयत में रखना चाहिये। **(थीवेदंऽवणिज्ज)** स्त्रीवेद की, सासादन में व्युच्छित्ति करे। **(छट्ठगुणं वाहारे)** आहारककाय योग में सामान्य से छठे गुणस्थान के समान उदययोग्य ८१ प्रकृतियाँ हैं। **(थीण तिय)** किंतु स्त्यानगृद्धित्रिक, **(संढथीवेदं)** नपुंसकवेद और स्त्रीवेद, **(दुग्गदि)** अप्रशस्तविहायोगति, **(दुस्सर)** दुःस्वर, **(संहदि)** छह संहनन, **(ओरालदु)** औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, **(चरिम पंच संठाणं)** अन्त के पाँच संस्थान, इन २० प्रकृतियों का उदय **(ण)** नहीं हैं अतः (८१-२०) =६१ प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं। **(तम्मिस्से)** आहारक मिश्र काययोग में, **(ते)** उन ६१ प्रकृतियों में से, **(सुस्सर)** सुस्वर, **(परघाददु)** परघात, उच्छ्वास, **(सत्थगदि)** प्रशस्त विहायोगति, **(हीणा)** कम करने पर (६१-४) = ५७ प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं।

ओघं कम्मे सरगदिपत्तेयाहारुरालदुग मिस्सं ।
उवघादपणविगुव्वदु थीणतिसंठाण-संहदी णत्थि ।।३१८।।
साणे थीवेदछिदी णिरयदुणिरयाउगं ण तियदसयं ।
इगिवण्णं पणवीसं मिच्छादिसु चउसु वोच्छेदो ।।३१९।।

अन्वयार्थ - (कम्मे) कार्मण काययोग में **(ओघं)** गुणस्थान के समान हैं किन्तु **(सरगदिपत्तेयाहारुरालदुग)** स्वर द्विक, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति, प्रत्येक, साधारण, आहारक द्विक, औदारिक द्विक, **(मिस्सं)** सम्यग्मिथ्यात्व, **(उवघादपण)** उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, **(विगुव्वदु)** वैक्रियिक द्विक, **(थीणति)** स्त्यानगृद्धि त्रिक, **(संठाण)** ६ संस्थान, **(संहदी)** ६ संहनन (इस प्रकार ३३ प्रकृतियाँ) **(णत्थि)** नहीं हैं। अर्थात् (१२२-३३)=८९ प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं। **(साणे)** सासादन गुणस्थान में, **(थीवेदछिदी)** स्त्रीवेद की व्युच्छित्ति हो जाती हैं। **(णिरयदुणिरयाउगं ण)** और नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु-इन तीन का उदय नहीं होता हैं। **(मिच्छादिसु चउसु)** मिथ्यादृष्टि आदि चार गुणस्थानों में अर्थात् मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत और सयोगकेवली में क्रम से, **(तियदसयं)** तीन, दस, **(इगिवण्णं)** इक्यावन, **(पणवीसं)** पच्चीस प्रकृतियों की **(वोच्छेदो)** व्युच्छित्ति होती है।

योगमार्गणा में उदय, अनुदय योगमार्गणा के भेद १५

क्र.	योग	उदययोग्य	अनुदय	विवरण
१से४	मनोयोग	१०९	१३	१३= एकेन्द्रियादि ४ जाति, आनुपूर्वी ४,
५से७	वचनयोग			आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण
८	अनुभयवचन योग	११२	१०	१०=एकेन्द्रिय, स्थावरचतुष्क, आनुपूर्वी ४, अपर्याप्त
९	औदारिककाय योग	१०९	१३	१३ = वैक्रियिकषट्क६, नरकायुदेवायु आहारकद्विक२, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी अपर्याप्त
१०	औदारिकमिश्र काययोग	९८	२४	२४ = वैक्रियिकषट्क, नरकायु, देवायु, आहारकद्विक, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, मिश्र, स्त्यानत्रिक, स्वरद्विक, विहायोगति २ परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास
११	वैक्रियिक काययोग	८६	३६	३६=स्त्यानत्रिक३,तिर्यगेकादश ११,मनुष्य-द्विक२, औदारिकद्विक२,मध्य के ४ संस्थान, ६संहनन, आहारकद्विक२,देवनरकानुपूर्वी २ अपर्याप्त, तीर्थंकर, तिर्यंचायु, मनुष्यायु
१२	वैक्रियिकमिश्र काययोग	७९	४३	४३ = उपर्युक्त ३६+७ मिश्र१, परघात १, उच्छ्वास१, विहायोगति२, स्वरद्विक२
१३	आहारक काययोग	६१	६१	६१=छठे गुणस्थान में उदययोग्य ८१-२० स्त्यानगृद्धित्रिक, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, औदारिकद्विक२, संहनन६, संस्थान अन्त के ५, अप्रशस्तविहायोगति, दु:स्वर
१४	आहारकमिश्र काययोग	५७	६५	उपर्युक्त आहारककाय में उदययोग्य ६१+४ = परघात, उच्छ्वास,प्रशस्तविहायोगति, सुस्वर
१५	कार्मणकाय योग	८९	३३	मिश्र१, स्त्यानगृद्धित्रिक ३, औदारिकद्विक२, वैक्रियिकद्विक२, आहारकद्विक२, संस्थान६, संहनन ६, उपघातादि ५, विहायोगति २, स्वर२, प्रत्येक साधारण २

विशेषार्थ - १) ४ मनोयोग और अनुभय वचनयोग को छोड़कर शेष ३ वचनयोग संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव को ही होते हैं। अत: उनमें एकेन्द्रिय, विकलत्रय, अपर्याप्तसंबंधी प्रकृतियों का उदय नहीं होता।

२) अनुभयवचनयोग द्वीन्द्रिय से पंचेन्द्रिय पर्याप्तक के जीवों को होता है अत: वहाँ विकलत्रय का उदय है।

३) औदारिककाययोग मनुष्यतिर्यंच पर्याप्त को होता है अत: वहाँ नरकगति, देवगति और अपर्याप्त संबंधी प्रकृतियों का उदय नहीं होता।

४) औदारिकमिश्रकाययोग में नरकगति, देवगति, पर्याप्त काल और विग्रहगतिसंबंधी प्रकृतियों का उदय नहीं होता।

५) कार्मणकाययोग विग्रहगति और केवलीसमुद्घात में पाया जाता है।

मनोयोग ४, वचनयोग ३ में उदयादि त्रिभंगी उदययोग्य १०९ गुणस्थान १३

गुण स्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१ मि.	मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, तीर्थंकर	५	१०४	१	मिथ्यात्व
२ सा.	५+१	६	१०३	४	अनन्तानुबन्धी कषाय ४,
३ मि.	(६ +४)-१ मिश्र	९	१००	१	मिश्र
४ असं.	(९+१)-१ सम्यक्त्व	९	१००	१३	अप्रत्याख्यान ४, वैक्रियिकद्विक, नरकदेवगति, नरक-देवायु२, दुर्भग, अनादेय, अयश
५ दे.	९ + १३	२२	८७	८	प्रत्याख्यान ४,तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र
६ प्र.	(२२ + ८)-२ आहारकद्विक	२८	८१	५	आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धित्रिक
७ अप्र.	२८ + ५	३३	७६	४	सम्यक्त्व, अंतिम ३ संहनन
८ अपूर्व	३३ + ४	३७	७२	६	हास्यादि ६ नोकषाय
९ अनि.	३७ + ६	४३	६६	६	३ वेद, संज्वलन क्रोध, मान,माया
१० सू.	४३ + ६	४९	६०	१	संज्वलन लोभ

गुण स्थान	अनुदयका विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
११ उप.	४९ + १	५०	५९	२	वज्रनाराच, नाराचसंहनन
१२ क्षी.	५० + २	५२	५७	१६	सामान्यगुणस्थानवत्
१३ स.	(५२ +१६)-१ तीर्थंकर	६७	४२	४२	(३०+१२) १३ वें, १४ वें गुणस्थान की व्युच्छित्ति

अनुभयवचनयोग में उदयादित्रिभंगी उदययोग्य ११२ गुणस्थान १३

गुण स्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१ मि.	मिश्र, सम्यक्त्व, आहारक द्विक, तीर्थंकर	५	१०७	१	मिथ्यात्व
२ सा.	५+१	६	१०६	७	अनन्तानुबन्धी ४, विकलत्रय३
३ मि.	(६ +७)-१ मिश्र	१२	१००	१	मिश्र
४ असं.	(१२+१)-१ सम्यक्त्व	१२	१००	१३	उपर्युक्त कोष्टकवत्
५ दे.	१२ + १३	२५	८७	८	उपर्युक्त कोष्टकवत्
६ प्र.	(२५+८)-२आहारकद्विक	३१	८१	५	उपर्युक्त कोष्टकवत्
७ अप्र.	३१ + ५	३६	७६	४	उपर्युक्त कोष्टकवत्
८ अ.	३६ + ४	४०	७२	६	उपर्युक्त कोष्टकवत्
९ अनि.	४० + ६	४६	६६	६	उपर्युक्त कोष्टकवत्
१० सू.	४६ + ६	५२	६०	१	उपर्युक्त कोष्टकवत्
११ उप.	५२ + १	५३	५९	२	उपर्युक्त कोष्टकवत्
१२ क्षी.	५३ + २	५५	५७	१६	उपर्युक्त कोष्टकवत्
१३ स.	(५५ + १६)-१ तीर्थंकर	७०	४२	४२	उपर्युक्त कोष्टकवत्

औदारिक काययोग में उदयादि त्रिभंगी उदययोग्य १०९, गुणस्थान १३

गुण स्थान	अनुदयका विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१ मिथ्या.	मिश्र, सम्यक्त्व, तीर्थंकर	३	१०६	४	मिथ्यात्व, सूक्ष्म, साधारण,आतप
२ सा.	४+३	७	१०२	९	अनन्तानुबन्धी४, एकेन्द्रिय, स्थावर विकलत्रय
३ मिश्र	(७ +९)-१मिश्र	१५	९४	१	मिश्र
४ असं.	(१५+१)-१ सम्यक्त्व	१५	९४	७	अप्रत्याख्यान ४, दुर्भग, अनादेय, अयश
५ देश.	१५ + ७	२२	८७	८	प्रत्याख्यान ४,तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र
६ प्रमत्त	२२ + ८	३०	७९	३	स्त्यानगृद्धित्रिक
७ अप्र.	३० + ३	३३	७६	४	सम्यक्त्व, अंतिम ३ संहनन
८ अपूर्व	३३ + ४	३७	७२	६	हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा
९ अनि	३७ + ६	४३	६६	६	३ वेद, संज्वलन क्रोध, मान,माया
१० सूक्ष्म	४३ + ६	४९	६०	१	संज्वलनलोभ
११ उप.	४९ + १	५०	५९	२	वज्रनाराच, नाराचसंहनन
१२ क्षीण	५० + २	५२	५७	१६	निद्रा, प्रचला, ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अंतराय
१३ स.	(५२+१६)-१ तीर्थंकर	६७	४२	४२	१३ वें गुणस्थान की ३०+१४ वें की १२

औदारिक मिश्रकाययोग में उदयादित्रिभंगी उदययोग्य ९८ गुणस्थान १,२,४, १३

गुण स्थान	अनुदयका विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१ मि.	सम्यक्त्व,तीर्थंकर	२	९६	४	मिथ्यात्व, सूक्ष्म, साधारण,अपर्याप्त
२ सा.	२ + ४	६	९२	१४	अनन्तानुबन्धी४, एकेन्द्रिय, विकलत्रय स्थावर,नपुंसक, स्त्रीवेद,दुर्भग, अनादेय, अयश
४ असं.	(६ + १४)-१ सम्यक्त्व	१९	७९	४४	४ थे गुणस्थान की ४ अप्रत्याख्यान + देशसंयतकी उद्योतविना ७[५]+०[६]+४[७]+६[८] +४[९] (स्त्री, नपुं. विना)+१[१०]+२[११]+ १६[१२] = ४४
१३सयो.	(१९+४४)-१ तीर्थंकर	६२	३६	३६	४२ पूर्वोक्त -६ (स्वरद्विक, विहायोगति २ , परघात, उच्छ्वास)

१३ वें गुणस्थान में कपाट समुद्घात के समय औदारिक मिश्रकाययोग होता है।

औदारिक मिश्रकाययोग में असंयत में स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, दुर्भग, अनादेय, अयश का उदय नहीं होता अत: उनकी व्युच्छित्ति सासादन में ही हो जाती है।

वैक्रियिक काययोग में उदयादि त्रिभंगी उदययोग्य ८६, गुणस्थान ४

गुण स्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१मि.	मिश्र, सम्यक्त्व	२	८४	१	मिथ्यात्व
२सा.	२+१	३	८३	४	अनन्तानुबन्धीकषाय ४
३मिश्र	(३+४)-१ मिश्र	६	८०	१	मिश्र
४असं.	(६+१)-१ सम्यक्त्व	६	८०	१३	अप्रत्याख्यान४, वैक्रियिक२, नरकायु देवायु, देवगति, नरकगति, दुर्भग अनादेय, अयश

वैक्रियिकमिश्रकाययोग में उदयादित्रिभंगी उदययोग्य ७९, गुणस्थान १, २, ४

गुण स्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१ मि.	सम्यक्त्व	१	७८	१	मिथ्यात्व
२ सा.	१+१+८ हुण्डसंस्थान, नरकगति, नरकायु, नपुंसक, दुर्भग ३, नीचगोत्र	१०	६९	५	अनन्तानुबन्धीकषाय ४, स्त्रीवेद
४ असं.	(१०+५)-९ सम्यक्त्व और उपर्युक्त ८ इनका उदय होने लगा इसलिये कम हुई।	६	७३	१३	अप्रत्याख्यान ४, वैक्रियिक २, नरकायु, देवायु, देवगति, नरकगति, दुर्भग,अनादेय, अयश

दूसरे गुणस्थान में मरण कर नरक में उत्पन्न नहीं होता अत: वैक्रियिक मिश्रकाय योग में दूसरे गुणस्थान में नरक सम्बन्धी प्रकृतियों का अनुदय कहा है।

कार्मणकाययोग में उदयादि त्रिभंगी उदययोग्य ८९ गुणस्थान १.२.४.१३

गुण स्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१ मि.	सम्यक्त्व,तीर्थकर	२	८७	३	मिथ्यात्व, सूक्ष्म, अपर्याप्त
२ सा.	२+३+३ नरक - द्विक, नरकायु	८	८१	१०	अनन्तानुबन्धी ४, एकेन्द्रिय, विकल-त्रय, स्थावर, स्त्रीवेद
४ अ.	(८+१०)-४ सम्यक्त्व, नरकद्विक,नरकायु	१४	७५	५१	४ थे गुणस्थान की वैक्रियिकद्विक विना १५ + ५ वें गुण. की ७ (उद्योतविना)+०+१(सम्यक्त्व)+६+ ५(स्त्रीवेदविना)+१+०+१६ =५१
१३ स केवली	(१४+५१)-१ तीर्थंकर	६४	२५	२५	तैजसद्विक, वर्णचतुष्क, स्थिर २, शुभ २, अगुरुद्विक, वेदनीय१+१२ (१४ वें गुणस्थान में उदययोग्य)

आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग में केवल छठा गुणस्थान ही होता है। उदययोग्य प्रकृति पूर्वोक्त जानना।

वैक्रियिक मिश्रकाययोग में और कार्मणकाययोग में चौथे गुणस्थान में स्त्रीवेद का उदय नहीं होता क्योंकि सम्यग्दृष्टि मरकर स्त्रीवेद में उत्पन्न नहीं होता अत: स्त्रीवेद की उदयव्युच्छित्ति दूसरे गुणस्थान में होती है।

अथ वेदमार्गणा

मूलोघं पुंवेदे थावरचउणिरयजुगलतित्थयरं ।
इगिविगलं थीसंढं तावं णिरयाउगं णत्थि ।।३२०।।

अन्वयार्थ - (पुंवेदे) पुरुषवेद में **(मूलोघं)** गुणस्थान के समान हैं किन्तु **(थावरचउ)** स्थावरादि चार, **(णिरय जुगल)** नरकद्विक, **(तित्थयरं)** तीर्थंकर, **(इगिविगलं)** एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय त्रय, **(थी संढं)** स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, **(तावं)** आतप, **(णिरयाउगं)** नरकायु - ये १५ प्रकृतियाँ, **(णत्थि)** उदययोग्य नहीं हैं।

इत्थीवेदे वि तहा हारदु-पुरिसूणमित्थिसंजुत्तं ।
ओघं संढे ण हि सुरहारदुथीपुंसुराउतित्थयरं ।।३२१।।

अन्वयार्थ -(इत्थीवेदे वि तहा) स्त्रीवेद में भी पुरुषवेद के समान हैं किन्तु उसमें से **(हारदु-पुरिसूणं)** आहारकद्विक और पुरुषवेद कम करके (१०७-३=१०४), **(इत्थिसंजुत्तं)** स्त्रीवेद सहित करने पर (१०४+१=१०५) प्रकृतियाँ उदययोग्य होती हैं। **(ओघं)** सामान्य से उदययोग्य १२२ प्रकृतियों में से **(संढे)** नपुंसकवेद में **(सुरहारदु)** देवद्विक, आहारकद्विक, **(थीपुं)** स्त्रीवेद, पुरुषवेद, **(सुराउतित्थयरं)** देवायु और तीर्थंकर - ये आठ प्रकृतियाँ **(ण हि)** नहीं हैं अत: कम करने पर (१२२-८ =११४) प्रकृतियाँ नपुंसकवेद में उदययोग्य होती हैं।

वेदमार्गणा में उदय अनुदय

वेद	उदययोग्य	अनुदय	अनुदय का विवरण
पुरुषवेद	१०७	१५	स्थावर चतुष्क, आतप, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, नरकायु, नरकद्विक,स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तीर्थंकर
स्त्रीवेद	१०५	१७	स्थावर चतुष्क, आतप, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, नरकायु, नरकद्विक, पुंवेद, नपुंसकवेद,आहारकद्विक, तीर्थंकर
नपुंसकवेद	११४	८	देवद्विक, देवायु, आहारकद्विक, तीर्थंकर, स्त्रीवेद, पुंवेद

पुरुषवेद में उदयादि त्रिभंगी उदययोग्य १०७ गुणस्थान ९

गुण.	अनुदयकाविवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१ मि.	मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक	४	१०३	१	मिथ्यात्व,
२ सा.	४+१	५	१०२	४	अनन्तानुबन्धी ४,
३ मि.	५+४+३ (आनुपूर्वी) - १ मिश्र	११	९६	१	मिश्र
४ असं.	(११+१) - ४ आनुपूर्वी ३, सम्यक्त्व	८	९९	१४	अप्रत्याख्यान४, देवचतुष्क, देवायु, तिर्यंचमनुष्यगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय,अयश
५ देश.	८ + १४	२२	८५	८	प्रत्याख्यानचतुष्क,तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र
६ प्रम.	(२२ + ८)-२ आहारकद्विक	२८	७९	५	आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धित्रिक
७ अप्र.	२८ + ५	३३	७४	४	सम्यक्त्व, अंतिम ३ संहनन
८ अपू.	३३ + ४	३७	७०	६	हास्यादि ६ नोकषाय
९ अनि.	३७ + ६	४३	६४	६४	४+१+२+१६+३०+११ स्त्रीवेद, नपुंसकवेद छोड़कर ९ वें की ४ प्रकृतियाँ लेना,तीर्थंकर छोड़कर १४ वें गुणस्थान की ११ प्रकृतियाँ लेना

स्त्रीवेद में उदयादि त्रिभंगी उदययोग्य १०५, गुणस्थान ९

गुण स्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१ मि.	मिश्र, सम्यक्त्व,	२	१०३	१	मिथ्यात्व,
२ सा.	२+१	३	१०२	७	अनन्तानुबन्धी ४, देव-मनुष्य-तिर्यगानुपूर्वी
३ मि.	(३+७)-१ मिश्र	९	९६	१	मिश्र
४ असं.	(९+१)-१ सम्यक्त्व	९	९६	११	अप्रत्याख्यान ४, देवगति, देवायु, वैक्रियकद्विक, दुर्भग, अनादेय,अयश
५ देश.	९ + ११	२०	८५	८	प्रत्याख्यान ४,तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र
६ प्रम.	२० + ८	२८	७७	३	स्त्यानगृद्धित्रिक
७ अप्र.	२८ + ३	३१	७४	४	सम्यक्त्व, अंतिम ३ संहनन
८ अपू.	३१ + ४	३५	७०	६	हास्यादि ६ नोकषाय
९ अनि.	३५ + ६	४१	६४	६४	९ वें की स्त्रीवेद,संज्वलन क्रोध,मान माया ये ४+१+२+१६+३०+११ तीर्थंकर छोड़कर १४ वें की ११ प्र.

स्त्रीवेदीअसंयत में आनुपूर्वी का उदय नहीं होता इसलिए दूसरे गुणस्थान में उनकी व्युच्छित्ति की है।

नपुंसकवेद में उदयादि त्रिभंगी उदययोग्य ११४, गुणस्थान ९

गुण स्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१ मि.	मिश्र, सम्यक्त्व,	२	११२	५	मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्मत्रय
२ सा.	२+५+१ नरकगत्यानुपूर्वी	८	१०६	११	अनन्तानुबन्धी४,एकेन्द्रिय,विकलत्रय, स्थावर,मनुष्यानुपूर्वी,तिर्यंचानुपूर्वी
३ मिश्र	(८+११)-१ मिश्र	१८	९६	१	मिश्र
४ असं.	(१८+१)-२सम्यक्त्व, नरकगत्यानुपूर्वी	१७	९७	१२	अप्रत्याख्यान४, नारकचतुष्क, नरकायु, दुर्भग, अनादेय, अयश
५ देश.	१७ + १२	२९	८५	८	प्रत्याख्यान ४,तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र
६ प्रम.	२९ + ८	३७	७७	३	स्त्यानगृद्धित्रिक
७ अप्र.	३७ + ३	४०	७४	४	सम्यक्त्व, अंतिम ३ संहनन
८ अपू.	४० + ४	४४	७०	६	हास्यादि ६ नोकषाय
९ अनि.	४४ + ६	५०	६४	६४	स्त्रीवेदवत्,केवल स्त्रीवेद को निकालकर नपुंसक वेद ग्रहण करना।

नपुंसक असंयत में केवल नरकगत्यानुपूर्वी का ही उदय हो सकता है क्यों कि सम्यग्दृष्टि प्रथम नरक को छोड़कर अन्यत्र नपुंसकवेद में उत्पन्न नहीं होता।

कषाय मार्गणा

तित्थयरमाणमायालोह चउक्कूणमोघमिह कोहे ।
अणरहिदे णिगिविगलं तावअण कोहाणुथावरचउक्कं।।३२२।।

अन्वयार्थ - (कोहे) क्रोध कषाय में **(ओघमिह)** ओघ-सामान्य से गुणस्थानोक्त १२२ प्रकृतियों में से **(तित्थयर)** तीर्थंकर, **(माणमायालोह चउक्क)** मान माया लोभ चतुष्क सम्बन्धी १२ प्रकृतियाँ अर्थात् कुल १३ प्रकृतियों से **(ऊण)** रहित (१२२-१३)=

१०९ प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं। **(अणरहिदे)** अनन्तानुबंधी क्रोध रहित मिथ्यादृष्टि (अर्थात् जो अनन्तानुबंधी की विसंयोजना करके मिथ्यात्व में आया है) के, शेष तीन प्रकार के क्रोध में, **(इगि विगलं)** एकेन्द्रिय, विकलत्रय, **(ताव)** आतप, **(अणकोह)** अनन्तानुबंधी क्रोध, **(अणु थावर चउक्कं)** आनुपूर्वी चतुष्क और स्थावर चतुष्क, इन १४ प्रकृतियों का उदय **(ण)** नहीं है। तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और आहारक द्विक का भी उदय नहीं है। उदय योग्य १०९-१८=९१ प्रकृतियाँ ।

कषाय मार्गणा में उदय अनुदय

कषाय	उदय	अनुदय	अनुदय का विवरण
क्रोध	१०९	१३	अनन्तानुबन्धी,अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन मान, माया, लोभ, तीर्थंकर
मान	१०९	१३	अनन्तानुबन्ध्यादि ४ क्रोध, ४ माया, ४ लोभ, तीर्थंकर
माया	१०९	१३	अनन्तानुबन्ध्यादि ४ क्रोध, ४ मान, ४ लोभ, तीर्थंकर
लोभ	१०९	१३	अनन्तानुबन्ध्यादि ४ क्रोध, ४ मान, ४ माया, तीर्थंकर

क्रोधकषाय में उदयादि त्रिभंगी **उदययोग्य १०९, गुणस्थान ९**

गुण स्थान	अनुदयका विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१ मि.	मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक	४	१०५	५	मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्मत्रय
२ सा.	४+५+१ नरकानुपूर्वी	१०	९९	६	अनन्तानुबन्धी क्रोध,एकेन्द्रिय, विकलत्रय,स्थावर,
३ मि.	(१०+६+३ आनुपूर्वी)-१ मिश्र	१८	९१	१	मिश्र
४ असं.	(१८+१)-५ आनुपूर्वी४,सम्यक्त्व	१४	९५	१४	अप्रत्याख्यानक्रोध, वैक्रियिकषट्क, देवायु,नरकायु,मनुष्य-तिर्यंचानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयश
५ देश.	१४ + १४	२८	८१	५	प्रत्याख्यानक्रोध, तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र

गुण स्थान	अनुदयका विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
६ प्रम.	(२८ + ५)-२ आहारकद्विक	३१	७८	५	आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धित्रिक
७ अप्र.	३१ + ५	३६	७३	४	सम्यक्त्व, अंतिम ३ संहनन
८ अ.	३६ + ४	४०	६९	६	हास्यादि ६ नोकषाय
९ अनि.	४० + ६	४६	६३	६३	(३ वेद, संज्वलन क्रोध) ४+०+२+१६+३०+११ (१२-१ तीर्थंकर)= ६३

विशेषार्थ - मान, माया, लोभकषाय के उदयादि की रचना क्रोध कषाय की रचना के समान ही जानना। किन्तु लोभ में गुणस्थान सूक्ष्मसाम्पराय पर्यंत होते हैं। इतना विशेष जानना। अपने अपने कषाय में अपने अपने कषाय की व्युच्छित्ति कहना।

जो अनन्तानुबंधी की विसंयोजना करके मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में आता है उसके आवली काल तक अनन्तानुबन्धी का उदय नहीं होता। उसके उस काल में इक्यानवे ९१ प्रकृतियों का उदय होता है। उपर्युक्त क्रोध कषाय मिथ्यात्व में उदययोग्य १०५ हैं उनमें से १४ कम करना वे १४ प्रकृतियाँ इस प्रकार- एकेन्द्रिय, विकलत्रय, आतप, स्थावरचतुष्क, अनन्तानुबन्धी क्रोध, ४ आनुपूर्वी।

एवं माणादितिये मदिसुद अण्णाणगे दु सगुणोघं
वेभंगेवि ण ताविगिविगलिंदी थावराणुचउ ।।३२३।।
सण्णाणपंचयादी दंसणमग्गणपदोत्ति सगुणोघं ।
मणपज्ञवपरिहारे णवरि ण संढित्थिहारदुगं ।।३२४।।

अन्वयार्थ - (एवं) इसी प्रकार अर्थात् क्रोध कषाय के अनुसार **(माणादितिये)** मान, माया, लोभ में भी उदय प्रकृतियाँ जानना चाहिए।

(मदिसुद अण्णाणगे) कुमति और कुश्रुति ज्ञान में, **(सगुणोघं)** सामान्य गुणस्थानोक्त १२२ प्रकृतियों में से, आहारकद्विक, तीर्थंकर, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व

प्रकृति इन ५ रहित १२२-५=११७ प्रकृतियाँ उदय योग्य हैं। **(विभंगेवि)** विभंग-कुअवधि ज्ञान में भी ११७ में से, **(ताव)** आतप, **(इगिविगलिंदी)** एकेन्द्रिय, विकलत्रय, **(थावराणुचऊ)** स्थावर चतुष्क, आनुपूर्वी चतुष्क ये १३ प्रकृतियाँ **(ण)** रहित (११७-१३ = १०४) प्रकृतियाँ उदय योग्य हैं।

(सण्णाणपंचयादी) पाँच ज्ञान से **(दंसणमग्गणपदोत्ति)** दर्शन मार्गणा पर्यन्त, **(सगुणोघं)** अपने-अपने गुणस्थानवत् रचना है। (परन्तु) **(मणपज्जव)** मन:पर्यय ज्ञान, **(परिहारे)** और परिहार विशुद्धि संयम में, **(संढित्थि)** नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, **(हारदुगं)** आहारक द्विक -ये चार प्रकृतियाँ, **(ण)** उदययोग्य नहीं हैं।

ज्ञानमार्गणा में उदय अनुदय

ज्ञान	उदय	अनुदय	अनुदय का विवरण
कुमति, कुश्रुत	११७	५	मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, तीर्थंकर
विभङ्ग	१०४	१८	उपर्युक्त ५+१३ स्थावरचतुष्क, आतप, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, ४ आनुपूर्वी
मति, श्रुत, अवधि	१०६	१६	प्रथम तीन गुणस्थान की व्युच्छित्ति ५+९+१=१५+१ तीर्थंकर
मन:पर्ययज्ञान	७७	४५	प्रथम पाँच गुणस्थान की व्युच्छित्ति ५+९+१+१७+८ = ४०+५ स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, आहारकद्विक, तीर्थंकर
केवलज्ञान	४२	८०	तेरहवें गुणस्थान में उदययोग्य ४२ प्रकृतियों का उदय है।शेष १ से १२ गुणस्थान तक व्युच्छिन्न ८० प्रकृतियाँ अनुदयरूप हैं।

कुमति कुश्रुत में उदयादि त्रिभंगी उदययोग्य ११७, गुणस्थान २

गुण	अनुदय	उदय	उदय व्यु.	विवरण
मिथ्यात्व	०	११७	६	मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्मत्रय, नारकानुपूर्व्य
सासादन	६	१११	९	अनन्तानुबन्धी ४, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, स्थावर

विशेषार्थ - दूसरे गुणस्थान में नरकानुपूर्वी का उदय नहीं होता इसलिए प्रथम गुणस्थान में उसकी व्युच्छित्ति की है। यहाँ दो ही गुणस्थान हैं अत: उसे दूसरे में अनुदय में नहीं रखा है।

विभङ्गज्ञान में उदयादि त्रिभंगी उदययोग्य १०४, गुणस्थान २

गुणस्थान	अनुदय	उदय	उदय व्युच्छित्ति	विवरण
मिथ्यात्व	०	१०४	१	मिथ्यात्व
सासादन	१	१०३	४	अनन्तानुबन्धी ४

मति-श्रुत-अवधिज्ञान में उदयादि त्रिभंगी उदययोग्य १०६, गुणस्थान ४ से १२ तक ९

गुण	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	उदय व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
४	आहारकद्विक	२	१०४	१७	अप्रत्याख्यान४, वैक्रियिकषट्क, देवायु, नरकायु,मनुष्य तिर्यंचानुपूर्वी,दुर्भगादि ३
५	१७+२	१९	८७	८	प्रत्याख्यान ४, तिर्यंचगति-आयु, उद्योत, नीचगोत्र
६	(१९+८)-२ आहारकद्विक	२५	८१	५	आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धित्रिक
७	२५+५	३०	७६	४	सम्यक्त्व, अंतिम तीन संहनन
८	३०+४	३४	७२	६	हास्य, रति, अरति,शोक, भय, जुगुप्सा
९	३४+६	४०	६६	६	वेद ३, संज्वलनक्रोध, मान, माया
१०	४०+६	४६	६०	१	संज्वलन लोभ
११	४६+१	४७	५९	२	वज्रनाराच, नाराच संहनन
१२	४७+२	४९	५७	१६	निद्रा, प्रचला, ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अंतराय ५

मन:पर्ययज्ञान में उदयादि त्रिभंगी **उदययोग्य ७७** **गुणस्थान ६ से १२**

गुण.	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	उदय व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
६		०	७७	३	स्त्यानगृद्ध्यादि तीन निद्रा
७		३	७४	४	सम्यक्त्व, अर्धनाराच, कीलक,सृपाटिका संहनन
८	३+४	७	७०	६	हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा
९	७+६	१३	६४	४	पुंवेद, संज्वलनक्रोध, मान, माया
१०	१३+४	१७	६०	१	संज्वलन लोभ
११	१७+१	१८	५९	२	वज्रनाराच, नाराच संहनन
१२	१८+२	२०	५७	१६	निद्रा, प्रचला,ज्ञाना.५, दर्श,४,अंतराय ५

केवलज्ञान में उदयादि त्रिभंगी **उदययोग्य ४२,** **गुणस्थान १३ वाँ १४ वाँ**

गुण.	अनुदय	उदय	उदयव्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति का विवरण
१३	०	४२	३०	सामान्य गुणस्थानवत्
१४	३०	१२	१२	सामान्य गुणस्थानवत्

संयममार्गणा में उदय अनुदय **भेद ७**

	संयम के भेद	उदय योग्य	अनुदय	विवरण
१ २	सामायिक, छेदोपस्थापना	८१	४१	प्रमत्तगुणस्थान की उदययोग्य ८१ और ४१ अनुदयरूप प्रकृति लेना
३	परिहारविशुद्धि	७७	४५	प्रमत्तगुणस्थान की उदययोग्य ८१-४ स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, आहारकद्विक
४	सूक्ष्मसांपराय	६०	६२	दसवें गुणस्थान की उदययोग्य ६० प्रकृतियाँ ही यहाँ पर उदययोग्य लेना

	संयम के भेद	उदय योग्य	अनुदय	विवरण
५	यथाख्यात	६०	६२	ग्यारहवें गुणस्थान की उदययोग्य ५९+१ तीर्थंकर = उदययोग्य ६०
६	देशसंयम	८७	३५	पाँचवे गुणस्थानवत् उदय अनुदय जानना।
७	असंयम	११९	३	३ = तीर्थंकर और आहारकद्विक

सामायिक, छेदोपस्थापना संयम में उदयादि त्रिभंगी **उदययोग्य ८१, गुणस्थान ६-९**

गुण स्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
६ प्रम.		०	८१	५	आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धित्रिक
७ अप्र.	० + ५	५	७६	४	सम्यक्त्व, अंतिम ३ संहनन
८ अ.	५ + ४	९	७२	६	हास्यादि ६ नोकषाय
९ अनि.	९ + ६	१५	६६	६	३ वेद, संज्वलन क्रोध, मान,माया

परिहारविशुद्धि संयम में उदयादित्रिभंगी **उदययोग्य ७७, गुणस्थान ६,७**

गुणस्थान	अनुदय	उदय	उदय व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
६ प्र.	०	७७	३	स्त्यानगृद्धित्रिक
७ अप्र.	३	७४	४	सम्यक्त्व, अंतिम तीन संहनन

यथाख्यात संयम में उदयादित्रिभंगी **उदययोग्य ६०, गुणस्थान ११ से १४**

गुण स्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
११ उप.	तीर्थंकर	१	५९	२	वज्रनाराच, नाराचसंहनन
१२ क्षी.	१ + २	३	५७	१६	निद्रा, प्रचला, ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अंतराय
१३ स. केवली	(३+१६)-१ तीर्थंकर	१८	४२	३०	औदारिकद्विक, तैजसद्विक, ६ संस्थान, वज्रवृषभनाराच, वर्णचतुष्क,अगुरुलघु-त्रिक, उच्छ्‌वास, विहायोगति२ स्थिरद्विक, शुभद्विक,स्वरद्विक प्रत्येकशरीर,निर्माण, वेदनीय १
१४ अ. केवली	१८+३०	४८	१२	१२	वेदनीय १, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पंचेन्द्रिय, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यश, तीर्थंकर, उच्चगोत्र

असंयम में उदयादित्रिभंगी **उदययोग्य ११९, गुणस्थान १ से ४**

गुण स्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१ मि.	मिश्र, सम्यक्त्व,	२	११७	५	मिथ्यात्व, सूक्ष्मत्रय, आतप
२ सा.	२+५+१ नरकानुपूर्वी	८	१११	९	अनन्तानुबन्धी ४, एकेन्द्रिय, स्थावर विकलत्रय
३ मि.	८+९+३आनुपूर्वी -१ मिश्र	१९	१००	१	मिश्र
४ असं.	(१९+१)-५ सम्यक्त्व और ४ आनुपूर्वी	१५	१०४	१७	अप्रत्याख्यान ४, वैक्रियिकषट्क, देवायु, नरकायु, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय,अयश

सूक्ष्मसांपराय में एक दसवाँ ही गुणस्थान है और देशसंयम में एक पाँचवाँ ही गुणस्थान है अत: कोष्टक नहीं है।

चक्खुम्मि ण साहारणताविगिबितिजाइ थावरं सुहुमं।
किण्णदुगे सगुणोघं मिच्छे णिरयाणु वोच्छेदो ।।३२५।।

अन्वयार्थ - (चक्खुम्मि) चक्षुदर्शन में, **(साहारण)** साधारण, **(ताव)** आतप, **(इगिबितिजाइ)** एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय जाति, **(थावरं)** स्थावर, **(सुहुमं)** सूक्ष्म और तीर्थंकर ये आठ प्रकृतियाँ **(ण)** उदय योग्य नहीं हैं। शेष १२२-८=११४ प्रकृतियों का उदय है।

(किण्णदुगे) कृष्ण और नील लेश्या में, **(सगुणोघं)** सामान्य से तीर्थंकर और आहारकद्विक - इन तीन के बिना १२२-३=११९ प्रकृतियाँ उदय योग्य हैं। शेष कथन अपने अपने गुणस्थानवत् हैं। **(मिच्छे)** किन्तु मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में, **(णिरयाणु)** नरकगत्यानुपूर्वी की, **(वोच्छेदो)** व्युच्छित्ति हो जाती है।

दर्शनमार्गणा में उदय अनुदय भेद ४

दर्शन के भेद	उदय	अनुदय	विवरण
चक्षुदर्शन	११४	८	एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, स्थावर, सूक्ष्म साधारण, आतप, तीर्थंकर
अचक्षुदर्शन	१२१	१	तीर्थंकर
अवधिदर्शन	१०६	१६	प्रथम ३ गुणस्थान की व्युच्छिन्न १५+१ तीर्थंकर
केवलदर्शन	४२	८०	१३ वें गुणस्थान की उदययोग्य ४२ प्रकृति लेना

चक्षुदर्शन में उदयादित्रिभंगी उदययोग्य ११४, गुणस्थान १२

गुण स्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१ मि.	मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक	४	११०	२	मिथ्यात्व, अपर्याप्त
२ सा.	४+२+१ नरकानुपूर्वी	७	१०७	५	अनन्तानुबन्धी ४, चतुरिन्द्रिय जाति

गुण स्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
३ मि.	७+५ +३आनुपूर्वी -१ मिश्र	१४	१००	१	मिश्र
४ असं.	(१४+१)-५ सम्यक्त्व और ४ आनुपूर्वी	१०	१०४	१७	अप्रत्याख्यान४,वैक्रियिकषट्क, देवायु,नरकायु, मनुष्य-तिर्यंचगत्या-नुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयश
५ देश.	१० + १७	२७	८७	८	प्रत्याख्यान ४,तिर्यंचगति-आयु, उद्योत, नीचगोत्र
६ प्रम.	(२७ + ८) -२ आहारकद्विक	३३	८१	५	आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धित्रिक
७ अप्र.	३३ + ५	३८	७६	४	सम्यक्त्व, अंतिम ३ संहनन
८ अ.	३८ + ४	४२	७२	६	हास्यादि ६ नोकषाय
९ अनि.	४२ + ६	४८	६६	६	३ वेद, संज्वलन क्रोध, मान,माया
१० सू.	४८ + ६	५४	६०	१	संज्वलन लोभ
११ उप.	५४ + १	५५	५९	२	वज्रनाराच, नाराचसंहनन
१२ क्षी. .	५५ + २	५७	५७	१६	निद्रा, प्रचला, ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अंतराय ५

अचक्षुदर्शन में गुणस्थान १ से १२ हैं उदय १२१ का है। इसकी रचना सामान्य गुणस्थान की तरह जानना केवल अनुदय में एक-एक कम करना।

अवधिदर्शन की रचना अवधिज्ञान के समान और केवलदर्शन की रचना केवलज्ञान के समान जानना।

साणे सुराउ सुरगदिदेवतिरिक्खाणु वोच्छिदी एवं।
काओदे अयदगुणे णिरयतिरिक्खाणुवोच्छेदो ।।३२६।
तेउतिए सगुणोघं णादाविगिविगल थावरचउक्कं।
णिरयदुतदाउतिरियाणुगं णराणू ण मिच्छदुगे ।।३२७।।

अन्वयार्थ -(साणे) सासादन गुणस्थान में, (कृष्ण, नील लेश्या सहित में), गुणस्थानोक्त ९ तथा **(सुराउ सुरगदि)** देवायु, देवगति, **(देव तिरिक्खाणु)** देवगत्यानुपूर्वी, तिर्यंच गत्यानुपूर्वी इन चार प्रकृतियों की भी (कुल ९+४=१३) **(वोच्छिदी)** व्युच्छित्ति हो जाती है। **(एवं काओदे अयदगुणे)** कापोत के असंयत गुणस्थान में, **(णिरयतिरिक्खाणु)** नरकगत्यानुपूर्वी व तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, **(वोच्छेदो)** की व्युच्छित्ति हो जाती है।

(तेउतिए) तेजो आदि तीन शुभ लेश्याओं में **(सगुणोघं)** अपने-अपने गुणस्थान के समान १२२ उदययोग्य प्रकृति में से **(आदाविगिविगल)** आतप, एकेन्द्रिय,विकलत्रय, **(थावरचउक्कं)** स्थावर चतुष्क, **(णिरयदु)** नरकद्विक, **(तदायु)** नरकायु, **(तिरियाणुगं)** तिर्यंचगत्यानुपूर्वी -ये १३ प्रकृतियाँ **(ण)** नहीं हैं अत: (१२२-१३)=१०९ प्रकृतियाँ उदययोग्य होती हैं। **(मिच्छदुगे)** मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानों में, **(णराणू)** मनुष्यगत्यानुपूर्वी, **(ण)** का भी उदय नहीं है।

लेश्यामार्गणा में उदय अनुदय भेद ६

लेश्या के भेद	उदय	अनुदय	विवरण
कृष्ण, नील	११९	३	तीर्थंकर, आहारकद्विक
कापोत	११९	३	तीर्थंकर, आहारकद्विक
तेजो, पद्म	१०८	१४	एकेन्द्रिय, विकलत्रय, स्थावर चतुष्क, आतप नरकद्विक, नरकायु, तीर्थंकर, तिर्यंचानुपूर्वी
शुक्ल	१०९	१३	उपर्युक्त १४-१ तीर्थंकर (शुक्ललेश्या में तीर्थंकर का उदय है)

कृष्णलेश्या, नीललेश्या में उदयादित्रिभंगी उदययोग्य ११९, गुणस्थान १ से ४

गुण स्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१ मि.	मिश्र, सम्यक्त्व	२	११७	६	मिथ्यात्व, नरकानुपूर्वी, सूक्ष्मत्रय आतप,
२ सा.	२+६	८	१११	१३	अनन्तानुबन्धी ४, एकेन्द्रिय, स्थावर विकलत्रय, देवद्विक, देवायु, तिर्यंचानुपूर्वी

गुण स्थान	अनुदयका विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
३ मि.	(८+१३+१ मनुष्यानुपूर्वी) -१ मिश्र	२१	९८	१	मिश्र
४ असं.	(२१+१)-२ सम्यक्त्व, मनुष्यानुपूर्वी	२०	९९	१२	अप्रत्याख्यान४, नरकगति, नरकायु, वैक्रियिकद्विक, मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय,अयश

कापोतलेश्या में उदयादि उदययोग्य ११९ गुणस्थान १ से ४

गुण स्थान	अनुदयका विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१ मि.	मिश्र, सम्यक्त्व	२	११७	५	मिथ्यात्व, सूक्ष्मत्रय, आतप
२ सा.	२+५+१ नरकानुपूर्वी	८	१११	१२	अनन्तानुबन्धी ४, एकेन्द्रिय, स्थावर,विकलत्रय, देवद्विक, देवायु
३ मि.	(८+१२+२ मनुष्य तिर्यंचानुपूर्वी) -१ मिश्र	२१	९८	१	मिश्र
४ असं.	(२१+१)-४सम्यक्त्व देवानुपूर्वी बिना ३ आनुपूर्वी	१८	१०१	१४	अप्रत्याख्यान४, नारक चतुष्क, नरकायु, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, दुर्भग,अनादेय,अयश

विशेषार्थ - १) भोगभूमियाँ निर्वृत्त्यपर्याप्तक सम्यग्दृष्टि के नियम से कापोत लेश्या का जघन्य अंश होता है। देव और नारकी असंयत सम्यग्दृष्टि तिर्यंचों में उत्पन्न नहीं होते। अत: कृष्णनीललेश्या में असंयत में तिर्यंचानुपूर्वी का उदय नहीं होगा।

२)कृष्णनीललेश्या में असंयत में मनुष्यानुपूर्वी का उदय रहता है क्योंकि नरक से आनेवाला सम्यग्दृष्टी नियम से कर्मभूमि के मनुष्यों में उत्पन्न होता है और उसके भव के प्रथम अन्तर्मुहूर्त काल में पूर्वभव की लेश्या रहती है। शेष कोई सम्यग्दृष्टी कृष्णनीललेश्या के साथ उत्पन्न नहीं होते।

३)भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी देवों के अपर्याप्त अवस्था में तीन अशुभ लेश्या ही होती हैं और पर्याप्त होनेपर तेजोलेश्या का जघन्य अंश होता है। तीन अशुभलेश्यावाले असंयत सम्यग्दृष्टि मरकर भवनत्रिक में उत्पन्न नहीं होते। इसलिए देवगति, देवानुपूर्वी और देवायु की व्युच्छित्ति सासादन में कही है क्योंकि अशुभलेश्यावाले सासादन सम्यग्दृष्टि भवनत्रिक में उत्पन्न हो सकते हैं।

४)कापोतलेश्या में मरा हुआ सम्यग्दृष्टि प्रथम नरक में जाता है और भोगभूमि में तिर्यंच और मनुष्यों में उत्पन्न होता है अत: कापोतलेश्या में नरक-तिर्यंच-मनुष्यानुपूर्वी का चौथे गुणस्थान में उदय रहता है।

तेजोलेश्या(पीतलेश्या)और पद्मलेश्या में उदयादि,त्रिभंगी उदययोग्य १०८, गुणस्थान ७

गुण स्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१ मि.	मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, मनुष्यानुपूर्वी	५	१०३	१	मिथ्यात्व
२ सा.	५+१	६	१०२	४	अनन्तानुबन्धी ४
३ मि.	६+४+१(देवगत्या -नुपूर्वी)-१ मिश्र	१०	९८	१	मिश्र
४ असं.	(१०+१)-३ (सम्यक्त्व,मनुष्यानु-पूर्वी,देवगत्यानुपूर्वी)	८	१००	१३	अप्रत्याख्यान ४, देवद्विक, देवायु वैक्रियिकद्विक, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दुर्भग,अनादेय,अयश
५ देश.	८ + १३	२१	८७	८	प्रत्याख्यान ४,तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र
६ प्रम.	(२१ + ८)-२ आहारकद्विक	२७	८१	५	आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धित्रिक
७ अप्र.	२७ + ५	३२	७६	४	सम्यक्त्व, अंतिम ३ संहनन

१) मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यंच के अपर्याप्त काल में तीन अशुभ लेश्या ही होती है। अत: यहाँ शुभलेश्या में प्रथम दो गुणस्थानों में मनुष्यगत्यानुपूर्वी का अनुदय

बताया है।

२) शुभलेश्या में तिर्यंचगत्यानुपूर्वी का उदय तो रहता ही नहीं है। शुभलेश्या में प्रथम दो गुणस्थानों में केवल देवगत्यानुपूर्वी का ही उदय रहता है। जब देव मिथ्यादृष्टि मरकर तिर्यंच या मनुष्यपर्याय में जन्म लेते हैं तो उनकी शुभ लेश्या बदलकर भव के प्रथम समय में अशुभ लेश्या हो जाती है। देव सम्यग्दृष्टि मरकर मनुष्यगति में ही उत्पन्न होता है उसकी शुभ लेश्या ही रहती है अतः शुभलेश्या में चौथे गुणस्थान में मनुष्यगत्यानुपूर्वी का उदय होता है।

शुक्ललेश्या में उदयादित्रिभंगी उदययोग्य १०९, गुणस्थान १३

गुण स्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१ मि.	मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, तीर्थ. मनुष्यानुपूर्वी	६	१०३	१	मिथ्यात्व
२ सा.	६+१	७	१०२	४	अनन्तानुबन्धी कषाय ४
३ मि.	(७+४+१)(देवगत्यानुपूर्वी)-१ मिश्र	११	९८	१	मिश्र
४ असं.	(११+१)-३ (सम्यक्त्व,मनुष्यानुपूर्वी,देवगत्यानुपूर्वी)	९	१००	१३	अप्रत्याख्यान ४, देवचतुष्क, देवायु, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दुर्भग,अनादेय,अयश
५ देश.	९ + १३	२२	८७	८	पीतपद्मलेश्यावत्
६ प्रम.	(२२ + ८)-२ आहारकद्विक	२८	८१	५	पीतपद्मलेश्यावत्
७ अप्र.	२८ + ५	३३	७६	४	पीतपद्मलेश्यावत्
८ अ.	३३ + ४	३७	७२	६	हास्यादि ६ नोकषाय
९ अनि.	३७ + ६	४३	६६	६	३ वेद, संज्वलन क्रोध,मान,माया
१० सू.	४३ + ६	४९	६०	१	संज्वलन लोभ
११ उप.	४९ + १	५०	५९	२	वज्रनाराच, नाराचसंहनन
१२ क्षी.	५० + २	५२	५७	१६	सामान्यगुणस्थानवत्
१३ स.	(५२ + १६) - १ तीर्थंकर	६७	४२	४२	(१३ वें गुणस्थान की) ३० + (१४ वें की) १२

भव्विदरुवसमवेदगखइए सगुणोघमुवसमे खइए।
ण हि सम्ममुवसमे पुण णादितियाणू य हारदुगं ।।३२८।।
खाइयसम्मो देसो णर एव तदो तहिं ण तिरियाऊ ।
उज्जोवं तिरियगदी तेसिं अयदम्मि वोच्छेदो ।।३२९।।

अन्वयार्थ - (भव्विदरुवसम) भव्य,अभव्य, उपशम सम्यक्त्व, **(वेदगखइए)** वेदक सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व मार्गणा में, **(सगुणोघम्)** अपने-अपने गुणस्थानवत् जानना चाहिए, **(हि)** किन्तु **(उवसमे खइए)** उपशम और क्षायिक सम्यक्त्व में, **(सम्मं)** सम्यक्त्व प्रकृति, **(ण)** का उदय नहीं है। **(पुण)** तथा **(उवसमे)** उपशम सम्यक्त्व में **(आदितियाणू)** आदि की तीन-नरक, तिर्यंच, मनुष्य आनुपूर्वी **(य)** और **(हारदुगं)** आहारकद्विक का **(ण)** उदय नहीं हैं। **(खाइयसम्मो)** क्षायिक सम्यग्दृष्टि व **(देसो)** देशसंयम गुणस्थानवर्ती (दोनों विशेषता सहित) **(णर एव)** मनुष्य ही होता है। **(तदो)** उस कारण से, **(तहिं)** उसमें, **(तिरियाऊ)** तिर्यंचायु, **(उज्जोवं)** उद्योत **(तिरियगदी)** तिर्यंच गति, **(ण)** उदय योग्य नहीं हैं। **(तेसिं)** उनकी-इन तीनों की **(अयदम्हि)** असंयत गुणस्थान में ही **(वोच्छेदो)** व्युच्छित्ति हो जाती है।

भव्यमार्गणा में उदय अनुदय भेद -२

	उदययोग्य	अनुदय	विवरण	गुणस्थान
भव्य	१२२	०	सामान्य गुणस्थानवत् रचना जानना	१ से १४
अभव्य	११७	५	मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, तीर्थंकर	प्रथम १ गुण.

सम्यक्त्वमार्गणा में उदय अनुदय भेद-६

सम्यक्त्व के भेद	उदय योग्य	अनुदय	विवरण
उपशमसम्यक्त्व	१००	२२	प्रथम ३ गुणस्थान की व्युच्छित्ति(५+९+१)+७ सम्यक्त्व,आहारकद्विक,तीर्थंकर, देवगत्यानुपूर्वी के बिना ३ आनुपूर्वी
वेदकसम्यक्त्व	१०६	१६	प्रथम ३ गुणस्थान की व्युच्छित्ति१५+१ तीर्थंकर
क्षायिकसम्यक्त्व	१०६	१६	प्रथम ३ गुणस्थान की व्युच्छित्ति१५+१ सम्यक्त्व
मिथ्यात्व	११७	५	प्रथमगुणस्थानवत्
सासादन	१११	११	द्वितीयगुणस्थानवत्
मिश्र	१००	२२	तृतीयगुणस्थानवत्

विशेषार्थ - मरणरहित स्थान

१) निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था २) आहारकमिश्रकाययोग ३) क्षपकश्रेणी

४) उपशमश्रेणिपर आठवें गुणस्थान के प्रथम भाग में ५) प्रथमोपशमसम्यक्त्व में

६) सातवें नरक में ऊपर के गुणस्थानों में

७) अनन्तानुबन्धी कषाय का विसंयोजन करके मिथ्यात्व गुणस्थान में आनेपर एक अन्तर्मुहूर्त तक

८) दर्शनमोह का क्षय करते समय जबतक कृतकृत्यवेदक नहीं होता तबतक

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में देवायु के बिना शेष आयु का सत्त्व (बध्यमान की अपेक्षा) नहीं होता, क्योंकि सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव ही द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को स्वीकार करता है और अणुव्रत महाव्रत देवायु के सिवाय अन्य आयु का बन्ध करनेवाले के नहीं होते। अत: उपशमसम्यक्त्व में देव बिना तीन आनुपूर्वी का उदय नहीं होता। द्वितीयोपशम सम्यक्त्वी यदि श्रेणिपर मरण को प्राप्त होते हैं तो मरकर असंयत सम्यग्दृष्टि देव ही होते हैं। दोनों उपशमसम्यक्त्वों में आहारकऋद्धि प्राप्त नहीं होती। अत: उपशम सम्यक्त्व में आहारकद्विक का उदय नहीं होता।

उपशमसम्यक्त्व में उदयादित्रिभंगी **उदययोग्य १००, गुणस्थान ४ से ११**

गुण स्थान	अनुदयका विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
४ असं.		०	१००	१४	अप्रत्याख्यान४, नरकगत्यानुपूर्वी के बिना वैक्रियिकषट्क, देवायु, नरकायु, दुर्भग, अनादेय, अयश
५ देश.	१४	१४	८६	८	प्रत्याख्यान ४,तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र
६ प्रम.	१४ + ८	२२	७८	३	स्त्यानगृद्धित्रिक
७ अप्र.	२२ + ३	२५	७५	३	अंतिम ३ संहनन
८ अ.	२५ + ३	२८	७२	६	हास्यादि ६ नोकषाय
९ अनि.	२८ + ६	३४	६६	६	३ वेद, संज्वलन क्रोध, मान,माया
१० सू.	३४ + ६	४०	६०	१	संज्वलन लोभ
११ उप.	४० + १	४१	५९	२	वज्रनाराच, नाराचसंहनन

क्षयोपशमसम्यक्त्व में उदयादि त्रिभंगी **उदययोग्य १०६, गुणस्थान ४ से ७**

गुण स्थान	अनुदयका विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
४ असं.	आहारकद्विक	२	१०४	१७	सामान्यगुणस्थानवत्
५ देश.	२ + १७	१९	८७	८	सामान्यगुणस्थानवत्
६ प्रम.	(१९ + ८)-२ आहारकद्विक	२५	८१	५	सामान्यगुणस्थानवत्
७ अप्र.	२५ + ५	३०	७६	७६	शेष सर्व गुणस्थानों की ४+६+६+१+२+१६+३०+११

क्षायिक सम्यक्त्व में उदयादित्रिभंगी उदययोग्य १०६, गुणस्थान ४-१४

गुण स्थान	अनुदयका विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
४ असं.	आहारकद्विक, तीर्थंकर	३	१०३	२०	सामान्यगुणस्थानवत् १७+३ तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, उद्योत
५ देश.	३ + २०	२३	८३	५	प्रत्याख्यानकषाय ४, नीचगोत्र
६ प्रम.	(२३ +५)-२ आहारकद्विक	२६	८०	५	आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धित्रिक
७ अप्र.	२६ + ५	३१	७५	३	अर्धनाराच, कीलक, असंप्राप्त-सृपाटिका संहनन
८ अ.	३१ + ३	३४	७२	६	हास्यादि ६ नोकषाय
९ अनि.	३४ + ६	४०	६६	६	३ वेद, संज्वलन क्रोध, मान,माया
१० सू.	४० + ६	४६	६०	१	संज्वलन लोभ
११ उप.	४६ + १	४७	५९	२	वज्रनाराच, नाराचसंहनन
१२ क्षी.	४७ + २	४९	५७	१६	ज्ञानावरण ५ दर्शनावरण ४ अंतराय ५, निद्रा, प्रचला
१३ स.	(४९ + १६)- १ तीर्थंकर	६४	४२	३०	सामान्यगुणस्थानवत्
१४ अ.	६४ + ३०	९४	१२	१२	सामान्यगुणस्थानवत्

देशसंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्य ही होता है, तिर्यंच नहीं होता। तिर्यंचगति में क्षायिकसम्यक्त्व का प्रारंभ नहीं होता और क्षायिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य मरकर यदि तिर्यंच में उत्पन्न हुआ तो भोगभूमि तिर्यंच में ही उत्पन्न होता है और भोगभूमि में पंचम गुणस्थान नहीं होता अत: देशसंयत में क्षायिक सम्यग्दृष्टि तिर्यंच नहीं होता इसलिए तिर्यंचगति, तिर्यंचायु और उद्योत इन तीन का उदय पंचम गुणस्थान में नहीं होता इनकी व्युच्छित्ति चौथे गुणस्थान में ही होती है।

मिथ्यादृष्टि, सासादन और सम्यक्त्व में अपने अपने गुणस्थानवत् उदय, अनुदय जानना।

सेसाणं सगुणोघं सण्णिस्स वि णत्थि ताव साहरणं ।
थावर-सुहुमिगिविगलं असण्णिणो वि य ण मणुदुच्चं।।३३०।
वेगुव्वछ पणसंहदिसंठाण सुगमण सुभग आउतियं।
आहारे सगुणोघं णवरि ण सव्वाणुपुव्वीओ।।३३१।।

अन्वयार्थ - (सेसाणं) शेष सम्यग्मिथ्यात्व, सासादन व मिथ्यात्व इन तीन में, **(सगुणोघं)** अपने-अपने गुणस्थान के समान उदयादि जानना। **(सण्णिस्स वि)** संज्ञी मार्गणा में, (सामान्य से उदययोग्य १२२ में से) **(ताव साहरणं)** आतप, साधारण,**(थावर-सुहुमिगिविगलं)** स्थावर, सूक्ष्म, एकेन्द्रिय, विकलत्रय,और तीर्थंकर - ये ९ प्रकृतियाँ **(णत्थि)** नहीं है। अत: (१२२-९) =११३ उदययोग्य हैं। **(असण्णिणो वि)** असंज्ञी के भी **(मणुदुच्चं)** मनुष्यद्विक-मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, और उच्चगोत्र, **(वेगुव्वछ)** वैक्रियिक षट्क, **(पण संहदि संठाण)** आदि के पाँच संहनन और आदि के पाँच संस्थान, **(सुगमण)** प्रशस्त विहायोगति, **(सुभग आउतियं)** सुभगादि तीन, नरकादि तीन आयु-ये २६ प्रकृतियाँ **(ण)** उदय योग्य नहीं हैं। उदययोग्य ११७-२६=९१ प्रकृतियाँ हैं। **(आहारे)** आहार मार्गणा में **(सगुणोघं)** सामान्य गुणस्थान के समान जानना। **(णवरि)** विशेषता केवल यह है कि यहाँ, **(सव्वाणुपुव्वीओ)** चारों आनुपूर्वियों का उदय **(ण)** नहीं है। अत: उदययोग्य १२२-४=११८ प्रकृतियाँ हैं।

संज्ञी मार्गणा में उदय अनुदय

संज्ञी मार्गणा	उदय	अनुदय	अनुदय का विवरण
संज्ञी	११३	९	आतप, साधारण, स्थावर,सूक्ष्म, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, तीर्थंकर
असंज्ञी	९१	३१	मनुष्यद्विक, उच्चगोत्र, वैक्रियिक षट्क, प्रथम पाँच संहनन, प्रथम पाँच संस्थान, प्रशस्त-विहायोगति, सुभगत्रय,नरक-मनुष्य-देवायु मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, तीर्थंकर

संज्ञी मार्गणा में उदयादि त्रिभंगी **उदययोग्य ११३, गुणस्थान १ से १२**

गुण स्थान	अनुदयका विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१ मि.	मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक,	४	१०९	२	मिथ्यात्व, अपर्याप्त
२ सा.	४+२+१ नरकगत्यानुपूर्वी	७	१०६	४	अनन्तानुबन्धी ४
३ मि.	(७+४+३ शेष आनुपूर्वी)-१ मिश्र	१३	१००	१	मिश्र
४ असं.	(१३+१)-५ (४ आनुपूर्वी और सम्यक्त्व)	९	१०४	१७	अप्रत्याख्यान ४, वैक्रियिकषट्क, नरकायु, देवायु, मनुष्य-तिर्यंच-गत्यानुपूर्वी, दुर्भग,अनादेय,अयश
५ देश.	९ + १७	२६	८७	८	प्रत्याख्यान ४, तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र
६ प्रम.	(२६ + ८)-२ आहारकद्विक	३२	८१	५	आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धित्रिक
७ अप्र.	३२ + ५	३७	७६	४	सम्यक्त्व, अन्तिम तीन संहनन
८ अ.	३७ + ४	४१	७२	६	हास्यादि ६ नोकषाय
९ अनि.	४१ + ६	४७	६६	६	३ वेद, संज्वलन क्रोध,मान,माया
१० सू.	४७ + ६	५३	६०	१	संज्वलन लोभ
११ उप.	५३ + १	५४	५९	२	वज्रनाराच, नाराचसंहनन
१२ क्षी.	५४ + २	५६	५७	५७	(१६+३०+११) १४ वें गुणस्थान की १२-१ तीर्थंकर

विशेषार्थ - सयोगकेवली और अयोगकेवली संज्ञी नहीं हैं क्योंकि उनके भावमन नहीं होता। और वे असंज्ञी नहीं है क्योंकि असंज्ञी व्यपदेश तिर्यंचों में ही होता है, अन्यत्र नहीं होता।

असंज्ञी मार्गणा में उदयादित्रिभंगी **उदययोग्य ९१, गुणस्थान १,२**

गुण.	अनुदय	उदय	व्युच्छित्ति	विवरण
१ मि	०	९१	१३	मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्मत्रय, स्त्यानगृद्धित्रिक, परघात, उद्योत, उच्छ्वास, दुस्वर, अप्रशस्तविहायोगति
२ सा	१३	७८	९	अनन्तानुबन्धी कषाय ४,एकेन्द्रिय, विकलत्रय, स्थावर

असंज्ञीमार्गणा में दूसरा गुणस्थान अपर्याप्त की अपेक्षा है अत: पर्याप्ति पूरी होने के बाद ही उदय में आनेवाली स्त्यानगृद्धित्रिक आदि ८ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति पहले गुणस्थान में होती है।

आहारमार्गणा में उदय अनुदय

आहारमार्गणा	उदय	अनुदय	विवरण
आहार	११८	४	आनुपूर्वी ४
अनाहार	८९	३३	स्वरद्विक,विहायोगति २, प्रत्येक २, आहारकद्विक, औदारिकद्विक, वैक्रियिकद्विक, मिश्र,उपघातादि ५, स्त्यानगृद्धित्रिक, संस्थान ६, संहनन ६

आहारमार्गणा में उदयादित्रिभंगी उदययोग्य ११८, गुणस्थान १ से १३

गुण.	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१	मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक,तीर्थंकर	५	११३	५	मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्मत्रय,
२	५+५	१०	१०८	९	अनन्तानुबन्धी ४, एकेन्द्रियादि जाति ४, स्थावर
३	(१०+९)-१ मिश्र	१८	१००	१	मिश्र
४	(१८+१)-१सम्यक्त्व	१८	१००	१३	अप्रत्याख्यान४, वैक्रियिक षट्क, देवायु, नरकायु, दुर्भग, अनादेय, अयश
५	१८ + १३	३१	८७	८	प्रत्याख्यान ४,तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र
६	(३१ + ८) -२ आहारकद्विक	३७	८१	५	आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धित्रिक
७	३७ + ५	४२	७६	४	सम्यक्त्व, अंतिम ३ संहनन
८	४२ + ४	४६	७२	६	हास्यादि ६ नोकषाय
९	४६ + ६	५२	६६	६	३ वेद, संज्वलन क्रोध, मान,माया
१०	५२ + ६	५८	६०	१	संज्वलन लोभ
११	५८ + १	५९	५९	२	वज्रनाराच, नाराचसंहनन
१२	५९ + २	६१	५७	१६	निद्रा, प्रचला, ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अंतराय ५
१३	(६१ + १६) -१ तीर्थंकर	७६	४२	४२	१३ वें गुण. की व्यु.३०+ १२ चौदहवें गुण. की व्युच्छित्ति

कम्मेवाणाहारे पयडीणं उदयमेवमादेसे ।
कहियमिणं बलमाहवचंदच्चियणेमिचंदेण ।।३३२।।

अन्वयार्थ -(अणाहारे) अनाहारक मार्गणा में, **(कम्मे वा)** कार्मण काय योग के समान हैं, **(एवमादेसे)** इस प्रकार मार्गणा में **(पयडीणं उदयं)** प्रकृतियों का उदय **(कहियमिणं बलमाहवचंदच्चियणेमिचंदेण)** बलदेव और माधवचन्द्र से पूजित (आचार्य) नेमिचंद्र ने कहा है। (अथवा) बलभद्र और माधव (नारायण) से पूजित नेमिनाथ तीर्थंकर ने कहा है।

अनाहारमार्गणा में उदयादिक त्रिभंगी   उदययोग्य ८९

गुणस्थान १,२,४, १३,१४

गुण स्थान	अनुदय का विवरण	अनुदय	उदय	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१ मि.	सम्यक्त्व, तीर्थंकर	२	८७	३	मिथ्यात्व, अपर्याप्त, सूक्ष्म,
२ सा.	२+३+३ नरकद्विक,नरकायु	८	८१	१०	अनन्तानुबन्धी ४, एकेन्द्रिय, स्थावर विकलत्रय, स्त्रीवेद
४ असं.	(८+१०)-४ नरकद्विक,नरकायु, सम्यक्त्व	१४	७५	५१	चौथे गुणस्थान की वैक्रियिकद्विक के बिना १५ + पाँचवे गुण. उद्योत बिना ७+छट्ठे की ० + सातवें की सम्यक्त्व १+६ नोकषाय + स्त्रीवेद बिना नववें की ५+१ दसवें की +१६ (बारहवें की)
१३ स.	(१४ + ५१)-१ तीर्थंकर	६४	२५	१३	१ वेदनीय, निर्माण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, तैजसद्विक, वर्णादि ४ अगुरुलघु
१४ अ.	६४ + १३	७७	१२	१२	सामान्यगुणस्थानवत्

विशेषार्थ - सम्यग्दृष्टि मरकर स्त्रीवेदी में उत्पन्न नहीं होता अत: विग्रहगति में चौथे गुणस्थान में स्त्रीवेद का उदय नहीं होता इसलिए दूसरे गुणस्थान में स्त्रीवेद की व्युच्छित्ति हुई।

प्रकृतिसत्त्व का प्रकरण

तित्थाहारा जुगवं सव्वं तित्थं ण मिच्छगादितिये।
तस्सत्तकम्मियाणं तग्गुणठाणं ण संभवइ ।।३३३।।

अन्वयार्थ -(मिच्छगादितिये) मिथ्यात्वादि तीन गुणस्थानों में क्रम से अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थान में **(तित्थाहारा जुगवं ण)** तीर्थंकर और आहारकद्विक का सत्त्व एकसाथ नही होता। सासादन में **(सव्वं)** तीनों का सत्त्व नहीं हैं और मिश्र गुणस्थान में **(तित्थं ण)** तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व नहीं है। **(तस्सत्तकम्मियाणं)** इन प्रकृतियों के सत्त्व सहित जीवों को **(तग्गुणठाणं)** वह गुणस्थान **(ण संभवइ)** नहीं होता।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में	एक जीव के एक समय में तीर्थंकर और आहारकद्विक का सत्त्व नहीं होता।
सासादन गुणस्थान में	एक जीव और नाना जीव की अपेक्षा क्रम से या एक साथ तीर्थंकर और आहारकद्विक का सत्त्व नहीं होता।
मिश्र गुणस्थान में	तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व नहीं होता।

विशेषार्थ - मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में एक ही जीव के आहारकद्विक और तीर्थंकर का सत्त्व क्रम से पाया जाता है। वह इसप्रकार - किसी जीव ने ७ वें और ८ वें गुणस्थान में आहारक का बन्ध किया। पीछे मिथ्यात्व गुणस्थान में आकर आहारकद्विक का उद्वेलन कर दिया। पीछे नरकायु का बन्ध करके असंयत गुणस्थान में जाकर तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया। पश्चात् दूसरे या तीसरे नरक में जाने के समय मिथ्यादृष्टि हो गया। इसप्रकार अनेक भवों में एक ही जीव के मिथ्यात्व गुणस्थान में क्रम से आहारकद्विक और तीर्थंकर का सत्त्व पाया जा सकता है।

किन्तु नाना जीवों की अपेक्षा एकसाथ दोनों का सत्त्व मिथ्यात्व गुणस्थान में पाया जाता है। किसी जीव के आहारकद्विक का सत्त्व पाया जाता है और किसी के तीर्थंकर का

सत्त्व पाया जाता है।

चत्तारिवि खेत्ताइं आउगबंधेण होदि सम्मत्तं।
अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं ।।३३४।।

अन्वयार्थ -(चत्तारिवि खेत्ताइं) चारों ही गतियों में **(आउगबंधेण)** किसी भी आयु का बंध हो जाने से, **(सम्मत्तं)** सम्यक्त्व **(होदि)** होता है। किन्तु **(देवाउगं)** देवायु को **(मोत्तुं)** छोड़कर (अन्य तीन आयु का बंध करनेवाला) **(अणुवदमहव्वदाइं)** अणुव्रत-महाव्रत,**(ण लहइ)** धारण नहीं कर सकता है।

णिरयतिरिक्खसुराउग सत्ते ण हि देससयलवदिखवगा।
अयदचउक्कं तु अणं-अणियट्टीकरणचरिमम्मि ।।३३५।।
जुगवं संजोगित्ता पुणोवि अणियट्टिकरणबहुभागं।
बोलिय कमसो मिच्छं मिस्सं सम्मं खवेइ कमे।।३३६।।

अन्वयार्थ - (णिरयतिरिक्खसुराउग) नरक, तिर्यंच तथा देवायु का, **(सत्ते)** सत्त्व होने पर क्रम से **(देससयलवदिखवगा)** देशव्रत, महाव्रत और क्षपक श्रेणी **(ण हि)** नहीं होती हैं। **(अयदचउक्कं)** असंयतादि चार गुणस्थानवाले जीव, **(अणियट्टी-करणचरिमम्मि)** अनिवृत्तिकरण परिणाम के अंतिम समय में, **(अणं)** अनन्तानुबंधी की **(जुगवं संजोगित्ता)** युगपत् विसंयोजना करते हैं। **(पुणोवि)** पुनः तीन करण परिणाम करके **(अणियट्टिकरण)** अनिवृत्तिकरण काल के, **(बहुभागं बोलिय)** बहुभाग बीत जाने पर (शेष संख्यातवें एकभाग में) **(कमसो)** क्रम से, **(मिच्छं)** मिथ्यात्व **(मिस्सं)** सम्यग्मिथ्यात्व तथा **(सम्मं)** सम्यक्त्व प्रकृति का **(खवेइ)** क्षय करते हैं। इस प्रकार **(कमे)** सात प्रकृतियों के क्षय का यह क्रम है।

विशेषार्थ - विशेष नियम -१) चारों गतिसम्बन्धी आयु का बन्ध करने पर भी जीव के सम्यक्त्व हो सकता है।

२) यदि पहले नरकायु, तिर्यंचायु या मनुष्यायु का बन्ध हो तो पीछे अणुव्रत या महाव्रत धारण नहीं कर सकता। देवायु का बन्ध पहले हुआ हो तो अणुव्रत, महाव्रत धारण कर सकता है।

३) भुज्यमान या बध्यमानरूप से नरकायु का सत्त्व होने पर अणुव्रत नहीं हो सकते।

४) भुज्यमान या बध्यमानरूप से तिर्यंचायु का सत्त्व होने पर महाव्रत नहीं हो सकते।

५) भुज्यमान या बध्यमानरूप से देवायु का सत्त्व होने पर क्षपकश्रेणि नहीं होती।

६) असंयतादि चार गुणस्थानों में से किसी एक गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी चार कषाय और दर्शनमोहनीय तीन इन सातों की सत्ता का नाश करके क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है। प्रथम तीन करण परिणाम करके अनिवृत्तिकरण के अन्तर्मुहूर्त काल के अन्त में अनन्तानुबन्धी चतुष्क का एक साथ विसंयोजन करता है अर्थात् उन्हें बारह कषाय और नव नोकषायरूप परिणमाता है। उसके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त तक विश्राम करके दर्शनमोह का नाश करने के लिए पुन: तीन करण करता है। अनिवृत्तिकरण का संख्यात बहुभाग काल बीत जानेपर जब एक भाग शेष रहता है तब पहले मिथ्यात्व प्रकृति का क्षय करता है, उसके पश्चात् मिश्र का और उसके पश्चात् सम्यक्त्व प्रकृति का क्षय करता है। तब क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है। अनिवृत्तिकरण का काल अन्तर्मुहूर्त २१ उसका संख्यातवाँ एकभाग $\frac{२१}{४}$ और उसका बहुभाग $\frac{२१}{४}$ $\overset{१}{\overline{४}}$ (बहुभाग निकालने के लिए एकभाग को एक कम भागहार से गुणा करना।)

सोलट्ठेक्किगिछक्कं चदुसेक्कं बादरे अदो एक्कं।
खीणे सोलस जोगे बावत्तरि तेरुवंतंते।।३३७।।

अन्वयार्थ - (बादरे) क्षपक अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के ९ भागों में क्रम से **(सोलट्ठेक्किगिछक्कं)** सोलह, आठ, एक, एक और छह, **(चदुसेक्कं)** शेष चार भागों में एक-एक प्रकृति की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है। **(अदो)** सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में, **(एक्कं)** एक प्रकृति की, **(खीणे)** क्षीण कषाय गुणस्थान में, **(सोलस)** सोलह प्रकृतियों की **(अजोगे)** अयोगि गुणस्थान में, **(उवत्तंते)** द्विचरम व चरम समय में क्रमश:, **(बावत्तरि)** बहत्तर प्रकृतियों की और **(तेर)** तेरह प्रकृतियों की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

णिरयतिरिक्खदु वियलं थीणतिगुज्जोव-ताव-एइंदी।
साहरणसुहुमथावर सोलं मज्झिमकसायट्ठं।।३३८।।

संढित्थिछक्कसाया पुरिसो कोहो य माण मायं च।
थूले सुहुमे लोहो उदयं वा होदि खीणम्मि ।।३३९।।

अन्वयार्थ - (णिरयतिरिक्खदु) नरक गति, नरक गत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, **(वियलं)** विकलत्रय, **(थीणतिग)** स्त्यानगृद्धि त्रिक, **(उज्जोव-ताव-एइंदी)** उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय **(साहरणसुहुमथावर सोलं)** साधारण, सूक्ष्म, स्थावर - ये १६ प्रकृतियाँ **(थूले)** अनिवृत्तिकरण के प्रथम भाग में,**(मज्झिमकसायट्ठं)** अप्रत्याख्यान की चार, प्रत्याख्यान की चार ८ प्रकृतियाँ दूसरे भाग में **(संढित्थि)** नपुंसक वेद तीसरे भाग में, स्त्रीवेद चौथे भाग में, **(छक्कसाया)** हास्यादि षट् कषाय पाँचवें भाग में **(पुरिसो)** पुरुषवेद छठे भाग में **(कोहो य माण मायं च)** सातवें में संज्वलन क्रोध, आठवें भाग में संज्वलन मान, नवें भाग में संज्वलन माया सत्ता से व्युच्छिन्न होती हैं। **(सुहुमे)** सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान में **(लोहो)** सूक्ष्म लोभ की सत्ता व्युच्छित्ति होती है। **(खीणम्मि)** क्षीण कषाय गुणस्थान में **(उदयं वा)** उदय व्युच्छित्ति की तरह अर्थात् ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अन्तराय ५, निद्रा और प्रचला इन सोलह प्रकृतियों की सत्ता व्युच्छित्ति है।

देहादीफस्संता थिरसुहसरसुरविहायदुगदुभगं।
णिमिणं जसणादेज्जं पत्तेयापुण्ण अगुरुचऊ ।।३४०।।
अणुदयतदियं णीचमजोगिदुचरिमम्मि सत्तवोच्छिण्णा।
उदयगबार णराणू तेरस चरिमम्मि वोच्छिण्णा ।।३४१।।

अन्वयार्थ -(देहादीफस्संता) शरीर से स्पर्श पर्यंत अर्थात् पाँच शरीर, पाँच बन्धन, पाँच संघात, ६ संस्थान, तीन अंगोपांग, ६ संहनन, पाँच वर्ण, दो गंध, पाँच रस, आठ स्पर्श, **(थिरसुहसरसुरविहायदुग)** स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दुःस्वर, देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगति, **(दुभगं)** दुर्भग, **(णिमिणंजस)** निर्माण, अयशस्कीर्ति, **(अणादेज्जं)** अनादेय,**(पत्तेयापुण्ण अगुरुचऊ)** प्रत्येक, अपर्याप्त, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, **(अणुदयतदियं)** अनुदय प्राप्त साता-असाता में से एक **(णीचं)** नीच गोत्र, इन ७२ प्रकृतियों की **(अजोगि)** अयोगि गुणस्थान के, **(दुचरिमम्मि)** द्विचरम समय में, **(सत्तवोच्छिण्णा)** सत्त्व व्युच्छित्ति होती हैं। **(चरिमम्मि)** अयोगी गुणस्थान के चरमसमय में **(उदयगबार)** जिनका उदय है ऐसी

१२ प्रकृतियाँ (साता-असाता में से एक, मनुष्य गति, पञ्चेन्द्रिय जाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थंकर, मनुष्यायु, उच्च गोत्र और **(णराणू)** मनुष्यगत्यानुपूर्वी (उदयरहित) **(तेरस)** इन तेरह प्रकृतियों की (**वोच्छिण्णा)** सत्ता से व्युच्छित्ति हो जाती है।

णभतिगिणभइगि दोद्दोदसदससोलट्ठगादिहीणेसु ।
सत्ता हवंति एवं असहायपरक्कमुद्दिट्ठं ।।३४२।

अन्वयार्थ - मिथ्यात्व से क्षपक अपूर्वकरण गुणस्थान तक क्रम से **(णभतिगिणभ इगि दो द्दो दस)** शून्य, तीन, एक, शून्य, एक, दो, दो और दस प्रकृतियों का असत्त्व जानना। अनिवृत्तिकरण के प्रथम भाग में **(दससोलट्ठगादि)** दस, द्वितीय भाग में सोलह का असत्त्व है। आगे तृतीयादि भागों में आठ आदि प्रकृतियों का असत्त्व है। **(हीणेसु)** असत्त्व रूप प्रकृतियों को सत्त्व रूप १४८ प्रकृतियों में घटाने पर **(सत्ता हवंति)** अपने अपने गुणस्थानों में सत्त्व प्रकृतियाँ हैं। **(एवं)** इस प्रकार **(असहायपरक्कमुद्दिट्ठं)** असहाय है पराक्रम जिनका, ऐसे वर्धमान स्वामी ने कहा है।

गुणस्थानों में असत्त्व, सत्त्व और सत्त्वव्युच्छित्ति क्षपकश्रेणी की अपेक्षा से

गुण	असत्त्व का विवरण	असत्त्व	सत्त्व	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
१		०	१४८	०	
२	तीर्थंकर, आहारकद्विक	३	१४५	०	
३	तीर्थंकर	१	१४७	०	
४		०	१४८	१	नरकायु
५	नरकायु	१	१४७	१	तिर्यंचायु,
६	१+१	२	१४६	०	
७	उपर्युक्त	२	१४६	८	देवायु, अनंतानुबन्धी ४, मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यक्त्व
८	२ + ८	१०	१३८	०	
९-१	उपर्युक्त	१०	१३८	१६	स्त्यानगृद्धित्रिक, नरकद्विक, तिर्यंचद्विक, एकेन्द्रियादि ४ जाति, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप, उद्योत

गुण	असत्त्व का विवरण	असत्त्व	सत्त्व	व्यु.	व्युच्छित्ति का विवरण
९-२	१० + १६	२६	१२२	८	अप्रत्याख्यान४, प्रत्याख्यान ४ कषाय
९-३	२६ + ८	३४	११४	१	नपुंसकवेद
९-४	३४ + १	३५	११३	१	स्त्रीवेद
९-५	३५ + १	३६	११२	६	हास्य, रति, अरति, शोक, भय,जुगुप्सा
९-६	३६ + ६	४२	१०६	१	पुरुषवेद
९-७	४२ + १	४३	१०५	१	संज्वलनक्रोध
९-८	४३+१	४४	१०४	१	संज्वलन मान
९-९	४४+१	४५	१०३	१	संज्वलन माया
१०	४५+१	४६	१०२	१	संज्वलन लोभ
१२	४६+१	४७	१०१	१६	निद्रा, प्रचला, ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अंतराय ५
१३	४७+१६	६३	८५	०	
१४	द्विचरमसमय-	६३	८५	७२	५ शरीर, ५ बन्धन,५संघात, ६ संस्थान, ३ अंगोपांग, ६ संहनन, वर्णादि २०, स्थिरद्विक२, शुभद्विक, स्वरद्विक,देवद्विक, विहायोगतिद्विक, दुर्भग,अनादेय, अयश, अगुरुलघुचतुष्क,प्रत्येक, अपर्याप्त, वेदनीय१ अनुदयरूप, नीचगोत्र, निर्माण
१४	चरम समय ६३+७२	१३५	१३	१३	एक वेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थंकर, उच्चगोत्र मनुष्यगत्यानुपूर्वी

विशेषार्थ - ८ से ११ गुणस्थानों में उपशमश्रेणिवाले के १४६ अथवा क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो तो १३८ का सत्त्व रहता है।

क्षपणा का विधान

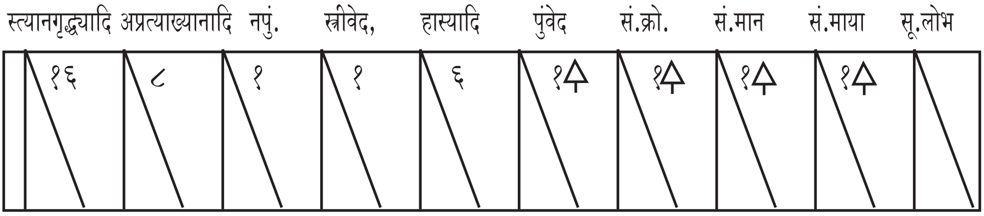

निषेक क्रमहीनरूप से है इसलिए △ ऐसी संदृष्टि जाननी। उच्छिष्टावली के निषेक अलग दिखाने को बीच में आडी रेखाकी संदृष्टि की है। पुरुषवेद, संज्वलनक्रोध, मान, माया, बादर लोभ के नवीन बंधे समयप्रबद्ध उन्हींके क्षपण और उपशमन काल में क्षीण नहीं होते, उपशमित नहीं होते। आगे संज्वलन क्रोध, मान, माया, बादर लोभ, सूक्ष्मलोभ में क्षीण और उपशमित होते हैं उनको अलग दिखाने के लिए बीच में ⍋ ऐसी अलग रचना की है।

क्षपणाविधान में उदयरूप पुरुषवेद आदि का एक निषेक तो एक समय की स्थितिवाला होता है। दो निषेक दो समय की स्थितिवाले होते हैं ऐसा क्रम जानना।

जिनका उदय नहीं हैं उन नपुंसकवेद आदि की क्षय के बाद अवशेष उच्छिष्ट रही सर्वस्थिति एक समय अधिक आवली प्रमाण है क्योंकि वहाँ एक निषेक दो समय की स्थितिवाला है। दो निषेक तीन समय की स्थितिवाले हैं इत्यादि क्रम पाया जाता है।

जिनका उदय नहीं है उनका नाश परमुखरूप से होता है। प्रथमस्थिति में स्थित उच्छिष्टावली रूप निषेक स्तिबुक संक्रमण के द्वारा उदयवाली प्रकृति में संक्रमित होकर खिरते हैं। स्तिबुक संक्रमण एक समय पहले होता है अत: निषेक ४ रहे तब स्थिति पाँच समय शेष होगी।

	उदयरूप पुरुषवेद	
	५	० ५
	४	० ४
	३	० ३
	२	० २
वर्तमानसमय	१	० १
	स्थिति	निषेक

अनुदयरूप नपुंसकवेद	
५	० ४
४	० ३
३	० २
२	० १
१	×
स्थिति	निषेक

नपुंसकवेद के वर्तमान निषेक का अभाव है क्योंकि उसका पूर्व समय में ही उदयरूप पुरुषवेद में संक्रमण हो गया है। अत: निषेक ४ हैं और स्थिति ५ समय है।

जो प्रकृति अपने रूप में ही उदय में आती है उसमें स्वमुख उदय है। जो प्रकृति अन्यरूप हो उदय में आवे वहाँ परमुख उदय है।

उपशम विधान का क्रम

खवणं वा उवसमणे णवरि य संजलण पुरिसमज्झम्मि।
मज्झिम दो द्दो कोहादीया कमसोवसंता हु ।।३४३।।

अन्वयार्थ - (उवसमणे) उपशमन विधान में भी **(खवणं वा)** क्षपण की तरह ही विधान जानना। **(णवरि य)** विशेषता केवल यह है कि, **(संजलण)** संज्वलन कषाय और **(पुरिसमज्झम्मि)** पुरुष वेद के मध्य में, **(मज्झिम दो द्दो)** मध्य की अर्थात् अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान दो-दो **(कोहादीया)** क्रोधादि कषायें हैं, **(कमसो उवसंता हु)** सो पहले उन्हें उपशान्त करता है। पश्चात् संज्वलन क्रोधादि का उपशम करता है।

विशेषार्थ - नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, हास्यादि छह नोकषाय और पुरुषवेद का क्रम से उपशम होता है। उसके पश्चात् द्विचरमावली और चरमावली में बंधे हुए पुरुषवेद के नवक समयप्रबद्ध के साथ अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान क्रोध का उपशमन करता है। अन्तिम दो आवली में बन्धे हुए निषेक पुरुषवेद के उपशमन करने के काल में उपशम करने योग्य नहीं हुए थे क्योंकि अचलावली में अर्थात् बंध होने के बाद एक आवलीप्रमाण काल में उपशमन संक्रमणादि क्रिया नहीं होती। अत: वे निषेक मध्यम क्रोधयुगल के उपशमन काल में उपशमित किये जाते हैं।

अनन्तर संज्वलन क्रोध का उपशम करता है। उसके अनन्तर उस संज्वलन क्रोध के नवीन बंधे हुए समयप्रबद्ध के साथ अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान मान का उपशम करता है। उसके अनन्तर संज्वलन मान का उपशम करता है। उसके अनन्तर संज्वलन मान के नवकबन्धसहित मध्यम अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान मायायुगल का उपशम करता है। उसके अनन्तर संज्वलन माया का उपशम करता है। उसके पश्चात् संज्वलनमाया के नवीनबन्धसहित अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान लोभ को उपशमाता है। उसके अनन्तर बादरसंज्वलन लोभ को उपशमाता है। मोहनीय कर्म के सिवाय अन्य कर्मों का उपशम नहीं होता। इस प्रकार उपशम श्रेणि में मोह को उपशमाता है। उसकी सत्ता का नाश नहीं होता।

अत: अपूर्वकरण से उपशान्त गुणस्थानपर्यन्त उपशमश्रेणिवाले के (द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशम श्रेणि चढ़ता है उसकी अपेक्षा से) नरकायु और तिर्यंचायु बिना एकसौ छियालीस १४६ की सत्ता रहती है। किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणिवाले के एकसौ अड़तीस १३८ की सत्ता रहती है।

नपुंसकवेदादि के उपशमविधान की रचना

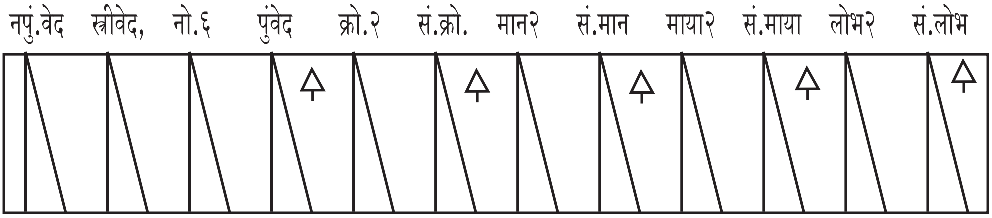

जिसके आयुबन्ध नहीं हुआ हो उस क्षायिक सम्यग्दृष्टि के असंयत आदि चार गुणस्थानों में भी एकसौ अड़तीस की ही सत्ता रहती है।

णिरयादिसु पयडिट्ठिदि-अणुभागपदेस-भेदभिण्णस्स।
सत्तस्स य सामित्तं णेदव्वमदो जहाजोग्गं ।।३४४।।

अन्वयार्थ - (णिरयादिसु) नरकगति आदि मार्गणाओं में **(पयडि)** प्रकृति **(ट्ठिदि)** स्थिति **(अणुभाग)** अनुभाग **(पदेस)** और प्रदेश **(भेदभिण्णस्स)** इन चार भेदों से सहित **(सत्तस्स य)** सत्त्व के **(सामित्तं)** स्वामित्व को **(अदो)** इसके आगे **(जहाजोग्गं)** यथायोग्य **(णेदव्वम्)** जानना चाहिए।

तिरिये ण तित्थसत्तं णिरयादिसु तिय चउक्क चउ तिण्णि।
आऊणि होंति सत्ता सेसं ओघादु जाणेज्जो ।।३४५।।

अन्वयार्थ -(तिरिये) तिर्यंच गति में **(तित्थसत्तं)** तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता **(ण)** नहीं होती है। **(णिरयादिसु)** नरकादि गतियों में अर्थात् नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्यगति और देवगति में क्रम से **(तिय चउक्क चउ तिण्णि)** तीन, चार, चार, तीन **(आऊणि सत्ता होंति)** आयुओं की सत्ता होती है। **(सेसं)** अवशेष प्रकृतियों का सत्त्व **(ओघादु)** गुणस्थानवत् **(जाणेज्जो)** जानना चाहिए।

विशेषार्थ -

गतिमार्गणा

गति	सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व का विवरण
नरकगति	१४७	१	देवायु
तिर्यंचगति	१४७	१	तीर्थंकर
मनुष्यगति	१४८	०	-
देवगति	१४७	१	नरकायु

ओघं वा णेरइए ण सुराऊ तित्थमत्थि तदियोत्ति ।
छट्ठित्ति मणुस्साऊ तिरिए ओघं ण तित्थयरं।।३४६।।

अन्वयार्थ - (णेरइए) नरक गति में **(ओघं वा)** गुणस्थानवत् सत्त्व जानना। परन्तु यहाँ **(ण सुराऊ)** देवायु का सत्त्व नहीं है। **(तदियोत्ति)** तीसरे नरक तक **(तित्थमत्थि)** तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता है। **(छट्ठित्ति)** छठे नरक तक **(मणुस्साऊ)** मनुष्यायु की सत्ता है **(तिरिए)** तिर्यंच गति में **(ओघं)** गुणस्थानवत् ही जानना। परन्तु वहाँ **(ण तित्थयरं)** तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता नहीं है।

नरकगतिमार्गणा में सत्त्व, असत्त्व

नरक	सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व का विवरण
प्रथम तीन नरक	१४७	१	देवायु
चार से छह नरक	१४६	२	देवायु, तीर्थंकर
सातवाँ नरक	१४५	३	देवायु, मनुष्यायु, तीर्थंकर

विशेषार्थ -१) तीर्थंकर प्रकृति का बंध करनेवाला मनुष्य तीसरी पृथ्वीतक ही उत्पन्न होता है।

२) सातवें नरक का नारकी मरकर नियम से तिर्यंचगति में उत्पन्न होता है अत: वह मनुष्यायु का बन्ध नहीं करता अत: उसका सत्त्व नहीं पाया जाता।

प्रथम तीन पृथ्वियों में सत्त्व असत्त्व
सत्त्वयोग्य १४७

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व का विवरण
मिथ्यात्व	१४७	०	-
सासादन	१४४	३	तीर्थंकर, आहारकद्विक
मिश्र	१४६	१	तीर्थंकर
असंयत	१४७	०	-

चौथी पृथ्वी से छठी पृथ्वीतक सत्त्व असत्त्व
सत्त्वयोग्य १४६

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व का विवरण
मिथ्यात्व	१४६	०	-
सासादन	१४४	२	आहारकद्विक
मिश्र	१४६	०	-
असंयत	१४६	०	-

सातवी पृथ्वी में सत्त्वयोग्य १४५

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व का विवरण
मिथ्यात्व	१४५	०	-
सासादन	१४३	२	आहारकद्विक
मिश्र	१४५	०	-
असंयत	१४५	०	-

तिर्यंचगति में सत्त्वयोग्य १४७

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	व्युच्छित्ति	विवरण
मिथ्यात्व	१४७	०	०	-
सासादन	१४५	२	०	आहारकद्विक
मिश्र	१४७	०	०	-
असंयत	१४७	०	२	मनुष्यायु, नरकायु
देशसंयत	१४५	२	१	तिर्यंचायु

इसीप्रकार सामान्यतिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पर्याप्त पंचेन्द्रियतिर्यंच, योनिमत् तिर्यंच और अपर्याप्त तिर्यंचों में जानना। इतना विशेष है कि लब्ध्यपर्याप्त तिर्यंच में नरकायु और देवायु का भी सत्त्व नहीं होता इसलिए सत्त्व १४५ और गुणस्थान मिथ्यादृष्टि ही होता है।

एवं पंच तिरिक्खे पुण्णिदरे णत्थि णिरयदेवाऊ ।
ओघं मणुसतिएसुवि अपुण्णगे पुण अपुण्णेव ।।३४७।।

अन्वयार्थ - (एवं पंच तिरिक्खे) इसी प्रकार पाँच प्रकार के तिर्यंचों में भी सामान्य रीति से कथन जानना; परन्तु **(पुण्णिदरे)** लब्ध्यपर्याप्त तिर्यंचों में **(णिरयदेवाऊ णत्थि)** नरकायु व देवायु का सत्त्व नहीं है। **(मणुसतिएसुवि)** तीन प्रकार के मनुष्यों में भी **(ओघं)** सामान्य गुणस्थानवत् सत्त्व जानना चाहिए। परन्तु **(अपुण्णगे)** लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यों में **(अपुण्णेव)** लब्ध्यपर्याप्त तिर्यंचों के समान नरकायु व देवायु और तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व नहीं होता है।

ओघं देवे ण हि णिरयाऊ सारोत्ति होदि तिरियाऊ।
भवणतियकप्पवासियइत्थीसु ण तित्थयरसत्तं ।।३४८।।

अन्वयार्थ - (देवे) देवगति में **(ओघं)** सामान्य गुणस्थानवत् जानना, किन्तु विशेष यह है कि, **(णिरयाऊ ण हि)** यहाँ नरकायु का सत्त्व नहीं है। **(सारोत्ति)** सहस्त्रार स्वर्ग तक ही **(तिरियाऊ)** तिर्यंच आयु की सत्ता **(होदि)** होती है। **(भवणतियकप्पवासियइत्थीसु)** भवनत्रिक के सभी देव तथा कल्पवासी देवियों में **(तित्थयरसत्तं ण)** तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता नहीं होती है।

ओघं पंचक्खतसे सेसिंदियकायगे अपुण्णं वा।
तेउदुगे ण णराऊ सव्वत्थुव्वेल्लणा वि हवे ।।३४९।।

अन्वयार्थ - (पंचक्खतसे) पंचेन्द्रिय जाति और त्रसकाय में **(ओघं)** सामान्य गुणस्थानवत् ही सत्त्वादि का कथन जानना। **(सेसिंदियकायगे)** शेष एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय पर्यंत तथा पृथ्वीकायिक से वनस्पतिकायिक पर्यंत **(अपुण्णं)** लब्ध्यपर्याप्तकतिर्यंच के **(वा)** समान सत्ता है। **(तेउदुगे)** तेजकायिक और वायुकायिक में **(ण णराऊ)** मनुष्यायु का सत्त्व नहीं है। **(सव्वत्थ)** इन्द्रिय और काय मार्गणा में सर्वत्र **(उव्वेल्लणा वि हवे)** प्रकृतियों की उद्वेलना भी होती है।

मनुष्यगति में सत्त्व, असत्त्व, व्युच्छित्ति

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	व्यु.	विवरण
मिथ्यात्व	०	१४८	०	-
सासादन	३ तीर्थंकर, आहारकद्विक	१४५	०	
मिश्र	१ तीर्थंकर	१४७	०	
असंयत	०	१४८	२	नरकायु, तिर्यंचायु
देशसंयत	२	१४६	०	
प्र.संयत	२	१४६	०	
अप्र.सं.	२	१४६	८	८ - देवायु, अनंतानुबंधी ४, दर्शनमोह ३
अपूर्व	क्षपक।उपशमक १०।२ (२+८)	क्षपक।उपशमक १३८।१४६ ।१३८	०	
अनि. १	१०।२	१३८।१४६ ।१३८	१६	स्त्यानगृद्धित्रिक, नरकद्विक तिर्यगेकादश
२	२६	१२२	८	अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान कषाय
३	३४	११४	१	नपुंसकवेद
४	३५	११३	१	स्त्रीवेद
५	३६	११२	६	हास्यादि नोकषाय
६	४२	१०६	१	पुंवेद
७	४३	१०५	१	संज्वलन क्रोध
८	४४	१०४	१	संज्वलन मान
९	४५	१०३	१	संज्वलन माया
सू.सां.	४६।१०।२	१०२।१४६ ।१३८	१	संज्वलन लोभ
उप..	१०।२	१३८।१४६	०	-
क्षी.	४७	१०१	१६	सामान्य गुणस्थानवत्
सयो.	६३	८५	०	-
अयो.द्वि.	६३	८५	७२	सामान्य गुणस्थानवत्
अयो.च.	१३५	१३	१३	सामान्य गुणस्थानवत्

विशेषार्थ - उपशमश्रेणिपर ८ वें से ११ वें गुणस्थानतक १४६ अथवा क्षायिक सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा १३८ की सत्ता होती है।

योनिमत् मनुष्य में क्षपकश्रेणि में तीर्थंकर का सत्त्व नहीं होता, क्योंकि जिनके तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता होती है उनके अप्रमत्त गुणस्थान से ऊपर स्त्रीवेदपना नहीं होता। अत: अपूर्वकरण में सत्त्व १३७ और असत्त्व दस। सामान्य मनुष्य के कोष्टक में से नववे गुणस्थान से एक एक प्रकृति सत्त्व में कम जानना।

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य में तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक के समान तीर्थंकर, नरकायु और देवायु का सत्त्व न होने से सत्त्व एकसौ पैतालीस १४५, गुणस्थान मिथ्यादृष्टि ही होता है।

देवगति में सत्त्वादिक का कोष्टक १ से १२ स्वर्गपर्यन्त **सत्त्व१४७**
(नरकायु बिना शेष)

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व का विवरण
१.मिथ्यात्व	१४६	१	तीर्थंकर
२.सासादन	१४४	३	तीर्थंकर, आहारकद्विक
३.मिश्र	१४६	१	तीर्थंकर
४.असंयत	१४७	०	-

१२ से १६ स्वर्ग,नौग्रैवेयक सत्त्व १४६
(नरकायु, तिर्यंचायु बिना)

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व का विवरण
मिथ्यात्व	१४५	१	तीर्थंकर
सासादन	१४३	३	तीर्थंकर, आहारकद्विक
मिश्र	१४५	१	तीर्थंकर
असंयत	१४६	०	-

भवनत्रय कल्पजस्त्री सत्त्व १४६
(तीर्थंकर, नरकायु बिना)

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व का विवरण
मिथ्यात्व	१४६	०	-
सासादन	१४४	२	आहारकद्विक
मिश्र	१४६	०	-
असंयत	१४६	०	-

देवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में तीर्थंकर का सत्त्व नहीं होता, क्योंकि ऐसा नियम है कि कृष्ण, नील तथा तीन शुभलेश्या में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में तीर्थंकर का सत्त्व नहीं होता। केवल १ से ३ नरकगति में जाने के सन्मुख क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि, तीर्थंकर प्रकृति

की सत्तावाला भव के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में मिथ्यादृष्टि होता है और वहाँ नरक में अपर्याप्त अवस्था में एक अन्तर्मुहूर्त मिथ्यादृष्टि रहता है तभी मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता रहती है, अन्यत्र नहीं। १ से ३ नरक तक कापोत लेश्या है अत: कपोतलेश्या में ही मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व रहता है।

भवनत्रिक देवों में और कल्पवासी देवांगनाओं में तीर्थंकर और नरकायु का सत्त्व नहीं होता। बारहवें स्वर्गपर्यन्त के देव ही तिर्यंच हो सकते हैं अत: वहाँ तक ही तिर्यंचायु का सत्त्व रहता है, आगे नहीं।

नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानवासी देव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं। उनके नरकायु और तिर्यंचायु का सत्त्व न होने से सत्त्व एकसौ छियालीस १४६।

इंद्रियमार्गणा में सत्त्व असत्त्व

इंद्रियमार्गणा	सत्त्व	असत्त्व	विवरण
एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय	१४५	३	तीर्थंकर, नरकायु देवायु
पंचेन्द्रिय	१४८	०	-

कायमार्गणा में सत्त्व असत्त्व

काय	सत्त्व	असत्त्व	विवरण
पृथ्वी,जल वनस्पति }	१४५	३	तीर्थंकर, नरकायु देवायु
तेज, वायु	१४४	४	३+१ मनुष्यायु
त्रस	१४८	०	-

एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रियतक पृथ्वी,जल, वनस्पति में में सत्त्व असत्त्व,

सत्त्वयोग्य १४५

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व का विवरण
१ मिथ्यात्व	१४५	०	
२ सासादन	१४३	२	आहारकद्विक

तेजोकाय, वायुकाय में एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होता है। पंचेन्द्रिय व त्रसकाय मार्गणा में सामान्य गुणस्थानवत् ही सर्व रचना जानना । गुणस्थान चौदह हैं।

हारदु सम्मं मिस्सं सुरदुग णारयचउक्कमणुकमसो।
उच्चागोदं मणुदुगमुव्वेल्लिज्जंति जीवेहिं।।३५०।।

अन्वयार्थ -(हारदु) आहारक द्विक, **(सम्मं)** सम्यक्त्व प्रकृति, **(मिस्सं)** सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति, **(सुरदुग)** देवद्विक-देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, **(णारयचउक्कं)** नारकचतुष्क अर्थात् नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, **(उच्चागोदं)** उच्चगोत्र, **(मणुदुगम्)** मनुष्यद्विक अर्थात् मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन तेरह प्रकृतियों की **(जीवेहिं)** जीवों के द्वारा **(अणुकमसो)** क्रम से **(उव्वेल्लिज्जंति)** उद्वेलना की जाती है।

कौनसा जीव किस प्रकृति की उद्वेलना करता है यह कहते हैं-

चदुगदिमिच्छे चउरो इगिविगले छप्पि तिण्णि तेउदुगे।
सिय अत्थि णत्थि सत्तं सपदे उप्पण्णठाणेवि ।।३५१।।

अन्वयार्थ - (चदुगदिमिच्छे) चारों गति के मिथ्यादृष्टि जीवों के **(चउरो)** चार **(इगिविगले)** एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय के **(छप्पि)** छह **(तेउदुगे)** तेजकायिक वायुकायिक के **(तिण्णि)** तीन प्रकृतियाँ इनका **(सपदे)** स्वस्थान में और **(उप्पण्णठाणेवि)** उत्पन्न स्थान में भी **(सत्तं)** सत्त्व **(सिय अत्थि)** कथंचित् है **(सिय णत्थि)** कथंचित् नहीं है।

विशेषार्थ - इन्द्रिय और कायमार्गणा में उद्वेलना भी होती है।

उद्वेलन - जैसे रस्सी को बलपूर्वक उधेडने से उसका रस्सीपना नष्ट हो जाता है उसीप्रकार जिन प्रकृतियों का बन्ध किया था उनको उद्वेलन भागहार के द्वारा भाग देकर जो लब्ध आये उतने द्रव्य को अन्य प्रकृतिरूप करना और इस प्रकार से उनको नष्ट करना ही उद्वेलन है।

	उद्वेलन प्रकृतियाँ १३	**उद्वेलन का स्वामी**
४	आहारकद्विक, सम्यक्त्व, मिश्र	चारों गति के मिथ्यादृष्टि जीव
६	देवद्विक, नारकचतुष्क	एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव
३	उच्चगोत्र, मनुष्यद्विक	तेजकाय और वायुकाय

स्वस्थान और उत्पन्न स्थान में सत्त्व किसी प्रकार से है और किसी प्रकार से नहीं है।

१) स्वस्थान सत्त्व - विवक्षितपर्याय में उद्वेलना के बिना या उद्वेलना होने से जो सत्त्व होता है वह स्वस्थान सत्त्व है।

२) उत्पन्नस्थान में सत्त्व - उपर्युक्त स्वस्थान सत्त्व के साथ आगामी पर्याय में जो उत्पत्ति होती है वहाँ उस सत्त्व को उत्पन्नस्थान में सत्त्व कहते हैं।

चातुर्गतिक संक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि के	स्वस्थान सत्त्व
तीर्थंकर, नरकायु और देवायु बिना	१४५
आहारकद्विक की उद्वेलना होनेपर	१४३
सम्यक्त्वप्रकृति की उद्वेलना होनेपर	१४२
मिश्रप्रकृति की उद्वेलना होनेपर	१४१
किसी की भी उद्वेलना पूर्ण न होनेपर	१४५

ये प्रकृतियाँ एकेन्द्रिय की अपेक्षा बतायी हैं। देव, नारकी, मनुष्य की अपेक्षा अपनी भुज्यमान और बध्यमान आयु को छोड़कर अन्य दो आयु का असत्त्व लेना।

उपर्युक्त चारों प्रकार के जीव एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक, पृथ्वी, जल, वनस्पति काय में उत्पन्न होनेपर उनके

उत्पन्नस्थान में सत्त्व	उनके स्वस्थान में सत्त्व
१४५	देवद्विक की उद्वेलना होनेपर १३९
१४३	नारकचतुष्क की उद्वेलना होनेपर १३५
१४२	
१४१	

१३३, १३१ सत्त्वस्थान उत्पन्नस्थान में एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पृथ्वी, अप्, वनस्पतिकाय में भी होते हैं क्योंकि उच्चगोत्र की उद्वेलना किया हुआ अथवा मनुष्यद्विक की उद्वेलना किया हुआ तेजवायुकायिक जीव एकेन्द्रियादि में उत्पन्न होता है।

पुण्णेक्कारसजोगे साहारय मिस्सगे वि सगुणोघं ।
वेगुव्वियमिस्सेवि य णवरि ण माणुस तिरिक्खाऊ ।।३५२।।

अन्वयार्थ -(पुण्णेक्कारसजोगेसाहारयमिस्सगे वि) पर्याप्त ग्यारह योगों में और आहारक मिश्रकाय योग में **(सगुणोघं)** अपने-अपने गुणस्थान के समान सत्त्व जानना। **(वेगुव्वियमिस्सेवि य)** और वैक्रियिकमिश्रकाययोग में भी सत्त्व, गुणस्थान के समान ही जानना। **(णवरि)** विशेषता यह है कि यहाँ **(माणुस तिरिक्खाऊ ण)** मनुष्यायु और तिर्यंचायु की सत्ता नहीं है अत: सत्त्वप्रकृतियाँ १४६ ही हैं।

ओरालमिस्सजोगे ओघं सुरणिरय आउगं णत्थि।
तम्मिस्सवामगे ण हि तित्थं कम्मेवि सगुणोघं ।।३५३।।

अन्वयार्थ - (ओरालमिस्सजोगे) औदारिक मिश्रकाययोग में **(ओघं)** गुणस्थान के समान सत्त्व है किन्तु **(सुरणिरय आउगं णत्थि)** देवायु और नरकायु नहीं हैं। **(तम्मिस्सवामगे)** औदारिक मिश्र में मिथ्यादृष्टि के **(ण हि तित्थं)** तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व नहीं होता **(कम्मेवि)** कार्मणकाययोग में **(सगुणोघं)** अपने गुणस्थान के समान सत्त्व जानना।

योगमार्गणा में सत्त्व, असत्त्व

योग	सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व का विवरण
४ मनोयोग ४ वचनयोग, औदा. काययोग	१४८	०	-
आहारक, आहारकमिश्रकाययोग	१४६	२	नरकायु, तिर्यंचायु
औदारिक मिश्र काययोग	१४६	२	देवायु, नरकायु
वैक्रियिक काययोग	१४८	०	-
वैक्रियिक मिश्र काययोग	१४६	२	मनुष्यायु, तिर्यंचायु
कार्मण काययोग	१४८	०	-

विशेषार्थ - ४ मनोयोग, ४ वचनयोग, औदारिककाययोग में गुणस्थान बारह अथवा तेरह होते हैं। उसकी रचना सामान्य गुणस्थान के समान जानना।

वैक्रियिक काययोग सत्त्व १४८

गुण	सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व का विवरण
१ मि.	१४८	०	-
२ सा.	१४५	३	तीर्थंकर, आहारकद्विक
३ मिश्र	१४७	१	तीर्थंकर
४ असं.	१४८	०	-

वैक्रियिक मिश्रकाययोग सत्त्व १४६

गुण	सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व का विवरण
१ मि.	१४६	०	-
२ सा.	१४२	४	नरकायु, आहारकद्विक तीर्थंकर
४ असं.	१४६	०	-

औदारिक मिश्रकाययोग सत्त्व १४६

गुण	सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व का विवरण
१ मि.	१४५	१	तीर्थंकर,
२ सा.	१४३	३	आहारकद्विक तीर्थंकर
४ असं.	१४६	०	
१३ स. केवली	८५	६१	तेरहवे गुण. की ६३-नरकायु, देवायु

कार्मण काययोग सत्त्व १४८

गुण	सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व का विवरण
१ मि.	१४८	०	-
२ सा.	१४४	४	नरकायु, आहारकद्विक तीर्थंकर
४ असं.	१४८	०	-
१३ स. केवली	८५	६३	१३ वे गुणस्थानवत्

१) औदारिक मिश्रकाययोग में सत्त्वयोग्य प्रकृतियाँ १४६ हैं उसमें से तेरहवे गुणस्थान में ८५ का सत्त्व रहता है। १४६-८५ घटाने से असत्त्व ६१ प्रकृतियों का है।

२) कार्मणकाययोग में चारों गतिसम्बन्धी भुज्यमान आयु का सत्त्व सम्भव है अत: १४८ का सत्त्व होता है।

३) सासादन गुणस्थान लेकर नरकगति में नहीं जाता अत: दूसरे गुणस्थान में वैक्रियिक मिश्र काययोग और कार्मणकाययोग में नरकायु का असत्त्व बताया है।

४) आहारक और आहारकमिश्रकाययोग में केवल प्रमत्तसंयत छठा गुणस्थान होता है।

वेदादाहारोत्ति य सगुणोघं णवरि संढीथीखवगे।
किण्हदुगसुहुतिलेस्सियवामेवि ण तित्थयर सत्तं।।३५४।।

अन्वयार्थ - (वेदादाहारोत्ति य) वेदमार्गणा से लेकर आहारमार्गणा पर्यन्त **(सगुणोघं)** अपने-अपने गुणस्थान के समान सामान्य से सत्त्व जानना। **(णवरि)** किन्तु विशेषता यह है कि **(संढीथीखवगे)** नपुंसकवेदी और स्त्रीवेदी क्षपक के तथा **(किण्हदुगसुहुतिलेस्सियवामे वि)** कृष्ण, नीललेश्या और शुभ तीन लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि के भी **(तित्थयरसत्तं ण)** तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व नहीं है।

वेदमार्गणा में सत्त्व

	सत्त्व
पुंवेद	१४८
स्त्रीवेद	१४८
नपुंसकवेद	१४८

विशेषार्थ - नपुंसक व स्त्रीवेद में सत्त्व १४८ का होता है। किन्तु क्षपकश्रेणी में तीर्थंकर का सत्त्व नहीं होता क्योंकि तीर्थंकर का सत्त्व होनेपर नपुंसकवेद और स्त्रीवेद के साथ संक्लेश परिणामी जीव क्षपकश्रेणीपर आरोहण नहीं करता अत: अपूर्वकरण आदि गुणस्थानों में सत्त्व एक एक हीन होता है।

कषायमार्गणा - सभी कषायों में सत्त्व १४८ का है। गुणस्थान क्रोध, मान, माया में १ से ९, लोभ में १ से १०। रचना गुणस्थानवत् जानना।

ज्ञानमार्गणा में सत्त्व, असत्त्व

ज्ञान के भेद	सत्त्व	असत्त्व		गुणस्थान	रचना
कुमति, कुश्रुत, कुअवधि	१४८	०		१,२	गुणस्थानवत्
मति, श्रुत, अवधि	१४८	०		४ से १२	गुणस्थानवत्
मन:पर्यय	१४६	२	नरकायु, तिर्यंचायु	६ से १२	गुणस्थानवत्
केवलज्ञान	८५	६३	१३ वे गुणस्थानवत्	१३, १४	गुणस्थानवत्

संयममार्गणा में सत्त्व असत्त्व -

संयममार्गणा के भेद	सत्त्व	असत्त्व		गुणस्थान	रचना
असंयम	१४८	०		१ से ४	गुणस्थानवत्
देशसंयम	१४७	१	नरकायु	५ वाँ	गुणस्थानवत्
सामायिक, छेदोपस्थापना	१४६	२	नरकायु,तिर्यंचायु	६ से ९	गुणस्थानवत्
परिहारविशुद्धि	१४६	२	नरकायु,तिर्यंचायु	६,७	गुणस्थानवत्
सूक्ष्मसांपराय	१०२	४६	दसवें गुण.वत्	१० वाँ	गुणस्थानवत्
यथाख्यात संयम	१४६	२	उपशम सम्यक्त्वी के	११ वाँ	गुणस्थानवत्
	१३८	१०	क्षायिकसम्यक्त्वी के	११ वाँ	
	१०१	४७	क्षपक के	१२ वाँ	

यथाख्यातसंयम में सत्त्वादिक का कोष्टक **सत्त्वयोग्य १४६ गुणस्थान ११ से १४**

गुणस्थान		सत्त्व	असत्त्व	व्युच्छित्ति	
११	उपशांतमोह	१४६/१३८	०/८	०	८ देवायु, अनंतानुबंधी ४, दर्शनमोह ३
१२	क्षीणमोह	१०१	४५	१६	सामान्यगुणस्थानवत्
१३	सयोगकेवली	८५	६१	०	सामान्यगुणस्थानवत्
१४	अयोगकेवली द्विचरमसमय	८५	६१	७२	सामान्यगुणस्थानवत्
१४	चरमसमय	१३	१३३	१३	सामान्यगुणस्थानवत्

दर्शनमार्गणा में सत्त्व असत्त्व

दर्शन के भेद	सत्त्व	असत्त्व		गुणस्थान	रचना
चक्षु-अचक्षुदर्शन	१४८	०		१ से १२	गुणस्थानवत्
अवधिदर्शन	१४८	०		४ से १२	गुणस्थानवत्
केवलदर्शन	८५	६३	१३ वे गुणस्थानवत्	१३, १४	गुणस्थानवत्

लेश्यामार्गणा - छहों लेश्याओं में सत्त्व १४८ का है।

कृष्ण, नील में सत्त्व, असत्त्व

सत्त्वयोग्य १४८ गुणस्थान १ से ४

गुण.	सत्त्व	असत्त्व	
१ मि.	१४७	१	तीर्थंकर
२ सा.	१४५	३	तीर्थंकर, आहारकद्विक
३ मिश्र	१४७	१	तीर्थंकर
४ असं.	१४८	०	

कापोत लेश्या में सत्त्व, असत्त्व

सत्त्वयोग्य १४८ गुणस्थान १ से ४

गुण.	सत्त्व	असत्त्व	
१ मि.	१४८	०	
२ सा.	१४५	३	तीर्थंकर आहारकद्विक
३ मिश्र	१४७	१	तीर्थंकर
४ असं.	१४८	०	

१) कृष्णनील लेश्या में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में तीर्थंकर की सत्ता का अभाव कहा है क्योंकि जिसने नरकायुका बन्ध किया है ऐसा तीर्थंकर का बन्धक जीव मरकर तीसरी पृथ्वीपर्यंत ही जाता है। वहाँ तो कापोतलेश्या से ही जाता है। अत: कृष्णनील में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में तीर्थंकर के बिना १४७ का सत्त्व होता है।

२) शुभ तीन लेश्याओं में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में तीर्थंकर का सत्त्व नहीं होता। अत: मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में सत्त्व १४७ का होता है। जो तीर्थंकर की सत्तावाला नरक जाने के अभिमुख होता है उसके ही सम्यक्त्व की विराधना होती है। अत: तीन शुभ लेश्याओं में सम्यक्त्व की विराधना संभव नही है।

तेज और पद्मलेश्या में सत्त्वादि १४८ सत्त्वयोग्य

गुण.	सत्त्व	असत्त्व	व्यु.	
१ मि.	१४७	१	०	तीर्थंकर
२ सा.	१४५	३	०	तीर्थंकर,आहारकद्विक
३ मिश्र	१४७	१	०	तीर्थंकर
४ असं.	१४८	०	१	नरकायु
५ देश.	१४७	१	१	तिर्यंचायु
६ प्रम.	१४६	२	०	
७ अप्र.	१४६	२	०	

शुक्ललेश्या में सत्त्वयोग्य १४८। गुणस्थान १ से १३ मिथ्यादृष्टि में सत्त्व १४७, असत्त्व १ तीर्थंकर। सासादन आदि में रचना गुणस्थानवत् जानना।

भव्यमार्गणा में सत्त्व, असत्त्व

	सत्त्व	असत्त्व		गुणस्थान
भव्य	१४८	०	-	१ से १४
अभव्य	१४१	७	तीर्थंकर, मिश्र, सम्यक्त्व,आहारकचतुष्क	१

अभव्य के सम्यग्दर्शन आदि की अभिव्यक्ति कभी नहीं होती अत: उपर्युक्त ७ प्रकृतियों का सत्त्व उसके नहीं पाया जाता।

अभव्वसिद्धे णत्थि हु सत्तं तित्थयरसम्ममिस्साणं ।
आहारचउक्कस्सवि असण्णिजीवे ण तित्थयरं ।।३५५।।

अन्वयार्थ - (अभव्वसिद्धे) अभव्यसिद्ध में **(तित्थयरसम्ममिस्साणं)** तीर्थंकर प्रकृति, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और **(आहारचउक्कस्सवि)** आहारकचतुष्क इन ७ प्रकृतियों का भी **(सत्तं णत्थि)** सत्त्व नहीं है। **(असण्णिजीवे)** असंज्ञी जीव के **(तित्थयरं ण)** तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व नहीं है।

सम्यक्त्वमार्गणा में सत्त्व, असत्त्व

सम्यक्त्वमार्गणा के भेद	सत्त्व	असत्त्व		गुणस्थान	रचना
१ मिथ्यादृष्टि	१४८	०		१ ला	गुणस्थानवत्
२ सासादन	१४७	१	तीर्थंकर	२ रा	गुणस्थानवत्
३ मिश्र	१४७	१	तीर्थंकर	३ रा	गुणस्थानवत्
४ उपशमसम्यक्त्व	१४८	०	-	४ से ११	गुणस्थानवत्
५ वेदकसम्यक्त्व	१४८	०	-	४ से ७	गुणस्थानवत्
६ क्षायिकसम्यक्त्व	१४१	७	अनंतानुबंधी ४, दर्शनमोहनीय ३	४ से १४	गुणस्थानवत्

विशेषार्थ - कुछ आचार्यों के मतानुसार आहारकचतुष्क का बन्ध करके जीव दूसरे गुणस्थान में आ सकता है, अत: यहाँ सासादन में आहारकद्विक का सत्त्व बताया है।

क्षायिक सम्यक्त्व में सत्त्वादिक का कोष्टक **सत्त्वयोग्य १४१**

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	व्यु.	विवरण
४ असं.	०	१४१	२	नरकायु, तिर्यंचायु
५ देश.	२	१३९	०	
६ प्रमत्त.	२	१३९	०	
७ अप्रमत्त.	२	१३९	१	देवायु
८ अपूर्व.	३	१३८	०	
९ अनि.१	३	१३८	१६	स्त्यानगृद्धि त्रिक,तिर्यगेकादश, नरकद्विक
२	१९	१२२	८	अप्रत्याख्यान४, प्रत्याख्यान ४ कषाय
३	२७	११४	१	नपुंसकवेद
४	२८	११३	१	स्त्रीवेद
५	२९	११२	६	हास्य, रति, अरति, शोक,भय, जुगुप्सा
६	३५	१०६	१	पुंवेद
७	३६	१०५	१	संज्वलनक्रोध
८	३७	१०४	१	संज्वलनमान
९	३८	१०३	१	संज्वलनमाया
१० सूक्ष्मसां.	३९	१०२	१	संज्वलनलोभ
११ उप.	३	१३८	०	
१२ क्षीण.	४०	१०१	१६	निद्रा, प्रचला, ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अंतराय
१३ सयोग.	५६	८५	०	
१४ अयोग.	५६	८५	७२	सामान्यगुणस्थानवत्
द्विचरम चरमसमय	१२८	१३	१३	सामान्यगुणस्थानवत्

संज्ञीमार्गणा में सत्त्व, असत्त्व

	सत्त्व	असत्त्व	विवरण	गुणस्थान	
संज्ञी	१४८	०	-	१ से १२	सामान्यगुणस्थानवत्
असंज्ञी	१४७	१	तीर्थंकर	१,२	सामान्यगुणस्थानवत्

आहारमार्गणा में सत्त्व, असत्त्व

	सत्त्व	असत्त्व	गुणस्थान	
आहार	१४८	०	१ से १३	सामान्यगुणस्थानवत्
अनाहार	१४८	०	१,२,४,१३,१४	कार्मणकाययोगवत्

कम्मेवाणाहारे पयडीणं सत्तमेवमादेसे ।
कहियमिणं बलमाहवचंदच्चियणेमिचंदेण ।।३५६।।

अन्वयार्थ -(अणाहारे) अनाहारमार्गणा में **(कम्मेव)** कार्मणकाययोग के समान सत्त्व जानना। **(एवं)** इस प्रकार **(बलमाहवचंदच्चियणेमिचंदेण)** बलदेव और माधवचन्द्र से अर्चित नेमिचन्द्राचार्य ने **(आदेसे)** मार्गणा में **(पयडीणं इणं सत्तं)** प्रकृतियों का यह सत्त्व **(कहियं)** कहा है।

अनाहारक मार्गणा में सत्त्वादि त्रिभंगी **सत्त्वयोग्य १४८, गुणस्थान १,२,४,१३,१४**

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	व्यु	विवरण
१ मिथ्यात्व	१४८	०	०	-
२ सासादन	१४४	४	०	आहारकद्विक, तीर्थंकर, नरकायु
४ असंयत	१४८	०	०	-
१३ सयोगकेवली	८५	६३	०	सामान्यगुणस्थानवत्
१४ अयोगकेवली द्विचरमसमय	८५	६३	७२	सामान्यगुणस्थानवत्
१४ चरमसमय	१३	१३५	१३	सामान्यगुणस्थानवत्

सो मे तिहुवणमहिओ सिद्धो बुद्धो णिरंजणो णिच्चो ।
दिसदु वरणाणलाहं बुहजणपरिपत्थणं परमसुद्धं ।।३५७।।

अन्वयार्थ - (तिहुवणमहिओ) जो तीन लोक से पूजित **(सिद्धो)** सिद्ध **(बुद्धो)** बुद्ध **(णिरंजणो)** कर्मरूपी अंजन से रहित और **(णिच्चो)** नित्य हैं **(सो)** वे **(मे)** मुझे **(बुहजणपरिपत्थणं)** ज्ञानीजनों से प्रार्थना करने योग्य **(परमसुद्धं)** परमशुद्ध **(वरणाणलाहं)** उत्कृष्ट ज्ञान का लाभ **(दिसदु)** देवें।

। बन्धोदयसत्त्व नामक द्वितीय अधिकार पूर्ण।

सत्त्वस्थानभंगाधिकार

णमिऊण वड्ढमाणं कणयणिहं देवरायपरिपुज्जं ।
पयडीण सत्तठाणं ओघे भंगे समं वोच्छं ।।३५८।।

अन्वयार्थ - (कणयणिहं) स्वर्ण के समान शरीरवर्णवाले **(देवरायपरिपुज्जं)** इन्द्रद्वारा पूजित **(वड्ढमाणं)** वर्धमान तीर्थंकरदेव को **(णमिऊण)** नमस्कार करके **(ओघे)** गुणस्थानों में **(पयडीणं)** प्रकृतियों के **(सत्तठाणं)** सत्त्वस्थानों को **(भंगे समं)** भंगसहित **(वोच्छं)** कहूँगा।

अब गुणस्थानों में सत्त्वस्थान और भङ्गों के कहने के दो प्रकार कहते हैं -

आउगबंधाबंधणभेदमकाऊण वण्णणं पढमं ।
भेदेण य भंगसमं परूवणं होदि बिदियम्मि ।।३५९।।

अन्वयार्थ - (आउगबंधाबंधणभेदमकाऊण) आयु के बंध और अबंध के भेद की अपेक्षा नहीं करके **(पढमं वण्णणं)** प्रथम वर्णन है। **(बिदियम्मि)** दूसरे प्रकार में **(भेदेण य)** आयुबन्ध के भेदसहित **(भंगसमं)** भंगों के साथ **(परूवणं)** प्ररूपणा **(होदि)** है।

विशेषार्थ - स्थान का स्वरूप - एक समय में एक जीव के संख्या भेद को लिये हुए जो प्रकृतियों का समूह पाया जाता है उसे स्थान कहते हैं। अर्थात एक जीव के एक काल में जितनी प्रकृतियों की सत्ता पायी जाती है उनके समूह का नाम स्थान है।

भंग का स्वरूप - समान संख्यावाली प्रकृतियों में जो प्रकृतियों का परिवर्तन होता है उसे भंग कहते हैं। संख्याभेद से समानता रहते हुए भी प्रकृति भेद होने से भंग होता है।

जैसे १४५ के सत्त्वस्थान में किन्ही जीवों के मनुष्यायु और देवायु की सत्ता पायी जाती है और किन्ही जीवों के तिर्यंचायु और नरकायु की सत्ता पायी जाती है। इसप्रकार प्रकृति बदलने से अन्य भंग हुआ।

प्रथम आयु के बन्ध अथवा अबन्ध का भेद न करके वर्णन करते हैं-

सव्वं तिगेग सव्वं चेगं छसु दोणि चउसु छद्दस य दुगे।
छस्सगदालं दोसु तिसट्ठी परिहीण पयडिसत्तं जाणे।।३६०।।

अन्वयार्थ - मिथ्यात्वादि १४ गुणस्थानों में क्रम से **(सव्वं)** सर्व **(तिगेग परिहीण)** तीन कम, 'एक कम' **(सव्वं)** सर्व **(चेगं)** एक कम **(छसु)** प्रमत्तादि छह गुणस्थानों में **(दोणि)** दो कम **(चउसु)** अपूर्वकरणादि चार गुणस्थानों में **(छद्दस)** छ और दस कम **(दुगे)** क्षपकश्रेणी की अपेक्षा दो गुणस्थानों में **(छस्सगदालं)** छियालीस और सैतालीस कम सर्व तथा **(दोसु)** सयोगकेवली और अयोग केवली इन दो गुणस्थानों में **(तिसट्ठी)** त्रेसठ कम सर्व **(पयडिसत्तं)** प्रकृतिसत्त्व **(जाणे)** जानना तथा **(य)** च शब्द से अयोगकेवली के चरमसमय में १३५ कम प्रकृति का सत्त्व जानना।

आगे जिन गुणस्थानों में जो प्रकृतियाँ कम की गयी हैं उनके नाम कहते हैं -

सासण मिस्से देसे संजमदुग सामगेसु णत्थी य ।
तित्थाहारं तित्थं णिरयाऊ णिरयतिरियआउ अणं ।।३६१।।

अन्वयार्थ - (सासण) सासादन में **(तित्थाहारं)** तीर्थंकर और आहारक द्विक **(मिस्से)** मिश्रगुणस्थान में **(तित्थं)** तीर्थंकर **(देसे)** देशसंयत गुणस्थान में **(णिरयाऊ)** नरकायु **(संजमदुग)** प्रमत्त अप्रमत्तसंयत में **(णिरयतिरियआउ)** नरकायु, तिर्यंचायु **(सामगेसु)** उपशमश्रेणी में **(णिरयतिरियआउ अणं)** नरकायु-तिर्यंचायु और अनन्तानुबंधीचतुष्क **(णत्थी)** नहीं हैं। **(य)** च शब्द से क्षपकश्रेणी में घटायी गयी प्रकृतियाँ जानना।

गुणस्थानों में सत्त्व, असत्त्व

गुणस्थान		सत्त्व	असत्त्व	विवरण
१	मिथ्यात्व	१४८	०	
२	सासादन	१४५	३	आहारकद्विक, तीर्थंकर
३	मिश्र	१४७	१	तीर्थंकर
४	अविरत	१४८	०	
५	देशविरत	१४७	१	नरकायु

गुणस्थान		सत्त्व	असत्त्व	विवरण
६	प्रमत्तसंयत	१४६	२	नरकायु, तिर्यंचायु अबद्धायुष्क
७	अप्रमत्त	१४६	२	नरकायु, तिर्यंचायु
८	अपूर्व.प्र.१	१४६	२	नरकायु, तिर्यंचायु (उपशमसम्यक्त्वसहित उपशमश्रेणी की अपेक्षा)
	प्रकार २	१४२	६	नरकायु,तिर्यंचायु+अनंतानुबंधी४ (अनंतानुबंधी का विसंयोजन कर उपशमश्रेणी चढ़नेवाला)
	प्रकार ३	१३८	१०	नरक-तिर्यंच-देवायु, अनंतानुबंधी ४ + दर्शन-मोहनीय३(क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणी की अपेक्षा और क्षपकश्रेणी की अपेक्षा)
९	अनि. प्र.१	१४६	२	नरकायु, तिर्यंचायु (उपशमश्रेणी की अपेक्षा)
	प्रकार २	१४२	६	नरकायु,तिर्यंचायु+अनंतानुबंधी ४(अनंतानुबंधी विसंयोजक उपशमश्रेणी चढ़ने की अपेक्षा)
	प्रकार ३	१३८	१०	नरकायु, तिर्यंचायु,देवायु + अनंतानुबंधी ४ + दर्शनमोहनीय ३ क्षपकश्रेणी की अपेक्षा)
१०	सूक्ष्म.प्र.१	१४६	२	नरकायु, तिर्यंचायु
	प्रकार २	१४२	६	नरकायु, तिर्यंचायु + अनंतानुबंधी ४
	प्रकार ३	१०२	४६	नरकायु, तिर्यंचायु, देवायु + अनंतानुबंधी ४ + दर्शनमोहनीय ३ + नववें गुणस्थान की सत्त्व-व्युच्छिन्न ३६ प्रकृति
११	उपशांत.	१४६	२	नरकायु, तिर्यंचायु
		१४२	६	नरकायु, तिर्यंचायु + अनंतानुबंधी ४
		१३८	१०	नरकायु, तिर्यंचायु, देवायु +अनंतानुबंधी ४ + दर्शनमोहनीय ३ (क्षायिक सम्यक्त्व की अपेक्षा)
१२	क्षीणमोह	१०१	४७	पूर्वोक्त ४६ + संज्वलनलोभ
१३	सयोगके.	८५	६३	४७ + १६ (१२ वें गुणस्थान में व्युच्छिन्न)
१४	अयोगके.			
	द्विचरमसमय	८५	६३	४७ + १६ (१२ वें गुणस्थान में व्युच्छिन्न)
	चरमसमय	१३	१३५	६३+७२(१४ वें गुण.के द्विच.समय में व्युच्छि.)

आगे गुणस्थानों में सत्त्वस्थानों की संख्या दो गाथाओं के द्वारा कहते हैं-

बिगुणणव चारि अट्ठं मिच्छतिये अयदचउसु चालीसं ।
तिय उवसमगे संते चउवीसा होंति पत्तेयं ।।३६२।।

अन्वयार्थ -(मिच्छतिये) मिथ्यात्वादि तीन गुणस्थानों में क्रम से **(बिगुणणव)** दो गुणा नौ अर्थात् अठारह **(चारि)** चार और **(अट्ठं)** आठ **(अयदचउसु)** असंयतादि चार गुणस्थानों में **(चालीसं)** चालीस-चालीस **(तिय उवसमगे)** तीन उपशमक के तथा **(संते)** उपशान्तकषाय में **(पत्तेयं)** प्रत्येक में **(चउवीसा)** चौबीस सत्त्वस्थान हैं।

चउछक्कदि चउ अट्ठं चउ छक्क य होंति सत्तठाणाणि ।
आउगबंधाबंधे अजोगिअंते तदो भंगं ।।३६३।।

अन्वयार्थ -(अजोगिअंते) क्षपकश्रेणी की अपेक्षा अपूर्वकरण से अयोगकेवली गुणस्थानपर्यंत **(चउछक्कदि)** चार, छह का वर्ग छत्तीस **(चउ अट्ठं)** चार, आठ **(चउ छक्क)** चार और छह **(सत्तठाणाणि)** सत्त्वस्थान **(होंति)** हैं। **(आउगबंधाबंधे)** इस प्रकार आयु के बंध और अबंध की विवक्षा में सत्त्वस्थान कहे **(तदो भंगं)** उसके आगे भंग कहते हैं।

पण्णास बार छक्कदि वीससयं अट्ठदाल दुसु तालं ।
अडवीसा बासट्ठी अडचउवीसा य अट्ठ चउ अट्ठा ।।३६४।।

अन्वयार्थ - मिथ्यात्वादि १४ गुणस्थानों में क्रम से **(पण्णास)** पचास **(बार)** बारह **(छक्कदि)** छह का वर्गरूप छत्तीस **(वीससयं)** एक सौ बीस **(अट्ठदाल)** अड़तालीस **(दुसु)** दो गुणस्थानों में **(तालं)** चालीस-चालीस, उसके पश्चात् **(अडवीसा)** अट्ठाईस **(बासट्ठी)** बासठ **(अडचउवीसा)** अट्ठाईस, चौबीस **(अट्ठ)** आठ **(चउ)** चार **(य)** और **(अट्ठा)** आठ भंग जानना।

गुणस्थानों में सत्त्वस्थान और भंगों की संख्या

गुणस्थान		स्थानसंख्या	भंगसंख्या
१	मिथ्यात्व	१८	५०
२	सासादन	४	१२
३	मिश्र	८	३६
४	असंयत	४०	१२०
५	देशसंयत	४०	४८
६	प्रमत्तसंयत	४०	४०
७	अप्रमत्तसंयत	४०	४०
८	अपूर्वकरण- उपशमक क्षपक	२४ ४ २८	२४ ४ २८
९	अनिवृत्तिकरण- उपशमक क्षपक	२४ ३६ ६०	२४ ३८ ६२
१०	सूक्ष्मसांपराय- उपशमक क्षपक	२४ ४ २८	२४ ४ २८
११	उपशांतमोह	२४	२४
१२	क्षीणमोह	८	८
१३	सयोगकेवलि	४	४
१४	अयोगकेवलि	६	८

मिथ्यात्व गुणस्थान के १८ स्थानों में कर्मप्रकृतियों की संख्या बताते हैं-

दुतिछस्सत्तट्ठणवेक्करसं सत्तरसमूणवीसमिगिवीसं ।
हीणा सव्वे सत्ता मिच्छे बद्धाउगिदरमेगूणं ।।३६५।।

अन्वयार्थ - (मिच्छे) मिथ्यात्व गुणस्थान में **(बद्धाउग)** बद्धायुष्क के **(दुतिछस्सत्तट्ठुणवेक्करसं)** दो, तीन, छह, सात, आठ, नौ, ग्यारह **(सत्तरस)** सतरह **(उणवीसं)** उन्नीस **(इगिवीसं)** इक्कीस प्रकृतियाँ **(हीणा)** कम **(सव्वे सत्ता)** सर्व सत्त्व है। **(इदरं)** अबद्धायुष्क के ८ सत्त्वस्थान पर्यंत **(एगूण)** इनमें से एक-एक प्रकृति और कम करना।

आगे कम की गई प्रकृतियों के नाम कहते हैं -

तिरियाउगदेवाउगमण्णदराउगदुगं तहा तित्थं।
देवतिरियाउसहियाहारचउक्कं तु छच्चेदे ।।३६६।।
आउदुगहारतित्थं सम्मं मिस्सं च तह य देवदुगं ।
णारयछक्कं च तहा णराउउच्चं च मणुवदुगं ।।३६७।।

अन्वयार्थ -मिथ्यात्व गुणस्थान संबंधी सत्त्वस्थानों में कम की गई प्रकृतियाँ क्रम से **(तिरियाउगदेवाउगं)** तिर्यंचायु, देवायु **(अण्णदराउगदुगं तहा तित्थं)** कोई भी दो आयु, तीर्थंकर **(देवतिरियाउसहिया हारचउक्कं)** देवायु, तिर्यञ्चायु और आहारक चतुष्क **(छच्चेदे)** ये छह प्रकृतियाँ **(आउदुगहारतित्थं)** कोई भी दो आयु, आहारक चतुष्क और तीर्थंकर ये सात, **(सम्मं)** पूर्वोक्त सात में सम्यक्त्वप्रकृति मिलानेपर आठ **(मिस्सं च)** पूर्वोक्त आठ में मिश्रप्रकृति मिलानेपर नौ। **(तह य देवदुगं)** पूर्वोक्त नौ में देवद्विक मिलानेपर ग्यारह **(णारयछक्कं)** पूर्वोक्त ग्यारह प्रकृतियों में नारकषट्क मिलानेपर सतरह **(तहा)** उसीप्रकार १७ प्रकृतियों में **(णराउउच्चं)** मनुष्यायु, उच्चगोत्र मिलाने पर उन्नीस प्रकृतियाँ तथा इन्हीं १९ प्रकृतियों में **(मणुवदुगं च)** मनुष्यद्विक मिलानेपर इक्कीस प्रकृतियाँ होती हैं।

अब अबद्धायुष्क की अपेक्षा सातवें सत्त्वस्थानसम्बन्धी चार भङ्ग कहते हैं-

उव्वेल्लिददेवदुगे बिदियपदे चारि भंगया एवं ।
सपदे पढमो बिदियो सो चेव णरेसु उप्पण्णे ।।३६८।।
वेगुव्वट्ठय रहिदे पंचिंदियतिरियजादिसुववण्णे ।
सुरछब्बंधे तदियो णरेसु तब्बंधणे तुरियो ।।३६९।।

अन्वयार्थ - (उव्वेल्लिददेवदुगे) जिसके देवगतिद्विक की उद्वेलना हुई है उसके **(बिदियपदे)** दूसरे पद में **(चारि भंगया)** चार भंग होते हैं वे **(एवं)** इसप्रकार हैं - **(सपदे पढमो)** एकेन्द्रिय और विकलत्रयजीव के स्वस्थान में देवद्विक की उद्वेलना होनेपर १३६ प्रकृतिरूप स्थान होता है वह प्रथम भंग हैं **(सो चेव णरेसु उप्पण्णे बिदियो)** वही जीव मरकर मनुष्य में उत्पन्न हुआ वहाँ दूसरा भंग है। **(वेगुव्वट्ठय रहिदे)** जिसके वैक्रियिक अष्टक की उद्वेलना हुई है ऐसा एकेन्द्रिय या विकलत्रय जीव **(पंचिंदियतिरियजादिसुववण्णे)** पंचेन्द्रियतिर्यंच जाति में उत्पन्न हुआ और वहाँ **(सुरछब्बंधे)** देवगतिषट्क का बंध करनेपर **(तदियो)** तीसरा भंग होता है। वही जीव मरकर **(णरेसु)** मनुष्य में उत्पन्न होकर **(तब्बंधणे)** देवषट्क का बंध करने पर **(तुरियो)** चौथा भंग होता है।

अब आठवें १३० प्रकृतिरूप अबद्धायुस्थान के दो भंग कहते हैं -

णारकछक्कुव्वेल्ले आउगबंधुज्झिदे दु भंगा हु।
इगिविगलेसिगिभंगो तम्मि णरे बिदियमुप्पण्णे ।।३७०।।

अन्वयार्थ - (आउगबंधुज्झिदे) आयुबंध से रहित स्थान में **(दु भंगा हु)** दो भंग होते हैं। **(णारक-छक्कुव्वेल्ले)** नारक षट्क की उद्वेलना करने पर **(इगिविगलेसिगिभंगो)** एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव के अपने ही पर्याय में प्रथम भंग है। **(तम्मि णरे उप्पण्णे)** वही जीव मरकर मनुष्य में उत्पन्न होने पर **(बिदियं)** दूसरा भंग होता है।

अब अठारह स्थानों के पचास भङ्ग कहे हैं उनमें से किसकिस स्थान में कितने भंग होते हैं उसकी संख्या कहते हैं -

बिदिये तुरिये पणगे छट्ठे पंचेव सेसगे एक्कं ।
बिदिचउपण छस्सत्तयठाणे चत्तारि अट्ठगे दोण्णि ।।३७१।।

अन्वयार्थ - (बिदिये) दूसरे **(तुरिये)** चौथे **(पणगे)** पाँचवें **(छट्ठे)** छठे बद्धायुष्क स्थान में **(पंचेव)** पाँच-पाँच ही भंग होते हैं **(सेसगे एक्कं)** शेष बद्धायुष्क स्थानों में एक-एक भंग है। **(बिदिचउपण छस्सत्तयठाणे)** दूसरे, चौथे, पाँचवें, छठे सातवें अबद्धायुस्थान में **(चत्तारि)** चार-चार भंग और **(अट्ठगे)** आठवें स्थान में **(दोण्णि)** दो भंग और शेष स्थानों में एक-एक भंग होता है।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में सत्त्वस्थान १८,भंग ५० का संक्षिप्त विवरण

बद्धायुअपेक्षा सत्त्वस्थान				
स्था.सं.	प्रकृति सं.	हीनप्रकृति	हीनप्रकृति का विवरण	भंग संख्या
१	१४६	१४८-२	आयु २ (तिर्यंचायु, देवायु)	१
२	१४५	१४८-३	आयु २ (कोई भी), तीर्थंकर	५
३	१४२	१४८-६	आयु २ (तिर्यंच-देवायु) आहारक ४	१
४	१४१	१४८-७	आयु २(कोई भी),तीर्थंकर,आहारक ४	५
५	१४०	१४८-८	उपर्युक्त ७+१ सम्यक्त्व	५
६	१३९	१४८-९	उपर्युक्त ८+१ मिश्र	५
७	१३७	१४८-११	उपर्युक्त ९+२ देवद्विक	१
८	१३१	१४८-१७	उपर्युक्त ११+६ नारकषट्क	१
९	१२९	१४८-१९	उपर्युक्त १७+२ मनुष्यायु, उच्चगोत्र	१
१०	१२७	१४८-२१	उपर्युक्त १९+२ मनुष्यद्विक	१
१०				२६

अबद्धायुअपेक्षा सत्त्वस्थान		
स्था.संख्या	प्रकृति संख्या	भंग संख्या
१	१४५ बद्धायु में से एक आयु सब स्थानों में कम करना	१
२	१४४	४
३	१४१	१
४	१४०	४
५	१३९	४
६	१३८	४
७	१३६	४
८	१३०	२
	१२९ पुनरुक्त	
	१२७ पुनरुक्त	
८		२४

बद्धायु - जिसके आगामी आयु का बन्ध हुआ है, उसे बद्धायु कहते हैं।

अबद्धायु - जिसके आगामी आयु का बन्ध नहीं हुआ है, उसे अबद्धायु कहते हैं।

बद्धयमान और भुज्यमान आयु की अपेक्षा १२ भंग होते हैं।

भुज्यमान आयु	बद्धयमान आयु		अपनुरुक्त ५ भंग
१ नरकायु	तिर्यंचायु	अपुनरुक्त-१	नारक तिर्यंच
२ नरकायु	मनुष्यायु	अपुनरुक्त-२	नारक मनुष्य
३ तिर्यंचायु	नरकायु	समभंग १	तिर्यंच मनुष्य
४ तिर्यंचायु	तिर्यंचायु	पुनरुक्त-१	तिर्यंच देव
५ तिर्यंचायु	मनुष्यायु	अपुनरुक्त-३	मनुष्य देव
६ तिर्यंचायु	देवायु	अपुनरुक्त-४	
७ मनुष्यायु	नरकायु	समभंग २	
८ मनुष्यायु	तिर्यंचायु	समभंग ३	
९ मनुष्यायु	मनुष्यायु	पुनरुक्त-२	
१० मनुष्यायु	देवायु	अपुनरुक्त-५	
११ देवायु	तिर्यंचायु	समभंग ४	
१२ देवायु	मनुष्यायु	समभंग ५	

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के १८ सत्त्वस्थान और ५० भंगों का विशेष विवरण

सत्त्वस्थान	भंग	विश्लेषण
१ बद्धायु अपेक्षा १४६	१ भुज्यमान -मनुष्यायु बद्धयमान -नरकायु	नरकायु का बन्धक मिथ्यादृष्टि मनुष्य सम्यग्दर्शन प्राप्त करके सोलहभावनाओं के द्वारा तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध का प्रारम्भ कर तीर्थंकर सत्त्वयुक्त होकर मरणकाल आने पर एक अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर मिथ्यादृष्टि होता है उसके तिर्यंचायु और देवायु के बिना १४६ का सत्त्व पाया जाता है। विशेष - १) जिस सम्यग्दृष्टि मनुष्य ने मनुष्य व तिर्यञ्चायु बांध ली हो उसके तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध प्रारम्भ नहीं होता है। २) ४ थे से ७ वें गुणस्थानवर्ती जिस मनुष्य ने देवायु बांध ली हो वह मिथ्यात्व में नहीं आ सकता।

सत्त्वस्थान		भंग	विश्लेषण
१ अबद्धायु अपेक्षा	१४५	१ भुज्यमान -नरकायु	उपर्युक्त तीर्थंकर प्रकृति की सत्तासहित नारकी निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्था में मिथ्यादृष्टि रहता है, उस समय आगामी आयु का बन्ध नहीं होता अत: भुज्यमान एक नरकायु के सिवाय अन्य तीन आयु का सत्त्व न होने से १४५ का सत्त्व होता है।
२ बद्धायु अपेक्षा	१४५	१ न. ति. १ न. म. १ ति. म. १ ति. दे. १ म. दे. ५ कुल	१४८ -३ (कोई भी दो आयु, तीर्थंकर) इस स्थान में १२ भंग सम्भव है किन्तु उनमें से पुनरुक्त और समभंगों को छोडकर अपुनरुक्त ५ भङ्ग ही गिने हैं।
२ अबद्धायु अपेक्षा	१४४	४,भुज्यमान ४ आयु की अपेक्षा	१४८-४ (भुज्यमान आयु के बिना शेष तीन आयु, तीर्थंकर) उपर्युक्त १४५ बद्धायु के स्थान में से एक बद्ध्यमान आयु कम करनेसे यह स्थान होता है।
३ बद्धायु अपेक्षा	१४२	१ भुज्यमान-मनुष्यायु बद्ध्यमान-नरकायु	१४८-६ (तिर्यञ्च व देवायु, आहारकचतुष्क) कोई मिथ्यादृष्टि मनुष्य पहले अप्रमत्त गुणस्थान को प्राप्त हुआ, किन्तु वहाँ उसने आहारकचतुष्क का बन्ध नहीं किया और मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त हुआ उसके आहारक चतुष्क का सत्त्व नहीं है। अथवा अप्रमत्त गुणस्थान में आहारकचतुष्क का बन्ध करके पीछे मिथ्यादृष्टि होकर असंख्यात वर्षोंमें आहार चतुष्क की उद्वेलना कर मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। वहाँ नरकायु का बन्ध करके पश्चात् वेदक सम्यग्दृष्टि होकर केवलीद्वय के पादमूल में तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध प्रारम्भ करके उस कर्म से सहित होकर द्वितीय, तृतीय नरक को जानेवाला जीव भुज्यमान आयु अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रहनेपर मरण से

	स्थान	भंग	भंगका नाम	विश्लेषण
				पूर्व मिथ्यात्व में आ गया। उसके १४२ प्रकृति का सत्त्व होता है। जिस मनुष्य ने देवायु का बन्ध कर लिया है एवं तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध आरम्भ कर लिया हो उसके सम्यक्त्व नहीं छूटता। अत: नारकी होनेवाले जीव के ही यह भङ्ग सम्भव है।
३ अबद्धायुष्क की अपेक्षा	१४१	१	भुज्यमान नरकायु	१४८-७ (तिर्यंच-मनुष्य-देवायु, आहारकचतुष्क४) तीर्थंकरप्रकृतिकी सत्तासहित २ रे और ३ रे नरकमें उत्पन्न हुए मिथ्यादृष्टि जीव के निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्था में १४१ प्रकृति का सत्त्वस्थान होता है क्योंकि इस अवस्था में बध्यमान आयु की सत्ता नहीं रहती है।
४ बद्धायुष्क की अपेक्षा	१४१	५	न ति.१, न.म.१, ति.म.१, ति.दे.१, म.दे.१	१४८-७ (भुज्यमान बद्धयमान आयु बिना दो आयु, तीर्थंकर१, आहारकचतुष्क४) पूर्वोक्त चारगति संबंधी १२ भंगों में से अपुनरुक्त ५ भंग ही ग्रहण करना।
४ अबद्धायुष्क की अपेक्षा	१४०	४	नरक १, तिर्यंच १, मनुष्य १, देवायु १	१४८-८ (भुज्यमानआयु के बिना तीन आयु, तीर्थंकर, आहारक ४) उपर्युक्त चतुर्थ बद्धायु १४१ स्थान में से १ बद्धयमान आयु कम करनेपर यह १४० का स्थान होता है, भुज्यमान आयु की अपेक्षा ४ भंग होते हैं।
५ बद्धायुष्क अपेक्षा	१४०	५	न.ति, न.म., ति.म., ति.दे., म.दे.	१४८-८ (दो आयु, तीर्थंकर १, आहारकचतुष्क४, सम्यक्त्वप्रकृति) सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि होकर सम्यक्त्व प्रकृति की उद्वेलना पूर्ण करता है उसको यह सत्त्वस्थान होता है। उपर्युक्त ही ५ अपुनरुक्त भंग लेना।

	स्थान	भंग	भंगका नाम	विश्लेषण
५ अबद्धायुष्क की अपेक्षा	१३९	४	नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देवायु	१४८-९ (शेष तीन आयु,तीर्थंकर, आहारकचतुष्क, सम्यक्त्वप्रकृति) सम्यक्त्वप्रकृति की उद्वेलना पूर्ण करनेवाले मिथ्यादृष्टि अबद्धायुष्क के यह सत्त्वस्थान होता है।
६ बद्धायुष्क की अपेक्षा	१३९	५	न ति.१, न.म.१, ति.म.१, ति.दे.१, म.दे.१	१४८-९ (दो आयु,तीर्थंकर, आहारक ४, सम्यक्त्व, मिश्र) मिश्रप्रकृति की उद्वेलना होनेपर सादि मिथ्यादृष्टि के अथवा अनादि मिथ्यादृष्टि के यह सत्त्वस्थान होता है।
६ अबद्धायुष्क की अपेक्षा	१३८	४	नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देवायु	१४८-१० (तीन आयु, तीर्थंकर १,आहारकचतुष्क ४, सम्यक्त्व१, मिश्र १) उपर्युक्त छठे बद्धायुष्क स्थान में से एक बद्ध्यमान आयु कम करनेपर यह सत्त्वस्थान होता है।
७ बद्धायुष्क अपेक्षा	१३७	१	भुज्यमान तिर्यंचायु, बद्ध्यमान मनुष्यायु	१४८-११(नरकायु, देवायु, तीर्थंकर,आहारकचतुष्क सम्यक्त्व, मिश्र, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी) यह सत्त्वस्थान देवद्विक उद्वेलना किये हुए एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रियतक के तिर्यञ्चों के ही होता है। वे मनुष्य और तिर्यंचायु का ही बंध कर सकते हैं। बध्यमान तिर्यंचायु और भुज्यमान तिर्यंचायु पुनरुक्त होने से नहीं गिना। अत: भुज्यमान तिर्यंचायु, बध्यमान मनुष्यायु यह एक ही भंग संभव है।
७ अबद्धायुष्क अपेक्षा	१३६	४	भुज्यमान तिर्यंचायु	१४८-१२(उपर्युक्त ११+१ बध्यमान मनुष्य आयु) १) उपर्युक्त बद्धायु स्थान में से बध्यमान आयु कम करनेपर उपर्युक्त जीव को यह सत्त्वस्थान होता है।
			भुज्यमान मनुष्यायु	२) बद्धायुष्क सप्तमस्थानवाला जीव मरणकर मनुष्य हुआ उसके अपर्याप्त अवस्था में १३६ प्रकृति की सत्ता होती है क्योंकि अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि के देवद्विक का बंध नहीं होता यहाँ भुज्यमान तिर्यंचायु के स्थानपर भुज्यमान मनुष्यायु लेना।

	स्थान	भंग	भंगका नाम	विश्लेषण
			भुज्यमान तिर्यंचायु	३) जिसके वैक्रियिक अष्टक की उद्वेलना हुई है ऐसा वही एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय जीव मरकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर्याप्त अवस्था में देवद्विक और वैक्रियिक चतुष्क़ का बन्ध किया और नरकद्विक का बन्ध नहीं किया। उसके१३६ का सत्त्व होता है। १४८-१२ (तिर्यंचायु के बिना तीन आयु, तीर्थंकर, आहारकचतुष्क, सम्यक्त्व, मिश्र, नरकद्विक)
			भुज्यमान मनुष्यायु	४) उपर्युक्त वैक्रियिक अष्टक की उद्वेलनवाला जीव मरकर मनुष्य में उत्पन्न हुआ। वहाँ सुरषट्क का बन्ध किया उसके मनुष्यायु बिना ३ आयु और उपर्युक्त शेष ९ प्रकृतियों का सत्त्व नहीं होता अत: १४८-१२=१३६ प्र.का सत्त्व होता है। देवद्विक से रहित दो भंग और नरकद्विक से रहित दो भंग इस प्रकार १३६ के ४ भंग हुए।
८ बद्धायुष्क की अपेक्षा	१३१	१	भुज्यमान तिर्यंचायु, बध्यमान मनुष्यायु	१४८-१७ (देव-नरकायु, तीर्थंकर, आहारकचतुष्क, सम्यक्त्व, मिश्र, देवद्विक, वैक्रियिकचतुष्क, नरकद्विक) एकेन्द्रिय अथवा विकलेन्द्रिय जीव ने नारकषट्क की भी उद्वेलना की और मनुष्यायु का बन्ध किया हो तो उसको १३१ का यह सत्त्वस्थान होता है। इसके दो भंग भु. तिर्यंच, ब. तिर्यंच और भु. तिर्यंच ब. मनुष्यायु हो सकते हैं। प्रथम भंग पुनरुक्त होने से एक ही भंग हुआ।
८ अबद्धायुष्क की अपेक्षा	१३०	२	भुज्यमान तिर्यंचायु,	उपर्युक्त १३१ सत्त्वस्थान में से बध्यमान मनुष्यायु कम करनेपर १३० का सत्त्वस्थान होता है।
			भुज्यमान मनुष्यायु	१३१ सत्तावाला जीव मरकर मनुष्य में उत्पन्न हुआ उसके निर्वत्त्यपर्याप्त अवस्था में १३० प्रकृति की सत्ता होगी। यहाँ तिर्यंचायु को निकालकर मनुष्यायु को ग्रहण करना।

	स्थान	भंग	भंगका नाम	विश्लेषण
९ बद्धायुष्क की अपेक्षा	१२९	१	भुज्यमान तिर्यंचायु, बध्यमान तिर्यंचायु	१४८-१९ (तिर्यंचायु के बिना ३ आयु, तीर्थंकर, आहारकचतुष्क, सम्यक्त्व, मिश्र, देवद्विक, नरक-षट्क, उच्चगोत्र) जिसने उच्चगोत्र की उद्वेलना की है ऐसे तेजस्कायिक और वायुकयिक जीव को यह सत्त्वस्थान होता है। तेज और वायुकायिक जीव तिर्यंचायु का ही बंध करते है इसलिए एकही भंग होता है।
९अबद्धायुष्क की अपेक्षा	१२९ पुनरुक्त	१	भुज्यमान तिर्यंचायु	उपर्युक्त १२९ सत्त्वस्थान की ही प्रकृतियाँ यहाँ ग्रहण करना। जब उपर्युक्त जीव आयु का बंध नहीं करता तब भी १२९ का सत्त्व होता है। अत: यह स्थान और भंग पुनरुक्त होने से नहीं गिना।
१० बद्धायुष्क की अपेक्षा	१२७	१	भुज्यमान तिर्यंचायु, बध्यमान तिर्यंचायु	१४८-२१ (३ आयु, तीर्थंकर, आहारकचतुष्क, सम्यक्त्व, मिश्र, देवद्विक, नारकषट्क, उच्चगोत्र, मनुष्यद्विक) उपर्युक्त तेजस्कायिक और वायुकायिक जीव जब मनुष्यद्विक की उद्वेलना पूरी करता है तब उसके १२७ का सत्त्वस्थान होता है।
१०अबद्धायुष्क की अपेक्षा	१२७ पुनरुक्त	१	भुज्यमान तिर्यंचायु	उपर्युक्त मनुष्यद्विक की उद्वेलना करता है और आयु का बन्ध नहीं किया तब भी उसके १२७ का ही सत्त्व होता है क्योंकि यहाँ भुज्यमान और बध्यमान तिर्यंचायु ही है।

आगे सासादन और मिश्रगुणस्थान में स्थानों और भंगों की संख्या चार गाथाओं द्वारा कहते हैं-

सत्ततिगं सासाणे मिस्से तिग सत्त सत्त एयारा ।
परिहीण सव्वसत्तं बद्धस्सियरस्स एगूणं ।।३७२।।

अन्वयार्थ - (सासाणे) सासादन गुणस्थान में **(सत्ततिगं परिहीण सव्वसत्तं)** सात और तीन प्रकृतियों से हीन सर्वसत्त्व है इस प्रकार दो सत्त्वस्थान हैं। **(मिस्से)** मिश्रगुणस्थान में सर्व प्रकृतियों में से **(तिग, सत्त, सत्त, एयारा)** तीन, सात, सात और ग्यारह प्रकृति कर्मरूप **(बद्धस्स)** बद्धायुष्क की अपेक्षा चार सत्त्वस्थान हैं। **(इयरस्स)** अबद्धायुष्क की अपेक्षा **(एगूणं)** एक-एक प्रकृति कम करने पर चार स्थान होते हैं।

सासादन में घटायी गयी प्रकृतियों को कहते हैं -

तित्थाहारचउक्कं अण्णदराउगदुगं च सत्तेदे ।
हारचउक्कं वज्जिय तिण्णि य केइं समुद्दिट्ठं ।।३७३।।

अन्वयार्थ - सासादन में **(तित्थाहारचउक्कं)** तीर्थंकर, आहारक चतुष्क **(अण्णदराउगदुगं)** कोई भी दो आयु **(सत्तेदे)** ये सात प्रकृति कम जानना। **(हारचउक्कं)** उन सात में आहारकचतुष्क को **(वज्जिय)** छोड़कर **(तिण्णि)** तीन प्रकृति कम करनेपर १४५ का सत्त्वस्थान **(केइं)** कुछ आचार्यों के मतानुसार **(समुद्दिट्ठं)** कहा है।

मिश्र गुणस्थान में कम की गयी प्रकृतियों को कहते हैं -

तित्थण्णदराउदुगं तिण्णिवि अणसहिय तह य सत्तं च।
हारचउक्के सहिया ते चेव य होंति एयारा ।।३७४।।

अन्वयार्थ -मिश्रगुणस्थान में **(तित्थण्णदराउदुगं)** तीर्थंकर, कोई दो आयु इन तीन बिना प्रथम स्थान, **(तिण्णिवि अणसहिय)** पूर्वोक्त तीन प्रकृति अनंतानुबंधी सहित इन **(सत्तं)** सात बिना दूसरा स्थान अथवा **(हारचउक्के सहिया)** पूर्वोक्त तीन आहारकचतुष्कसहित सात प्रकृति बिना तीसरा स्थान,**(ते चेव य)** वे ही तीर्थंकर, दो आयु, अनंतानुबंधीचतुष्क और आहारकचतुष्क **(एयारा)** ग्यारह प्रकृतियाँ **(होंति)** हैं इनके बिना चौथा स्थान है। इनमें एक-एक बध्यमान आयु घटानेपर अबद्धायु के ४ स्थान होते हैं।

सासादन गुणस्थान में सत्त्वस्थान ४ और भंग १२ का विवरण

सत्त्वस्थान	संख्या	भंग	विश्लेषण	सत्त्वस्थान की प्रकृतियों का और स्वामी का विवरण
१ बद्धायुष्क अपेक्षा	१४१	५	१ न. ति. १ न. म. १ ति. म. १ ति. दे. १ म. दे.	१४८-७(आयु२,तीर्थंकर१,आहारकचतुष्क) चारों आयु का बंध करनेवाले जीव इस गुणस्थान में आ सकते हैं। इसके भी चारों गति की अपेक्षा १२ भंग होते हैं किन्तु पुनरुक्त छोडकर ५ भङ्ग ही ग्रहण करना।
२ अबद्धा-युष्क अपेक्षा	१४०	४	नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देवायु	१४८-८(आयु३,तीर्थंकर१,आहारकचतुष्क) उपर्युक्त १४१ सत्त्वस्थान में से एक बद्ध्यमान आयु कम करना। चार गति की भुज्यमान आयुकी अपेक्षा ४ भंग होते हैं।
३ बद्धायुष्क अपेक्षा	१४५	१	भुज्यमान मनुष्यायु बद्ध्यमान-देवायु	१४८-३ (आयु २, तीर्थंकर) कुछ आचार्योंके मतानुसार आहारकचतुष्क का सत्त्व दूसरे गुणस्थान में बताया है। यह जीव आहारकचतुष्क का बन्ध करके इस गुणस्थान में आया है।
४ अबद्धा-युष्क अपेक्षा	१४४	२	१भुज्यमान मनुष्यायु	१४८-४ (तीन आयु, तीर्थंकर) उपर्युक्त १४५ सत्त्वस्थान में से बध्यमान आयु कम करनेपर यह १४४का सत्त्वस्थान होता है। भुज्यमान मनुष्यायुवाला जीव उपशम सम्यग्दृष्टि सासादन में आया तो उसके १४४ प्रकृति की सत्ता रहती है।
			२ भुज्यमान देवायु	जिस उपशम सम्यग्दृष्टि जीव ने पहले देवायु का बन्ध किया हो और पश्चात् दूसरे गुणस्थान में आकर मर गया और देव हुआ उसके १४४का सत्त्व रहेगा ऊपर के भंग में भुज्यमान मनुष्यायु था। यहाँ भुज्यमान देवायु होगा। कुछ आचार्यों के मतानुसार दूसरे गुणस्थान के ११ ही भंग होते हैं क्योंकि उनके मत से देवायु का बंध हुआ द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थान में नहीं मरता।

अब इनमें भंगों की संख्या कहते हैं-

साणे पण इगि भंगा बद्धस्सियरस्स चारि दो चेव ।
मिस्से पण पण भंगा बद्धस्सियरस्स चउ चउ णेया ।।३७५।।

अन्वयार्थ - (साणे) सासादन में **(बद्धस्स)** बद्धायुष्क के **(पण इगि भंगा)** पाँच और एक भंग होते हैं **(इयरस्स)** अबद्धायु के **(चारि दो चेव)** चार और दो भंग हैं। **(मिस्से)** मिश्र गुणस्थान में (बद्धस्स) बद्धायु के **(पण पण भंगा)** पाँच पाँच भंग होते हैं **(इयरस्स)** अबद्धायु के **(चउ चउ)** चार चार भंग **(णेया)** जानना चाहिये।

मिश्र गुणस्थान के ८ सत्त्वस्थान और ३६ भंगों का विवरण

बद्धायु अपेक्षा स्थान और भंग				
स्थानसं.	**प्रकृतिसं.**	**हीन प्र.**	**हीनप्रकृतियों का विवरण**	**भंग**
१	१४५	३	२ आयु, १ तीर्थंकर	५
२	१४१	७	२ आयु, तीर्थंकर, अनंतानुबंधी ४	५
३	१४१	७	२ आयु, तीर्थंकर, आहारक ४	५
४	१३७	११	२ आयु, तीर्थंकर, अनंतानुबंधी४ आहारक ४	५
				२०

अबद्धायु अपेक्षा स्थान और भंग				
स्थानसं.	**प्रकृतिसं.**	**हीन प्र.**	**हीनप्रकृतियों का विवरण**	**भंग**
१	१४४	४	बद्धायु स्थानों में से एक एक आयु कम करना	४
२	१४०	८		४
३	१४०	८		४
४	१३६	१२		४
				१६

विशेषार्थ - १) बद्धायुस्थानों में चारों गति के भुज्यमान और बध्यमान आयु की अपेक्षा पूर्वोक्त १२ भंग होते हैं उनमें से पुनरुक्त व समभंगों को छोड़कर अपुनरुक्त ५ भंग ही लिये हैं।

२) अबद्धायुस्थानों में चारों गति की अपेक्षा चार भुज्यमान आयु के ४ भंग ग्रहण किये हैं।

३) मिश्र गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी के असत्त्व का स्पष्टीकरण -

असंयत आदि चार गुणस्थानों में से किसी एक गुणस्थान में तीन करणों के द्वारा चार अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन किया। उसके पश्चात् दर्शनमोहनीय की क्षपणा तो न कर सका और संक्लेश परिणाम के द्वारा मिश्र मोहनीय के उदय से मिश्र गुणस्थानवर्ती हुआ उसके अनन्तानुबन्धी का सत्त्व नहीं होता उसके १४१ प्रकृतियों का सत्त्व पाया जाता है।

४) उसे यदि आहारकचतुष्क का भी सत्त्व न हो तो १३७ का सत्त्व पाया जाता है।

आगे असंयत गुणस्थान के ४० स्थान और १२० भंगों को कहते हैं -

दुग छक्क सत्त अट्ठं णवरहियं तह य चउपडिं किच्चा ।
णभमिगि चउ पणहीणं बद्धस्सियरस्स एगूणं ।।३७६।।

अन्वयार्थ -(दुग छक्क सत्त अट्ठं णवरहियं) दो, छह, सात, आठ, नौ प्रकृतियों से रहित पाँचस्थान **(तह य चउपडिं किच्चा)** इन पाँच स्थानों की नीचे नीचे चार पंक्तियाँ करके उनमें क्रम से **(णभमिगि चउ पणहीणं)** शून्य, एक, चार और पाँच कम करना ये **(बद्धस्स)** बद्धायु के बीस स्थान होते हैं पूर्वोक्त स्थानों में से **(एगूणं)** एक-एक प्रकृति कम करने पर **(इयरस्स)** अबद्धायु के बीस स्थान होते हैं।

तित्थाहारे सहियं तित्थूणं अह य हारचउहीणं ।
तित्थाहारचउक्केणूणं इदि चउपडिट्ठाणं ।।३७७।।

अन्वयार्थ - प्रथम पंक्ति **(तित्थाहारे सहियं)** तीर्थंकर आहारकचतुष्क सहित है। द्वितीय पंक्ति **(तित्थूणं)** तीर्थंकर रहित है **(अह य)** उसके आगे तृतीय पंक्ति **(हारचउहीणं)** आहारकचतुष्क रहित है, चौथी पंक्ति **(तित्थाहारचउक्केणूणं)** तीर्थंकर और आहारकचतुष्क से रहित है **(इदि)** इस प्रकार **(चउपडिट्ठाणं)** चार पंक्तियों के स्थान हैं।

अण्णदर आउसहिया तिरियाऊ ते च तह य अणसहिया ।
मिच्छं मिस्सं सम्मं कमेण खविदे हवे ठाणा ।।३७८।।

अन्वयार्थ - (अण्णदर आउसहिया तिरियाऊ) अन्य कोई आयुसहित तिर्यंचायु ये दो प्रकृतियाँ **(ते च तह य अणसहिया)** वे दो प्रकृति और अनंतानुबंधीचतुष्क ये छह प्रकृतियाँ तथा **(मिच्छं मिस्सं सम्मं कमेण खविदे)** मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्वप्रकृति का क्षय करने पर एक-एक प्रकृति मिलाने से ७,८,९ प्रकृति कम करनेपर **(ठाणा हवे)** स्थान होते हैं।

आदिमपंचट्ठाणे दुगदुगभंगा हवंति बद्धस्स ।
इयरस्सवि णादव्वा तिगतिग इगि तिण्णि तिण्णेव ।।३७९।।

अन्वयार्थ -(बद्धस्स) बद्धायु के **(आदिमपंचट्ठाणे)** प्रथमपंक्ति के पाँच स्थानों में **(दुगदुगभंगा)** दो-दो भंग **(हवंति)** होते हैं। **(इयरस्सवि)** अबद्धायु के पाँच स्थानों में **(तिगतिग इगि तिण्णि तिण्णेव)** तीन, तीन, एक, तीन, तीन भंग **(णादव्वा)** जानना चाहिये।

विदियस्स वि पणठाणे पण पण तिग तिण्णि चारि बद्धस्स ।
इयरस्स होंति णेया चउ चउ इगि चारि चत्तारि ।।३८०।।

अन्वयार्थ - (बद्धस्स) बद्धायु के **(विदियस्स वि)** दूसरी पंक्ति के **(पणठाणे)** पाँच स्थानों में **(पण पण तिग तिण्णि चारि)** पाँच, पाँच, तीन, तीन, चार भंग होते हैं **(इयरस्स)** अबद्धायु के दूसरी पंक्ति के पाँच स्थानों में **(चउ चउ इगि चारि चत्तारि)** चार, चार, एक, चार, चार भंग **(होंति)** होते हैं ऐसा **(णेया)** जानना।

आदिल्ल दससु सरिसा भंगेण य तदिय दसय ठाणाणि ।
बिदियस्स चउत्थस्स य दस ठाणाणि य समा होंति ।।३८१।।

अन्वयार्थ - (आदिल्ल दससु) प्रथम पंक्ति के बद्धायुअबद्धायु संबंधी दस स्थानों से **(तदिय दसय ठाणाणि)** तीसरी पंक्ति के दस स्थान **(भंगेण सरिसा)** भंग की अपेक्षा समान हैं। **(बिदियस्स)** दूसरी पंक्ति के **(य)** और **(चउत्थस्स)** चौथी पंक्ति के **(दस ठाणाणि)** दस स्थान **(समा)** भंगों की अपेक्षा समान **(होंति)** हैं।

विशेषार्थ - १) चौथे से सातवें गुणस्थान तक किसी एक गुणस्थान में क्षायिक

का प्रारंभ करता है तब पहले तीन करणद्वारा अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन (सत्त्व का अभाव) करता है उसके पश्चात् तीन करण करके अनिवृत्तिकरण का बहुभाग जानेपर प्रथम मिथ्यात्व का क्षय करता है, तदनन्तर मिश्र का क्षय करता है उसके पश्चात् सम्यक्त्व प्रकृतिका नाश करता है इसलिए क्रम से सत्ता में से चार, एक, एक, एक प्रकृति कम होती जाती हैं।

२) किसी जीव के तीर्थंकर, आहारक ४ दोनों का सत्त्व पाया जाता है, किसी को केवल तीर्थंकर का सत्त्व होता है, किसी के केवल आहारक ४ का सत्त्व पाया जाता है तीर्थंकर का नही, किसी के तीर्थंकर और आहारकचतुष्क दोनों का सत्त्व नहीं होता। इस प्रकार चार प्रकार हो जाते हैं और सर्वत्र बद्धायु में दो आयु कम करना। अबद्धायु में तीन आयु कम करना।

३) तिर्यंचगति में तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व नहीं होता क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति का बंध करनेवाला जीव तिर्यंचगति में उत्पन्न नहीं होता और जिसने तिर्यंचायु बांधी है वह तीर्थंकर प्रकृति का बंध प्रारंभ नहीं करता। इसलिए तीर्थंकर प्रकृति सत्त्वसहित १४६, १४२ स्थान में एक तिर्यंचायु और अन्य एक देवायु अथवा नरकायु कम करना।

ऊपर चार पंक्तियों के प्रथम कोष्टक की प्रकृतियों का खुलासा किया है। आगे की चारों पंक्तियों के कोष्टक में ४ अनंतानुबंधी, १ मिथ्यात्व, १ मिश्र, १ सम्यक्त्वप्रकृति क्रम से कम करने से प्रकृतियाँ होती हैं।

बद्धायु स्थान की प्रकृति			
	स्थानसं.	हीनप्र.	हीनप्रकृतियों का नाम
१	१४६	२	तिर्यंचायु और देवायु, नरकायु में से एक
२	१४५	३	कोई २ आयु, तीर्थंकर
३	१४२	६	तिर्यंचायु, देवायु अथवा नरकायु, आहारक ४
४	१४१	७	२ आयु, तीर्थंकर,आहारक ४

अबद्धायु स्थान की प्रकृति	
स्थानसं.	प्रकृति
१४५ १४४ १४१ १४०	बद्धायु स्थानों में से एक एक आयु कम करना

असंयत गुणस्थान के ४० सत्त्वस्थान और १२० भंगों का कोष्टक

			अनन्तानुबन्धी सहित	अनन्तानुबन्धी रहित	मिथ्यात्व रहित	मिश्र रहित	सम्य. प्र. रहित	कुल स्थान	कुल भंग
तीर्थंकर और आहारक सहित	बद्धायु	सत्त्वस्थान	१४६	१४२	१४१	१४०	१३९	५	१०
		भंग	२	२	२	२	२		
	अबद्धायु	सत्त्वस्थान	१४५	१४१	१४०	१३९	१३८	५	१३
		भंग	३	३	१	३	३		
तीर्थंकर रहित आहारक सहित	बद्धायु	सत्त्वस्थान	१४५	१४१	१४०	१३९	१३८	५	२०
		भंग	५	५	३	३	४		
	अबद्धायु	सत्त्वस्थान	१४४	१४०	१३९	१३८	१३७	५	१७
		भंग	४	४	१	४	४		
आहारक रहित तीर्थंकर सहित	बद्धायु	सत्त्वस्थान	१४२	१३८	१३७	१३६	१३५	५	१०
		भंग	२	२	२	२	२		
	अबद्धायु	सत्त्वस्थान	१४१	१३७	१३६	१३५	१३४	५	१३
		भंग	३	३	१	३	३		
तीर्थंकर और आहारक रहित	बद्धायु	सत्त्वस्थान	१४१	१३७	१३६	१३५	१३४	५	२०
		भंग	५	५	३	३	४		
	अबद्धायु	सत्त्वस्थान	१४०	१३६	१३५	१३४	१३३	५	१७
		भंग	४	४	१	४	४		
							कुल	४०	१२०

१२० भंगों का विवरण -

१) तीर्थंकर प्रकृतिसहित बद्धायुस्थान में भुज्यमान, बध्यमान आयु की अपेक्षा ४ भंग होते है।

१) भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान नरकायु २) भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान देवायु ३) भुज्यमान नरकायु, बध्यमान मनुष्यायु ४) भुज्यमान देवायु, बध्यमान मनुष्यायु	इन चार भंगो में १ ले और ३ रे भंग में आयु समान है और २ रे और ४ थे भंग में आयु समान है अत: दो भंग कम करके अपुनरुक्त दो ही भंग लिये हैं।

२)तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व तिर्यंचगति को छोड़कर शेष ३ गतियों में पाया जाता है इसलिये अबद्धायु तीर्थंकर प्रकृतिसहित स्थान में भुज्यमान नरकायु, मनुष्यायु और देवायु की अपेक्षा ३ भंग होते हैं।

३) अबद्धायु पंक्ति के तीसरे कोष्टक में मिथ्यात्वरहित स्थान मनुष्यायु सहित ही पाया जाता है क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्व का प्रारंभ मनुष्य ही करता है और कृतकृत्यवेदक होनेपर मरने के बाद चारों गतियों में उत्पन्न होता है। कृतकृत्यवेदक होने के पहले वह मनुष्य ही रहता है। वहाँ मरण नहीं होता। अत: अबद्धायु के चारों पंक्ति के तीसरे कोष्टक में भुज्यमान मनुष्यायु का एक ही भंग पाया जाता है।

४) तीर्थंकर प्रकृति रहित बद्धायु स्थान में से प्रथम दो कोष्टक में चारों गति की अपेक्षा १२ भंग होते हैं उनमें से ५ अपुनरुक्त भंग ग्रहण किये हैं। तीसरे कोष्टक के और चौथे कोष्टक में ३ भंग किये है उसके ४ भंग होते हैं -

१) भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान नरकायु, २) भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान तिर्यंचायु
३) भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान मनुष्यायु ४) भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान देवायु

इनमें भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान मनुष्यायु इस पुनरुक्त भंग को छोड़कर शेष ३ भंग ग्रहण किये हैं।

५) तीर्थंकर प्रकृति रहित पंक्ति के पाँचवे कोष्टक के स्थान के कुल ७ भंग होते हैं-

१) भुज्यमान नरकायु, बध्यमान मनुष्यायु, (१) २) भुज्यमान तिर्यंचायु, बध्यमान देवायु (२)
३) भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान नरकायु ४) भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान तिर्यंचायु (३)
५) भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान मनुष्यायु ६) भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान देवायु (४)
७) भुज्यमान देवायु, बध्यमान मनुष्यायु इनमें से ४ भंग अपुनरुक्त हैं वे यहाँ लिये हैं।

तीर्थंकर प्रकृतिरहित पंक्ति के अबद्धायुस्थानों में भुज्यमान चारों आयुओं की अपेक्षा ४ भंग होते है क्योंकि यह सत्त्व चारों गतियों में पाया जाता है।

देसतिएसुवि एवं भंगा एक्केक्क देसगस्स पुणो ।
पडिरासि बिदियतुरियस्सादीबिदियम्मि दो भंगा ।।३८२।।

अन्वयार्थ -(देसतिएसुवि) देशसंयतादि तीन गुणस्थानों में **(एवं)** असंयत गुणस्थान के समान ४०-४० सत्त्वस्थान जानना। सर्वस्थानों में **(एक्केक्क)** एक-एक **(भंगा)** भंग है **(पुणो) किंतु (देसगस्स)** देशसंयत के **(पडिरासि बिदियतुरियस्स)** द्वितीय और चतुर्थपंक्ति के **(आदीबिदियम्मि)** प्रथम व द्वितीय स्थान में **(दो भंगा)** दो दो भंग जानना।

विशेषार्थ - पाँचवा गुणस्थान मनुष्य और तिर्यंचगति में ही होता है। उसमें भी तीर्थंकर प्रकृति सत्त्व सहित पाँचवाँ गुणस्थान मनुष्यगति में ही होता है। अत: तीर्थंकर प्रकृति सहित बद्धायु स्थानों में भुज्यमान मनुष्यायु और बध्यमान देवायु यह एक ही भंग होता है। अबद्धायु स्थान में भुज्यमान मनुष्यायु यह एक ही भंग संभव है।

तीर्थंकर रहित बद्धायु स्थान में १) भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान देवायु २) भुज्यमान तिर्यंचायु, बध्यमान देवायु ये दो भंग संभव हैं। अबद्धायु स्थान में १) भुज्यमान मनुष्यायु, २) भुज्यमान तिर्यंचायु ये दो भंग संभव हैं।

सब पंक्तियों के ३ रे, ४ थे, ५ वें कोष्टक के सत्त्वस्थान क्षायिक सम्यक्त्व की अपेक्षा हैं। तिर्यंच में क्षायिक सम्यक्त्व भोगभूमि में ही पाया जाता है और भोगभूमि में पाँचवा गुणस्थान नहीं होता अत: एक मनुष्यायु का ही भंग होता है।

छठे और सातवें गुणस्थान के सत्त्वस्थान पाँचवे गुणस्थान के समान जानना किन्तु भंग सर्वत्र एक एक ही होगा अर्थात् स्थान ४० भंग ४०। बद्धायु में भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान देवायु यह एक भंग होगा। अबद्धायु में एक भुज्यमान मनुष्यायु ही भंग होगा।

देशसंयत पाँचवे गुणस्थान में सत्त्वस्थान ४० और भंग ४८

			अनन्तानुबन्धी सहित	अनन्तानुबन्धी रहित	मिथ्या. रहित	मिश्र रहित	सम्य. प्र. रहित	कुल स्थान	कुल भंग
तीर्थंकर और आहारक युत	बद्धायु	सत्त्वस्थान	१४६	१४२	१४१	१४०	१३९	५	
		भंग	१	१	१	१	१		५
	अबद्धायु	सत्त्वस्थान	१४५	१४१	१४०	१३९	१३८	५	
		भंग	१	१	१	१	१		५
तीर्थंकर रहित	बद्धायु	सत्त्वस्थान	१४५	१४१	१४०	१३९	१३८	५	
		भंग	२	२	१	१	१		७
	अबद्धायु	सत्त्वस्थान	१४४	१४०	१३९	१३८	१३७	५	
		भंग	२	२	१	१	१		७
आहारक रहित	बद्धायु	सत्त्वस्थान	१४२	१३८	१३७	१३६	१३५	५	
		भंग	१	१	१	१	१		५
	अबद्धायु	सत्त्वस्थान	१४१	१३७	१३६	१३५	१३४	५	
		भंग	१	१	१	१	१		५
तीर्थंकर आहारक रहित	बद्धायु	सत्त्वस्थान	१४१	१३७	१३६	१३५	१३४	५	
		भंग	२	२	१	१	१		७
	अबद्धायु	सत्त्वस्थान	१४०	१३६	१३५	१३४	१३३	५	
		भंग	२	२	१	१	१		७

दुगच्छक्कतिण्णिवग्गेणूणाऽपुव्वस्स चउपडिं किच्चा।
णभमिगि चउपणहीणं बद्धस्सियरस्स एगूणं ।।३८३।।

अन्वयार्थ -(अपुव्वस्स) उपशमक अपूर्वकरण में **(दुगच्छक्कतिण्णिवग्गेणूणा)**

दो, छह, तीन का वर्ग अर्थात् नौ प्रकृति से हीन-तीन स्थानों की **(चउपडि किच्चा)** चार पंक्ति करके क्रम से **(णभमिगि चउपणहीणं)** शून्य, एक, चार और पाँच प्रकृति कम करने पर **(बद्धस्स)** बद्धायु के स्थान होते हैं। अबद्धायु के स्थानों में **(एगूणं)** एक प्रकृति कम करने पर **(इयरस्स)** इतर अर्थात् अबद्धायु के स्थान होते हैं।

आगे उन कम की गयी प्रकृतियों के नाम कहते हैं -

णिरयतिरियाऊ दोण्णिवि पढमकसायाणि दंसणतियाणि ।
हीणा एदे णेया भंगा एक्केक्कगा होंति ।।३८४।।

अन्वयार्थ - (णिरयतिरियाऊ) नरकायु, तिर्यंचायु ये दो **(दोण्णिवि पढमकसायाणि)** पूर्वोक्त दो आयु और प्रथम अनन्तानुबन्धी कषाय ये छह **(दंसणतियाणि)** पूर्वोक्त छह और तीन दर्शनमोहनीय ये नौ प्रकृति **(एदे हीणा णेया)** ये हीन प्रकृति जाननी चाहिये तथा इनके **(भंगा)** भंग **(एक्केक्कगा)** एक-एक ही **(होंति)** होते हैं।

उपशमश्रेणी के आठवें गुणस्थान में २४ सत्त्वस्थान और २४ भंगों का कोष्टक

विवक्षा		स्थान, भंग	द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि की अपेक्षा अनंतानुबंधी सहित	अनंतानुबंधी रहित	क्षा. सम्यक्त्व ३दर्शनमोहनीय रहित	कुल स्थान	कुल भंग
तीर्थंकर और आहारक सहित	बद्धायु	सत्त्वस्था.	१४६	१४२	१३९	३	
		भंग	१	१	१		३
	अबद्धायु	सत्त्वस्था.	१४५	१४१	१३८	३	
		भंग	१	१	१		३
तीर्थंकर रहित	बद्धायु	सत्वस्था.	१४५	१४१	१३८	३	
		भंग	१	१	१		३
	अबद्धायु	सत्त्वस्था.	१४४	१४०	१३७	३	
		भंग	१	१	१		३

विवक्षा		स्थान, भंग	द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि की अपेक्षा अनंतानुबन्धी सहित	द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि की अपेक्षा अनंतानुबन्धी रहित	क्षा. सम्यक्त्व ३दर्शनमोहनीय रहित	कुल स्थान	कुल भंग
आहारक रहित	बद्धायु	सत्त्वस्था.	१४२	१३८	१३५	३	
		भंग	१	१	१		३
	अबद्धायु	सत्त्वस्था.	१४१	१३७	१३४	३	
		भंग	१	१	१		३
तीर्थंकर और आहारक रहित	बद्धायु	सत्वस्था.	१४१	१३७	१३४	३	
		भंग	२	२	१		३
	अबद्धायु	सत्त्वस्था.	१४०	१३६	१३३	३	
		भंग	२	२	१		३
						२४	२४

विशेषार्थ - बद्धायु स्थानों में नरकायु व तिर्यंचायु इन दो आयु का सत्त्व नहीं होता। अबद्धायु स्थानों में नरकायु, तिर्यंचायु और देवायु इन तीन आयु का सत्त्व नहीं होता अत: बद्धायुस्थानों में भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान देवायु यह एक भंग होगा और अबद्धायुस्थानों में भुज्यमान मनुष्यायु यह एक भंग होगा।

उपशमश्रेणी, द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी चढ़ सकता है अत: इतने प्रकार से सत्त्व संभव है। अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना करके अथवा बिना विसंयोजन किये भी चढ़ सकता है अत: अनन्तानुबन्धी सहित, अनन्तानुबन्धीरहित द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि (४ अनन्तानुबन्धी और ३ दर्शनमोहनीय रहित) ऐसे ३ प्रकार से सत्त्व पाया जाता है।

तीर्थआहारकसहित, तीर्थंकररहित, आहारकरहित, दोनों से रहित इसप्रकार ४ प्रकार बद्धायु अबद्धायु इसप्रकार २ भेद ३×४×२= २४ स्थान। सबका १ भंग इसप्रकार २४ भंग। ९,१०,११ गुणस्थानों के उपशमश्रेणी में ८ वें गुणस्थान के समान ही २४ सत्त्वस्थान और २४ भंग होते हैं।

एवं तिसु उवसमगे खवगापुव्वम्मि दसहि परिहीणं ।
सव्वं चउपडि किच्चा णभमेक्कं चारि पण हीणं ।।३८५।।

अन्वयार्थ - (एवं तिसु उवसमगे) अपूर्वकरण के समान उपशमक अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय और उपशान्त कषाय इन गुणस्थानों में सत्त्वस्थान और भंग जानना। **(खवगापुव्वम्मि)** क्षपक अपूर्वकरण गुणस्थान में **(दसहि परिहीणं)** दस प्रकृतिरहित **(सव्वं)** सर्व प्रकृतिरूप एक स्थान की **(चउपडि किच्चा)** चार पंक्तियाँ करके क्रम से **(णभमेक्कं चारि पण हीणं)** शून्य, एक, चार और पाँच कम करना चाहिए। इसप्रकार स्थान ४ और उसके भंग भी चार होते हैं।

अपूर्वकरण क्षपकश्रेणी के ४ सत्त्वस्थान और ४ भंगों का कोष्टक

स्थानसं.	प्रकृतिसं.	भंग	हीनप्रकृतियों का विवरण
१ तीर्थंकर आहारक सहित	१३८	१	१४८-१० (३ आयु, ४ अनंतानुबंधी, ३ दर्शनमोहनीय)
२ तीर्थंकर रहित	१३७	१	११(३ आयु,४ अनंतानुबंधी,३ दर्शनमोहनीय,तीर्थंकर)
३ आहारक रहित	१३४	१	१४ (३ आयु, ४ अनंतानुबंधी, ३ दर्शनमोहनीय, आहारकचतुष्क)
४ तीर्थंकर आहारक रहित	१३३	१ / ४	१५ (३ आयु, ४ अनंतानुबंधी, ३ दर्शनमोहनीय, आहारकचतुष्क, तीर्थंकर,)

विशेषार्थ - क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही क्षपकश्रेणी चढ़ता है उसके १० प्रकृतियों का सत्त्व नहीं होता।

अनिवृत्तिकरण क्षपकश्रेणी में सत्त्वस्थान और भंग

एदे सत्तट्ठाणा अणियट्टिस्सवि पुणो वि खविदेवि ।
सोलस अट्ठेक्केक्कं छक्केक्कं एक्कमेक्क तहा ।।३८६।।

अन्वयार्थ - क्षपक अपूर्वकरण के समान **(अणियट्टिस्सवि)** क्षपक अनिवृत्तिकरण के भी **(एदे सत्तट्ठाणा)** ये ४ सत्त्वस्थान होते हैं **(पुणो वि)** पुन: **(सोलस अट्ठेक्केक्कं छक्केक्कं एक्कमेक्क)** सोलह, आठ, एक, एक, छह, एक, एक, एक प्रकृतियों का **(खविदे वि)** क्षय करने पर अन्य आठ स्थान होते हैं। इनके भी चार पंक्तियाँ करके शून्यादि घटाने पर ३२ स्थान होते हैं। इस प्रकार पूर्वोक्त ४ और ३२ मिलाकर क्षपक अनिवृत्तिकरण के ३६ स्थान जानना।

विशेषार्थ - नववें गुणस्थान में क्रम से १६, (तिर्यगेकादश, नरकद्विक, स्त्यानगृद्धित्रिक), ८ (अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यानकषाय), १ (नपुं. वेद), १ (स्त्रीवेद), ६ (नोकषाय), १ (पुरुषवेद), १ (सं. क्रोध), १(सं. मान), १ (सं. माया) इन प्रकृतियों का नाश होता है अत: उतनी प्रकृतियों को कम करने से एक एक सत्त्वस्थान होता है।

क्षपक अनिवृत्तिकरण के ३६ सत्त्वस्थान और ३८ भंगों का कोष्टक

हीनप्रकृतियों की संख्या		**१०**	**१६ स्त्या. त्रिकादि**	**८ म.क.**	**१ नपुंवेद**	**१ स्त्रीवेद**	**६ नोक.**	**१ पुंवेद**	**१ क्रोध**	**१ मान**	**स्था. भं**
तीर्थंकर और आहारकसहि.	सत्त्व भंग	१३८ १	१२२ १	११४ १	११३ १	११२ १	१०६ १	१०५ १	१०४ १	१०३ १	९ ९
तीर्थंकर रहित	सत्त्व भंग	१३७ १	१२१ १	११३ १	११२ २	१११ १	१०५ १	१०४ १	१०३ १	१०२ १	९ १०
आहारक रहित	सत्त्व भंग	१३४ १	११८ १	११० १	१०९ १	१०८ १	१०२ १	१०१ १	१०० १	९९ १	९ ९
तीर्थंकरऔर आहारक रहित	सत्त्व भंग	१३३ १	११७ १	१०९ १	१०८ २	१०७ १	१०१ १	१०० १	९९ १	९८ १	९ १० ३६ ३८

भंगा एक्केक्का पुण णउंस्सयक्खविदचउसु ठाणेसु ।
बिदियतुरियेसु दोद्दो भंगा तित्थयरहीणेसु ।।३८७।।

अन्वयार्थ - (पुण) पुन: **(भंगा)** इन पूर्वोक्त ३६ स्थानों में भंग **(एक्केक्का)** एक-एक होते हैं। किन्तु **(णउंस्सयक्खविदचउसु ठाणेसु)** नपुंसक क्षय के चार स्थानों में **(तित्थयरहीणेसु)** तीर्थंकर प्रकृति की सत्तारहित **(बिदियतुरियेसु)** दूसरी और चौथी पंक्ति के दो स्थानों में **(दोद्दो भंगा)** दो-दो भंग होते हैं।

विशेषार्थ - सर्वत्र भुज्यमान मनुष्यायु यह एक भंग होता है किन्तु तीर्थंकर रहित दूसरी और चौथी पंक्ति सम्बन्धी ११२ और १०८ सत्त्वस्थान में दो-दो भंग होते हैं।

उपर्युक्त दो भंगों का स्पष्टीकरण करते हैं -

थीपुरिसोदयचडिदे पुव्वं संढं खवेदि थी अत्थि ।
संढस्सुदये पुव्वं थीखविदं संढमत्थित्ति ।।३८८।।

अन्वयार्थ - (थीपुरिसोदयचडिदे) जो जीव स्त्रीवेद या पुरुषवेद के उदय से क्षपक श्रेणी चढ़ते हैं वे **(पुव्वं)** पहले **(संढं खवेदि)** नपुंसकवेद का क्षय करते हैं उनके पूर्वोक्त दोनों स्थानों में **(थी अत्थि)** स्त्रीवेद का सत्त्व रहता है। **(संढस्सुदये)** जो नपुंसकवेद के उदयसहित श्रेणी चढ़ते हैं वे **(पुव्वं थीखविदं)** पहले स्त्रीवेद का क्षय करते हैं उनके **(संढमत्थित्ति)** नपुंसकवेद का सत्त्व रहता है।

विशेषार्थ - जो जीव स्त्रीवेद या पुरुषवेद के उदय से क्षपकश्रेणी चढ़ते हैं वे पहले नपुंसक वेद का क्षपण करते हैं। उनके पूर्वोक्त दोनों स्थानों में स्त्रीवेद का सत्त्व रहता है। किन्तु जो नपुंसक वेद के उदय के साथ क्षपकश्रेणी चढ़ते हैं वे पहले स्त्रीवेद का क्षपण करते हैं उनके नपुंसकवेद का सत्त्व रहता है। अत: स्त्रीवेदसहित और नपुंसकवेदसहित ऐसे दो भंग होते हैं। इसप्रकार क्षपक के ३६ स्थान और ३८ भंग तथा उपशमक के २४ स्थान और २४ भंग मिलाकर अनिवृत्तिकरण में ६० स्थान और ६२ भंग होते हैं। इस पक्ष में क्षपक अनिवृत्तिकरण में मायारहित चार स्थान नहीं होते।

अणियट्टिचरिमठाणा चत्तारिवि एक्कहीण सुहुमस्स ।
ते इगि दोण्णिविहीणं खीणस्सवि होंति ठाणाणि ।।३८९।।

अन्वयार्थ - (अणियट्टिचरिमठाणा) क्षपक अनिवृत्तिकरण के संज्वलनमानरहित अंतिम**(चत्तारि वि)** चार स्थान **(एक्कहीण)** एक कम करने पर **(सुहुमस्स)** सूक्ष्मसांपराय के चार स्थान होते हैं। **(ते)** वे चार स्थान पुनः **(इगिदोण्णिविहीणं)** एक और दो प्रकृति कम करने से **(खीणस्सवि)** क्षीणकषाय गुणस्थान के भी **(ठाणाणि)** आठ स्थान **(होंति)** होते हैं।

क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय में सत्त्वस्थान ४ और भंग ४

स्थानसं.	सत्त्वस्था.प्र.	भंग	हीनप्रकृतियों का विवरण
१ तीर्थंकर आहारक सहित	१०२	१	पूर्व अनिवृत्तिकरण का अन्तिमस्थान१०३-१ संज्वलन माया
२ तीर्थंकर रहित	१०१	१	पूर्व अनिवृत्तिकरण का अन्तिमस्थान१०२-१ संज्वलन माया
३ आहारक रहित	९८	१	पूर्व अनिवृत्तिकरण का अन्तिमस्थान९९-१ संज्वलन माया
४ तीर्थंकर आहारक रहित	९७	१ — ४	पूर्व अनिवृत्तिकरण का अन्तिमस्थान९८-१ संज्वलन माया

क्षीणमोह गुणस्थान में सत्त्वस्थान ८ और भंग ८

द्विचरमसमयपर्यंत स्थान ४			
अपेक्षा	**सत्त्व**	**भंग**	**विवरण**
तीर्थंकर आहारक सहित	१०१	१	सूक्ष्मसांपराय के १०२-१ सू. लोभ
तीर्थंकर रहित	१००	१	सूक्ष्मसांपराय के १०१-१ सू. लोभ
आहारक रहित	९७	१	सूक्ष्मसांपराय के ९८-१ सू. लोभ
तीर्थंकरआहारक रहित	९६	१ — ४	सूक्ष्मसांपराय के ९७-१ सू. लोभ

चरमसमय में स्थान ४			
अपेक्षा	**सत्त्व**	**भंग**	**विवरण**
तीर्थंकर आहारक सहित	९९	१	द्विचरम का १०१-२ निद्रा, प्रचला
तीर्थंकर रहित	९८	१	द्विचरम का १००-२ निद्रा, प्रचला
आहारक रहित	९५	१	द्विचरम का ९७-२ निद्रा, प्रचला
तीर्थंकरआहारक रहित	९४	१	द्विचरम का ९६-२ निद्रा, प्रचला
		४	

विशेषार्थ - बारहवें गुणस्थान के द्विचरमसमय में निद्रा, प्रचला का नाश होता है अत: द्विचरमसमयपर्यंत ४ सत्त्वस्थान होते हैं और निद्रा, प्रचला को कम करके चरम समय में चार सत्त्वस्थान होते हैं। सर्वत्र भुज्यमान मनुष्यायु यह एक ही भंग होता है।

ते चोद्दसपरिहीणा जोगिस्स अजोगिचरिमगो वि पुणो ।
बावत्तरिमडसट्ठिं दसु दसु हीणेसु दुग दुगा भंगा ।।३९०।।

अन्वयार्थ - (ते) क्षीण कषाय गुणस्थान के अन्तिमसमयसम्बन्धी चार स्थानों में **(चोद्दसपरिहीणा)** चौदह प्रकृतियाँ कम करने पर **(जोगिस्स)** सयोगकेवली गुणस्थान में चार स्थान होते हैं **(पुणो)** पुन: सयोगकेवली के चार स्थानों में से **(दसु)** प्रथम, द्वितीय दो स्थानों में **(बावत्तरि)** बहत्तर प्रकृतियाँ तथा **(दसु)** तीसरे, चौथे दो स्थानों में **(अडसट्ठि)** अड़सठ प्रकृतियाँ **(हीणेसु)** कम करने पर **(अजोगिचरिमगो वि)** अयोगी के अन्तिम समय में भी चार स्थान होते हैं। यहाँ पुनरुक्तता होने से दो ही स्थान जानना। उनमें **(भंगा)** भंग **(दुग दुगा)** दो-दो हैं।

सयोगकेवली गुणस्थान में सत्त्वस्थान ४ और भंग ४

अपेक्षा	सत्त्व	भंग	विवरण
तीर्थंकर आहारक सहित	८५	१	पूर्वोक्त १२ वें गुणस्थान के अन्तिम समय का सत्त्व ९९-१४ (ज्ञानावरण ५, अंतराय ५ दर्शनावरण ४)
तीर्थंकर रहित	८४	१	पूर्वोक्त १२ वें गुणस्थान के अन्तिम समय का सत्त्व ९८-१४ (ज्ञानावरण ५, अंतराय ५ दर्शनावरण ४)
आहारक रहित	८१	१	पूर्वोक्त १२ वें गुणस्थान के अन्तिम समय का सत्त्व ९५-१४ (ज्ञानावरण ५, अंतराय ५ दर्शनावरण ४)
तीर्थंकर आहारक रहित	८०	१	पूर्वोक्त १२ वें गुणस्थान के अन्तिम समय का सत्त्व ९४-१४ (ज्ञानावरण ५, अंतराय ५ दर्शनावरण ४)

अयोगकेवली गुणस्थान में सत्त्वस्थान ६ और भंग ८

द्विचरमसमयपर्यंत सत्त्वस्थान				चरमसमय में सत्त्वस्थान		
अपेक्षा	सत्त्व	भंग	विवरण	सत्त्व	भंग	विवरण
तीर्थंकर आहारक सहित	८५	१	१३ वें गुणस्थानवत्	१३	२	पूर्वोक्त ८५-७२ आहारकसहित
तीर्थंकर रहित	८४	१	१३ वें गुणस्थानवत्	१२	२	पूर्वोक्त ८४-७२ आहारकसहित
आहारक रहित	८१	१	१३ वें गुणस्थानवत्	१३	पुन.	पूर्वोक्त ८१-६८ आहारक४रहितहानेसे
तीर्थंकर आहारक रहित	८०	१	१३ वें गुणस्थानवत्	१२	पुन.	पूर्वोक्त ८०-६८ आहारकरहित

विशेषार्थ - द्विचरमसमय में ८५ या ८४ में से ७२ प्रकृतियों का नाश होता है। ७२ प्रकृतियों का खुलासा सत्त्वव्युच्छित्ति के सामान्य कोष्टक में से जान लेना।

८१ और ८० सत्त्वस्थानों में से ६८ प्रकृतियों का नाश होगा क्योंकि उसमें आहारक चतुष्क का सत्त्व नहीं है। इसमें १३।१२ दो स्थान पुनरुक्त हैं अत: दो स्थान ही १३।१२ ग्रहण किये हैं। इन दो स्थानों के दो-दो भंग होते हैं।

१) १३ का सत्त्व और साताका उदय २) असाता का उदय
१) १२ का सत्त्व और साताका उदय २) असाता का उदय

इसप्रकार १४ वें गुणस्थान में सत्त्वस्थान ६ और भंग ८ होते हैं।

णत्थि अणं उवसमगे खवगापुव्वं खवित्तु अट्ठा य ।
पच्छा सोलादीणं खवणं इदि केइ णिद्दिट्ठं ।।३९१।।

अन्वयार्थ - (उवसमगे) उपशम श्रेणी के चार गुणस्थानों में **(अणं)** अनंतानुबंधी का **(णत्थि)** सत्त्व नहीं है तथा **(खवगापुव्वं)** क्षपक अनिवृत्तिकरण पहले **(अट्ठा)** आठ प्रकृतियों का **(खवित्तु)** क्षय करके **(पच्छा)** पश्चात् **(सोलादीणं)** सोलह आदि प्रकृतियों का **(खवणं)** क्षय करता है **(इदि)** इस प्रकार **(केइ)** कोई आचार्य **(णिद्दिट्ठ)** कहते हैं।

विशेषार्थ - १) कनकनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्ती के मतानुसार - अनंतानुबन्धी कषाय की सत्तासहित जीव उपशमश्रेणी नहीं चढ़ता इसलिए उपशमश्रेणि के चार गुणस्थानों में २४ सत्त्वस्थान न होकर १६ ही सत्त्वस्थान होते हैं। बद्धायु के ४ अनन्तानुबंधी सहित १४६, १४५, १४२,१४१ स्थान और अबद्धायु के १४५, १४४, १४१, १४० ये स्थान कम होंगे।

२) क्षपक अनिवृत्तिकरण प्रथम अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान आठ कषायों का क्षपण करता है, पश्चात् सोलह आदि प्रकृतियों का क्षपण करता है ऐसा किन्हीं आचार्यों का मत है।

अणियट्टिगुणट्ठाणे मायारहिदं च ठाणमिच्छंति ।
ठाणा भंगपमाणा केइ एवं परूवेंति ।।३९२।।

अन्वयार्थ - (केइ) कोई आचार्य **(अणियट्टिगुणट्ठाणे)** अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में **(मायारहिदं)** मायारहित **(ठाणमिच्छंति)** स्थान मानते हैं तथा कोई आचार्य **(ठाणा भंगपमाणा)** स्थानों को भंग के प्रमाण हैं **(एवं परूवेंति)** ऐसा कहते हैं।

विशेषार्थ - अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में कोई आचार्य मायाकषाय से रहित चार स्थान मानते हैं। अतः उनकी अपेक्षा क्षपक अनिवृत्तिकरण नववें गुणस्थान में स्थान ४० और भंग ४२ होते हैं।

इस प्रकार की मान्यता होनेपर स्थान और भंगों की संख्या कहते हैं -

अट्ठारह चउ अट्ठं मिच्छतिए उवरि चाल चउठाणे ।
तिसु उवसमगे संते सोलस सोलस हवे ठाणा ।।३९३।।

अन्वयार्थ - (मिच्छतिए) मिथ्यात्वादि तीन गुणस्थानों में क्रम से **(अट्ठारह चउ अट्ठं)** अठारह, चार और आठ स्थान हैं **(उवरि चउठाणे)** ऊपर चतुर्थादि चार गुणस्थानों में **(चाल)** चालीस-चालीस स्थान हैं। **(तिसु उवसमगे)** तीन उपशमकों में और **(संते)** उपशांतकषाय में **(सोलस-सोलस)** सोलह-सोलह **(ठाणा)** स्थान **(हवे)** हैं।

अब इन स्थानों के भंगों की संख्या कहते हैं -

पण्णेक्कारं छक्कदि वीससयं अट्ठदाल दुसु तालं ।
वीसडवण्णं वीसं सोलट्ठ य चारि अट्ठेव ।।३९४।।

अन्वयार्थ - मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में क्रम से **(पण्णेक्कारं)** पचास, ग्यारह **(छक्कदि)** छह का वर्ग अर्थात् छत्तीस **(वीससयं)** एकसौ बीस, **(अट्ठदाल)** अड़तालीस **(दुसु)** दो गुणस्थानों में **(तालं)** चालीस-चालीस तथा उपशम-क्षपक दोनों श्रेणियों के मिलकर **(बीसडवण्णं)** बीस, अठावन, **(वीसं)** बीस **(सोलट्ठ)** सोलह, आठ, **(चारि अट्ठेव)** चार, आठ भंग जानना।

दूसरे मतानुसार गुणस्थानों में सत्त्वस्थान और भंग

	मिथ्यात्व	**सासादन**	**मिश्र**	**असंयत**	**देशसंयत**	**प्रमत्तसंयत**	**अप्रमत्तसंयत**
स्थान	१८	४	८	४०	४०	४०	४०
भंग	५०	११	३६	१२०	४८	४०	४०

	अपूर्वकरण	**अनिवृत्तिकर.**	**सू.सांप.**	**उपशांत**	**क्षीणमोह**	**स.के.**	**अ.के.**
स्थान	उ.१६ क्ष ४	उ.१६ क्ष ४०	१६/४	१६	८	४	४/२
भंग	२०	५८	२०	१६	८	४	८

एवं सत्तट्ठाणं सवित्थरं वण्णियं मए सम्मं ।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ णिव्वुदिं सोक्खं ।।३९५।।

अन्वयार्थ - **(एवं)** इस प्रकार **(मए)** मैंने **(सत्तट्ठाणं)** सत्त्वस्थान का **(सवित्थरं)** विस्तार सहित **(सम्मं)** सम्यक् **(वण्णियं)** वर्णन किया। **(जो)** जो **(पढइ)** इसे पढ़ता है **(सुणइ)** सुनता है **(भावइ)** भाता है **(सो)** वह **(णिव्वुदिं सोक्खं)** निर्वाण सुख को **(पावइ)** प्राप्त करता है।

वरइंदणंदिगुरुणो पासे सोऊण सयलसिद्धंतं ।
सिरिकणयणंदिगुरुणा सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं ।।३९६।।

अन्वयार्थ - **(वरइंदणंदिगुरुणो)** आचार्यश्रेष्ठ श्री इन्द्रनन्दि गुरु के **(पासे)** पास **(सयलसिद्धंतं)** संपूर्ण सिद्धान्त को **(सोऊण)** सुनकर **(सिरिकणयणंदिगुरुणा)** श्री कनकनंदि सिद्धान्तचक्रवर्ती के द्वारा **(सत्तट्ठाणं)** सत्त्वस्थान **(समुद्दिट्ठं)** सम्यक् प्रकार से कहा गया।

जह चक्केण य चक्की छक्खंडं साहियं अविग्घेण ।
तह मइचक्केण मया छक्खंडं साहियं सम्मं ।।३९७।।

अन्वयार्थ - **(जह)** जिस प्रकार **(चक्की)** चक्रवर्ती ने **(छक्खंडं)** छह खण्डों को **(चक्केण)** चक्ररत्न द्वारा **(अविग्घेण)** निर्विघ्न रूप से **(साहियं)** अपने वश किया **(तह)** उसी प्रकार **(मया)** मैनें भी **(मइचक्केण)** बुद्धिरूपी चक्र के द्वारा **(छक्खंडं)** षट्खण्डरूप सिद्धान्तशास्त्र को **(सम्मं)** सम्यक्रूप से **(साहियं)** साधा है।

विशेषार्थ - जैसे चक्रवर्ती ने चक्र के द्वारा छह खण्डों को निर्विघ्न रूप से साधा अर्थात् विजय प्राप्त किया उसीप्रकार नेमिचन्द्र आचार्य ने बुद्धिरूपी चक्र के द्वारा जीवस्थान, क्षुद्रकबंध, बन्धस्वामित्व, वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड और महाबन्ध के भेद से षट्खण्डरूप सिद्धान्तशास्त्रको सम्यक्रूप से साधा है। अर्थात् षट्खण्डागम सिद्धान्तग्रंथ को पढ़कर उसमें पारंगत हुए हैं ।

इसप्रकार सत्त्वस्थानभंग नामक तिसरा अधिकार समाप्त हुआ।

गुणस्थानों में बंध-उदय-सत्त्वव्युच्छित्ति

गुणस्थान	बंधव्युच्छित्ति		उदयव्युच्छित्ति		सत्त्वव्युच्छित्ति	
मिथ्यात्व	१६	मिथ्यात्व, हुंडसंस्थान, नपुंवेद, असंप्राप्ता. संहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, द्वि.त्री.चतु.नरकद्विक, नरकायु	१०	मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, स्थावर, एकेंद्रियादि ४ जाति	०	
सासादन	२५	स्त्यानत्रिक,अनन्तानुबन्धी ४,स्त्रीवेद,अप्र.विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, तिर्यंचद्विक, तिर्यंचायु, उद्योत, बीचके ४ संस्थान, ४ संहनन, नीचगोत्र,	४	अनन्तानुबन्धी कषाय ४	०	
मिश्र	०		१	सम्यग्मिथ्यात्व	०	
असंयत	१०	अप्रत्याख्यान ४, वज्रर्षभनाराचसंहनन औदारिकद्विक, मनुष्यद्विक,मनुष्यायु	१७	अप्रत्याख्यान४,वैक्रि-यिकषट्क,नरकायु, देवायु,मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी,दुर्भग, अनादेय,अयश	१	नरकायु
देशसंयत	४	प्रत्याख्यानावरण कषाय ४	८	प्रत्याख्यानावरण कषाय, तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, नीचगोत्र, उद्योत	१	तिर्यंचायु
प्रमत्तसंयत	६	शोक, अरति, असाता, अस्थिर,अशुभ,अयश:कीर्ति	५	स्त्यानगृद्धित्रिक, आहारकद्विक		

गुणस्थान	बंधव्युच्छित्ति		उदयव्युच्छित्ति		सत्त्वव्युच्छित्ति	
अप्रमत्त-संयत	१	देवायु	४	सम्यक्त्व, अन्तिम तीन संहनन	८	अनन्तानुबन्धी ४ दर्शनमोहनीय ३, देवायु
अपूर्वकरण प्र.भा.	२	निद्रा, प्रचला	०			
छठा.भा.	३०	पंचेन्द्रिय, वैक्रियिकद्विक, देवद्विक, आहारकद्विक, तैजसद्विक,समचतुरस्र, वर्णादि ४, अगुरुलघु-चतुष्क,प्रशस्त विहायो-गति, त्रसनवक, निर्माण, तीर्थंकर	०		०	
सातवाँ भा.	४	हास्य, रति,भय, जुगुप्सा	६	हास्य, रति, अरति,		
	३६		६	शोक, भय, जुगुप्सा	०	
अनिवृत्तिक. प्र.भा.					१६	नरक२ स्त्यान.३ तिर्यगेकादश,
द्वि.भा.					८	मध्यम ८ कषा.
तृ.भा.			१	नपुंसकवेद	१	नपुंसकवेद
च.भा.			१	स्त्रीवेद	१	स्त्रीवेद
पं.भा.	१	पुंवेद	१	पुंवेद	६	हा.र.अ.शोक भय, जुगुप्सा
					१	पुंवेद
षष्ठ.भा.	१	संज्वलन क्रोध	१	संज्वलन क्रोध	१	संज्वलन क्रोध
सप्तम भा.	१	संज्वलन मान	१	संज्वलन मान	१	संज्वलन मान
अष्टम भा.	१	संज्वलन माया	१	संज्वलन माया	१	संज्वलन माया
नवम भा.	१	संज्वलन लोभ				
	५		६		३६	

गुणस्थान	बंधव्युच्छित्ति		उदयव्युच्छित्ति		सत्त्वव्युच्छित्ति	
सूक्ष्म-सांपराय	१६	ज्ञानावरण५,दर्शना ४, अंतराय ५,यश,उच्चगोत्र	१	संज्वलन लोभ	१	संज्वलन लोभ
उपशांत-मोह			२	वज्रनाराच, नाराच संहनन		
क्षीणमोह			१६	निद्रा, प्रचला ज्ञानावरण५,दर्शनावरण ४, अंतराय ५,	१६	निद्रा, प्रचला ज्ञाना५,दर्शनावर. ४,अंतराय ५
सयोग केवलि	१	सातावेदनीय	२९	औदा.द्विक, तैजसद्विक,वज्रर्षभनाराच, ६ संस्थान,वर्णादि४. अगुरुलघुचतुष्क ४, विहायोगति२, स्थिर २, शुभ २,स्वर २, प्रत्येकशरीर,निर्माण		
अयोग के. द्वि.चरम समय	०		०		७२	देवद्विक,शरीर से वर्णादि पर्यन्त५०, अगुरुलघुचतुष्क, विहायोगति२,स्थिर २,शुभ २,स्वर २, प्रत्येक, अपर्याप्त दुर्भग, अनादेय, अयश,निर्माण,वेदनीय१,नीचगोत्र
चरम समय	०		१३	वेदनीय२,मनुष्यगति, पंचे, त्रस, बादर,पर्याप्त, सुभग, आदेय. यश, तीर्थंकर,मनुष्यायु,उच्चगोत्र	१३	वेदनीय१,मनुष्यगति,पंचे, त्रस, बादर,पर्याप्त, सुभग, आदेय, यश, तीर्थंकर, मनुष्यायु, उच्चगोत्र, मनुष्यगत्यानुपूर्वी,

कर्मप्रकृतियों के बन्ध-उदय-सत्त्वव्युच्छित्ति के गुणस्थानों का कोष्टक

कर्मप्रकृति का नाम	बंधव्युच्छि. गुणस्थान	उदयव्यु. गुणस्थान	सत्त्वव्यु. गुणस्थान
तीन घाति			
ज्ञानावरण५, दर्शनावरण ४,अंतराय ५,	१०	१२	१२चरमसमय
स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला	२	६	९
निद्रा, प्रचला	८ प्र.भाग	१२द्विच.	१२द्वि.च.स.
मोहनीय			
मिथ्यात्व	१	१	७
मिश्र	-	३	७
सम्यक्त्वप्रकृति	-	४ से ७	७
अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ	२	२	७
अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ	४	४	९द्वि.भाग
प्रत्याख्यानावरणक्रोध, मान, माया, लोभ	५	५	९द्वि.भाग
संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ	९	९	९
संज्वलन लोभ	९	१०	१०
हास्य, रति, भय, जुगुप्सा	८वेंका७वाभा.	८	९ पंचमभाग
शोक, अरति	६	८	९ पंचमभाग
नपुंसकवेद	१	९	९ तृतीयभाग
स्त्रीवेद	२	९	९ चतुर्थभाग
पुंवेद	९ प्र.भाग	९	९ पंचमभाग
आयुकर्म			
नरकायु	१	४	४
तिर्यंचायु	२	५	५
मनुष्यायु	४	१४	१४ चरमस.
देवायु	७	४	७
नामकर्म			
नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी	१	४	९ प्रथमभाग
तिर्यंचगति,	२	५	९ प्रथमभाग
तिर्यंचगत्यानुपूर्वी	२	४	९ प्रथमभाग

कर्मप्रकृति का नाम	बंधव्युच्छि.	उदयव्यु.	सत्त्वव्यु.
देवगति, देवगत्यानुपूर्वी	८ छठा भाग	४	१४ द्वि.समय
मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी	४	१४	१४ चरमसमय
एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय,त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय	१	२	९
पंचेन्द्रिय	८ छठा भाग	१४	१४ चरमसमय
औदारिकशरीर, औ. अंगोपांग	४	१३	१४ द्विचरमस.
वैक्रियिकशरीर, वै.अंगोपांग	८ छठाभाग	४	१४ द्विचरमस.
आहारकशरीर, आ. अंगोपांग	८ छठाभाग	६	१४ द्विचरमस.
तैजस, कार्मण शरीर	८ छठाभाग	१३	१४ द्विचरमस.
समचतुरस्रसंस्थान	८ छठाभाग	१३	१४ द्विचरमस.
न्यग्रोधपरिमंडल, स्वाति, कुब्जक, वामनसं.	२	१३	१४ द्विचरमस.
हुंडकसंस्थान	१	१३	१४ द्विचरमस.
वज्रर्षभनाराच संहनन	४	१३	१४ द्विचरमस.
वज्रनाराच,नाराच, अर्धनाराच,कीलकसंहनन	२	११	१४ द्विचरमस.
असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन	१	७	१४ द्विचरमस.
वर्णचतुष्क	८ छठाभाग	१३	१४ द्विचरमस.
अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास	८ छठाभाग	१३	१४ द्विचरमस.
आतप	१	१	९ प्रथम भाग
उद्योत	२	५	९ प्रथम भाग
अप्रशस्तविहायोगति	२	१३	१४ द्विचरमस.
प्रशस्तविहायोगति	८ छठाभाग	१३	१४ द्विचरमस.
सूक्ष्म, साधारण	१	१	९ प्रथम भाग
स्थावर	१	२	९ प्रथम भाग
अपर्याप्त	१	१	१४ द्विचरमस.
त्रस,बादर, पर्याप्त	८ छठाभाग	१४	१४ द्विचरमस.
प्रत्येक	८ छठाभाग	१३	१४ द्विचरमस.
अस्थिर, अशुभ	६	१३	१४ द्विचरमस.

कर्मप्रकृति का नाम	बंधव्युच्छित्ति	उदयव्युच्छित्ति	सत्त्वव्युच्छित्ति
स्थिर, शुभ	८ छठाभाग	१३	१४ द्विचरमस.
दुर्भग, अनादेय	२	४	१४ द्विचरमस.
सुभग, आदेय	८ छठाभाग	१४	१४ चरमस.
दु:स्वर	२	१३	१४ द्विचरमस.
सुस्वर	८ छठाभाग	१३	१४ द्विचरमस.
अयश:कीर्ति	६	४	१४ द्विचरमस.
यशस्कीर्ति	१०	१४	१४ चरमस.
निर्माण	८ छठाभाग	१३	१४ द्विचरमस.
तीर्थंकर	४से८ छठाभाग	१३,१४	१४ चरमस.
नीचगोत्र	२	५	१४ द्विचरमस.
उच्चगोत्र	१०	१४	१४ चरमस.
असातावेदनीय	६	१४	१४
सातावेदनीय	१३	१४	१४

४. त्रिचूलिका अधिकार

उसहाइजिणवरिंदे असहायपरक्कमे महावीरे ।
पणमिय सिरसा वोच्छं तिचूलियं सुणुह एयमणो।।३९८।।

अन्वयार्थ - (असहायपरक्कमे) जिनका ज्ञानादिशक्तिरूप पराक्रम इन्द्रिय आदि की सहायता से रहित है उन **(महावीरे)** भगवान महावीर और **(उसहाइ जिणवरिंदे)** वृषभादि जिनेन्द्रदेवों को **(सिरसा)** सिरसे **(पणमिय)** प्रणाम करके मैं (नेमिचन्द्र आचार्य) **(तिचूलियं)** त्रिचूलिकाधिकार को **(वोच्छं)** कहूँगा, **(एयमणो)** तुम एकाग्रचित्त होकर **(सुणुह)** सुनो।

उन तीन चूलिकाओं में से प्रथम नवप्रश्नचूलिका को कहते हैं-

किं बंधो उदयादो पुव्वं पच्छा समं विणस्सदि सो ।
सपरोभयोदयो वा निरंतरो सांतरो उभयो ।।३९९।।

अन्वयार्थ - पूर्व में कही प्रकृतियों में से **(उदयादो पुव्वं)** उदयव्युच्छित्ति के पहले **(बंधो किं विणस्सदि)** बन्ध की व्युच्छित्ति किन प्रकृतियों की होती है? **(किं पच्छा)** उदयव्युच्छित्ति के पीछे बन्ध की व्युच्छित्ति किन प्रकृतियों की होती है तथा **(समं)** उदयव्युच्छित्ति के साथ बन्धव्युच्छित्ति किन प्रकृतियों की होती है। **(सपरोभयोदयो किं)** स्वोदयी बंधी, परोदयी बंधी, स्वपरोदयी बंधी प्रकृतियाँ कौन हैं **(वा)** और **(निरंतरो सांतरो उभयो किं)** निरन्तरबंधी, सान्तरबंधी, सान्तरनिरन्तरबन्धी प्रकृतियाँ कौन हैं? ऐसे नौ प्रश्न हुए।

विशेषार्थ - इस त्रिचूलिका अधिकार में क्रमसे तीन चूलिका हैं।

१) नवप्रश्नचूलिका २) पंचभागहार चूलिका ३) दसकरण चूलिका

चूलिका का अर्थ - उक्तानुक्तदुरुक्तचिंतनं चूलिका। जो अर्थ कहा गया है, या नहीं कहा गया, या ठीक रीति से नहीं कहा गया है। उस सबके चिन्तन करने को चूलिका कहते हैं।

प्रथम नवप्रश्नचूलिका -

प्र १) उदयव्युच्छित्ति के पहले बंधव्युच्छित्ति होनेवाली प्रकृतियाँ कौनसी हैं?
थ २) उदयव्युच्छित्ति के पश्चात् बंधव्युच्छित्ति होनेवाली प्रकृतियाँ कौनसी हैं?
म ३) उदयव्युच्छित्ति के साथ बंधव्युच्छित्ति होनेवाली प्रकृतियाँ कौनसी हैं?

द्वि ४) अपने उदय में बंधनेवाली (स्वोदयबन्धी) प्रकृतियाँ कौनसी हैं?
ती ५) अन्य प्रकृतियों के उदय में बंधनेवाली (परोदयबन्धी)प्रकृतियाँ कौनसी हैं?
य ६) अपने और परके उदय में बंधनेवाली (उभयबन्धी)प्रकृतियाँ कौनसी हैं?

तृ ७) जिनका निरन्तर बंध होता है (निरन्तरबन्धी) प्रकृतियाँ कौनसी हैं?
ती ८) जिनका बन्ध कभी होता है, कभी नहीं होता, ऐसी (सान्तरबन्धी)प्रकृतियाँ कौनसी हैं?
य ९) जिनका सान्तर-निरन्तर दोनों प्रकार का बन्ध होता है वे प्रकृतियाँ कौनसी हैं?

अब ९ प्रश्नों में से प्रथम तीन प्रश्नों के उत्तरस्वरूप प्रकृतियों के नाम कहते हैं-

देवचउक्काहारदुगज्जसदेवाउगाण सो पच्छा ।
मिच्छत्तादावाणं णराणुथावरचउक्काणं ।।४००।।
पण्णरकसायभयदुगहस्सदु चउजाइपुरिसवेदाणं।
सममेक्कतीसाणं सेसिगिसीदाण पुव्वं तु।।४०१

अन्वयार्थ - (देवचउक्काहारदुगज्जसदेवाउगाण) देवगतिचतुष्क, आहारकद्विक, अयशस्कीर्ति और देवायु इन आठ प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति उदयव्युच्छित्ति के **(पच्छा)** पश्चात् होती है। **(मिच्छत्तादावाणं)** मिथ्यात्व, आतप **(णराणुथावरचउक्काणं)** मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थावरादि चार **(पण्णरकसाय)** संज्वलनलोभ बिना १५ कषाय **(भयदुग)** भयजुगुप्सा **(हस्सदु)** हास्यरति **(चउजाइ)** एकेन्द्रियादि चार जाति **(पुरिसवेदाणं)** पुरुषवेद **(सममेक्कतीसाणं)** इन ३१ प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति युगपत् होती है **(सेसिगिसीदाण पुव्वं तु)** शेष ज्ञानावरणादि इक्यासी प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति उदयव्युच्छित्ति से पूर्व होती है।

उदयव्युच्छित्ति के पूर्व बंध-व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ

प्र.सं.	प्रकृतियों के नाम	बं.व्यु.गुणस्थान	उ.व्यु.गुणस्थान
१४	ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४,अंतराय ५,	१०	१२
३	स्त्यानगृद्धि त्रिक	२	६
२	निद्रा, प्रचला	८	१२
१	सातावेदनीय	१३	१४
१	असातावेदनीय	६	१४
१	संज्वलनलोभ	९	१०
१	स्त्रीवेद	२	९
१	नपुंसकवेद	१	९
२	अरति, शोक	६	८
३	नरकद्विक, नरकायु	१	४
४	तिर्यंचद्विक, तिर्यंचायु, उद्योत	२	५
२	मनुष्यगति, मनुष्यायु	४	१४
१	पंचेन्द्रियजाति	८	१४
२	औदारिक शरीर, अंगोपांग	४	१३
१०	तैजसकार्मण, वर्णचतुष्क, अगुरु४	८	१३
१	हुंडक संस्थान	१	१३
४	बीच के ४ संस्थान	२	१३
१	समचतुरस्र संस्थान	८	१३
१	असंप्राप्तसृपाटिका	१	१३
४	बीच के ४संहनन	२	१३
१	वज्रर्षभनाराचसंहनन	४	१३
२	अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वर	२	१३
२	प्रशस्त विहायो, सुस्वर	८	१३
४	त्रसत्रिक, तीर्थंकर	८	१४
४	प्रत्येक, स्थिर, शुभ, निर्माण	८	१३
२	अस्थिर, अशुभ	६	१३
३	सुभग, आदेय, यशस्कीर्ति	८	१४
२	दुर्भग, अनादेय,	२	४
१	नीचगोत्र	२	५
१	उच्चगोत्र	१०	१४
८१			

उदयव्युच्छित्ति के पश्चात् बंधव्युच्छिन्न प्रकृतियाँ

प्र.सं.	प्रकृतियों के नाम	बं.व्यु. गुणस्थान	उ.व्यु. गुणस्थान
४	देवचतुष्क	८	४
२	आहारकद्विक	८	६
१	अयशस्कीर्ति	६	४
१	देवायु	७	४
८			

उदयव्युच्छित्ति के साथ बंधव्युच्छिन्न प्रकृतियाँ

प्र.सं.	प्रकृतिनाम	बं.उ.व्यु.
२	मिथ्यात्व, आतप	१
४	स्थावरचतुष्क	१
४	एकेन्द्रियादिजाति	१
४	अनन्तानुबन्धी	२
४	अप्रत्याख्यानावरण	४

प्र.सं.	प्रकृतिनाम	बं.उ.व्यु.
४	प्रत्याख्यानावरण	५
३	संज्वलन क्रो.मा.माया	९
४	हास्य,रति,भय,जुगुप्सा	८
१	पुरुषवेद	९
१	मनुष्यानुपूर्व्य	४
३१		

आगे अन्य तीन प्रश्नों का समाधान करते हैं -

सुरणिरयाऊ तित्थं वेगुव्वियछक्कहारमिदि एसिं ।
परउदयेण य बंधो मिच्छं सुहुमस्स घादीओ ।।४०२।।
तेजदुगं वण्णचऊ थिरसुहजुगलगुरुणिमिणधुवउदया ।
सोदयबंधा सेसा बासीदा उभयबंधीओ ।।४०३।।

अन्वयार्थ - **(सुरणिरयाऊ)** देवायु, नरकायु **(तित्थं)** तीर्थंकर **(वेगुव्वियछक्कहारं)** वैक्रियिकषट्क और आहारकद्विक **(इदि)** इस प्रकार ये ११ प्रकृतियाँ हैं **(एसिं)** जिनका **(परउदयेण य)** पर के उदय से **(बंधो)** बंध होता है। **(मिच्छं)** मिथ्यात्व **(सुहुमस्स घादीओ)** सूक्ष्मसांपराय में व्युच्छिन्न होनेवाली घाति की १४ प्रकृतियाँ (५ ज्ञानावरण, ५ अंतराय, ४ दर्शनावरण) **(तेजदुगं)** तैजसकार्मण,

(वण्णचउ) वर्णादि चार **(थिरसुहजुगलगुरु णिमिणधुवउदया)** स्थिरयुगल, शुभयुगल, अगुरुलघु, निर्माण ये १२ ध्रुवोदयी प्रकृति मिलकर २७ प्रकृतियाँ **(सोदयबंधा)** स्वोदयबंधी अर्थात् इनका बंध स्वयं के उदय होने पर ही होता है। **(सेसा बासीदा)** शेष ८२ प्रकृतियाँ **(उभयबंधाओ)** उभयबंधी हैं अर्थात् स्वयं के उदय में अथवा परप्रकृति के उदय में भी इनका बंध होता है।

स्वोदयबन्धी		परोदयबन्धी		स्वपरोदयबन्धी(उभयोदयबन्धी).	
प्र.सं.		प्र.सं.		प्र.सं.	
५	ज्ञानावरण	१	देवायु	५	स्त्यानगृध्द्यादि पाँच निद्रा
४	दर्शनावरण	१	नरकायु	२	वेदनीय
५	अंतराय	६	वैक्रियिकषट्क	२५	चारित्रमोहनीय(१६ कषाय+
१	मिथ्यात्व		(वैक्रियिक शरीर,		९ नोकषाय)
२	तैजसकार्मणशरीर		अंगोपांग, देवगति,	२	तिर्यंचायु, मनुष्यायु
४	वर्ण,गंध,रस,स्पर्श		देवगत्यानुपूर्वी,	२	तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी
२	स्थिर, अस्थिर		नरकगति, नरकानुपूर्वी)	२	मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी
२	शुभ, अशुभ	२	आहारकशरीर, अंगोपांग	५	एकेन्द्रियादि पाँच जाति
१	अगुरुलघु	१	तीर्थंकर	२	औदारिक शरीर, अंगोपांग
१	निर्माण			६	संस्थान
				६	संहनन
				५	उपघात,परघात,आतप, उद्योत,
					उच्छ्वास
				२	विहायोगति
				४	त्रस,बादर, पर्याप्त, प्रत्येक
				४	स्थावर,सूक्ष्म, अपर्याप्त,साधारण
				४	सुभग, सुस्वर,आदेय, यश
				४	दुर्भग, दुस्वर,अनादेय, अयश
				२	गोत्र (उच्च, नीच)
२७		११		८२	

विशेषार्थ - १) देव देवगति का बन्ध नहीं करते हैं उसीप्रकार नारकी नरकगति का बन्ध नहीं करते। अत: देवायु, नरकायु और वैक्रियिकषट्क इनका बन्ध मनुष्यगति या तिर्यंचगति के उदय में ही होता है इसलिए परोदयबन्धी हैं।

२) आहारकद्विक का बन्ध ७ वें गुणस्थान से ८ वें के छठेभाग तक ही होता है और आहारकद्विक का उदय छठे गुणस्थान में ही होता है अत: परोदयबन्धी है।

३) तीर्थंकर का बंध चौथे गुणस्थान से ८ वें के छठे भाग तक ही होता है और उदय १३ और १४ वें गुणस्थान में होता है।

४) स्वोदयबन्धी प्रकृतियों का बन्ध अपने ही उदय में होता है किन्तु उदय इनके अबन्ध में भी होता है।

५) उभयबन्धी प्रकृतियों का बन्ध अपने उदय में भी होता है और इनका उदय न होते हुए भी होता है।

अन्तिम तीन प्रश्नों का उत्तर ४ गाथाओं से देते हैं -

सत्तेतालधुवावि य तित्थाहाराउगा णिरंतरगा ।
णिरयदुजाइचउक्कं संहदिसंठाण पण पणगं ।।४०४।।
दुग्गमणादावदुगं थावर दसगं असादसंडित्थी ।
अरदीसोगं चेदे सांतरगा होंति चोत्तिसा ।।४०५।।

अन्वयार्थ - (सत्तेताल धुवावि) ४७ सैंतालीस ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ **(तित्थाहाराउगा)** तीर्थंकर, आहारकद्विक, ४ आयु ये ५४ प्रकृतियाँ **(णिरंतरगा)** निरन्तर बंधने वाली हैं **(य)** और **(णिरयदुजाइचउक्कं)** नरकद्विक, एकेन्द्रियादि ४ जाति **(संहदिसंठाण-पणपणगं)** प्रथम संहनन बिना ५ संहनन, प्रथम संस्थान बिना ५ संस्थान **(दुग्गमणादावदुगं)** अप्रशस्तविहायोगति, आतप, उद्योत **(थावरदसगं)** स्थावर आदि १० **(असादसंढित्थि)** असातावेदनीय, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद **(अरदीसोगं)** अरति, शोक **(चेदे)** ये **(चोत्तीसा)** ३४ प्रकृतियाँ **(सांतरगा)** सान्तरबन्धी **(होंति)** हैं।

सुरणरतिरियोरालिय-वेगुव्वियदुगपसत्थगदिवज्जं।
परघाददुसमचउरं पंचेंदिय तसदसं सादं।।४०६।।
हस्सरदि पुरिसगोददु सप्पडिवक्खम्मि सांतरा होंति ।
णट्ठे पुण पडिवक्खे णिरंतरा होंति बत्तीसा।।४०७।।

अन्वयार्थ- **(सुरणरतिरियोरालियवेगुव्वियदुगपसत्थगदिवज्जं)** देवद्विक, मनुष्यद्विक, तिर्यंचद्विक, वैक्रियिकद्विक, प्रशस्त विहायोगति, वज्रर्षभनाराचसंहनन, **(परघाददुसमचउरं)** परघात, उच्छ्वास, समचतुरस्रसंस्थान, **(पंचेंदिय)** पञ्चेन्द्रिय जाति **(तसदसं)** त्रसदशक **(सादं)** सातावेदनीय **(हस्सरदिपुरिसगोददु)** हास्य, रति, पुरुषवेद, गोत्रकर्म की दो, ये **(बत्तीसा)** ३२ प्रकृतियाँ **(सप्पडिवक्खम्मि)** जबतक प्रतिपक्षी प्रकृतियों का बंध होता है तबतक **(सांतरा)** सान्तरबन्धी **(होंति)** हैं। **(पुण)** पुनः **(पडिवक्खे)** प्रतिपक्षी प्रकृतियों के **(णट्ठे)** बंध का नाश होने पर **(णिरंतरा)** निरन्तर बन्धी **(होंति)** होती हैं।

निरन्तर बन्धी		सान्तर बन्धी		सान्तर निरन्तर बन्धी	
प्र.सं.		**प्र.सं.**		**प्र.सं.**	
	ध्रुवबन्धी ४७ प्र.				
५	ज्ञानावरण	१	असातावेदनीय	१	सातावेदनीय
९	दर्शनावरण	२	नपुंसकवेद,स्त्रीवेद	३	पुरुषवेद, हास्य, रति
५	अंतराय	२	शोक, अरति	२	तिर्यंचद्विक
१	मिथ्यात्व	२	नरकगति, आनुपूर्वी	२	मनुष्यद्विक
१६	कषाय	४	एकेन्द्रियादि चार जाति	२	देवद्विक
२	भयजुगुप्सा	५	प्रथम बिना ५ संहनन	१	पंचेन्द्रियजाति
४	वर्णादि	५	प्रथम बिना ५ संस्थान	२	औदारिकद्विक
२	तैजस,कार्मण	१	अप्रशस्त विहायोगति	२	वैक्रियिकद्विक
२	अगुरुलघु,उपघात	२	आतप, उद्योत	१	समचतुरस्र संस्थान
१	निर्माण	१०	स्थावरदशक	१	वज्रर्षभनाराच संहनन
	अध्रुवबंधी ७ प्र.		(स्थावर, सूक्ष्म,	२	परघात, उच्छ्वास
१	तीर्थंकर		साधारण, अपर्याप्त,	१	प्रशस्तविहायोगति
२	आहारकद्विक		अस्थिर, अशुभ,दुर्भग,	१०	त्रसदशक
४	आयु		दुस्वर, अनादेय	२	गोत्रद्विक
			अयशस्कीर्ति)		
५४		३४		३२	

विशेषार्थ - १) निरन्तरबन्धी प्रकृतियों में ४७ ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ हैं उनका बन्ध अपनी अपनी बन्ध व्युच्छित्ति पर्यन्त सदा होता है।

२) तीर्थंकर और आहारकद्विक अध्रुवबन्धी है, किन्तु इनका बंध जिन गुणस्थानों में हो सकता है उन गुणस्थानों में बन्ध प्रारंभ होनेपर सदा होता है अत: ये निरन्तरबन्धी हैं।

३) आयु का बन्धकाल एक अंतर्मुहूर्त है। जिस काल में आयु का बन्ध होने योग्य है उसकाल में आयुबन्ध प्रारम्भ होनेपर अंतर्मुहूर्त तक प्रतिसमय निरन्तर एकही आयु का बन्ध होता है। अत: आयु को निरन्तरबन्धी कहा है।

४) सान्तरनिरन्तर ३२ प्रकृतियों में जिन प्रकृतियों के प्रतिपक्षी प्रकृति का बंध जबतक संभव हो तबतक वे सान्तरबन्धी है और प्रतिपक्षी प्रकृति की बन्धव्युच्छित्ति होनेपर उन प्रकृतियों का निरन्तर बन्ध होता है। स्वजातीय अन्यप्रकृति का बंध जहाँ होता है वहाँ वह प्रकृति सप्रतिपक्षी कहलाती है और वहाँ वह सान्तरबन्धी होती है और जहाँ केवल अपना ही बंध होता हो वहाँ उसे निष्प्रतिपक्षी कहते है और वहाँ वह निरंतरबन्धी होती है, अपनी व्युच्छित्तिपर्यन्त निरन्तर बन्ध होता है। जैसे अन्यगति का जहाँ बन्ध पाया जाता है वहाँ देवगति सप्रतिपक्षी है। वहाँ कभी अन्य गति का अथवा कभी देवगति का बन्ध होता है। अन्य गतियों की बन्धव्युच्छित्ति होनेपर तीसरे गुणस्थान से निरन्तर देवगति का बन्ध होता है। अत: देवगति को उभयबन्धी कहा है।

प्र. सं.	उभयबंधी प्रकृति	प्रतिपक्षी प्रकृति नाम	सान्तरबंध कहाँ	निरन्तर बंध कहाँपर होता है
१ १ १ १	सातावेदनीय हास्य रति पुंवेद	असातावेदनीय शोक अरति नपुंसकवेद स्त्रीवेद	छठे गुण.तक छठे गुण.तक छठे गुण.तक द्वितीय गुण.तक	७ से १३ गुणस्थानतक ७ से ८ के अंतिमभागतक ७ से ८ के अंतिमभागपर्यंत ३ से ९वें के प्रथमभागपर्यंत
२	तिर्यंचद्विक	नरकद्विक, मनुष्यद्विक देवद्विक	द्वितीय गुण.तक	७ वें नरक में १-२ गुण.में तेजकायिक, वायुकायिक में
२	मनुष्यद्विक	नरकद्विक तिर्यंचद्विक देवद्विक	द्वितीय गुण.तक	देव नारकी में ३ रे-४ थे गुण. में और १३ वें स्वर्ग से सर्वार्थसिद्धिपर्यंत सब गुणस्थानों में
२	देवद्विक	नरकद्विक तिर्यंचद्विक मनुष्यद्विक	द्वितीय गुण.तक	मनुष्य, तिर्यंच में ३ रे से ८ वें के छठे भागतक और भोगभूमि में
१	पंचेन्द्रियजाति	एकेन्द्रिय४जाति	प्रथम गुणस्थान तक	२ रे गुणस्थान से ८ वें के छठेभाग तक
२	औदारिकद्विक	वैक्रियिकद्विक	चौथेगुण.तक मनुष्यतिर्यंच में द्वितीय गुण.तक	नरक व देवगति में निरन्तर बन्ध सर्व गुणस्थानों में
२	वैक्रियिकद्विक	औदारिकद्विक	मनुष्यतिर्यंच में द्वितीय गुण.तक	३ रे गुणस्थान से ८ वें के छठे भागतक और भोगभूमि में
१	समचतुरस्र संस्थान	अन्य ५ संस्थान	द्वितीय गुण.तक	३ रे गुणस्थान से ८ वें के छठे भागतक

प्र. सं.	उभयबंधी प्रकृति	प्रतिपक्षी प्रकृति नाम	सान्तरबंध कहाँ	निरन्तर बंध कहाँपर होता है
१	वज्रर्षभनाराच संहनन	अन्य ५ संहनन	द्वितीय गुण.तक	३ रे और ४ थे गुणस्थान में
२	परघात, उच्छ्वास	अपर्याप्त	अपर्याप्त का बन्ध होते प्रथमगुण.में	२ रे से ८ वें के छठेभाग तक
१	प्रशस्त-विहायोगति	अप्रशस्तविहायो-गति	द्वितीय गुण.तक	३ रे से ८ वें के छठेभाग तक
१	त्रस	स्थावर	प्रथम गुण. में	२ रे से ८ वें के छठेभागतक
१	बादर	सूक्ष्म	प्रथम गुण. में	२ रे से ८ वें के छठेभागतक
१	पर्याप्त	अपर्याप्त	प्रथम गुण. में	२ रे से ८ वें के छठेभागतक
१	प्रत्येक	साधारण	प्रथम गुण. में	२ रे से ८ वें के छठेभागतक
१	स्थिर	अस्थिर	छठे गुण.तक	७ वे से ८ वें के छठेभागतक
१	शुभ	अशुभ	छठे गुण.तक	७ वे से ८ वें के छठेभागतक
१	सुभग	दुर्भग	द्वितीय गुण.तक	३ रे से ८ वें के छठेभागतक
१	सुस्वर	दु:स्वर	द्वितीय गुण.तक	३ रे से ८ वें के छठेभागतक
१	आदेय	अनादेय	द्वितीय गुण.तक	३ रे से ८ वें के छठेभागतक
१	यशस्कीर्ति	अयशस्कीर्ति	छठे गुण.तक	७ वे से १० वें गुणस्थानतक
१	नीचगोत्र	उच्चगोत्र	द्वितीय गुण.तक	सातवे नरक में १,२ गुण. में और तेजोकायिक वायुका. में
१	उच्चगोत्र	नीचगोत्र	द्वितीय गुण.तक	तीसरे से दसवें गुणस्थानतक
३२				

१) आतप, मिथ्यादृष्टि में अपर्याप्त का बन्ध होनेपर सप्रतिपक्षी है क्योंकि अपर्याप्त का बन्ध होनेपर इसका बन्ध नहीं होता।

२) भोगभूमि में पर्याप्त होने पर दूसरी किसी गति का बन्ध नहीं होता इसलिए देवद्विक, वैक्रियिकद्विक और उच्चगोत्र का वहाँ निरन्तर बन्ध होता है।

३) सप्तम नरक के नारकी को प्रथम द्वितीय गुणस्थान में तिर्यंचगतिका ही निरन्तर बन्ध होता है क्योंकि मरकर वे तिर्यंच में ही उत्पन्न होते हैं।

४) तेजोकायिक और वायुकायिक जीव नियम से तिर्यंचगति में ही उत्पन्न होते हैं अत: उनको तिर्यंचद्विक और नीचगोत्र का निरन्तर बन्ध होता है।

५) तेरहवे स्वर्ग से लेकर ऊपर के देव मनुष्यगति में ही उत्पन्न होते हैं अत: वे मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक और उच्चगोत्र का निरन्तर बन्ध करते हैं।

द्वितीय पंचभागहारचूलिका

जत्थ वरणेमिचंदो महणेण विणा सुणिम्मलो जादो।
सो अभयणंदि णिम्मलसुओवही हरउ पावमलं ।।४०८।।

अन्वयार्थ - (जत्थ) जिसमें **(महणेण विणा)** मन्थन बिना ही **(वरणेमिचंदो)** उत्कृष्ट नेमिचन्द्र आचार्य **(सुणिम्मलो जादो)** निर्मल हुए **(सो)** वह **(अभयणंदिणिम्मल सुओवही)** अभयनन्दि का निर्मल शास्त्रसमुद्र **(पावमलं)** जीवों के पापमल को **(हरउ)** दूर करें।

अब भागहार के पाँच भेद कहते हैं -

उव्वेल्लणविज्झादो अद्धापवत्तो गुणो य सव्वो य ।
संकमदि जेहि कम्मं परिणामवसेण जीवाणं।।४०९।।

अन्वयार्थ -(जीवाणं) संसारी जीवों के **(परिणामवसेण)** परिणाम के वश से **(जेहिं)** जिन भागहारों के द्वारा **(कम्मं)** कर्म **(संकमदि)** संक्रमण करते हैं वे संक्रमण भागहार **(उव्वेलणविज्झादो)** उद्वेलन, विध्यात **(अद्धापवत्तो)** अध:प्रवृत्त **(गुणो य)** गुण और **(सव्वो य)** सर्व के भेद से पाँच प्रकार के हैं।

विशेषार्थ - शुभ अशुभ कर्म जीवों के परिणामों के निमित्त से अन्य प्रकृतिरूप परिणमित होते हैं उसे संक्रमण कहते हैं। एक समय में कितने परमाणु अन्य प्रकृतिरूप होते हैं इसका प्रमाण लानेके लिए सत्त्वद्रव्य को किसी संख्या से भाग दिया जाता है उसे भागहार कहते हैं। संक्रमण के प्रकरण में ये भागहार पाँच प्रकार के हैं-

भागहार ५ प्रकार के - १) उद्वेलन २) विध्यात ३) अध:प्रवृत्त ४) गुणसंक्रमण ५) सर्वसंक्रमण। इन भागहारों के निमित्त से संक्रमण भी पाँच प्रकार का कहा जाता है।

१) उद्वेलनसंक्रमण - अध:प्रवृत्तादि तीन करण परिणामों के बिना कर्मप्रकृतियों के परमाणुओं का अन्य प्रकृतिरूप परिणमित होना ही उद्वेलन संक्रमण है। जैसे रस्सीको बलपूर्वक उधेडने से उसका रस्सीपना नष्ट हो जाता है उसीप्रकार जिन प्रकृतियों का बन्ध किया था उनको उद्वेलनभागहार के द्वारा अपकर्षण करके अन्य प्रकृतिरूप करना और इसप्रकार से उनको नष्ट करने का नाम उद्वेलनसंक्रमण है।

२) विध्यात संक्रमण - स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात, गुणश्रेणी आदि परिणामों के होनेके पश्चात् मंदविशुद्धिवाले जीव के कर्मप्रकृतियों का जो संक्रमण होता है वह विध्यात संक्रमण है। बन्धरहित अवस्था में ही विध्यातसंक्रमण होता है।

३) अध:प्रवृत्तसंक्रमण - बन्धरूपप्रकृतियों के परमाणुओं का अपने बन्ध में संभवती प्रकृतियों में जो संक्रमण होता है वह अध:प्रवृत्तसंक्रमण है। बन्ध योग्य गुणस्थान में ही बन्ध के होने पर अथवा नहीं होनेपर भी यह संक्रमण होता है।

४) गुणसंक्रमण - प्रतिसमय असंख्यातगुणश्रेणि के क्रम से अन्यप्रकृतिरूप जो प्रदेशों का संक्रमण होता है वह गुणसंक्रमण है। यह भी बन्धरहित अवस्था में ही होता है।

५) सर्वसंक्रमण - अन्तिम काण्डक की अन्तिम फाली के शेष बचे सर्वप्रदेशोंका (सर्व कर्मपरमाणुओं का) अन्यप्रकृतिरूप होना सर्वसंक्रमण है। परमुखोदय से नष्ट होनेवाली प्रकृतियों का अन्तिम समय में सर्वसंक्रमण होता है।

बंधे संकामिज्ज़दि णोबंधे णत्थि मूलपयडीणं ।
दंसणचरित्तमोहे आउचउक्के ण संकमणं।। ४१०।।

अन्वयार्थ - (बंधे) जिस प्रकृति का बंध होता है उसी में अन्य प्रकृति का **(संकामिज्ज़दि)** संक्रमण होता है **(णोबंधे)** जिसका बन्ध नहीं उसमें संक्रमण नहीं होता।

(मूलपयडीणं) मूल प्रकृतियों का परस्पर में **(णत्थि)** संक्रमण नहीं होता। **(दंसणचारित्तमोहे)** दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय में तथा **(आउचउक्को)** चार आयुओं में परस्पर **(संकमणं)** संक्रमण **(ण)** नहीं होता।

सम्मं मिच्छं मिस्सं सगुणट्ठाणम्मि णेव संकमदि ।
सासणमिस्से णियमा दंसणतिय संकमो णत्थि।।४११।।

अन्वयार्थ - (सम्मं मिच्छं मिस्सं) सम्यक्त्वप्रकृति, मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीय **(सगुणट्ठाणम्मि)** अपने-अपने गुणस्थान में **(णेव संकमदि)** संक्रमण नहीं करती। **(सासणमिस्से)** सासादन और मिश्रगुणस्थान में **(दंसणतिय संकमो)** तीन दर्शनमोहनीय का संक्रमण **(णियमा)** नियम से **(णत्थि)** नहीं है।

विशेषार्थ - संक्रमण के विषय में ध्यान में रखने योग्य नियम -

१) जिस प्रकृति का बन्ध हो रहा है उस प्रकृति में ही अन्य प्रकृति का संक्रमण होता है। यह सामान्य नियम है। कहीं कहीं जिसका बन्ध नहीं है उसमें भी संक्रमण होता है। जैसे- १) सम्यक्त्वप्रकृति का बन्ध नहीं है फिर भी उसमें मिथ्यात्व और मिश्र का संक्रमण होता है। २) ८ वें के छठे भाग में व्युच्छित्ति होनेपर उपघात के बिना २९ प्रकृतियों का अध:प्रवृत्त संक्रमण होता है। ३) संज्वलन क्रोध, मान, माया और पुरुषवेद की बन्धव्युच्छित्ति होनेपर एकसमय कम दो आवलि तक अध:प्रवृत्तसंक्रमण होता है।

२) जिसका बन्ध नहीं है उसमें संक्रमण नहीं होता। अपवाद दर्शनमोहनीय

३) मूलप्रकृतियों में संक्रमण नहीं होता किन्तु उत्तरप्रकृतियों में संक्रमण होता है। जैसे ज्ञानावरण का दर्शनावरण में संक्रमण नहीं होता किन्तु मतिज्ञानावरण का श्रुतज्ञानावरण में, श्रुतज्ञानावरण का मतिज्ञानावरण में संक्रमण होता है।

४) उत्तरप्रकृतियों में भी दर्शनमोह और चारित्रमोह का परस्पर संक्रमण नहीं होता अर्थात् दर्शनमोह की प्रकृतियाँ चारित्रमोहरूप परिणमित नहीं होती और चारित्रमोह की प्रकृतियाँ दर्शनमोहरूप परिणमित नहीं होती।

५) आयुकर्म की प्रकृतियों में भी परस्पर संक्रमण नहीं होता।

६) मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्वप्रकृति का अपने अपने गुणस्थान में संक्रमण नहीं होता। अर्थात् मिथ्यात्व का प्रथम गुणस्थान में, मिश्र का तीसरे गुणस्थान में और

सम्यक्त्व प्रकृति का चौथे से सातवें गुणस्थानतक संक्रमण नहीं होता।
७) दूसरे सासादन और तीसरे मिश्र गुणस्थान में दर्शनमोह की तीनों प्रकृतियों का संक्रमण नहीं होता।

मिच्छे सम्मिस्साणं अधापवत्तो मुहुत्तअंतोत्ति ।
उव्वेल्लणं तु तत्तो दुचरिमकंडोत्ति णियमेण।।४१२।।

अन्वयार्थ - (मिच्छे) मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होने पर **(सम्मिस्साणं)** सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का **(मुहुत्तअंतोत्ति)** अन्तर्मुहूर्तपर्यंत **(अधापवत्तो)** अध:प्रवृत्त संक्रमण होता है। **(तत्तो)** उसके पश्चात् **(दुचरिमकंडोत्ति)** द्विचरमकांडक तक **(णियमेण)** नियम से **(उव्वेल्लणं तु)** उद्वेलन संक्रमण होता है।

उव्वेलणपयडीणं गुणं तु चरिमम्मि कंडये णियमा ।
चरिमे फालिम्मि पुणो सव्वं च य होदि संकमणं।।४१३।।

अन्वयार्थ - (उव्वेलणपयडीणं) उद्वेलन प्रकृतियों का **(चरिमम्मि कंडये)** अंतिम कांडक में **(णियमा)** नियम से **(गुणं)** गुणसंक्रमण होता है। **(च)** और **(चरिमे फालिम्मि)** अंतिम फालि में **(सव्वं संकमणं)** सर्व संक्रमण **(होदि)** होता है।

विशेषार्थ - उद्वेलन प्रकृतियों में क्रम से चार प्रकार का संक्रमण होता है उसका खुलासा -

१) मिथ्यात्व को प्राप्त होनेपर अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त अध:प्रवृत्त संक्रमण होता है।
२) उसके बाद द्विचरमकाण्डक पर्यन्त उद्वेलनसंक्रमण होता है।
३) चरम काण्डक में द्विचरम फालिपर्यन्त गुणसंक्रमण होता है।
४) चरम काण्डक की चरमफालि में सर्वसंक्रमण होता है।

उनमें से अध:प्रवृत्त संक्रमण फालिरूप से और उद्वेलन संक्रमण काण्डकरूप से होता है। एक एक समय में कुछ द्रव्य लेकर जो संक्रमण होता है उसे फालि कहते है। एक काण्डक को ग्रहण करके उसका बहुत समयों में संक्रमण हो तो उसे काण्डक कहते हैं।

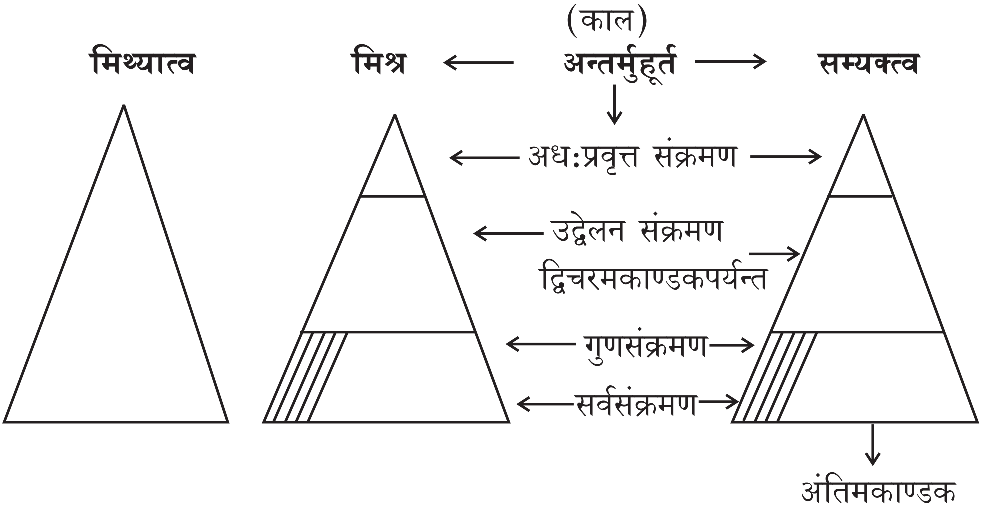

तिर्यगेकादश प्रकृतियों के नाम कहते हैं -

तिरियदुजादिचउक्कं आदावुज्जोवथावरं सुहुमं।
साहारणं च एदे तिरियेयारं मुणेदव्वा।।४१४।।

अन्वयार्थ - (तिरियदुजादिचउक्कं) तिर्यञ्चद्विक, एकेन्द्रियादि चार जाति, **(आदावुज्जोव-थावरं)** आतप, उद्योत, स्थावर **(सुहुमं)** सूक्ष्म **(च)** और **(साहारणं)** साधारण **(एदे)** ये ११ प्रकृतियाँ **(तिरियेयारं)** तिर्यगेकादश **(मुणेदव्वा)** जानना चाहिये।

अब उद्वेलन प्रकृतियों को कहते हैं -

आहारदुगं सम्मं मिस्सं देवदुग णारय चउक्कं ।
उच्चं मणुदुगमेदे तेरसमुव्वेलणा पयडी ।।४१५।।

अन्वयार्थ - (आहारदुगं) आहारकद्विक **(सम्मं)** सम्यक्त्व प्रकृति **(मिस्सं)** सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति **(देवदुगणारयचउक्कं)** देवद्विक, नारकचतुष्क, **(उच्चं)** उच्चगोत्र **(मणदुगं)** मनुष्यद्विक **(एदे तेरस)** ये तेरह **(उव्वेलणा पयडी)** उद्वेलन प्रकृतियाँ हैं।

बंधे अधापवत्तो विज्झादस्सत्तमोत्ति हु अबंधे ।
एत्तो गुणो अबंधे पयडीणं अप्पसत्थाणं ।।४१६।।

अन्वयार्थ - (बंधे) प्रकृतियों का बन्ध होने पर **(अधापवत्तो)** अध:प्रवृत्तसंक्रमण होता है **(अबंधे)** बन्ध की व्युच्छित्ति होनेपर **(सत्तमोत्ति)** सातवें गुणस्थानतक **(विज्झादं)** विध्यातसंक्रमण होता है। **(एत्तो)** अप्रमत्त गुणस्थान के ऊपर **(अबन्ध)** बन्धरहित **(अप्पसत्थाणं पयडीणं)** अप्रशस्त प्रकृतियों का **(गुणो)** गुणसंक्रमण होता है।

कौनसा संक्रमण कहांपर होता है उसका स्पष्टीकरण

संक्रमण का नाम	संक्रमण का स्थान
१) अध:प्रवृत्त	प्रकृतियों का बन्ध होनेपर अपनी अपनी बन्धव्युच्छित्ति पर्यन्त
२) विध्यात संक्रमण	बन्धव्युच्छित्ति होनेपर अप्रमत्तपर्यन्त और जहाँ जिस प्रकृति का बन्ध नहीं वहाँ।
३) गुणसंक्रमण	१) ८ वें से १० वे गुण.पर्यंत बन्धरहित अप्रशस्त प्रकृतियों का २) प्रथमोपशम सम्यक्त्व के ग्रहण के प्रथमसमय से अन्तर्मुहूर्त पर्यंत मिथ्यात्व का मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति में ३) क्षायिक सम्यक्त्व के अपूर्वकरण से मिथ्यात्व की चरम-कांडक की द्विचरमफालि पर्यन्त
४) सर्वसंक्रमण	चरमकांडक की चरमफालि में
५) उद्वेलनसंक्रमण	१३ प्रकृतियों का प्रथम गुणस्थान में

अब सर्वसंक्रमणरूप प्रकृतियों को कहते हैं -

तिरिएयारुव्वेल्लण पयडी संजलणलोहसम्ममिस्सूणा ।
मोहा थीणतिगं च य बावण्णे सव्वसंकमणं ।।४१७।।

अन्वयार्थ - (तिरिएयारुव्वेल्लणपयडी) पूर्वोक्त तिर्यगेकादश प्रकृति, उद्वेलनरूप प्रकृति **(संजलणलोहसम्म मिस्सूणा मोहा)** संज्वलनलोभ, सम्यक्त्व और मिश्र प्रकृति इन तीन से कम मोहनीय की २५ प्रकृति **(च य)** और **(थीणतिगं)** स्त्यानगृद्धित्रिक **(बावण्णे)** इन बावन प्रकृतियों में **(सव्वसंकमणं)** सर्व संक्रमण होता है।

आगे प्रकृतियों में संक्रमण का नियम कहते हैं -

उगुदालतीससत्तयवीसे एक्केक्कबारतिचउक्के।
इगिचदुदुगतिगतिगचदुपणदुगदुगतिण्णि संकमणा।।४१८।।

अन्वयार्थ - (उगुदालतीससत्तयवीसे) उनतालीस, तीस, सात, वीस प्रकृतियों में तथा **(एक्केक्कबारतिचउक्के)** एक, एक, बारह, तीन बार चार प्रकृतियों में क्रम से **(इगिचदुदुगतिगतिगचदुपणदुगदुगतिण्णि)** एक, चार, दो, तीन, तीन, चार, पाँच, दो, दो, तीन **(संकमणा)** संक्रमण होते हैं।

आगे उन प्रकृतियों को और उनके संक्रमण को सात गाथाओं के द्वारा कहते हैं-

सुहुमस्स बंधघादी सादं संजलणलोह पंचिंदी।
तेजदुसमवण्णचऊ अगुरुगपरघाद उस्सासं।।४१९।।
सत्थगदी तसदसयं णिमिणुगुदाले अधापवत्तो दु ।
थीणतिबारकसाया संढित्थी अरदिसोगो य ।।४२०।।
तिरिएयारं तीसे उव्वेल्लणहीण चारि संकमणा।
णिद्दापयला असुहं वण्णचउक्कं च उवघादे ।।४२१।।
सत्तण्हं गुणसंकममधापवत्तो य दुक्खमसुहगदी ।
संहदिसंठाणदसं णीचापुण्णथिरछक्कं च ।।४२२।।
वीसण्हं विज्झादं अधापवत्तो गुणो य मिच्छत्ते ।
बिज्झादगुणं सव्वं सम्मे विज्झादपरिहीणा ।।४२३।।
सम्मविहीणुव्वेल्ले पंचेव य तत्थ होंति संकमणा ।
संजलणतिए पुरिसे अधापवत्तो य सव्वो य ।।४२४।।
ओरालदुगे वज्जे तित्थे विज्झादधापवत्तो य।
हस्सरदिभयजुगुच्छे अधापवत्तो गुणो सव्वो ।।४२५।।

अन्वयार्थ - (सुहुमस्स बंधघादी) सूक्ष्मसांपराय में बंधनेवाली १४ घाति प्रकृति (५ ज्ञानावरण, ५ अंतराय, ४ दर्शनावरण) **(सादं)** साता वेदनीय **(संज्वलणलोहपंचिंदी)**संज्वलनलोभ, पंचेन्द्रिय **(तेजदुसमवण्णचऊ)** तैजस, कार्मण,

समचतुरस्र संस्थान, वर्णादि चार, **(अगुरुगपरघादउस्सासं)** अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास **(सत्थगदी)** प्रशस्त विहायोगति **(तसदसयं)** त्रसदशक अर्थात् त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति **(णिमिणुगुदाले)** निर्माण इन उनतालीस प्रकृतियों में **(अधापवत्तो दु)** एक अध:प्रवृत्त संक्रमण ही होता है।

(थीणतिबारकसाया) स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा , बारह कषाय, (संज्वलन के बिना) **(संढित्थी)** नपुंसकवेद, स्त्रीवेद **(अरदि सोगो)** अरति, शोक **(य)** और **(तिरियेयारं)** तिर्यगेकादश इन **(तीसे)** तीस प्रकृतियों में **(उव्वेलणहीण चारि संकमणा)** उद्वेलन बिना चार संक्रमण होते हैं।

(णिद्दा पयला) निद्रा, प्रचला **(असुहं वण्णचउक्कं)** अशुभ वर्णचतुष्क **(उवघादे)** उपघात इन **(सत्तण्हं)** सात प्रकृतियों में **(गुणसंकममधापवत्तो य)** गुणसंक्रमण और अध:प्रवृत्त संक्रमण ये दो संक्रमण होते हैं।

(दुक्खमसुहगदी) असाता वेदनीय, अप्रशस्त विहायोगति, **(संहदि-संठाणदसं)** ५ संहनन, ५ संस्थान इस प्रकार दस **(च)** और **(णीचापुण्णथिरछक्कं)** नीचगोत्र, अपर्याप्त, अस्थिर षटक् **(वीसण्हं)** इन बीस प्रकृतियों में **(विज्झादं अधापवत्तो, गुणो य)** विध्यात, अध:प्रवृत्त, गुणसंक्रमण होते हैं।

(मिच्छत्ते) मिथ्यात्व प्रकृति में **(विज्झादगुणे सव्वं)** विध्यात, गुण और सर्वसंक्रमण ये तीन संक्रमण पाये जाते हैं। **(सम्मे)** सम्यक्त्वप्रकृति में **(विज्झादपरिहीणा)** विध्यातसंक्रमण के बिना चार संक्रमण पाये जाते हैं।

(सम्मविहीणुव्वेल्ले तत्थ) सम्यक्त्व मोहनीय के बिना उन बारह उद्वेलन प्रकृतियों में **(पंचेव य)** पाँचों **(संकमणा)** संक्रमण **(होंति)** होते हैं। **(संजलणतिए पुरिसे)** संज्वलन क्रोध, मान, माया और पुरुषवेद में **(अधापवत्तो य)** अध:प्रवृत्त संक्रमण **(य)** और **(सव्वो)** सर्वसंक्रमण होते हैं।

(ओरालदुगे) औदारिकद्विक **(वज्जे)** वज्रर्षभनाराच संहनन और **(तित्थे)** तीर्थंकर इन ४ प्रकृतियों में **(विज्झादधापवत्तो य)** विध्यात और अध:प्रवृत्त दो संक्रमण होते हैं। **(हस्सरदिभयजुगुच्छे)** हास्य, रति, भय, जुगुप्सा इन चार प्रकृतियों में **(अधापवत्तो गुणो सव्वो)** अध:प्रवृत्त संक्रमण, गुणसंक्रमण और सर्वसंक्रमण होते हैं।

प्रकृतियों में संक्रमण के प्रकार

प्र.सं.	संक्रसं.	प्रकृतियों के नाम	संक्रमण के नाम
३९	१	५ज्ञानावरण, ४दर्शनावरण, ५अंतराय,१ सातावेदनीय, १संज्व.लोभ,१पंचेन्द्रियजाति, तैजस१,कार्मण१,सम-चतुरस्र१, ४वर्णादि, अगुरुलघु १,परघात१,उच्छ्वास१, प्र.विहायोगति१ १०त्रसदशक,१ निर्माण = ३९	अध:प्रवृत्त
३०	४	३ स्त्यानत्रिक, संज्वलनबिना १२ कषाय, १ नपुंसकवेद, १ स्त्रीवेद,२ अरतिशोक, ११ तिर्यक् एकादश (तिर्यंचद्विक, एकेन्द्रियादि ४ जाति, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण) = ३०	अध:प्रवृत्त, विध्यात, गुणसंक्रमण, सर्वसंक्रमण
७	२	निद्रा१, प्रचला १, अशुभवर्णादि ४, उपघात १= ७	अध:प्रवृत्त गुणसंक्रमण
२०	३	१ असातावेदनीय, १ अप्र.विहायोगति, ५ अन्तके संस्थान, ५ संहनन,नीचगोत्र १, अपर्याप्त, ६ अस्थिरषट्क = २०	विध्यात, अध:प्रवृत्त गुणसंक्रमण
१२	५	आहारकद्विक, मिश्र, देवद्विक, नारकचतुष्क, उच्चगोत्र, मनुष्यद्विक(सम्यक्त्वबिना शेष १२ उद्वेलनप्रकृति) = १२	अध:प्रवृत्त, विध्यात,उद्वेलन, गुणसंक्र,सर्वसं.
४	२	संज्वलन क्रोध१, मान१, माया१, पुरुषवेद१ = ४	अध:प्रवृत्त, सर्वसंक्रमण
४	२	औ.द्विक२, वज्रर्षभनाराचसंहनन१, तीर्थंकर१ = ४	अध:प्रवृत्त, विध्यातसंक्रमण
४	३	हास्य, रति, भय, जुगुप्सा = ४	अध:प्रवृत्त, गुणसंक्र.सर्वसं.
१	३	मिथ्यात्व १	विध्यात, गुण, सर्वसंक्रमण
१	४	सम्यक्त्व १	अध:प्रवृत्त, उद्वेलन,गुण, सर्वसंक्रमण

विशेषार्थ - ३९ प्रकृतियों में एक अध:प्रवृत्त संक्रमणही होता है क्योंकि ये उद्वेलन प्रकृतियाँ नहीं हैं इसलिए इनमें उद्वेलन संक्रमण नहीं है। इन ३९ प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति ७ वें गुणस्थान के आगे होती है इसलिए विध्यात संक्रमण नहीं होता क्योंकि विध्यात संक्रमण अबन्धदशा में ७ वें गुणस्थानतक ही होता है। इनमें से सातावेदनीय छोड़कर प्रथम १६ प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति दसवें गुणस्थान में होती है। अत: इनका गुणसंक्रमण नहीं होता और इन प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति एकसाथ होती है उनमें से किसी उत्तरप्रकृति का बन्ध ग्यारहवें गुणस्थान में नहीं होता इसलिए ग्यारहवें गुणस्थान में भी गुणसंक्रमण नहीं होता।

संक्रमण बंधनेवाली प्रकृति में ही होता है। शेष पंचेन्द्रियजाति आदि २३ प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति ८ वें गुणस्थान के छठे भाग में होती है किन्तु ये प्रकृतियाँ प्रशस्त होने से इनका गुणसंक्रमण नहीं होता। इन ३९ प्रकृतियों का नाश स्वमुखोदयरूप से होता है अत: सर्वसंक्रमण नहीं होता।

३० प्रकृतियाँ उद्वेलनप्रकृतियों में नहीं है इसलिए इनका उद्वेलन संक्रमण नहीं होता।

७ प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति ८ वें के छठे भाग में होती है अत: इनका विध्यातसंक्रमण नहीं होता। उद्वेलनप्रकृति न होने से उद्वेलन संक्रमण नहीं होता। स्वमुखोदय से नष्ट होने से सर्व संक्रमण नहीं होता।

२० प्रकृतियों में उद्वेलन प्रकृति न होने से उद्वेलनसंक्रमण नहीं। १२ वें गुणस्थान से आगे ५ संक्रमण नहीं होते और इनका नाश १४ वें गुणस्थान में होता है। सर्वसंक्रमण नाश के अन्तिमसमय में ही होता है अत: इनका सर्वसंक्रमण नहीं होता।

संज्वलन क्रोध, मान, माया और पुरुषवेद की बन्धव्युच्छित्ति होनेपर भी गुणसंक्रमण नहीं होता। उद्वेलनप्रकृति न होने से उद्वेलनसंक्रमण नहीं होता। ९ वें गुणस्थानतक बन्ध होने से विध्यातसंक्रमण नहीं होता।

४ औदारिकद्विकादि प्रकृतियाँ प्रशस्त होने से इनका गुणसंक्रमण नहीं होता। उद्वेलनप्रकृति न होने से उद्वेलन संक्रमण नहीं होता। इनका नाश १४ वें गुणस्थान में स्वमुखरूप से होता है अत: सर्व संक्रमण नहीं होता।

हास्यादि ४ का बन्ध आठवें गुणस्थानतक होता है अत: विध्यातसंक्रमण नहीं होता और उद्वेलन प्रकृति न होने से उद्वेलनसंक्रमण नहीं होता।

मिथ्यात्व का बन्ध प्रथम गुणस्थान में ही होता है और वहाँ उसके संक्रमण का निषेध किया है इसलिए उसका अध:प्रवृत्तसंक्रमण नहीं होता क्योंकि अध:प्रवृत्तसंक्रमण बन्ध होनेपर ही होता है।

सम्यक्त्व प्रकृति का चौथे गुणस्थान से सातवें गुणस्थानतक संक्रमण का निषेध किया है इसलिए उसका विध्यात संक्रमण नहीं होता।

विशेष - सर्वसंक्रमण का ऐसा नियम ध्यान में आता है कि जिन प्रकृतियों का नाश दसवें गुणस्थानतक होता है और उनमें भी जिन प्रकृतियों का नाश परमुखोदयरूप से होता है उन्हीं का सर्वसंक्रमण होता है और उद्वेलन प्रकृतियों का सर्वसंक्रमण होता है।

अब विध्यातसंक्रमण की प्रकृतियों को कहते हैं -

सम्मत्तूणुव्वेल्लणथीणति तीसं च दुक्खवीसं च।
वज्जोरालदु तित्थं मिच्छं विज्झाद सत्तट्ठी ।।४२६।।

अन्वयार्थ - (सम्मत्तूणुव्वेल्लणथीणतितीसं च) सम्यक्त्व प्रकृति के बिना १२ उद्वेलन प्रकृतियाँ, स्त्यानगृद्धि तीन आदि तीस प्रकृतियाँ **(दुक्खवीसं च)** असातावेदनीय आदि बीस प्रकृतियाँ **(वज्जोराल दु)** वज्रर्षभनाराच,औदारिक द्विक **(तित्थं)** तीर्थंकर **(मिच्छं)** मिथ्यात्व **(सत्तट्ठी)** ये सड़सठ प्रकृतियाँ **(विज्झाद)** विध्यात संक्रमण की हैं।

अब अध:प्रवृत्तसंक्रमण और गुणसंक्रमण की प्रकृतियों के नाम कहते हैं -

मिच्छूणिगिवीससयं अधापवत्तस्स होंति पयडीओ।
सुहुमस्स बंधघादिं पहुडी उगुदालुरालदुगतित्थं ।।४२७।।
वज्जं पुंसंजलणत्तिऊणगुणसंकमस्स पयडीओ।
पणहत्तरि संखाओ पयडीणियमं विजाणाहि ।।४२८

अन्वयार्थ - (मिच्छूणिगिवीससयं) मिथ्यात्व प्रकृति बिना एक सौ इक्कीस १२१ **(पयडीओ)** प्रकृतियाँ **(अधापवत्तस)** अध:प्रवृत्त संक्रमण की **(होंति)** हैं। **(सुहुमस्स)** सूक्ष्मसांपराय में **(बंधघादिप्पहुदी)** बंधनेवाली घातिया कर्मों की चौदह प्रकृति आदि **(उगुदाल)** उनतालीस प्रकृतियाँ **(उरालदुगतित्थं)** औदारिकद्विक, तीर्थंकर **(वज्जं)** वज्रर्षभनाराच **(पुंसंजलणति)** पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया **(ऊण)** इन सैंतालीस प्रकृतियों से रहित एक सौ बाईस (१२२-४७=७५) **(पणहत्तरिसंखयओ)** अर्थात्

पिचहत्तर संख्या **(गुणसंकमस्स पयडीओ)** गुणसंक्रमण की प्रकृतियाँ हैं। इस प्रकार **(पयडीणियमं)** प्रकृतियों के संक्रमण का नियम **(विजाणाहि)** जानना।

संक्रमण का नाम	**प्र. सं.**	**प्रकृतियों का नाम**
१) उद्वेलनसंक्रमण	१३	आहारकद्विक, सम्यक्त्व, मिश्र, देवद्विक, नारकचतुष्क, उच्चगोत्र, मनुष्यद्विक
२) विध्यातसंक्रमण	६७	सम्यक्त्वप्रकृति के बिना१२ उद्वेलन प्रकृतियाँ,स्त्यानगृद्ध्यादि ३०प्रकृतियाँ, असातावेदनीयादि २० प्रकृतियाँ, वज्रर्षभनाराच, औदारिकद्विक, तीर्थंकर, मिथ्यात्व १२+३०+२०+४+१=६७
३) अध:प्रवृत्तसंक्रमण	१२१	बन्धयोग्य १२०-१ मिथ्यात्व +२ मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति का भी अध:प्रवृत्त संक्रमण है ये दो मिलानेपर१२१ होती हैं।
४) गुणसंक्रमण	७५	५ ज्ञानावरणादि ३९ प्रकृतियाँ, औदारिकद्विक, वज्रर्षभनाराच-संहनन, तीर्थंकर, संज्वलन क्रोध, मान, माया, पुरुषवेद इन ४७ प्रकृतियों से रहित उदययोग्य एकसौ बाईस१२२-४७=७५
५) सर्वसंक्रमण	५२	तिर्यग्एकादश ११, उद्वेलनप्रकृति १३, संज्वलनलोभ, सम्यक्त्व और मिश्र के बिना मोहनीय की २५ प्रकृतियाँ, स्त्यानगृद्धित्रिक ३ (११+१३+२५+३ = ५२)

ठिदियणुभागाणं पुण बंधो सुहुमोत्ति होदि णियमेण।
बंधपदेसाणं पुण संकमणं सुहुमरागोत्ति ।।४२९।।

अन्वयार्थ - (पुण) पुन: **(ठिदिअणुभागाणं बंधो)** स्थिति और अनुभाग का बन्ध **(णियमेण)** नियम से **(सुहुमोत्ति)** सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानपर्यंत **(होदि)** ही है। **(बंधपदेसाणं पुण)** बंधरूप हुए परमाणुओं का **(संकमणं)** संक्रमण भी **(सुहुमरागोत्ति)** सूक्ष्मसाम्परायपर्यंत ही है।

विशेषार्थ - दसवें गुणस्थान के ऊपर एक सातावेदनीय को छोड़कर किसी अन्य प्रकृति का बन्ध नहीं होता। सातावेदनीय का भी केवल प्रकृति व प्रदेशबन्ध होता है और

संक्रमण बन्धनेवाली प्रकृति में ही होता है अतः दसवें गुणस्थान के ऊपर संक्रमण नहीं होता। दसवें गुणस्थान के ऊपर केवल अनुदयवाली प्रकृतियों का द्रव्य उदयप्रकृतियों में स्तिबुक संक्रमण द्वारा संक्रमित होकर उनका नाश होता है।

अब पाँच भागहारों का अल्पबहुत्व छह गाथाओं से कहते हैं -

सव्वस्सेकं रूवं असंखभागो दु पल्लछेदाणं ।
गुणसंकमो दु हारो ओकड्ढुक्कड्ढणं तत्तो ।।४३०।।
हारं अधापवत्तं तत्तो जोगम्हि जो दु गुणगारो।
णाणागुणहाणिसला असंखगुणिदक्कमा होंति ।।४३१।।

अन्वयार्थ - (सव्वस्सेक्कं रूवं) सर्व संक्रमण भागहार का प्रमाण एकरूप है **(पल्लछेदाणं असंखभागो)** पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग प्रमाण **(गुणसंकमो दु हारो)** गुणसंक्रमण भागहार है। **(तत्तो)** उससे **(ओकड्ढुक्कड्ढणं)** अपकर्षण उत्कर्षण भागहार, **(तत्तो)** उससे **(अधापवत्तं हारं)** अध:प्रवृत्त भागहार, उससे **(जोगम्हि जो दु गुणगारो)** जो योग में गुणकार कहा है वह तथा **(णाणागुणहाणिसला)** नानागुणहानिशलाका ये **(असंखगुणिदक्कमा)** क्रम से असंख्यातगुणित **(होंति)** हैं।

तत्तो पल्लसलायच्छेदहिया पल्लछेदणा होंति।
पल्लस्स पढममूलं गुणहाणीवि य असंखगुणिदकमा ।।४३२।।

अन्वयार्थ - (तत्तो) उससे **(पल्लसलायच्छेदहिया)** पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदों से अधिक **(पल्लछेदणा)** पल्य के अर्धच्छेद **(होंति)** होते हैं। उससे **(पल्लस्स पढममूलं)** पल्य का प्रथम वर्गमूल, उससे **(गुणहाणी वि)** गुणहानि आयाम भी **(असंखगुणिदकमा)** क्रम से असंख्यातगुणित हैं।

अण्णोण्णब्भत्थं पुण पल्लमसंखेज्जरूवगुणिदकमा।
संखेज्जरूवगुणिदं कम्मुक्कस्सठिदी होदि ।।४३३।।

अन्वयार्थ - (पुण) उससे **(अण्णोण्णब्भत्थं)** अन्योन्याभ्यस्तराशि, उससे **(पल्लं)** पल्य **(असंखेज्जरूवगुणिदकमा)** क्रम से असंख्यातरूपों से गुणित है। पल्य से **(कम्मुक्कस्सट्ठिदी)** कर्म की उत्कृष्टस्थिति **(संखेज्जरूवगुणिदं)** संख्यातरूपों से गुणित है।

अंगुलअसंखभागं विज्झादुव्वेल्लणं असंखगुणं।
अणुभागस्स य णाणागुणहाणिसला अणंताओ ।।४३४।।

अन्वयार्थ - (विज्झाद) विध्यातसंक्रमण भागहार **(अंगुलअसंखभागं)** सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। उससे **(उव्वेल्लणं)** उद्वेलन भागहार **(असंखगुणं)** असंख्यातगुणा है। वह भी सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण है। उससे **(अणुभागस्स य)** कर्मों के अनुभाग की **(णाणागुणहाणिसलागा)** नानागुणहानि शलाका **(अणंताओ)** अनन्त प्रमाण है।

गुणहाणि अणंतगुणं तस्स दिवड्ढं णिसेयहारो य ।
अहियकमा अण्णोणब्भत्थो रासी अणंतगुणो ।।४३५।।

अन्वयार्थ - उससे **(गुणहाणि)** उस अनुभाग की एक गुणहानि आयाम का प्रमाण **(अणंतगुणं)** अनंतगुणा है। उससे **(तस्स)** उसकी ही **(दिवड्ढं)** डेढ़ गुणहानि का प्रमाण **(य)** और उससे **(णिसेयहारो)** उसकी ही निषेकहार अर्थात् दो गुणहानि का प्रमाण **(अहियकमा)** क्रम से आधे प्रमाण अधिक है। उससे उस अनुभाग की **(अण्णोणब्भत्थो रासी)** अन्योन्याभ्यस्तराशि **(अणंतगुणो)** अनंतगुणा है।

विशेषार्थ - १) सर्वसंक्रमण भागहार सबसे थोडा है अर्थात् एक है। अन्तिम काण्डक की अन्तिम फालि में जितने परमाणु शेष रहते है उनमें एक से भाग देनेपर सर्व ही परमाणु लब्ध में आते है वे सब अन्य प्रकृतिरूप परिणमन करते हैं उसीको सर्व संक्रमण कहते हैं।

२) गुणसंक्रमण भागहार सर्वसंक्रमण भागहार से असंख्यात गुणा है। उसका प्रमाण पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग है। जिस प्रकृति का गुणसंक्रम करना हो उसके परमाणुओं में इस भागहार का भाग देनेपर जो लब्ध आता है उतने परमाणु अन्यप्रकृतिरूप परिणमन करते हैं वह गुणसंक्रमण भागहार है।

३) गुणसंक्रमण भागहार से अपकर्षण-उत्कर्षण भागहार असंख्यात गुणा है। इसका यहाँपर प्रकरण नहीं है फिर भी उत्कर्षण भागहार या अपकर्षण भागहार का कथन आवे तब वहाँपर यह भागहार का प्रमाण जानना।

४) इनसे अध:प्रवृत्त भागहार असंख्यातगुणा है उसका प्रमाण भी पल्य के अर्धच्छेद का असंख्यातवाँ भाग ही है।

५) इससे जघन्य योगस्थान का गुणकार असंख्यातगुणा है। इस गुणकार से जघन्य योगस्थान को गुणा करनेपर उत्कृष्ट योगस्थान आता है।

६) इससे कर्मों की स्थिति की नानागुणहानि शलाका का प्रमाण असंख्यातगुणा है। वह पल्य के अर्धच्छेदों में से पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदों को घटानेपर जो प्रमाण रहे उतना है। पल्य के अर्धच्छेद - वर्गशलाका के अर्धच्छेद संदृष्टि छे - व छे

७) उपर्युक्त प्रमाण में पल्य के वर्गशलाका के अर्धच्छेद अधिक करनेपर पल्य के अर्धच्छेद होते हैं।

८) उससे पल्य का प्रथम वर्गमूल असंख्यातगुणा है क्योंकि द्विरूपवर्गधारा में पल्य के अर्धच्छेद के स्थान से असंख्यात वर्गस्थान आगे जानेपर पल्य का प्रथम वर्गमूल आता है।

९) उससे कर्म की स्थिति का गुणहानि आयाम असंख्यात गुणा है।

$\frac{\text{स्थिति}}{\text{नाना गुणहानि}}$ = गुणहानि आयाम   उत्कृष्ट स्थिति ⟶ ७० कोडाकोडीसागर

७० कोडाकोडीसागर का पल्य में रूपांतर करने के लिये त्रैराशिक

प्रमाण	**फल**	**इच्छा**
१ सागर में	१० कोडाकोडी पल्य	७० कोडाकोडी सागर के कितने पल्य?
$\frac{\text{१० को. २ पल्य × ७० को. २ सागर}}{\text{१ सागर}}$ = ७०० कोडाकोडी कोडाकोडी पल्य		

पल्य = प्रथमवर्गमूल × प्रथमवर्गमूल

यहाँपर प्रथमवर्गमूल से गुणहानि आयाम कितना गुणा है यह बताने के लिए वर्गमूल की भाषा में लिखा है कि ७०० को चार बार कोटि से गुणित प्रथमवर्गमूल के वर्ग को नाना गुणहानि का शलाका से भाजित करने पर गुणहानि आयाम का प्रमाण आता है।

स्थिति का गुणहानि आयाम = $\frac{\text{मू १ × मू १ × ७०० को ४}}{\text{छे - व छे}} = \frac{\text{प १}}{\text{छे-व छे}}$

१०) उससे कर्म की स्थिति की अन्योन्याभ्यस्त राशि का प्रमाण असंख्यात गुणा है

क्योंकि नाना गुणहानि प्रमाण दो के अंक रखकर परस्पर गुणा करने से अन्योन्याभ्यस्त राशि का प्रमाण होता है। वह पल्य ÷ वर्गशलाका है।

११) अन्योन्याभ्यस्त राशि को पल्य की वर्गशलाका से गुणा करनेपर पल्य होता है।

१२) उससे कर्म की उत्कृष्ट स्थिति (७०० को ४ पल्य प्रमाण) संख्यातगुणी है।

१३) उससे विध्यात संक्रमण भागहार असंख्यात गुणा है, वह सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं, सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग में असंख्यात कल्पकाल के समय होते हैं।

१४) विध्यातसंक्रमण भागहार से उद्वेलन भागहार असंख्यातगुणा है। वह भी सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण है। ये पॉच भागहार क्रम से असंख्यातगुणे हीन हैं।

उद्वेलनभागहार $\frac{\text{२}}{\partial}$ विध्यातभागहार $\frac{\text{२}}{\partial\partial}$, अध:प्रवृत्तभागहार $\frac{\text{छे}}{\partial\partial}$,

गुणसंक्रमणभागहार $\frac{\text{छे}}{\partial\partial\partial\partial}$, सर्वसंक्रमणभागहार १

संदृष्टि → पल्य प, पल्य के अर्धच्छेद → छे, पल्यवर्गशलाका → व,
उसके अर्धच्छेद → व छे, सूच्यंगुल →२, अनन्त→ ख, वर्गमूल प्रथम→ मू १

क्र.	नाम	अल्पबहुत्व का प्रमाण	संख्या का प्रमाण	अर्थसंदृष्टि
१	सर्वसंक्रमणभागहार	सब से अल्प	एक	१
२	गुणसंक्रमण भागहार	असंख्यातगुणा	पल्य के अर्धच्छेद / असंख्यात ४ बार	$\frac{\text{छे}}{\partial\partial\partial\partial}$
३	उत्कर्षण-अपकर्षणभागहार	असंख्यातगुणा	पल्य के अर्धच्छेद / असंख्यात ३ बार	$\frac{\text{छे}}{\partial\partial\partial}$
४	अध:प्रवृत्त संक्रमणभागहार	असंख्यातगुणा	पल्य के अर्धच्छेद / असंख्यात २ बार	$\frac{\text{छे}}{\partial\partial}$
५	योग गुणकार	असंख्यातगुणा	पल्य के अर्धच्छेद / असंख्यात	$\frac{\text{छे}}{\partial}$

क्र.	नाम	अल्पबहुत्वका प्रमाण	संख्या का प्रमाण	अर्थसंदृष्टि
६	कर्मस्थितिकी नाना गुणहानि शलाका	असंख्यातगुणा	पल्य के अर्धच्छेद -पल्य के वर्गश. के अर्धच्छेद	छे - वछे
७	पल्य के अर्धच्छेद	पल्यवर्गशलाका के अर्धच्छेद से अधिक	पल्य के अर्धच्छेद	छे
८	पल्य का प्रथमवर्गमूल	असंख्यातगुणित	पल्य प्रथमवर्गमूल	मू१
९	कर्मस्थिति का गुणहानि आयाम	असंख्यातगुणित	कर्मस्थि.→सं.पल्य / नानागुणहानि श.	प१ / छे - वछे
१०	अन्योन्याभ्यस्त राशि	असंख्यातगुणित	पल्य / वर्गशलाका	प / व
११	पल्य	असंख्यातगुणित	अन्योन्याभ्यस्तराशि प/व ×पल्यकी वर्ग.श.	प
१२	कर्म की उत्कृष्ट स्थिति	संख्यातगुणित	७००×४बारकोटि ×पल्य अर्थात् संख्यात पल्य	प१
१३	विध्यात संक्रमणभागहार	` असंख्यातगुणित	सूच्यंगुल / असंख्यात	२ / ∂∂
१४	उद्वेलन भागहार	` असंख्यातगुणित	सूच्यंगुल / असंख्यात	२ / ∂
१५	अनुभाग की नाना गुणहानि	अनंतगुणित	अनन्त	ख
१६	अनुभाग का गुणहानिआयाम	अनंतगुणित	अनन्त × अनन्त	ख ख
१७	अनुभाग की डेढ़ गुणहानि	डेढ़ गुणा	अनन्त × ३/२	ख ख ३/२
१८	अनुभाग की दो गुणहानियाँ	अर्धगुणहानि अधिक	गुणहानि आयाम × २	ख ख २
१९	अनुभाग की अन्योन्याभ्यस्त राशि	अनंतगुणित		खख२ख

तृतीय दशकरणचूलिका

जस्स य पायपसाएणणंतसंसारजलहिमुत्तिण्णो ।
वीरिंदणंदिवच्छो णमामि तं अभयणंदिगुरुं ।।४३६।।

अन्वयार्थ - (जस्स य) जिनके **(पायपसाएण)** चरणों के प्रसाद से **(वीरिंदणंदि वच्छो)** वीरनन्दि और इन्द्रनन्दि का वत्स मै नेमिचंद्राचार्य **(अणंतसंसारजलहिं)** अनन्त संसारसमुद्र के **(उत्तिण्णो)** पार हो गया **(तं)** उन **(अभयणंदिगुरुं)** अभयनन्दि गुरु को **(णमामि)** नमस्कार करता हूँ।

अब दस करणों के नाम कहते हैं -

बंधुक्कड्ढणकरणं संकममोकड्ढुदीरणा सत्तं ।
उदयुवसामणिधत्ती णिकाचणा होंति पडिपयडी ।।४३७।।

अन्वयार्थ - (बंधुक्कड्ढणकरणं) बन्ध, उत्कर्षणकरण, **(संकमोकड्ढु-दीरणा)** संक्रमण, अपकर्षण, उदीरणा **(सत्तं)** सत्त्व **(उदयुवसामणिधत्ती)** उदय, उपशम, निधत्ति **(णिकाचणा)** निकाचना ये दस करण **(पडिपयडी)** प्रत्येक प्रकृति में **(होंति)** होते हैं।

अब दस करणों का स्वरूप तीन गाथाओं से कहते हैं -

कम्माणं संबंधो बंधो उक्कड्ढणं हवे वड्ढी ।
संकममणत्थगदी हाणी ओकड्ढणं णाम ।।४३८।।

अन्वयार्थ -(कम्माणं संबंधो) ज्ञानावरणादि कर्मों का संबंध होना **(बंधो)** बंध है। **(वड्ढी)** स्थिति अनुभाग में वृद्धि होना **(उकड्ढणं)** उत्कर्षण **(हवे)** है। **(अण्णत्थगदी)** अन्य प्रकृतिरूप होना **(संकमं)** संक्रमण है। **(हाणी णाम)** स्थिति अनुभाग में हानि होना **(ओकड्ढणं)** अपकर्षण है।

अण्णत्थठियस्सुदये संछुहणमुदीरणा हु अत्थित्तं ।
सत्तं सकालपत्तं उदओ होदित्ति णिद्दिट्ठो ।।४३९

अन्वयार्थ -(अण्णत्थठियस्स) उदयावली के बाहर स्थित द्रव्य का **(उदये)** उदयावली में **(संछुहणं)** निक्षेपन करना अर्थात् देना **(उदीरणा)** उदीरणा है **(हु अत्थित्तं)** अस्तित्व को **(सत्तं)** सत्त्व कहते हैं। **(सकालपत्तं)** अपने काल को प्राप्त करना **(उदओ)** उदय **(होदित्ति)** है, ऐसा जिनेन्द्र ने **(णिद्दिट्ठो)** कहा है।

उदये संकममुदये चउसुवि दादुं कमेण णो सक्कं ।
उवसंतं च णिधत्ती णिकाचिदं होदि जं कम्मं ।।४४०।।

अन्वयार्थ - (जं कम्मं) जो कर्म **(उदये)** उदय में **(संकममुदये)** संक्रमण और उदय में तथा **(चउसुवि)** चारों में अर्थात् उदय, संक्रमण, अपकर्षण और उत्कर्षण में **(दादुं)** देना **(णो सक्कं)** शक्य नहीं है वह **(कमेण)** क्रम से **(उवसंतं)** उपशांत **(णिधत्ती)** निधत्ति **(च)** और **(णिकाचिदं)** निकाचित करण **(होदि)** है।

विशेषार्थ - कर्म की दश अवस्थाएँ होती हैं उसे ही दशकरण कहते हैं।

दशकरण - १) बन्ध २) उदय ३) सत्त्व ४) उत्कर्षण ५) अपकर्षण ६) संक्रमण ७) उदीरणा ८) उपशम ९) निधत्ति १०) निकाचना

क्र.	**करण के नाम**	**करण के लक्षण**	**करण के गुणस्थान**
१)	बन्ध	मिथ्यात्वादि परिणामों से ज्ञानावरणादिरूप परिणमित होकर जीव के साथ कर्म का संबंध होना।	१३वे गुण.पर्यंत
२)	उदय	स्थिति पूरी होनेपर फल देना।	१४वे गुण.पर्यंत
३)	सत्त्व	पुद्‌गलों का कर्मरूप से रहना।	१४वे गुण.पर्यंत
४)	उत्कर्षण	पूर्व स्थिति और अनुभाग में वृद्धि होना।	१३वे गुण.पर्यंत
५)	अपकर्षण	पूर्व स्थिति और अनुभाग में हानि होना।	१३वे गुण.पर्यंत
६)	संक्रमण	विवक्षित प्रकृति के परमाणु अन्य उत्तरप्रकृतिरूप होना।	१०वे गुण.पर्यंत

क्र.	करण के नाम	करण के लक्षण	करण के गुणस्थान
७)	उदीरणा	उदयावलि के बाहर स्थित द्रव्य को अपकर्षण से उदयावलि में लाना।	१३वें गुण.पर्यंत
८)	उपशम	कर्म को उदयावलि में लाने में असमर्थ कर देना।	८ वें गुण.पर्यंत
९)	निधत्ति	कर्म का उदयावली में लाने में या संक्रमण के लिए समर्थ न होना	८ वें गुण.पर्यंत
१०)	निकाचना	कर्म का उदीरणा, संक्रमण, अपकर्षण या उत्कर्षण के लिए असमर्थ होना	८ वें गुण.पर्यंत

कर्मप्रकृतियों तथा गुणस्थानों में दश करणों का नियम कहते हैं -

संकमणाकरणूणा णवकरणा होंति सव्वआऊणं ।
सेसाणं दसकरणा अपुव्वकरणोत्ति दसकरणा ।।४४१।।

अन्वयार्थ - (सव्वआऊणं) सर्व आयुओं में **(संकमणाकरणूणा)** संक्रमणकरण के बिना **(णवकरणा)** नौ करण **(होंति)** होते हैं। **(सेसाणं)** शेष सब कर्मों में **(दसकरणा)** दस करण होते हैं **(अपुव्वकरणोत्ति)** मिथ्यादृष्टि से लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त **(दसकरणा)** दस करण होते हैं।

विशेषार्थ - आयुकर्म के संक्रमणकरण के बिना शेष नौ करण होते हैं। शेष सब प्रकृतियों में दस करण होते हैं।

आदिमसत्तेव तदो सुहुमकसाओत्ति संकमेण विणा ।
छच्च सजोगित्ति तदो सत्तं उदयं अजोगित्ति ।।४४२।।

अन्वयार्थ - (तदो) अपूर्वकरण गुणस्थान से ऊपर **(सुहुमकसाओत्ति)** सूक्ष्मसाम्पराय पर्यन्त **(आदिमसत्तेव)** आदि के सात ही करण होते हैं उनमें से भी **(सजोगित्ति)** सयोगीपर्यन्त **(संकमेण विणा)** संक्रमण के बिना **(छच्च)** छह ही करण होते हैं **(तदो)** उसके ऊपर **(अजोगित्ति)** अयोगी में **(सत्तं उदयं)** सत्त्व और उदय दो ही करण होते हैं।

णवरि विसेसं जाणे संकममवि होदि संतमोहम्मि ।
मिच्छस्स य मिस्सस्स य सेसाणं णत्थि संकमणं ।।४४३।।

अन्वयार्थ - (णवरि विसेसं) किन्तु उक्त कथन में यह विशेष जानना कि **(संतमोहम्मि)** उपशांत मोह गुणस्थान में **(मिच्छस्स य)** मिथ्यात्व का और **(मिस्सस्स य)** मिश्र प्रकृति का **(संकममवि)** संक्रमण भी **(होदि)** होता है। **(सेसाणं)** शेष प्रकृतियों का वहाँ **(संकमणं)** संक्रमण **(णत्थि)** नहीं होता।

गु. क्र.	गुणस्थान	करण	अकरण	करणव्युच्छित्ति	
१ - ८	मिथ्यादृष्टि से अपूर्वकरणतक	१०	०	३	निधत्ति, निकाचना, उपशम
९ -१०	अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय	७	३	१	संक्रमण (मिथ्यात्व मिश्र छोड़कर शेष की)
११	उपशान्तमोह	७/६	३/४	१/०	मिथ्यात्व व मिश्र के संक्रमण की व्युच्छित्ति
१२-१३	क्षीणमोह, सयोगकेवली	६	४	४	बन्ध, उत्कर्षण, अपकर्षण, उदीरणा
१४	अयोगकेवली	२	८	२	उदय, सत्त्व

विशेषार्थ - उपशम सम्यक्त्व सहित उपशम श्रेणिपर आरूढ हुए जीव के ग्यारहवें गुणस्थान में मिथ्यात्व और मिश्र प्रकृति का संक्रमण करण होता है इसलिए ग्यारहवें गुणस्थान में क्षायिक सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा ६ करण और उपशम सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा ७ करण कहे हैं।

दस करणों में जो विशेषता हैं उसे सात गाथाओं से कहते हैं -

बंधुक्कड्ढणकरणं सगसगबंधोत्ति होदि णियमेण ।
संकमणं करणं पुण सगसगजादीण बंधोत्ति ।।४४४।।

अन्वयार्थ - (बंधुक्कड्ढणकरणं) बन्धकरण और उत्कर्षण करण **(सगसगबंधोत्ति)** अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्तिपर्यन्त **(णियमेण)** नियम से **(होदि)** होते हैं। **(पुण)** पुन: **(संकमणं करणं)** संक्रमण करण **(सगसगजादीण)** अपनी अपनी

सजातीय प्रकृतियों के **(बंधोत्ति)** बन्धपर्यन्त होता है।

विशेषार्थ -बन्धकरण और उत्कर्षणकरण अपनी अपनी बन्धव्युच्छित्तिपर्यन्त होते हैं। संक्रमणकरण अपनी अपनी सजातीय प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्तिपर्यन्त होता है। अर्थात् जिस प्रकृति का उत्कर्षण होता है उसका बन्ध आवश्यक है और जिसमें अन्य प्रकृति संक्रमित होती है उसका बन्ध होना आवश्यक है।

ओकड्ढणकरणं पुण अजोगिसत्ताण जोगिचरिमोत्ति ।
खीणं सुहुमंताणं खयदेसस्सावलीयसमयोत्ति ।।४४५।।

अन्वयार्थ - (पुण) पुन: **(अजोगिसत्ताण)** अयोगि में जिन ८५ प्रकृतियों की सत्ता कही है उनका **(ओकड्ढणकरणं)** अपकर्षणकरण **(जोगिचरमोत्ति)** सयोगी के अन्त समय पर्यन्त होता है। **(खीणं सुहुमंताणं)** क्षीणकषाय में और सूक्ष्मसांपराय में विच्छिन्न हुई प्रकृतियों का **(खयदेसस्सावलीयसमयोत्ति)** अपकर्षण क्षयदेशपर्यन्त होता है इनका क्षयदेश एक समय अधिक आवली काल प्रमाण है।

उवसंतोत्ति सुराऊ मिच्छत्ति य खवगसोलसाणं च ।
खयदेसोत्ति य खवगे अट्ठकसायादिवीसाणं ।।४४६।।

अन्वयार्थ - (सुराउ) देवायु का अपकर्षणकरण **(उवसंतोत्ति)** उपशान्त कषाय पर्यन्त होता है। **(मिच्छत्तिय)** मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व प्रकृति, **(च)** और **(खवगसोलसाणं)** क्षपक अनिवृत्तिकरण में क्षय हुई सोलह प्रकृतियों का अपकर्षण **(खयदेसोत्ति)** अपने क्षयदेशपर्यन्त अर्थात् अन्तकाण्डक के अन्तिमफालिपर्यन्त होता है। तथा **(अट्ठकसायादिवीसाणं)** आठ कषाय आदि बीस प्रकृतियों का अपकर्षण **(खवगे)** अपने अपने क्षयदेश पर्यन्त होता है।

मिच्छत्तियसोलसाणं उवसमसेडिम्मि संतमोहोत्ति ।
अट्ठकसायादीणं उवसमियट्ठाणगोत्ति हवे ।।४४७।।

अन्वयार्थ - (उवसमसेडिम्मि) उपशमश्रेणि में **(मिच्छत्तियसोलसाणं)** मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यक्त्व प्रकृति और नरकद्विक आदि सोलह का अपकर्षणकरण

(संतमोहोत्ति) उपशान्तमोह पर्यन्त होता है। **(अट्ठकसायादीणं)** आठ कषाय आदि का अपकर्षणकरण **(उवसमियट्ठाणगोत्ति)** अपने अपने उपशमन स्थान पर्यन्त होता है।

पढमकसायाणं च विसंजोजकओत्ति अयददेसोत्ति ।
णिरयतिरिआउगाणमुदीरणसत्तोदया सिद्धा ।।४४८।।

अन्वयार्थ - (पढमकसायाणं) प्रथम अनन्तानुबंधी कषायों का अपकर्षण करण **(विसंजोजकओत्ति)** जहाँ विसंयोजन होता है वहाँ पर्यन्त होता है। **(णिरयतिरिआउगाणं)** नरकायु और तिर्यंचायुओं की **(उदीरणसत्तोदया)** उदीरणा, सत्त्व और उदयकरण क्रम से **(अयददेसोत्ति)** असंयत और देशसंयत पर्यन्त **(सिद्धा)** प्रसिद्ध है।

मिच्छस्स य मिच्छोत्ति य उदीरणाउवसमाहिमुहियस्स ।
समयाहियावलित्ति य सुहुमे सुहुमस्स लोहस्स ।।४४९।।

अन्वयार्थ - (मिच्छस्स) मिथ्यात्व प्रकृति का **(मिच्छोत्ति य)** मिथ्यादृष्टि गुणस्थानपर्यन्त ही **(उवसमाहिमुहियस्स)** उपशम सम्यक्त्व के सम्मुख हुए जीव के **(समयाहियावलित्ति)** एक समय अधिक आवली काल शेष रहने पर्यन्त उदीरणा करण होता है। **(सुहुमस्स लोहस्स)** सूक्ष्मलोभ का **(सुहुमे)** सूक्ष्मसांपराय में उदीरणा करण है।

उदये संकमुदये चउसुवि दादुं कमेण णोसक्कं ।
उवसंतं च णिधत्ती णिकाचिदं तं अप्पुव्वोत्ति ।।४५०।।

अन्वयार्थ -(कमेण) क्रम से **(उदये)** जो उदयावली में **(दादुं)** देने के लिए **(णो सक्कं)** समर्थ नहीं है वह **(उवसंतं)** उपशान्त द्रव्य है **(संकमुदये)** जो संक्रम और उदय में देने में समर्थ नहीं है वह **(णिधत्ती)** निधत्तिकरण द्रव्य है, **(च)** और **(चउसुवि)** जो चारों में अर्थात् उदय, संक्रमण, उत्कर्षण, अपकर्षण रूप होने में समर्थ नहीं है वह **(णिकाचिदं)** निकाचितकरण द्रव्य है **(तं)** वे तीनों करण **(अपुव्वोत्ति)** अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त ही होते हैं।

प्र.सं.	प्रकृतियों का नाम	अपकर्षणकरण कहाँ तक होता है
८५	अयोगि में सत्त्वरूप ८५प्रकृतियाँ	१३ वें सयोगिगुणस्थान के चरमसमयपर्यंत
१६	५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अंतराय, निद्रा, प्रचला	अपने क्षयदेशपर्यंत(१२ वें गुणस्थान में एक समय अधिक एक आवलि शेष रहनेतक)
१	संज्वलनलोभ	अपने क्षयदेशपर्यन्त (१०वें गुणस्थान में एक समय अधिक एक आवलि शेष रहनेतक)
२	मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व	अपने क्षयदेशपर्यन्त (४-७ गुणस्थान में जहाँपर क्षय होता है वहाँ अंतिमकाण्डक की अंतिम फालितक)
१	सम्यक्त्व	अपने क्षयदेशपर्यन्त
३	मिथ्यात्वादि ३ प्रकृति का उपशमश्रेणिपर	उपशान्तकषायपर्यन्त
१६	तिर्यगेकादश, स्त्यानगृद्धित्रिक, नरकद्विक	अपने क्षयदेशपर्यन्त(९ वें गुण. के प्रथम भागतक)
८	अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान कषाय	अपने क्षयदेशपर्यन्त(९ वें गुण. के द्वितीय भागतक)
९	नपुंसकवेद,स्त्रीवेद, पुंवेद, ६ नोकषाय	अपने क्षयदेशपर्यन्त(९ वें गुण.के ३,४,५,६ भागतक)
३	संज्वलन क्रोध, मान, माया	अपने क्षयदेशपर्यन्त(९ वें गुणस्थान के ७, ८,९ भागतक)
१	देवायु	उपशान्तकषायतक
१६	नरकद्विकादि १६ प्रकृतियाँ	उपशमश्रेणिपर उपशान्तकषायतक
२०	आठ कषायादि २० प्रकृतियाँ (नववें गुणस्थान में क्षय होनेवाली)	इनका उपशमश्रेणिपर अपने अपने उपशमन स्थान पर्यन्त

विशेषार्थ - स्वमुखोदयी प्रकृतियों का एक समय अधिक आवली प्रमाण काल क्षयदेश है। परमुखोदयी प्रकृतियों का क्षयदेश अन्तिम काण्डक की अन्तिम फाली है।

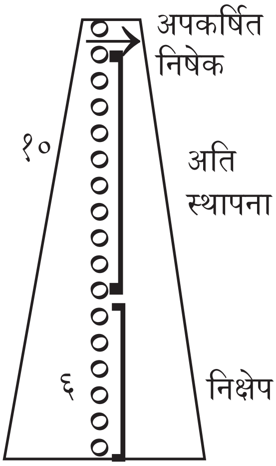

जब एक आवली शेष रहती है तब अपकर्षण करने पर निक्षेप और अतिस्थापना नहीं बन सकती। अत: जब तक स्थिति एक समय अधिक एक आवली शेष रहे तबतक ही निक्षेप और अतिस्थापना हो सकती है। ऊपर के एक निषेक से अपकर्षण कर नीचे की एक आवली में ऊपर एक समय कम दो त्रिभाग में अतिस्थापना करके उसके नीचे के एक समय अधिक, एक समय कम आवली के एक त्रिभाग में निक्षेपण करता है।

जैसे - एक आवली के १६ समय मान लिये तो १६-१ = १५ के तीन भाग करना १५/३ = ५ एक त्रिभाग,

५×२ = १० दो त्रिभाग अतिस्थापना ५+१ = ६ एक समय अधिक त्रिभाग निक्षेप।

नरकायु का असंयतपर्यन्त, तिर्यंचायु का देशसंयत पर्यन्त, उदय, उदीरणा, सत्त्वकरण होता है। मिथ्यात्व का प्रथम गुणस्थान में उपशमसम्यक्त्व के सम्मुख जीव के एक समय अधिक आवलीकाल शेष रहने तक उदीरणा होती है। सूक्ष्मलोभ की उदीरणा १० वें गुणस्थान में ही होती है।

इस प्रकार त्रिचूलिका नामक चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।

।। प्रथम भाग सम्पुर्ण ।।